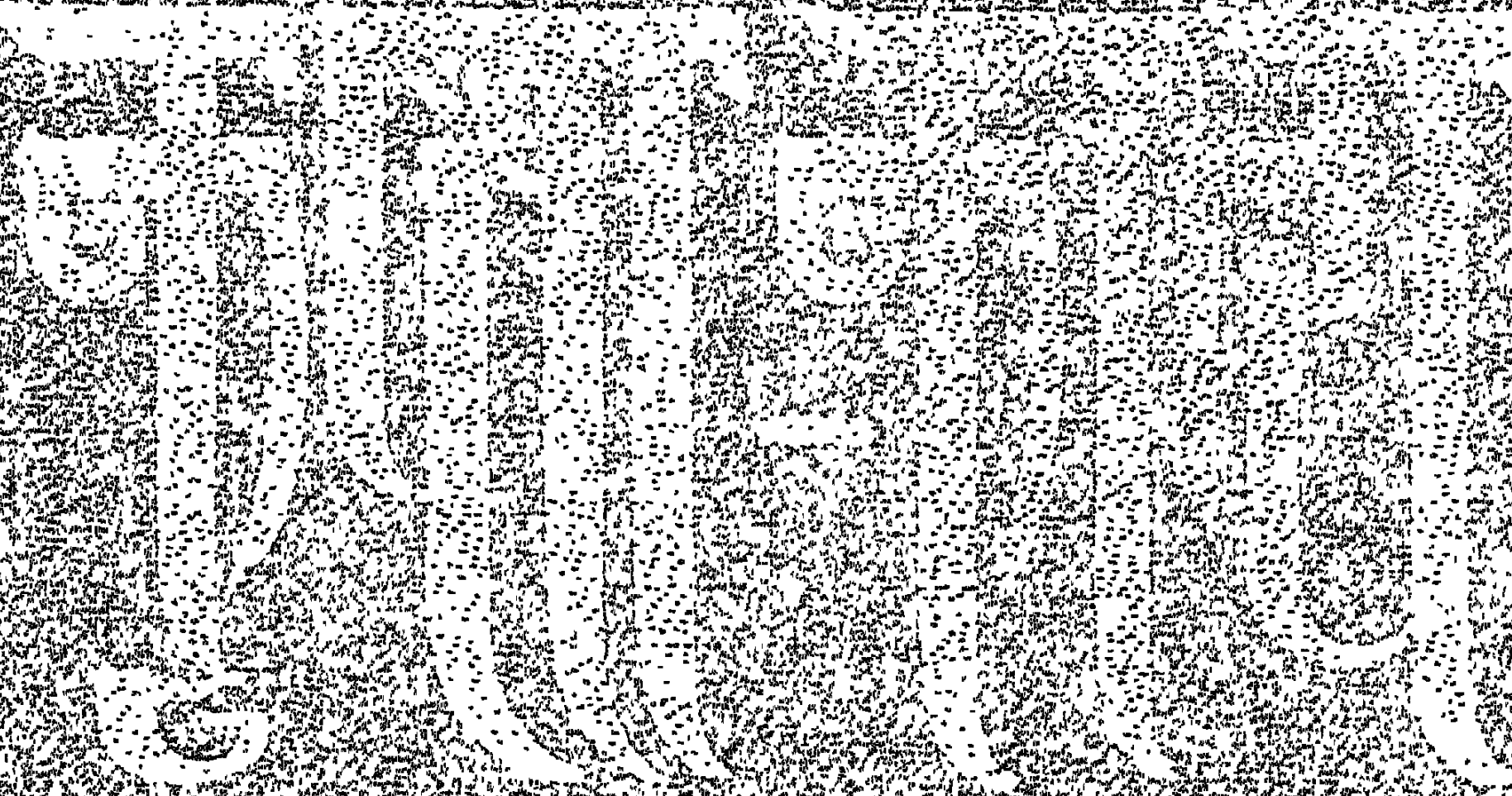


Barcode : 5990010044917
Title - Gujarati Aur Brajbhasha Kavi Kavya Ka Tulanatmak Adhyayana
Author -
Language - hindi
Pages - 554
Publication Year - 1958
Barcode EAN.UCC-13





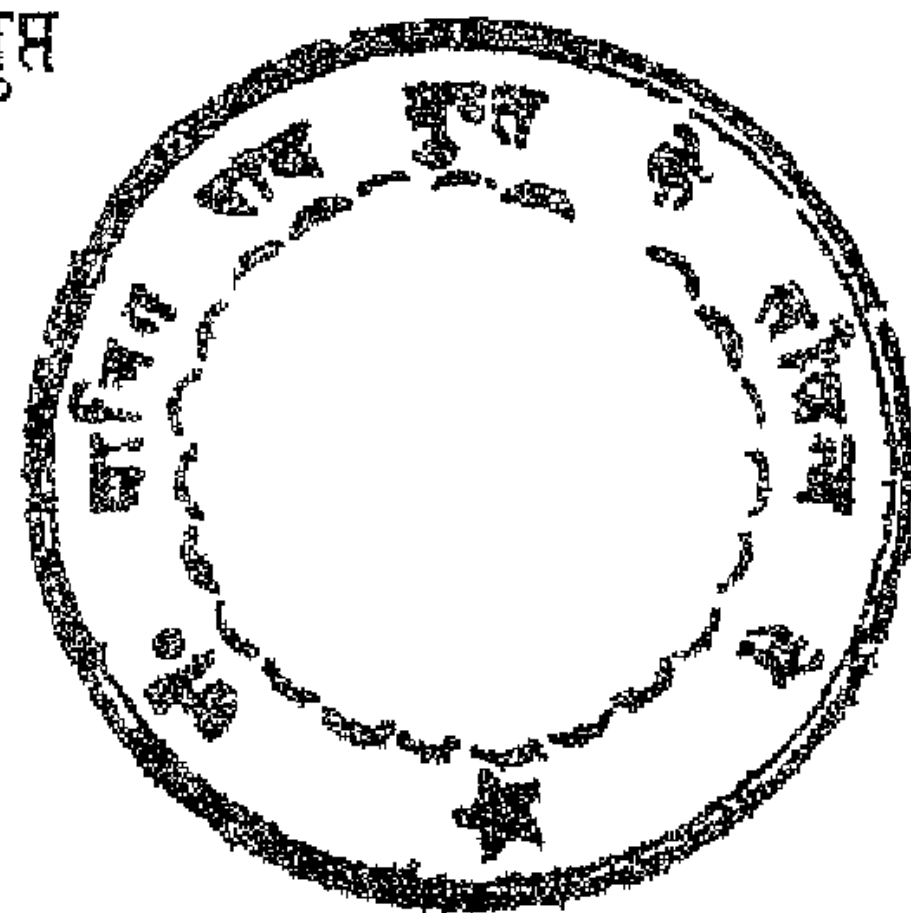
संस्कृत-संस्कृत-संस्कृत

डॉ. लक्ष्मी कृष्ण

द्वितीय शती
और
ब्रजभाषा
कृष्ण-गीत
का
तुलनात्मक अध्ययन

(१५ वी, १६ वी, १७ वीं शती ई०)

डॉ० जगदीश गुप्त



हिन्दी परिषद्
विश्वविद्यालय, प्रयाग
१९५८

प्रयाग विश्वविद्यालय

की डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत

तथा

ब्रज साहित्य मंडल

की ओर से एक सहस्र के पुरस्कार द्वारा

सम्मानित

शोध-प्रबंध

मूल्य ८)

प्रकाशक

हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

मुद्रक

एस० एल० गुप्त, बी० एस-सी०,

टेकनिकल प्रेस (प्राइवेट) लिमिटेड, २ लाजपत रोड, इलाहाबाद

श्रद्धेय
प्रो० धीरेन्द्र वर्मा
तथा
श्री केशवराम काशीराम शास्त्री
को
आदर सहित

सूर

कोऊ माई लैहै रो गोपालहि ।

दधि को नाम श्याममुदर रस बिसरि गई ब्रजबालहि ।

—मू० सा०, पृ० ३२६

मीरा

कोई श्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरे मटुक्किया डोलै ।

दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो हरिल्यो' बोलै ।

—मी० पदा०, पृ० ६१

नरसी

धरणीधरसु लागू माह ध्यान रे ।

लोक कहेशे गोपी घेली रे थइ छे,

माथे छे महि, कहे छे कान रे ।

—न० कु० का०, पृ० ५३६

पारंचय

भारतवर्ष के महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आंदोलन प्रायः देशव्यापी रहे हैं, यद्यपि इनमें साथ-साथ प्रादेशिक विशेषताएँ भी विकसित होती रही हैं। इस प्रकार के आंदोलनों में मध्ययुग की वैष्णव भक्ति-भावना ने देश के बहुत बड़े भाग को प्रभावित किया था और वह जन-जीवन में बहुत गहरी उतर गयी थी। एक ही मूल धार्मिक प्रेरणा को मध्यदेश, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा, आसाम आदि के संप्रदाय-प्रवर्तकों तथा भक्त-कवियों ने अपने-अपने ढंग से प्रकट किया।

मेरी यह निश्चित धारणा रही है कि यदि हमें अपने देश के सांस्कृतिक आंदोलनों का वास्तविक पूर्ण अध्ययन उपस्थित करना है और उनका पूर्ण चित्र सामने रखना है तो यह केवल मात्र प्रादेशिक अध्ययनों के रूप में नहीं हो सकेगा, किंतु विस्तृत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन भी अनिवार्य होंगे। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मैं अपने सहयोगियों तथा खोज के विद्यार्थियों को भाषा, साहित्य और संस्कृति संबंधी ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विषयों पर कार्य करने को निरंतर प्रेरित करता रहा हूँ।

तुलनात्मक विषयों में गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन मैंने श्री जगदीश गुप्त के सिपुर्द किया था। कुछ अन्य विद्यार्थियों को हिंदी-बंगाली, हिंदी-तेलगू, हिन्दी-मराठी, आदि विषयों के तुलनात्मक अध्ययनों से लगाया था। मुझे अत्यंत संतोष है कि श्री गुप्त ने अपने विषय का अध्ययन पूर्ण परिश्रम और खोज के साथ किया और उनके इस कार्य पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० फिल्० की उपाधि प्रदान की। उनके परीक्षकों ने इस महत्वपूर्ण कार्य की अत्यंत प्रशंसा की थी। यही थीसिस अब परिवर्द्धित तथा समोधित रूप में प्रकाशित हो रहा है।

इस कार्य के सिलसिले में श्री गुप्त ने गुजराती भाषा और साहित्य का भली प्रकार अध्ययन किया तथा कई महीने गुजरात के अनेक केन्द्रों में रह कर सामग्री

संकलित की और वहाँ के विद्वानों के साथ विचार विनिमय किया। ब्रज की तो उन्होंने कई यात्राएँ की। मेरे विचार में अपने देश के दो प्राचीन जनपदों की साहित्यिक तथा धार्मिक धाराओं का ऐसा विस्तृत और गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत ग्रंथ के रूप में पहली बार उपस्थित किया जा रहा है। मुझे विश्वास है भारतीय संस्कृति और साहित्य के विद्यार्थी इसे अत्यंत उपयोगी तथा ज्ञानवर्द्धक पायेंगे।

प्रयाग,

नवम्बर १९५७

धीरेन्द्र वर्मा

प्राक्थन

समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं और उनके साहित्यों का विकास प्रायः समानान्तर ही हुआ है। मध्यकाल में महान् भक्ति आन्दोलन से अनुप्रेरित होकर राम और कृष्ण सम्बन्धी जो विशाल साहित्य निर्मित हुआ वह हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि सभी भाषाओं में उपलब्ध होता है। एक समय में लगभग एक ही प्रकार की प्रेरणाओं से उत्पन्न विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में रचित इस साहित्य के सम्यक् ज्ञान के लिए गंभीर तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इस आवश्यकता को समझ कर और गुजराती तथा ब्रजभाषा में पर्याप्त कृष्ण-साहित्य देखकर 'गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक विषय को हाथ में लिया गया। जहाँ तक ब्रजभाषा का प्रश्न है १६वीं और १७वीं शती में कृष्ण-काव्य की सर्वाधिक रचना हुई, इससे पहले का प्रामाणिक काव्य नहीं मिलता परन्तु गुजराती में भालण जैसे प्रमुख कवि १५वीं शती में ही माने जाते हैं, अतएव १५वीं, १६वीं और १७वीं इन तीनों शतियों के समय विस्तार को स्वीकार किया गया। कवियों और उनके काव्यों का परिचय गती-क्रम के अनुसार ही दिया गया है। कौन सा कवि किस शती में माना जाय इसका निर्णय जन्मकाल के आधार पर न करके काव्यकाल के आधार पर किया गया है जो काव्य सम्बन्धी अध्ययन के लिए अधिक उचित है। अध्यायों का विभाजन काव्य में पाये जाने वाले प्रमुख अंगों के अनुसार किया गया है।

“कवि और काव्य” शीर्षक प्रथम अध्याय में कवियों के समय से सम्बन्धित प्रमाण देते हुए उनके कृष्णपरक काव्यों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। जो काव्य कृष्णपरक नहीं समझे गये उन्हें, स्वीकृत कवि की रचना होते हुए भी, प्रस्तुत अध्ययन में स्थान नहीं दिया गया है। जैसे नरसी मेहता की 'हारमाला' आदि कई रचनाएँ जो उनके जीवन से सम्बद्ध घटनाओं पर रची गयी हैं, इस अध्ययन में सम्मिलित नहीं की गयी हैं। इसी तरह तुलसीदास की केवल 'कृष्णगीतावली' को ही सम्मिलित किया गया है क्योंकि इसके अतिरिक्त उनकी सारी रचनाएँ रामपरक हैं। दोनों भाषाओं के सम्पूर्ण काव्य साहित्य को लेकर रचनाओं का इस तरह चयन लेखक को स्वयं करना पड़ा है। गुजराती की बहुत सी ऐसी सामग्री का प्रयोग किया गया है जो अभी तक अप्रकाशित है। ब्रज में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रभाव से

कृष्ण-साहित्य का विकास होने के कारण ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का परिचय सम्प्रदायो के वर्ग बनाकर दिया गया है और जो सम्प्रदाय-मुक्त कवि हैं उनको एक स्वतन्त्र वर्ग में रखा गया है। गुजराती में परिस्थिति भिन्न होने के कारण इस प्रकार के वर्ग-विभाजन की आवश्यकता नहीं हुई। कृष्ण-काव्य केवल भक्ति-काव्य ही नहीं है अतएव ब्रजभाषा के रीतिकार और गुजराती के आख्यानकार कवियों को भी स्थान दिया गया है। गुजराती कवियों के समय को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न इतिहासकारों द्वारा दिये गये उनके समय को एक स्वतन्त्र तालिका-चित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है साथ ही तीन तालिका चित्र और दे दिये गये हैं जिनसे प्रत्येक शती में गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कवियों और काव्यों की तुलनात्मक परिस्थिति तत्काल एक ही दृष्टि में विदित हो जाती है। यह सब ग्रंथ के अंत में छपे हैं। गुजराती कवियों और काव्यों का परिचय अपेक्षाकृत कुछ अधिक विस्तार में दिया गया है क्योंकि हिन्दी-भाषी क्षेत्र अभी उनसे कम परिचित है। नरसी मेहता के लिए गुजराती में प्रयुक्त 'नरसिंह' का व्यवहार न करके 'नरसी' का ही व्यवहार किया गया है जो हिन्दी में प्रचलित रहा है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में और ध्रुवदास ने अपनी 'भक्तनामावली' में इसी का व्यवहार किया है। मीरा के तथाकथित "नरसी रो माहेरो" में भी यही रूप व्यवहृत हुआ है।

इस अध्ययन का द्वितीय अध्याय, जिसमें वर्ण्यवस्तु का विश्लेषण एवं विवेचन किया गया है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी सारी सामग्री, ब्रज-लीला, मथुरा-लीला तथा द्वारका-लीला, इन तीन भागों में विभाजित कर दी गयी है। इन भागों के अन्तर्गत अवान्तर विभाजन करते हुए वर्ण्य-वस्तु की सूक्ष्म तुलना करने का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक स्थिति को पूर्ण बनाने के लिए प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के स्रोतों का बराबर निर्देश कर दिया गया है। एक तो इससे मूल प्रेरणाओं पर प्रकाश पड़ सका है दूसरे कवियों की, वस्तु के क्षेत्र में, मौलिक दैन का भी निश्चय किया जा सका है। यह सारा विश्लेषण मूल ग्रंथों का आधार लेकर मौलिक रूप से किया गया है।

तृतीय अध्याय में "सिद्धान्त पक्ष" शीर्षक से दोनों भाषाओं के कवियों द्वारा ब्रह्म, जीव, जगत्, माया तथा भक्ति के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये सिद्धान्तों, विचारों एवं धारणाओं को यथावत् प्रस्तुत किया गया है। साम्प्रदायिक मान्यताओं तथा प्राचीन स्रोतों का भी आवश्यकतानुसार प्रसंग के अनुकूल उल्लेख कर दिया गया है परन्तु प्रधानता कवियों के अपने विचारों को ही दी गयी है।

चतुर्थ अध्याय काव्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। उसमें 'भावपक्ष' का तुलनात्मक निरूपण किया गया है। भावों की गंभीरता, उनका सहज सौन्दर्य, औचित्य-अनौचित्य, अभिव्यंजना के गुण-दोष, सभी का विवेचन रुढ़िगत शास्त्रीय परिपाटी से न करके साहित्य के स्वाभाविक मानदंड से किया गया है। इसके लिए कृष्ण-काव्य के कुछ विशेष भावमय स्थल अथवा प्रसंग चुन लिए गये हैं। दोनों भाषाओं में प्राप्त होने वाले भावसाम्य की ओर विशेष रूप से संकेत कर दिया गया है।

'कलापक्ष' शीर्षक पंचम अध्याय में कला का व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए अलंकार-विधान के अतिरिक्त दृश्य-चित्रण, स्वभाव-चित्रण, प्रकृति-चित्रण तथा प्रबन्ध-निर्वाह का भी समावेश कर लिया गया है जिससे दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य के लगभग सभी प्रमुख पक्ष सामने आ जाते हैं।

'छंद' शीर्षक षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत प्रबन्ध, पद और मुक्तक तीनों शैलियों में व्यवहृत छंदों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। छंदों के सूक्ष्म भेदों, लक्षणों, समानताओं एवं विषमताओं के निर्देशन के बाद अंत में दोनों भाषाओं के काव्य में स्थान स्थान पर निर्दिष्ट मुख्य रागों की सूची भी दे दी गयी है।

'भाषा शैली' शीर्षक सप्तम अध्याय भी पर्याप्त महत्त्व रखता है क्योंकि इसके उत्तरार्ध में भाषा-मिश्रण की विवेचना करते हुए कुछ ऐसे स्थलों का उदाहरण सहित निर्देश किया गया है जहाँ गुजराती कवियों के काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। ब्रजभाषा काव्य में गुजराती से प्रभावित जो प्रयोग मिलते हैं उनकी ओर भी संकेत कर दिया गया है। अध्याय के प्रारंभ में तत्सम, तद्भव, देशज अथवा लोक प्रचलित शब्दों के वैभव का परिचय दिया गया है और पर्याय शब्दों के उदाहरण रूप में कृष्ण के लिए दोनों भाषाओं में प्रचलित शब्दों का सकलन प्रस्तुत किया गया है जो मनोरंजक भी है और महत्त्वपूर्ण भी। लोकोक्तियों और मुहावरों की सूची देकर दोनों भाषाओं की भावाभिव्यंजन-शक्ति की तुलना की गयी है तदनन्तर भाषा की शैलीगत विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसी अध्याय में मीरा तथा भालण की भाषा से सम्बन्धित दो ब्लॉक भी दे दिये गये हैं।

पहले अध्याय को छोड़ कर शेष सभी अध्यायों में दी गयी सामग्री तथा उसका विश्लेषण एवं विवेचन मौखिक रूप में लेखक द्वारा प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है। बीच में यदि कहीं से सहायता ली गयी है तो उसका उल्लेख भी कर दिया गया है।

दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में मिलने वाले बहुमुखी साम्य और वैषम्य के आधार को प्रकट करने के लिए उपसंहार में गुजरात और व्रज के युगो पुराने सांस्कृतिक सम्बन्धों पर एक विहगम दृष्टि डालते हुए उनके अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। इस उपसंहार में जिन तथ्यों का प्रतिपादन किया गया है उनके सकलन में विभिन्न विद्वानों की कृतियों से सहायता ली गयी है।

प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित सामग्री की प्राप्ति के लिए लेखक को गुजरात, बम्बई, पूना, नाथद्वारा, काँकरौली, उदयपुर जैसे अनेक स्थानों की यात्रा करनी पड़ी। गुजरात में रहकर उसने कई महीनों तक अहमदाबाद की 'गुजरात विद्या सभा' (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी) तथा बड़ौदा के 'प्राच्यविद्या मंदिर' में कार्य किया। बम्बई की 'फार्ब्स गुजराती सभा' तथा 'भारतीय विद्या भवन' में भी कुछ समय तक उसे कार्य करना पड़ा। 'भंडारकर इन्स्टीट्यूट' पूना तथा 'विद्याविभाग' काँकरौली से भी लेखक ने आवश्यक सामग्री प्राप्त की।

अपने यात्रा काल के शोधकार्य में लेखक को श्री दुर्गाशंकर शास्त्री, श्री रण-छोडलाल ज्ञानी, डॉ० मोतीचंद, श्री पी० के० गोडे, श्री मुनि जिनविजय, श्री रविशंकर रावल, श्री रसिकलाल छो० पारीख, श्री केशवराम काशीराम शास्त्री, श्री जेठालाल गोवर्धन शाह, श्री गोविन्द लाल भट्ट, डॉ० मजूलाल मजमूदार तथा श्री बालचन्द्र जैन आदि अनेक विद्वान् महानुभावों से सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिए वह उनका हृदय से आभारी है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने साहित्यकार मसद् की ओर से आर्थिक सहायता देकर यात्रा का व्यय-भार कुछ हलका किया अतएव लेखक उनका भी आभार सधन्यवाद स्वीकार करता है। प्रयाग विश्वविद्यालय ने लगातार तीन वर्ष तक डी० फिल्ड का रिसर्च स्कॉलरशिप प्रदान करके तथा इस शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन की अनुमति देकर जो उपकार किया है उसके लिए धन्यवाद देना लेखक का कर्तव्य है।

श्री के० एम० मुशी तथा स्वर्गस्थ श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक ने परीक्षक रूप में जो अमूल्य सुझाव दिये थे उनका, कृतज्ञता के साथ, ग्रंथ में उपयोग किया गया है।

अपने श्रद्धेय गुरु डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का लेखक सबसे अधिक कृतज्ञ है जिनकी देखरेख और निर्देशन में सारा कार्य सम्पन्न हुआ। वस्तुतः इस कार्य में मुझे प्रवृत्त करने का सारा श्रेय उन्हीं को है और उन्हीं के बहुमूल्य परामर्श से इस प्रबन्ध को इतना व्यवस्थित रूप मिल सका।

तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में लेखक को अपना पथ स्वयं बनाना पड़ा है क्योंकि आदर्श रूप में कोई कृति उसके सामने नहीं थी। विवेचन करने और निष्कर्षों पर पहुँचने में उसने यथाशक्ति तटस्थ रहने का प्रयास किया है।

ग्रंथ विषयक कुछ सामान्य बातों की ओर भी यहाँ ध्यान दिला देना आवश्यक है। एक तो यह कि प्रत्येक अध्याय की पादटिप्पणियाँ सुविधा के कारण अध्याय के अन्त में दी गयी हैं दूसरे यह कि इस अध्ययन में सर्वत्र सनों का व्यवहार किया गया है। जहाँ सवतो का व्यवहार हुआ है वहाँ वैसा संकेत कर दिया गया है। कुछ ग्रंथों तथा व्यक्तियों के पूरे नाम न देकर संक्षिप्त रूप प्रयुक्त किये गये हैं जिनके पूर्णरूप संक्षिप्त रूपों के साथ ग्रंथ के प्रारम्भ में दे दिये गये हैं।

अन्त में मैं उन सब लोगों का साभार स्मरण करना चाहता हूँ जिनके श्रम और सद्भाव ने ग्रंथ को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने में योग दिया। श्री गंगाप्रसाद श्रीवास्तव ने कुछ अंशों के संक्षिप्तीकरण एवं अनुलेखन में, श्री पुरुषोत्तमदास मोदी तथा श्री कृष्ण चन्द्र कपूर ने टाइपिंग की व्यवस्था में, आदरणीय श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय तथा मेरे प्रिय शोध-छात्र श्री योगेन्द्र पाण्डेय ने प्रूफ-संशोधन में सहायता दी। श्री शेषकुमार रस्तोगी तथा श्री सुदर्शन मिश्र ने अनुक्रमणिकाएँ निर्मित करने में जिस लगन से कार्य किया वह सराहनीय है। न चाहते हुए भी अनेक त्रुटियाँ यत्र तत्र रह गयी हैं जिनका सुधार अगले संस्करण में अवश्य ही कर दिया जायगा। अपनी सीमाएँ और विषय-विस्तार दोनों का ध्यान करके मैं विनम्र भाव से यह ग्रंथ आपके हाथों में अर्पित करता हूँ।

जगदीश गुप्त

प्रयाग,

कार्तिकी पूर्णिमा, स० २०१४

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

विषय-क्रम

[अक पृष्ठ-संख्या के द्योतक है ।]

प्रथम अध्याय

कवि और काव्य ... १-६८

१५वीं शती, गुजराती, १-६, ब्रजभाषा, ६-८, १६वीं शती; गुजराती, ८-२५, ब्रजभाषा, २५-४०, १७वीं शती; गुजराती, ४०-५३, ब्रजभाषा, ५३-६८

पादटिप्पणियाँ ६९-७८

द्वितीय अध्याय

वर्ण्य वस्तु ... ७९-१५९

ब्रजलीला—अलौकिक गोकुल लीलाएँ, कृष्ण-जन्म ८०, पूतना-वध ८२, सिद्धरब्राह्मण ८२, कागासुर-वध ८३, मोती बाने की कथा ८३, विराट आश्रम वृक्ष ८३, शकट-भजन अथवा शकटासुर-वध ८४, तृणावर्त-वध ८६, मृत्तिका-भक्षण एवं यशोदा द्वारा विश्व-दर्शन ८८, महाराने के पाँडे का भोग और नद का देवार्चन ८९, उलूखलबन्धन और यमलार्जुनमोक्ष ९०, लौकिक गोकुल लीलाएँ, कृष्ण के संस्कार, नामकरण ९२, अन्नप्राशन ९३, वर्षगाँठ ९३, कर्णछेदन ९४, रक्षाबन्धन ९४, बाललीला ९४, चद खिलौना ९६, प्रभाती ९७, माखनचोरी ९८, गोदोहन १००, अलौकिक वृंदावन लीलाएँ, वृंदावन-गमन १००, वत्सासुर, वकासुर तथा अघासुर-वध १०१, विधि-मोह १०१, ब्रह्मा द्वारा मीन-रूप-धारण १०२, घेनुकासुर-वध १०२, कालीय-दमन १०३, प्रलम्बासुर-वध १०४, दावानल-पान १०५, गोवर्धन-धारण १०६, वरुणगृह से नद का उद्धार तथा वैकुण्ठ-दर्शन १०७, सर्प-शंखचूड़, अरिष्ट, केशी और व्योम-वध १०८, लौकिक वृंदावन लीलाएँ, गोचारण, कात्यायनि व्रत और चीर हरण १०९, ब्राह्मण पत्नियों पर अनुग्रह ११०, राधाप्रधान कृष्ण-लीलाएँ, राधा जन्म १११, प्रथम मिलन १११, स्त्री-रूप धारण ११२, राधा-व्यतर ११२, वैदक लीला ११३, पनघट की लीलाएँ ११४, सभोग वर्णन ११५,

जल-क्रीड़ा ११६, वसत-क्रीड़ा, ११६, वर्षा, हिंडोला ११८, वृंदावन वर्णन ११९, बारहमासा और षड्ऋतु-वर्णन १२०, दानलीला १२३, मानलीला १२७, रासलीला १२९, रास के विविध प्रकार १३१, भागवत के रास की मूलवस्तु के आधार पर रास-वर्णन के विभिन्न अंशों का तुलनात्मक अध्ययन १३७, रास से सम्बद्ध अन्य महत्व पूर्ण वस्तुएँ १४१, मथुरालीला, मथुरा-गमन १४३, कंस-वध १४५, भ्रमरगीत १४६, उद्धव के ब्रज-गमन का हेतु १४७, नंद-यशोदा से भेट १४८, कृष्ण-सदेश १४९, गोपी-उद्धव संवाद १५०, कुब्जा-रमण १५१, जरासंध-विजय, कालयवन मुचकुंद-वध, द्वारका-प्रस्थान १५१, द्वारका लीला, रुक्मिणी-हरण १५२, सुदामा-दारिद्र्य-भजन १५६, कौरवों पांडवों के बीच दूतत्व १५६, स्वमतक मणि की कथा तथा कृष्ण के अन्य विवाह १५६, सत्यभामा का मान तथा नरकासुर-वध १५७, पुनर्मिलन १५८, सिद्धान्त विषयक काव्य १५९

पादटिप्पणियाँ १६०-१७२

तृतीय अध्याय

सिद्धान्त-पक्ष ... १७३-२३०

ब्रह्म १७४, विरुद्धधर्मश्रियता १७६, अविकृतपरिणामवाद १७६, ब्रह्म का आनन्द एवं रस स्वरूप १७७, अवतार १८०, विराट् रूप १८२, जीव १८५, जीव की ब्रह्म से विमुखता १८७, जगत् १९१, माया १९४, मोक्ष १९७, भक्ति २०१, भक्ति की महिमा २०२, भक्ति के प्रकार २०६, भक्ति के मुख्य भाव २११, भक्ति और कर्मकांड २१५, भक्ति-पथ में मत्संग और नाम-कीर्तन की विशेष महत्ता २१८, भक्ति और वैराग्य २२२, भक्ति-मार्ग में गुरु का स्थान २२५, भक्ति की सार्वजनीनता २२६, भक्तों की प्रशंसा तथा उनके लक्षण २२७, भक्ति रस २२९

पादटिप्पणियाँ २३१

चतुर्थ अध्याय

भाव-पक्ष ... २३२-३५२

आत्मविषयात्मक भावाभिव्यक्ति २३२, आत्मनिवेदन २३४, कृष्ण-लीलाओं से आत्मसम्बन्ध २४०, बाह्यविषयात्मक भावाभिव्यक्ति २४२, कृष्ण-काव्य

में भावमय स्थल २४३, कृष्ण की बाल लीलाएँ २४३, मानवीय भावों के साथ कृष्ण के लोकोत्तर रूप का मिश्रण २४४, कृष्ण-जन्म २४७, बाल-स्वभाव २४९, वय-विकास २५४, बाल-छवि २५७, माखनचोरी २५९, गोचारण २६३, नद, वसुदेव, यशोदा और देवकी के उद्गार २६५, रामलीला २८४, दानलीला २९२, मानलीला ३००, पनघटलीला ३०५, सयोगावस्था की विविध मनोदशाएँ ३०९, खडिना गोपियों के भाव ३२०, कृष्ण का मथुरागमन ३२६, भ्रमरगीत ३३७, सदेश पाने से पूर्व ब्रजवासियों की मनोदशा ३३८, सदेश की प्रतिक्रिया ३४०, कृष्ण के प्रति गोपियों का उपालम्भ, व्यंग्य, और अनन्य प्रेम, ३४१, पुनर्मिलन ३४७

पादटिप्पणियाँ ३५३-३५४

पंचम अध्याय

कला-पक्ष ... ३५५-३९९

दृश्य-चित्रण ३५५, स्वभाव-चित्रण ३६१, प्रकृति-चित्रण ३६४, प्रबन्ध-निर्वाह ३७१, उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-विधान ३७५, उक्ति-वैचित्र्य ३७६, अलंकार-विधान ३७८

पादटिप्पणियाँ ४००

षष्ठ अध्याय

छंद ... ४०१-४२८

आख्यान-शैली ४०२, आख्यान-शैली में प्रयुक्त छंद और उनका स्वरूप ४०३, पद-शैली ४१६, पदों की रूपरेखा ४१६, ध्रुवा और ध्रुवा सहित पद ४१७, पद-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप ४१९, मुक्तक-शैली ४२४, मुक्तक-शैली में प्रयुक्त छंद और उनका स्वरूप ४२४, आन्तर-प्रास ४२५, रागों का निर्देश ४२७

पादटिप्पणियाँ ४२९-४३०

सप्तम अध्याय

भाषा-शैली ... ४३१-४५८

शब्द-भांडार ४३१, तत्सम शब्द ४३१, तद्भव शब्द ४३५, लोक प्रचलित तथा देशज शब्द ४३८, विदेशी शब्द ४३९, पर्याय शब्द ४४०, लोकोक्तियाँ

और मुहावरे ४४१, भाषा शैली की विशेषताएँ ४४६, विविध भाषाओं का मिश्रण ४५०, पंजाबी का मिश्रण ४५०, मराठी का मिश्रण ४५१, संस्कृत का मिश्रण ४५२, गुजराती कवियों द्वारा ब्रजभाषा का प्रयोग एवं मिश्रण ४५३, ब्रजभाषा कवियों द्वारा प्रयुक्त कतिपय गुजराती शब्द ४५७, मीरा के पदों की भाषा ४५७

पादटिप्पणियाँ ४५९-४६१

उपसंहार

४६३-४८२

पादटिप्पणियाँ ४८३-४८५

सहायक ग्रंथ-सूची

४८६-५०४

तालिका-चित्र नं० १

५०५

तालिका-चित्र नं० २

५०६-५०८

तालिका-चित्र नं० ३

५०९-५११

तालिका-चित्र नं० ४

५१२-५१५

व्यक्ति-नामानुक्रमणिका

५१६-५२३

ग्रंथ-नामानुक्रमणिका

५२४-५३०

संक्षिप्त रूप

अ०	अध्याय
अ० व०	अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय
उत्त०	उत्तरार्ध
उप०	उपनिषद्
क० च०	कवि चरित
कृ० खं०	कृष्ण जन्म खंड
कृ० गी०	कृष्ण गीतावली
गु० व० सो०	गुजरात वनविपुलर सोसायटी
गु० मा०	गुजराती साहित्य
गू० हा० संकलित यादी	गुजराती हाथप्रतोंनी संकलित यादी
छं० सं०	छंद मख्या
भावेरी	कृष्णलाल मोहनलाल भावेरी
तारापोरवाला	इरच जहाँगीर सोरावजी तारापोर- वाला
त्रिपाठी	गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी
थूथी	एन० ए० थूथी
द० स्कं०	दशम स्कंध
दिवेटिया	नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया
ध्रुव	आनन्ददांकर ध्रुव
न० कृ० का०	नरसिंह महेता कृत काव्य-संग्रह
नि० मा०	निम्बार्क माधुरी
नं०	नवर
नंद०	नंददास
पु०	पुराण
प्रा० का० मा०	प्राचीन काव्य माला

प्रा० गु० छं०	प्राचीन गुजराती छंदो
पृ०	पृष्ठ
फा० गु० स०	फार्ब्स गुजराती सभा
ब्र० वै०	ब्रह्म वैवर्त
बृ० का० दो०	बृहत् काव्य दोहन
भा०	भागवत
मा० वा०	माधुरी वाणी
मीतल	प्रभुदयाल मीतल
मी० प०	मीरा पदावली
मुशी०	कन्हैयालाल भाणिकलाल मुशी
ले०	लेखक
सू० सा०	सूरसागर
सं०	संवत् तथा संपादक (प्रसंगानुसार)
श्लो०	श्लोक
शास्त्री	केशवराम काशीराम शास्त्री
श्रीकृ० ली० का०	श्रीकृष्ण लीला काव्य
श्रीकृ० वृ० रा०	श्रीकृष्ण वृन्दावन रास
श्रीगदा० वा०	श्रीगदाधर भट्ट की वाणी
श्रीम० भा०	श्रीमद्भागवत (प्रेमानंद कृत)
श्रीव० र० वा०	श्रीवल्लभ रसिक की वाणी
श्रीहि० चौ० सै० वा०	श्रीहित चौरासी सेवक वाणी
वा०	वाणी
व्या० वा०	व्यास वाणी (हरिरामव्यास कृत)
ह० प्र०	हस्त प्रति
हरि० षो०	हरिलीला षोडशकला
हि० चौ०	हित चौरासी

અંગ્રેજી

A. G.	Archaeology of Gujarat, Sankalia.
Chap.	Chapter.
C. P. G.	Classical Poets of Gujarat and their Influence on Society and Morals, G. M. Tripathi.
G. G.	The Glory that was Gurjara desha.
G. L.	Gujarat and Its Literature, Munshi.
G. L. L.	Gujarati Language and Literature, N. B. Divetia.
J. O. I. B.	Journal of Oriental Institute, Baroda
J. I. S. O. A.	Journal of The Indian Society of Oriental Art
M. G. L.	Milestones in Gujarati Literature, Jhaveri
S.C. G. L.	Selections from Classical Gujarati Literature, Taraporewala.
Vol.	Volume.
V. G.	Vaishnavas of Gujarat, Thoothi.

गुजराती
और

ब्रजभाषा

में लिखे गये, १४०० ई० से
१७०० ई० तक के समस्त

कृष्ण-काव्य

का,

उसके विविध पक्षों के
विश्लेषण से युक्त, विवेचना-
पूर्ण तुलनात्मक अध्ययन ।

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

100

कवि और काव्य

१५वीं शती—गुजराती

गुजराती साहित्य के प्रमुख इतिहासकारों में १५वीं शती के कृष्णपरक कवियों और उनके समय के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है । प्रस्तुत अध्ययन के लिए इस शती के जिन कवियों और काव्यों को स्वीकार किया गया है उनके नाम चित्र न० १ में दिये गये हैं तथा चित्र नं० ४ में विभिन्न इतिहासकारों द्वारा दिये गये कवियों के समय एवं तत्सम्बन्धी जटिलता को स्पष्ट किया गया है ।

चित्र नं० ४ के देखने से ज्ञात होता है कि इस शती में कुल सात कवि उपलब्ध हुए हैं जिनमें से नयण का उल्लेख मुंशी और शास्त्री के अतिरिक्त अन्य किसी इतिहासकार ने नहीं किया है ।^१ नयपि तथा केशवदास का परिचय भी मुंशी और शास्त्री दो ही ने दिया है । मीरा के विषय में दिवेटिया मौन है तथा मुंशी और शास्त्री ने उन्हें १५वीं शती में स्वीकार नहीं किया है किन्तु शेष इतिहासकारों ने १५वीं में ही माना है । भालण को सबने स्वीकार किया है और भीम को भी । केवल दिवेटिया ने भीम का परिचय नहीं दिया । नरसी को मुंशी और दिवेटिया के अतिरिक्त सबने १५वीं शती में रक्खा है । इस विषय में दिवेटिया की धारणा उतनी दृढ़ नहीं है जितनी मुंशी की । अधिकतर कवियों के जीवनकाल के विषय में अनिश्चय एवं मतवैविध्य है जिसका निराकरण करते हुए निष्कर्ष रूप में १५वीं शती में निम्न-लिखित चार कवियों को स्वीकार किया गया है ।

- १ नयपि
- २ नयण
३. भालण
४. भीम

शेष कवि १६वीं शती के अन्तर्गत स्वीकृत हुए हैं । उक्त चार कवियों तथा उनके काव्यों का परिचय आगे दिया गया है ।

मुशी ने 'नरसिंह युगना कवियो' तथा अपने इतिहास में इस कवि का समय सं० १४९५ (सन् १४३९) के आसपास दिया है किन्तु नाम नर्तपि माना है।^१

नयर्षि

कीर्तिमेरु नामक जैन कवि की सं० १४९७ की एक हस्त-प्रति में 'फागु' नामक रचना के प्राप्त होने तथा उसकी एक पक्ति 'कीरति मेरु समाण' के आधार पर उन्होंने फागु-वार को कीर्तिमेरु का शिष्य होना भी संभव माना है। नर्तपि नाम का आधार ग्रंथ के अंत में प्राप्त संस्कृत के दो श्लोको में से निम्नलिखित श्लोक है।

पौराणैः कीर्तितो देव त्यामेव भुवनाधिपः ।

नत (य) र्षिः श्री जगद्वन्द्यो ज्ञानी ध्यानी गुणी कविः ॥

शास्त्री नर्तपि को निरर्थक समझते हुए नयर्षि (नय + ऋषि) को उचित समझते हैं।^२ यही दूसरे श्लोक की पक्ति 'रमा रमा रमा राम तस्य येन नयोनते' को देखते हुए अधिक संभाव्य लगता है। वसंतविलास नामक काव्य, जिसकी हस्तप्रति सं० १५०८ तक की उपलब्ध है, की अनेक पक्तियाँ फागु की अनेक पक्तियों से समानता रखती हैं जिसके कारण मुशी एक ही व्यक्ति को दोनों का रचयिता मानते हैं परन्तु शास्त्री दोनों का रचनाकाल सं० १४५० से सं० १५०० के बीच मानते हैं और इनके रचयिता के एक ही होने के सम्बन्ध में शकालु हैं। उनके मत से फागु का रचयिता यदि भिन्न है तो लगभग २५ वर्ष बाद फागु की रचना हुई होगी।^३ जो भी हो इतना स्पष्ट है कि फागु का रचयिता सं० १४९७ के आसपास का अर्थात् १५वीं शती ईसवी का कवि है। यहाँ इतना ही अभिप्रेत है।

रचना : फागु—कवि की कृष्ण विषयक रचना केवल एक ही प्राप्त है जिसे 'फागु' की संज्ञा दी जाती है। वसंतविलास यदि नयर्षि की ही रचना हो तो भी वह प्रस्तुत विषय की सीमा में नहीं आती। इस 'फागु' नामक काव्य का विषय वसंत ऋतु में द्वारकावासी कृष्ण की गोपियों सहित रासक्रीड़ा है। प्रारंभ में सरस्वती वदना के उपरान्त सोरठ देग का परिचयात्मक निरूपण है। काव्य के नाम का आधार यह अन्तिम पक्तियाँ हैं।

देव तणउ अे फाग । पढ्ह गुणह अणुराग ।

नव निधि ते लहइ अे । जे पाणि संभलइ अे ॥ ६४॥

इस कवि के काल निर्णय के सम्बन्ध में कोई स्थूल प्रमाण उपस्थित नहीं किया जा सकता तो भी 'मयणछद' की भाषा के आधार पर इतना अवश्य अनुमान होता है कि इसकी रचना १५वीं शती के बाद की नहीं है। शास्त्री इस कवि का समय सं० १५०० के आसपास मानते हैं।^४

मयण

रचना : मयणछंद—मयण की एक मात्र कृति मयणछंद ही उपलब्ध है । सारी रचना में विविध प्रकार से 'स्यामास्याम' का सभोग शृंगार वर्णित है । यत्र तत्र विरह एवं मान सम्बन्धी छंद भी है ।

यद्यपि सामान्यतः सभी इतिहासकारों ने भालण को १५वीं शती में माना है तथापि उनका समय पूर्णरूप से असिद्ध नहीं कहा जा सकता । भालण के विशेषज्ञ रामलाल चुन्नीलाल मोदी एक स्थल पर उन्हें नरसी का समकालीन मानते हुए स० १४९० से स० १५७० के बीच स्थापित करते हैं और दूसरे स्थल पर वे ही उनका मृत्यु समय स० १५४५-४६ होने का अनुमान करते हैं ।^१ मुशी इनका समय सन् १४२६ से १५०० के बीच मानते हुए उसे एक प्रकार से अनिश्चित बताते हैं । शास्त्री भालण का जन्म स० १५१५-२० के आसपास संभव मानते हैं किन्तु आश्चर्य है कि इसी के साथ भालण की कादम्बरी की भाषा को वे दूसरी भूमिका न मानकर गुजराती की तीसरी भूमिका मानते हुए 'स० १६२५ लगभग में स्थापित थयेली भाषा छे' भी लिखते हैं ।^२ यदि कादम्बरी की भाषा के सम्बन्ध में उनका यह निर्णय स्वीकार किया जाय तो भाषा की यह अपेक्षाकृत अर्वाचीनता भालण के सर्वमान्य काल को स्वीकृत करने में बाधक सिद्ध होती है । संभव है कि गुजराती के अन्य विद्वान कादम्बरी की भाषा विषयक शास्त्री जी की उक्त धारणा से सहमत न हों । ऐसी स्थिति में भालण के समय की सीमा निर्धारित करने वाली अन्य सामग्री का परीक्षण आवश्यक है ।

जिस सामग्री के आधार पर भालण का समय निश्चित किया जाता है उसकी प्रामाणिकता प्रधानतः चार मान्यताओं पर आधारित है ।

१. भालण और 'हरिलीलाषोडशकला' के रचयिता भीम के वेदान्तपारंगत गुरु 'पुरुषोत्तम' की एकता

२. नारायण भारती द्वारा भालण के घर से प्राप्त सामग्री की सत्यता एवं प्रामाणिकता

३. भालण की तथाकथित रचना 'बीजु' नलाख्यान' में दिया हुआ समय स० १५४५^३

४. भालणसुत विष्णुदास के उत्तरकांड की समाप्ति का समय स० १५७५^४

इन चारों में से एक भी बात ऐसी नहीं है जिसे स्वतः सिद्ध प्रमाण माना जा सके । सभी संदेह से युक्त हैं ।

भीम ने गुरु रूप में पुरुषोत्तम का उल्लेख केवल 'प्रबोधप्रकाश' में किया है। 'हरिलीलाषोडशकला' में 'महारिषि' एवं 'द्विज' मात्र कहा गया है। पूरा नाम उसमें नहीं मिलता। इस स्थिति को समझाने के लिए मोदी ने यह कल्पना की कि जिस काल में पुरुषोत्तम भालण जीवित थे उनका नाम परंपरानुसार कवि ने नहीं दिया किन्तु 'प्रबोधप्रकाश' की रचना के समय तक उनकी मृत्यु हो चुकी थी अतः उसमें उनका नामोल्लेख किया गया।^{१०} शास्त्री के अनुसार यह कल्पना भी संभव नहीं।^{११} सबसे मुख्य बात तो यह है कि न तो भालण की किसी रचना से उनके पुरुषोत्तम नाम का प्रमाण मिलता है और न भीम की किसी रचना से भालण नाम का। फिर भालण के वेदान्तपारंगत होने का भी कोई समर्थन नहीं है। नारायण भारती द्वारा भालण के घर से प्राप्त ताम्रपत्र पर 'पुरुषोत्तम महाराज पाटणना' खुदे होने से यह कभी सिद्ध नहीं होता कि पुरुषोत्तम भालण का ही नाम था। रही मानने की बात तो भीम को भालण का शिष्य ही नहीं पुत्र तक मानने की निराधार कल्पना की जा चुकी है जिसके लिए मोदी को लिखना पड़ा कि 'भीम भालण नो पुत्र होवो शक्य नथी'।^{१२}

'बीजू नलाख्यान' में दिये गये सवत् की प्रामाणिकता से पहले स्वतः उसी की प्रामाणिकता विचारणीय है। मोदी इसे भालण की रचना ही नहीं मानते यद्यपि शास्त्री को यह पूर्णतया अमान्य भी नहीं।^{१३} किन्तु वे भी 'आ काव्य नी रच्यो साल तेमने मळली' 'क' प्रत मा छे 'ख' मां न थी' की सूचना देकर स० १५४५ की पूर्ण मान्यता को सदिग्ध बना देते हैं। अतएव इस तिथि, वार, दिवस शून्य सवत् के आधार पर, भालण का समय निश्चित नहीं किया जा सकता।

रामजनकुअर रचित उत्तरकांड में 'भालण सुत विष्णुदास' के दो कड़वों से जो समय निकलता है (स० १५७५) वह भी अशुद्ध ठहरता है। यह बात मोदी और शास्त्री दोनों ने ही स्वीकार की है। वहाँ बुधवार दिया है जबकि गणनानुसार शनिवार ही आता है।

इधर भालण के दशमस्कंध में कवि की छाप वाले छः ब्रजभाषा के पदों की स्थिति पर विचार करने से एक नयी ही समस्या उत्पन्न हो गयी है।^{१४} इस दृष्टि से भालण के समय पर इतिहासकारों द्वारा अभी तक विचार नहीं किया गया था। हरगोविंददास कांटावाला, नारायण भारती तथा मोदी आदि जिन अन्य विद्वानों ने भालण का समय निश्चित करने की चेष्टा की उन्होंने भी उनके ब्रजभाषा के पदों को कोई महत्व नहीं दिया। मोदी को तो इसका भान भी नहीं है। उनकी दृष्टि में केवल विष्णुदास के ही पद आये।^{१५} शास्त्री ने भालण छापवाले केवल चार ब्रज-

भाषा के पदों का उल्लेख किया। सन् १९८९ की ओरियटल कान्फ्रेंस में गुजराती सेक्शन के लिए उन्होंने इस विषय पर एक लेख भेजा जिसमें पाँच पदों को स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं वह उनके लेख की सिनाप्सिस के निम्न उद्धरण में स्पष्ट है।

‘These five padas should be considered either later interpolations by some one else, giving the Bhālanachāpa, or Bhālaṇa’s own composition. By accepting the latter view, it is easy to say that he knew vaisnava vraja Bhāṣā poetry of Suradās, and imitated him by giving five padas in vraja Bhāṣā.

Bhālan’s Akhyānas are of the same type as those of Nākar. It will be easier to put Bhālan in the second half of the 16th century V. S. and to consider him a contemporary, but a senior contemporary of Nakara.

भालण को १६वीं शती विक्रमी के उत्तरार्ध में मानने का तात्पर्य है उनको १५वीं शती ईसवी से बहिष्कृत करना। परन्तु ऐसा करना तब तक उचित नहीं है जब तक यह पूर्णतया प्रमाणित न कर दिया जाय कि भालण छाप वाले पद स्वयं भालण की ही कृति है। भालण के उक्त पदों के अन्य व्यक्ति द्वारा रचे जाने और प्रक्षिप्त होने की संभावना को शास्त्री ने स्वीकार भी किया है। साथ ही विष्णुदास, रसानलनाथ, सीतलनाथ तथा सूर के पद दशमस्कंध में प्रक्षिप्त रूप में मिलते ही हैं। अतएव जिस समय तक प्रक्षेप की संभावना का पूर्ण निराकरण नहीं हो जाता तब तक इसी आधार पर भालण को समय-च्युत करना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः इन पदों और कादम्बरी की भाषा के सम्बन्ध में अविकारी तथा विशेषज्ञ विद्वानों का निर्णय प्राप्त होने से पूर्व भालण का समय संदिग्ध मानते हुए भी उन्हें १५वीं शती में रखना ही उचित लगता है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन में उन्हें समय-च्युत नहीं किया गया है।

रचनाएँ: दशमस्कंध, कृष्णविष्टि—यों तो भालण ने कादम्बरी, नलाख्यान, सप्तशती, रामबालचारेत आदि अनेक रचनाएँ की हैं किन्तु कृष्ण सम्बन्धी उनकी केवल दो ही कृतियाँ प्राप्त होती हैं।

१. दशमस्कंध
२. कृष्णविष्टि

मोदी के अनुसार यह दोनों रचनाएँ उनके उत्तरकाल की हैं, शास्त्री के मत से उत्तम कोटि की।^{१६} मुन्शी ने रुक्मिणीहरण, सत्यभामाविवाह तथा कृष्णबाल-

चरित का भी उल्लेख किया है^{१०} किन्तु यह भारी की सारी रचनाएँ दशमस्कंध के अन्तर्गत ही आ जाती हैं ।

दशमस्कंध—भागवत के दशमस्कंध का अनुवाद होते हुए भी कई कारणों से भालण की यह रचना अत्यन्त महत्व रखती है । कृष्ण की बाल लीला के पद, राधा का वर्णन तथा ब्रजभाषा के पद ऐसे ही कारण हैं । इसमें अनेक प्रक्षिप्त पद भी हैं जिनकी ओर समय के प्रसंग में संकेत किया जा चुका है । रामपंचाध्यायी के ११ पद (पद नं० १५७ से १६७ तक) लक्ष्मीदास के रचे हुए हैं । इस ग्रंथ की प्राचीन हस्त-प्रतियों में भी यह क्षेपक यथावत् विद्यमान मिलते हैं ।

कृष्णविष्टि—इस रचना के केवल चार पद ही प्राप्त हैं । इनमें कृष्ण के दूतत्व की भूमिका रूप द्रौपदी के मनोभावों को व्यक्त करने वाला सदेश पद्यबद्ध है । इस आधार पर एक विद्वान् इसे 'द्रौपदी प्रकोप' नाम देना अधिक उचित समझते हैं ।^{११} नडियाद वाली हस्तप्रति में भी 'पानाली ना पद' शीर्षक दिया है परन्तु अन्य में 'इति श्री विष्टि समाप्त' लिखा है जिससे अनुमान होता है कि कदाचित् भालण ने पूर्ण कृष्णविष्टि की रचना की होगी जिसमें से केवल यह चार पद ही उपलब्ध हैं ।

भीम के समय के सम्बन्ध में भालण की तरह न कोई मतभेद है और न उसकी संभावना ही क्योंकि भीम ने अपनी दोनों रचनाओं 'प्रबोधप्रकाश' और 'हरिलीला-षोडशकला' में रचना सवतो का उल्लेख कर दिया है जो

भीम प्रामाणिक तथा शुद्ध सिद्ध होता है ।^{१२} स० १५४६ प्रथम ग्रंथ का तथा स० १५४१ द्वितीय ग्रंथ का रचनाकाल है । इससे स्पष्ट है कि कवि का काव्य काल १५वीं शती ईसवी के अन्तर्गत आता है । भाषा और वस्तु की दृष्टि से भी कोई विरोध स्थापित नहीं होता ।

रचना : हरिलीलाषोडशकला—भीम की कृष्ण विषयक रचना केवल हरिलीलाषोडशकला ही है । इसका आधार वीरदेव की हरिलीला है । हरिलीला एक प्रकार से भागवत का संधेय मात्र है किन्तु भीम ने उसे षोडशकला का रूप देकर श्रीकृष्णचंद्र की निष्कलक कथा का निरूपण किया है ।^{१३} वर्णन अधिकतर संक्षिप्त एवं अनुवादात्मक है । स्थान स्थान पर संस्कृत श्लोक और उनके अनुवाद दिये गये हैं ।

१५वीं शती—ब्रजभाषा

अभी तक की शोध के आधार पर १५वीं शती में कोई निर्विवाद महत्त्वपूर्ण कवि ऐसा प्राप्त नहीं होता जिसने ब्रजभाषा में कृष्ण विषयक काव्य की रचना की हो ।

इस स्थान पर इस विषय के विशेषज्ञ डॉ० दीनदयालु गुप्त का मत उद्धृत कर देना अनुचित न होगा ।

‘भाषा की दृष्टि से सूर और परमानन्ददास के पहले ब्रजभाषा में रचना करने वाले किसी भी कवि का परिचय इतिहास नहीं देता । नामदेव की ब्रजभाषा भी परिवर्तित रूप में हमारे सामने आती है । इस प्रकार अष्टछाप का प्रथमवर्ग ही ब्रजभाषा का आदि कवि वर्ग है और उसमें भी सबसे अधिक श्रेय सूर को है ।’^{१०}

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के मत से भी इसी तथ्य का पोषण होता है । सर्वत्र में यह कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा से सम्बन्ध रखने वाली १५वीं शताब्दी तक की प्रकाशित प्रामाणिक सामग्री अभी शून्य के बराबर है ।^{११}

अन्यत्र वे पुनः लिखते हैं ।

‘सोलहवीं’ शताब्दी से पहले भी कृष्ण काव्य लिखा गया था लेकिन वह सब का सब या तो संस्कृत में हैं जैसे जयदेव कृत गीतगोविन्द या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे मैथिलकोकिल कृत पदावली । ब्रजभाषा में लिखी हुई सोलहवीं शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं ।’^{१२}

हिन्दी साहित्य की १५वीं शती में मुख्यतया कबीर, विद्यापति, लालचदास तथा ब्रजुवावरा आदि के नाम आते हैं । निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट तथा हरिव्यास को साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार १४वीं शताब्दी में स्वीकार किया जाता है ।^{१३} कबीर ने कृष्ण काव्य की रचना नहीं की । विद्यापति मैथिली के तथा दशमस्कन्ध के अनुवादक लालचदास अवधी के कवि होने से प्रस्तुत विषय की सीमा में नहीं आते । विचारणीय केवल ब्रजुवावरा, श्रीभट्ट और हरिव्यास ही रह जाते हैं । ब्रजुवावरा के कुछ पदों के प्राप्त होने का उल्लेख प्रभुदयाल सीतल ने किया है ।^{१४} किन्तु ऐसी स्वल्प सामग्री से प्रस्तुत अध्ययन में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती । जहाँ तक श्रीभट्ट का प्रश्न है उनके विषय में प्राप्त एक दोहे के ‘नैनवान पुनि राम समि’ को आधार मानकर उनका समय स० १३५२ के आस-पास निश्चित करना उचित प्रतीत नहीं होता ।^{१५} समय निर्णय में प्राप्त ग्रंथ की भाषा, भाव तथा वस्तु और तत्सम्बन्धी बहिःसाक्ष्य पर भी विचार करने की आवश्यकता होती है । और इस दृष्टि से श्रीभट्ट का समय १६वीं शती के पहले नहीं आता । दोहे में दिये गये संवत् के साथ तिथि, वार, मास आदि का निर्देश न होने से ज्योतिष गणना द्वारा उसकी प्रामाणिकता भी सिद्ध नहीं की जा सकती । निम्बार्क-माधुरी के रचयिता विहारीशरण के अतिरिक्त कदाचित् हिन्दी के किसी अन्य विद्वान ने श्रीभट्ट को १६वीं शती के पहले का कवि नहीं माना ।^{१६} यही दशा हरिव्यास

की है। वे श्रीभट्ट के शिष्य होने से वे श्रीभट्ट के परवर्ती ठहरते हैं। डॉ० राम-कुमार वर्मा हरिव्यास को चैतन्य और बल्लभाचार्य का समकालीन मानते हैं तथा उन पर चैतन्य का प्रभाव भी स्वीकार करते हैं।^{१८} ऐसी स्थिति में पूर्वोक्त मतों के अनुसार यही सिद्ध होता है कि १५वीं शती में ब्रजभाषा का कोई महत्त्वपूर्ण कवि नहीं हुआ तथा किसी की कोई भी प्रामाणिक रचना उपलब्ध नहीं होती।

१६वीं शती—गुजराती

जैसा कि चित्र न० २ से स्पष्ट है १६वीं शती के कृष्णपरक कवियों में निम्न-लिखित बारह कवियों को स्वीकार किया गया है।

१. नरसी मेहता ✓	७. ब्रहेदेव
२. मीरां ✓	८. कीकु वसही
३. केशवदास	९. वासणदास
४. नाकर	१०. काशी सुत शोधजी
५. चतुर्भुज	११. संत
६. भीम वैष्णव	१२. फूढ

इन कवियों की सूची में से प्रथम तीन कवि तो ऐसे हैं जिन्हें अनेक इतिहासकारों ने १५वीं शती में स्वीकार किया है किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में उन्हें १६वीं शती में ही रखना उचित समझा गया है। इस सम्बन्ध में आधारभूत कारणों का उल्लेख तीनों कवियों के परिचय के साथ कर दिया गया है। नरसी और मीरा को मुंशी ने अपने इतिहास में १६वीं शती के कवियों में स्थान दिया है। केशवदास के विषय में इतिहास ग्रंथों के आधार को छोड़ना पड़ा है। नाकर का समय थूथी, मुशी और शास्त्री तीनों को इसी शताब्दी में मान्य है। शेष आठ कवियों का परिचय केवल शास्त्री के कविचरित में ही मिलता है।

त्रिपाठी ने इस शती में जिन तीन कवियों को माना है^{१९} उनमें से किसी ने कृष्ण-परक काव्य नहीं रचा। झावेरी ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है।^{२०} तारा-पोरवाला ने कुछ और कवियों के नाम दिये हैं किन्तु वे भी विषय की सीमा में नहीं आते। नरसी के अतिरिक्त दिवेडिया ने नाकर का उल्लेख मात्र किया है तथा इस शती के अन्य किसी कवि के सम्बन्ध में उनके ग्रंथ से कोई सूचना नहीं मिलती। गोपालदास का उल्लेख मुशी, थूथी तथा शास्त्री ने किया है किन्तु बल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद भी उन्हें कृष्ण-काव्य का रचयिता नहीं माना जा सकता यद्यपि उनका 'बल्लभाख्यान' अन्य अनेक दृष्टियों से प्रस्तुत अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है।

आगे १६वीं शती के कृष्णपरक कवियों का पृथक् पृथक् परिचय दिया गया है।

कवि नर्मदाशंकर, इच्छाराम सूर्यराम देसाई तथा हरगोविंददास काटावाला जैसे प्राचीन गुजराती संगोधकों ने अपने समय में प्राप्त सामग्री के आधार पर नरसी मेहता का समय स० १४७०, निश्चित मान लिया था। यह

नरसी मेहता वृद्धमान्य समय बहुत काल तक स्वीकृत किया जाता रहा।
झावेरी, थूथी, तारापोरवाला तथा शास्त्री ने इसी का प्रति-

पादन किया है। इस विषय में सबसे पहली शका उठाने वाले थे आचार्य आनन्द-शंकर ध्रुव।^{११} गोवर्धनराम त्रिपाठी ने भी १९०५ की साहित्य परिषद् के प्रमुख पद से दिये गये भाषण में उसका समर्थन किया।^{१२} बाद में मुशी ने अपने अनेक लेखों में नवीन-नवीन तर्क देकर विवाद को आगे बढ़ाया।^{१३} १९३० में न० भो० दिवेडिया ने इस प्रश्न को पुनर्जीवन दिया। मुशी को और भी बल मिला और उन्होंने अपने इतिहास में नरसी को स्पष्टतया वृद्धमान्य समय से च्युत करके १६वीं शती में स्थापित किया।^{१४} नरसी को समय-च्युत करने के पक्ष में जो तर्क दिये जाते हैं, वे बहुसंख्यक हैं। उनकी आधारभूत प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं।

क. नरसी में जो सखी भाव मिलता है वह गुजरात की प्रकृति के प्रतिकूल है अतः उन पर निश्चय ही चैतन्य की शुद्ध वृन्दावनीय भक्ति का प्रभाव पड़ा जिसका प्रमाण 'गोविंददासरे कडछा' है जिसमें चैतन्य की गुजरात यात्रा और जूनागढ़ में मीराजी ब्राह्मण के घर निवास तथा रणछोड़दास के मंदिर दर्शन का वर्णन है। यह १५११ की रचना है। इसमें नरसी का कोई उल्लेख न मिलना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यदि वे उस समय रहे होते तो उनकी ख्याति से जूनागढ़ जाकर भी गोविंददास का अपरिचित रह जाना संभव नहीं। अतः नरसी का समय चैतन्य की गुजरात यात्रा के बाद होना चाहिए।

ख. नरसी जीवगोस्वामी की रचना 'उज्ज्वलनीलमणि' तथा 'विदग्धभाष्य' की टीका से परिचित प्रतीत होते हैं। इसके दो प्रमाण हैं।

(१) ललिता, विशाखा तथा चन्द्रावली आदि राधा की सखियों के जो नाम नरसी के 'गोविंद गमन' तथा 'सुरतसंग्राम' में मिलते हैं उनका आधार उज्ज्वलनीलमणि का निम्नलिखित अंश है।

'तत्र शास्त्र प्रसिद्धास्तु राधा चन्द्रावली तथा विशाला ललिता श्यामा'
जीवगोस्वामी को शायद यह नाम भविष्योत्तर पुराण से मिले होंगे।

प्राचीन गुजराती साहित्य में यह नाम उपलब्ध नहीं होते । भविष्योत्तर में मे नरसी ने यह नाम लिये हो इससे अधिक संभव यही है कि उन पर गौडीय सम्प्रदाय के उक्त ग्रंथों का प्रभाव पड़ा हो ।

- (२) नरसी के उपास्य गोपनाथ महादेव से मिलता नाम गोपीश्वर महादेव का है । आचार्य ध्रुव ने यह साम्य देखकर लिखा कि 'काठियावाडना गोपनाथ महादेवनु नाम पूर्वोक्त गोपीश्वर ऊपर थी पड्यु होइ ओम सहज कल्पना थई आवे छे'^{३५} विदग्धमाधव नाटक की प्रस्तावना में जो 'अद्याह स्वप्नान्तरे समादिष्टोस्मि भक्तावतारेण श्री गंकरदेवेन' वाक्य आया है उसकी टीका में जीव गोस्वामी ने उन महादेव का नाम गोपीश्वर दिया है ।

ग. नरसी की रचनाओं को १६वीं शती में पूर्व की हस्तप्रतियाँ उपलब्ध नहीं होती । हारमाला की प्राचीनतम प्रति सं० १६७५ की है । फिर प्राचीन प्रतियों में दी हुई तिथियों में समानता नहीं है । हारप्रसंग का समय सं० १५१२ पाठभेद से सं० १५७२ भी पढ़ा जा सकता है । वृद्ध मान्य समय का सर्वप्रमुख आधार नरसी तथा रामाटलिक की समकालीनता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से किसी प्रकार श्रद्धेय नहीं है । वस्तुतः हार का प्रसङ्ग एक दत्तकथा है तथा हारमाला नरसी की अपनी कृति न होकर किसी परवर्ती कवि की रचना है ।

घ. नरसी का उल्लेख १५वीं शती के भीम, भालण, केशवदास, यहाँ तक कि उनके परवर्ती नाकर तक ने नहीं किया है । १६वीं शती के विष्णुदास, भीरा, नाभा, वस्ता, विश्वनाथ जानी तथा सं० १६६० में कल्याणराय द्वारा लिखित 'लौकिकेषु इदानीं प्रसिद्धेषु नरसिंहाख्यादिषु अपि प्रसिद्धि बोधको हि शब्दा.'^{३६} से स्पष्ट ज्ञात होता है कि नरसी की ख्याति १६वीं शती में और इसके बाद हुई ।

इन प्रमुख बातों के साथ पेढीनामा, नरसी द्वारा प्रयुक्त छंद-प्रणाली तथा भाषा आदि को लेकर अन्य नवीन-नवीन तर्कों से इन्हों का प्रतिपादन किया गया । बाद-बाद विचारों तक ही सीमित न रह कर भावों का भी स्पर्श करने लगा । दूसरी ओर से भी इनके उत्तर में बहुत कुछ कहा गया । अम्बालाल बुलाकीराम जानी, स्वरलाल देसाई तथा कल्पित प्रमाण देते हुए जगजीवनराम बधेका ने इस मत का शक्ति विरोध किया । मुंशी के 'नरसिंह महेतानो कोयडो' पर दुर्गाशंकर शास्त्री ने

अत्यन्त गभीरतापूर्वक विचार करते हुए 'नरसिंह मेहताना कोयडा नो विचार' लिखा।^{१७} 'भागवत नी छाप न थी,' का उत्तर देते हुए उन्होंने भागवत से नरसी की रचनाओं की विस्तृत तुलना की और निष्कर्ष रूप में कहा कि 'नरसिंह मेहताना काव्यो भागवत-मय छे' तथा 'नरसिंह ऊपर सौ थी बघारे असर भागवतनी छे'। उन्होंने नरसी पर वृदावनीय भक्ति के प्रभाव एवं जीवगोस्वामी के ऋण को अस्वीकार करते हुए उनके सखी-भाव को भागवत तथा गीतगोविंद के आधार पर विकसित माना। सखियों के नामों के सम्बन्ध में उनका मत है कि वे नरसी को भक्त संतों की देश व्याप्त वाणी से प्राप्त हुए, उज्ज्वलनीलमणि से नहीं। चैतन्य से नरसी को सम्बद्ध करने में उन्हें शका हुई फलतः वे इस परिणाम पर पहुँचे कि जूनागढ़ के नरसी मेहता, आध्र के श्री वल्लभाचार्य तथा नर्दिया के श्री चैतन्य तीनों ने अपनी अपनी रीति से भागवतोक्त गोपी जनो की प्रेमलक्षणा भक्ति का, जयदेव तथा विल्वमंगल आदि भक्तों के सम्प्रदाय का अनुसरण करके विस्तार किया है। 'कडछा' को उन्होंने अप्रामाणिक घोषित किया। उनके पश्चात् के० का० शास्त्री ने अपने कविचरित में तथा अन्यत्र इस प्रश्न के उक्त सभी मूलाधारों को हठपूर्वक ध्वस्त करने की चेष्टा की। उन्होंने बहुत से ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये जो सर्वथा नवीन थे। 'मुरतसग्राम' तथा 'गोविंद-गमन' को, जिनमें राधा की सखियों के नाम मिलते हैं, उन्होंने भाषा के आधार पर अप्रामाणिक ठहराया।^{१८} परन्तु ललिता का नाम नरसी की 'चातुरो पोडशी' में भी प्राप्त होता है जिसके समाधान के लिए उन्होंने जीवगोस्वामी से पूर्ववर्ती गुजराती कवि चतुर्भुज की स० १५७६ की भ्रमरगीता में 'सुनी तनी थई सर्व सखी चद्राउली जानि चित्रामि लिखी' पंक्ति की ओर संकेत करके दिखाया कि उज्ज्वलनीलमणि की रचना से पहले गुजरात राधा की सखियों के नामों से परिचित था। साथ ही स० १४७८ के 'पृथ्वीचन्द्रचरित' में भविष्योत्तर, ब्रह्मवैवर्त तथा पद्मपुराण का उल्लेख निर्दिष्ट करते हुए सिद्ध किया कि चैतन्य से पहले ही गुजरात में भविष्योत्तर पुराण प्रचलित था। अतः सखियों के नामों के लिए नरसी को चैतन्य सम्प्रदायी जीवगोस्वामी का ऋणी मानना न अनिवार्य है और न उचित ही।

'गोविंददासेर कडछा' को तो उन्होंने अप्रामाणिक अथवा 'झूठग्रंथ' माना ही, साथ ही साथ यह भी दावा किया कि उसमें दिया हुआ चैतन्य के जूनागढ़ निवास का सारा वर्णन, उसमें आने वाले सारे नाम असत्य हैं। शास्त्री के अनुसार चैतन्य के समय जूनागढ़ में रणछोड का कोई मंदिर ही नहीं था। मांगरोल में अवश्य स० १५०१ का मंदिर है जिसकी प्रेरणा से स० १८३५-३८ में पहले पहल जूनागढ़ में रणछोड-राय का मंदिर स्थापित हुआ। इसी प्रकार मोराजी ब्राह्मण के स्थान पर वहाँ मुसलमानों

के पीर मीरादातार का पता चलता है। उनके मत से किसी १९वीं शती के लेखक ने कर्णोपकर्ण नाम सुनकर मीराजी तथा रणछोड़ को अपने वर्णन में स्थान दिया। इस प्रकार 'कडछा' की सामग्री के साक्ष्य को उन्होंने पूर्णतया अस्वीकार किया और अपने समर्थन में बंगाली विद्वान डा० आर० सी० मजूमदार द्वारा १९३६ की अमृत-पत्रिका में प्रकाशित कडछा के खंडन की ओर संकेत किया। इसके विरुद्ध हारप्रसंग तथा नरसी और रामाडलिक की समकालीनता को उन्होंने ऐतिहासिक माना। 'हारमाला' में प्रक्षेप एवं परिवर्धन मानते हुए भी उसके सात पद वाले आदि रूप को प्रामाणिक सिद्ध किया। १५वीं शती के कविओं तथा नाकर आदि के नरसी सम्बन्धी मौन के अनेक कारण दिये। कन्याणराय के 'इदानीं' का अर्थ उनके मत से 'इस जमाने में' होना चाहिए क्योंकि स० १६२१ के तिथि काव्य में नरसी का उल्लेख मिलता है और उससे भी पहले मीरा के 'नरसी रो माहेरो' में जिसे अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। नरसी के छंद-विधान की प्राचीनता को उन्होंने पूर्ववर्ती जैन रास काव्यों से तुलना करते हुए प्रतिष्ठित किया। अपने दृष्टिकोण के समर्थन में उन्होंने और भी बहुत से प्रमाण प्रस्तुत किये जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं है। कुल मिला कर उन्होंने नरसी को वृद्धमान्य समय से न्युत करने के हर विचार का सायास प्रति-वाद किया।

वस्तुतः इस प्रश्न का समाधान पूर्णरूप से तब तक नहीं हो सकता जब तक नरसी की रचनाओं की प्राचीन प्रामाणिक प्रतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। भाषा, छंद, पाठ-भेद तथा लियियों की समस्या बहुत कुछ इसी के आश्रित है। जहाँ तक 'गोविंददासेर कडछा' की सामग्री का सम्बन्ध है उसे पूर्णतया अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। इस विषय में बंगला के अधिकारी विद्वान एस० के० दे का मत अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उनकी चैतन्य सम्बन्धी नवीनतम शोध पर आधारित है। वे लिखते हैं :-

'It is difficult to pronounce a definite judgement, but it seems probable that some of the matter it contains is old, and this internal evidence itself, in the absence of other proofs, makes the genuineness of the general substance of the work extremely plausible.'

वास्तव में चैतन्य की गुजरात यात्रा के 'कडछा' में दिये गये विवरण की गंभीर ऐतिहासिक शोध की आवश्यकता है। उसमें दी हुई सामग्री को सहज ही अप्रामाणिक कह कर टाला नहीं जा सकता। सखियों के प्रश्न को लेकर तो नहीं किन्तु नरसी की भक्ति-भावभयता, मडलीबद्ध कीर्तन प्रणाली तथा सखीभाव की उत्कटता को

देखते हुए सहसा यह कहना कठिन है कि उन पर वृन्दावनीय भक्ति का प्रभाव नहीं पड़ा। वल्लभ-सम्प्रदाय में नरसी को 'बधैय्या' माना जाता है। जहाँ शुद्ध भक्ति में चैतन्य का प्रभाव झलकता है वहाँ दार्शनिक विचारों में वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत से विचित्र साम्य मिलता है। नरसी के अनेक पदों में मीरा का उल्लेख है। उनके ऐसे सभी पदों को प्रक्षिप्त कहना भी उचित नहीं लगता। अतएव सारी परिस्थिति पर विचार करते हुए ध्रुव, त्रिपाठी, मुशी तथा दिवेडिया की धारणा में बहुत कुछ सार प्रतीत होता है। इसी विचार से प्रस्तुत अध्ययन में नरसी को वृद्धमान्य समय के विरुद्ध १६वीं शती में स्वीकार किया गया है।

रचनाएँ—विषय और वस्तु की दृष्टि से नरसी की रचनाएँ दो प्रकार की प्राप्त होती हैं। एक प्रकार की कृतियाँ वे हैं जिनमें उन्होंने अपने जीवन की किसी अलौकिक घटना का वर्णन किया है और दूसरी वे जो पूर्णतया कृष्ण को आलम्बन मान कर लिखी गयी हैं। द्वितीय प्रकार की रचनाएँ ही प्रस्तुत निबन्ध की सीमा में आती हैं।

प्रथम प्रकार की रचनाएँ—१. सामलदासनो विवाह

२. हारमाला

द्वितीय प्रकार की रचनाएँ—१. सुग्तसंग्राम

२. गोविन्दगमन

३. चातुरी छत्रीसी

४. चातुरी पोडशी

५. दाण्डलोला

६. मुदामाचरित

७. राससहस्रपदी

८. शृंगारमाला

९. बाललीला

इन नौ रचनाओं के अतिरिक्त कुछ प्रकीर्णक पद हैं जिनकी संज्ञा विषय के अनुसार ही दी गयी है।

१०. हीडोलाना पदो

११. भक्तिज्ञानना पदो

१२. कृष्णजन्मसमैनां पदो

१३. कृष्णजन्मवधाईना पदो

१४. वसतनां पदो

उपर्युक्त सभी रचनाएँ 'नरसिंह मेहेताकृत काव्य संग्रह' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त इनका प्रकाशन 'बृहत् काव्य दोहन', 'प्राचीन काव्य त्रैमासिक' तथा 'प्राचीन काव्य सुधा' आदि ग्रंथों के विभिन्न भागों में भी हो चुका है। मुशी ने 'नागदमन' और 'मानलीला' का भी उल्लेख किया है।^{१०} स्वतन्त्र रूप से ऐसी कोई रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं। विषय विशेष के पदों के आधार पर यह नाम दे दिये गये हैं।

शास्त्री ने हस्तलिखित ग्रंथों की शोध के आधार पर 'आठ वार', 'कवको', 'गायनी मागणी', 'द्वीपदी नू कीर्तन', 'पांडवजुगटानू पद', 'वारमास', 'वारमास रामदेता', 'मधुकरना वारमास', 'मामेरु', 'मोती नी खेती', 'विष्णुपद', 'शशियर', 'सत्यभामानू रसरणु', 'सालवणनी समस्या' तथा 'हूडी' को नरसी की रचनाओं के रूप में उल्लिखित किया है।^{११} इनमें से अनेक रचनाओं का कृतित्व संदिग्ध है। कुछ कृष्ण से सम्बन्धित नहीं है और शेष मात्र स्फुट पदों के रूप में हैं जो विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं।

दूसरे प्रकार की रचनाओं में 'सुरत संग्राम' और 'गोविंदगमन' की प्रामाणिकता पर अभी कुछ समय पूर्व शास्त्री द्वारा आक्षेप किया जा चुका है। त्रिपाठी से लेकर मुशी तक गुजराती साहित्य के सभी इतिहासकारों ने तथा स्वयं शास्त्री ने अपने कविचरित में इन रचनाओं पर कोई सदेह व्यक्त नहीं किया। किन्तु इनमें आये हुए राधा की सखियों के नामों का नरसी के जीवनकाल के प्रश्न से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण इन पर विशेष विचार करने की आवश्यकता हुई। शास्त्री ने इन रचनाओं की प्रामाणिकता पर जो अविश्वास प्रकट किया उसका समर्थन यद्यपि अन्य गुजराती विद्वानों द्वारा अभी नहीं हुआ तथापि उनके तर्कों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनके मुख्य तर्क यह हैं।

१. इनकी हस्तप्रतियों का कोई पता नहीं है। स्व० हरगोविंददास कांडा-वाला ने हस्तप्रति मिलने की जो कथा बताई है वह श्रद्धेय नहीं।
२. कृत्रिम भाषा, अर्वाचीन प्रयोग तथा अस्वाभाविक प्रास योजना।
३. राही और राधा का पृथक्-पृथक् निरूपण।
४. मोहिनी, सोहिणी, गविणी, दोहिनी तथा मोदिनी आदि काल्पनिक नाम हैं जो नारदपांचरात्र, गर्गसहिता, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त आदि प्राचीन ग्रंथों में कहीं नहीं मिलते।
५. रचनाओं की ही कुछ पंक्तियों के आधार पर ज्ञात होता है कि इनका रचयिता प्राचीन न होकर कोई नवीन नरसी है। संभवतः हरगोविंद-

दास काटावाला और नाथाशंकर ने मिलकर इन्हे रचा है जो 'हरिनाथ' पद से व्यजित है।^{४२}

इन तर्कों में सबसे प्रबल तर्क पहला ही है। राही और राधा का पृथक्-पृथक् निरूपण प्रेमानंद वामणदास आदि अन्य कई गुजराती कवियों ने किया है।^{४३} अतः इसे शका की दृष्टि से देखना अनुचित है। दूसरी ओर ऐसी सूक्ष्म बात का सचेष्ट निरूपण संभव और विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। मोहिनी सोहिनी आदि की तरह काल्पनिक नाम व्रजभाषा के कवि ध्रुवदास ने भी गिनाये हैं।^{४४} उनकी रचना की प्रामाणिकता भी असंदिग्ध है अतएव इस तर्क के आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। भाषा की कृत्रिमता आदि अवश्य विचारणीय हैं परन्तु इनसे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी अर्वाचीन व्यक्ति के द्वारा उक्त रचनाओं का पुनर्लेखन अथवा मशोधन हुआ। ऐसी स्थिति में नाथाशंकर और हर गोविंददास को भी इसका श्रेय दिया जा सकता है। परन्तु वस्तु को देखते हुए दोनों रचनाएँ अप्रामाणिक प्रतीत नहीं होती। नारीकुंजर की कल्पना जो गोविंद-गमन में की गयी है वह उस समय के गुजरात की प्रकृति के पूर्णतया अनुकूल है।^{४५} रचनाओं के शीर्षक भी उचित तथा परम्परापुष्ट है। सुरतसंग्राम की कल्पना नरसी की अन्य रचनाओं को देखते हुए अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होती है। शास्त्री के मत को अन्य गुजराती विद्वानों का अभी समर्थन भी प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत अध्ययन में इन रचनाओं को सम्मिलित कर लेना ही उचित समझा गया है।

सुदामाचरित में यद्यपि प्रधान नायकत्व सुदामा का माना जायेगा तथापि भक्ति-भाव और कृष्ण महिमा वर्णन उद्देश्य होने के कारण इसे कृष्ण काव्य की कोटि में स्वीकार किया जा सकता है। राधा, यशोदा, नंद तथा अकूर की तरह सुदामा का प्रसंग भी कृष्ण से अभिन्न रहा है।

नरसिंह कृत काव्य संग्रह के परिशिष्ट भाग में दिये हुए कुछ स्फुट पदों के अतिरिक्त इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन के लिए नरसी की केवल तेरह रचनाएँ उपयुक्त जँचती हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

सुरतसंग्राम—यह आख्यानात्मक रचना है। इसका विषय कृष्ण की दान-लीला का ही एक कल्पनात्मक विकसित रूप है। राधाकृष्ण की प्रणय लीला को संग्राम का रूपक देकर चित्रित किया गया है। राधा की ओर से स्वयं नरसी और

कृष्ण की ओर से जयदेव दूत कार्य करते हैं। अन्त में राधा के पक्ष की विजय होती है। समस्त रचना में ८२ समान पद हैं।

गोविंदगमन—भागवत के शुक-परीक्षित सम्वाद के रूप में कृष्ण के मथुरा-गमन के प्रसंग को लेकर इसकी रचना हुई है। इसमें कुल ३३ पद हैं।

चातुरी छत्रीसी—दूती, कुंज विहार, श्यामाश्याम रमण तथा दान आदि के प्रसंगों को लेकर विविध प्रणय चर्चा को विभिन्न चातुरियों का रूप देकर इसमें वर्णित किया गया है। नामानुसार ही इस रचना में छत्रीस चातुरी प्रकरण हैं।

चातुरी षोडशी—नाम साम्य होने पर भी चातुरी छत्रीसी जैसी विपुलता इसमें नहीं है। सारा प्रसंग एक आख्यान रूप में चलता है। ललिता राधा को महावन में ले जाती है। वहाँ कृष्ण राधा मिलन होता है और अन्त में राधा स्वयं अपना रति-सुख ललिता से स्पष्ट शब्दों में कह सुनाती है। राधा को खडिता रूप में भी चित्रित किया गया है। सारी रचना में कुल १६ पद हैं।

दानलीला—यह कोई ग्रंथ नहीं है केवल आख्यानात्मक पद है। इसकी हस्तप्रति भी अप्राप्य है। के० का० शास्त्री ने जिन दो प्रतियों^{५६} का उल्लेख किया है उनमें से 'द० ८४३ ड' अशुद्ध है तथा 'फा० ५४ ड' में जो दानलीला प्राप्त होती है वह इस पद से भिन्न है। परन्तु परिशिष्ट तथा अन्यत्र दिये हुए नरमी के अनेक ऐसे पद हैं जिनका विषय दानलीला है।

न० कृ० का० संग्रह में निम्नलिखित पद इस विषय के प्राप्त होते हैं।

पृष्ठ संख्या	पद संख्या
३८९	४३३, ४३४, ४३५
३९०	४३६, ४३७, ४३८
४२३	५३२।
परिशिष्ट ५७७	५
५७९	१०
५८०	१४
५८३	२०
५८८	३७
५९४	५८

प्रसगातर से अन्य रचनाओं में भी इस विषय के कुछ पद मिल जाते हैं ।

सुदामाचरित—९ पदों की संक्षिप्त रचना है । विषय स्वतः स्पष्ट है ।

भावात्मकता की अपेक्षा पदों में वर्णनात्मकता अधिक है ।

राससहस्रपदी—मूलतः भागवत के पाँच अध्यायों पर आधारित इस रचना का नाम रूप अत्यन्त भ्रामक है । नाम से प्रतीत होता कि इसमें सहस्र रास-विषयक पद होंगे और इसका रूप अत्यन्त विशाल होगा परन्तु वस्तुतः सौ सवासौ में अधिक पद इस शीर्षक के अन्तर्गत नहीं आते । न० कृ० का० में इसमें १८९ पद हैं, मुग्गी ने १२३ पदों का उल्लेख किया है^{१०} और शास्त्री ने इसका समुद्धार कर के पदों की संख्या ११३ निश्चित की जिसमें परिशिष्ट तथा शृंगारमाला के अन्तर्गत आने वाले पद भी सम्मिलित हैं । शास्त्री ने भागवतानुसार दशम स्कन्ध के २९-३३ अध्यायों के अनुरूप पद-क्रम निर्धारित करने की भी चेष्टा की है ।^{११}

यह रचना अत्यन्त विशृङ्खलित है । अनेक पद ऐसे हैं जिनमें पाँचों अध्यायों का सम्पूर्ण रास संक्षेप में वर्णित है । लगता है कि जैसे किसी क्रम के आधार पर ये पद नहीं रचे गये । कई स्थलों पर भागवत के समान भाव वाले पद प्राप्त ही नहीं होते और कई स्थलों पर राधा आदि के उल्लेख के साथ नवीन भाव वाले पद भी मिल जाते हैं ।

शास्त्री द्वारा दी गई पद संख्या में शृंगारमाला के ८, परिशिष्ट द्वितीय के ४, परिशिष्ट-प्रथम के ३३ और शेष ६८ पद राससहस्रपदी के ही हैं । जो अध्यायक्रम उन्होंने निश्चित किया है उसमें प्रथम अध्याय में ४५ पद, द्वितीय में ५ पद और शेष तीनों अध्यायों में सम्मिलित रूप से ६३ पद दिये गये हैं । इससे स्पष्ट है कि राससहस्रपदी की रचना नरसी ने अनुवादात्मक रूप में नहीं की यद्यपि मूल आधार भागवत का ही लिया है । राधारस के सम्मिश्रण से इसे केवल भागवत तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता । फिर स्वयं नरसी गोलोक में अपनी उपस्थिति तथा रास दर्शन के आत्म-नुभव का वर्णन करके भागवतोक्त रास को और भी अलौकिक बना देते हैं ।

शृंगारमाला—इस रचना में नरसी के सर्वाधिक पद संकलित हैं । न० कृ० का० में इन पदों की संख्या ५४१ है । इसमें शृंगार सम्बन्धी विविध विषयों एवं अन्तर्दशाओं पर विभिन्न प्रकार की शैली के अनेक अनेक पद प्राप्त होते हैं । रास विषयक आठ पद उपर्युक्त राससहस्रपदी में सम्मिलित किये जाने का उल्लेख हो चुका है । कुछ पद ऐसे भी हैं जो शृंगार के नहीं कहे जा सकते । उदाहरणार्थ यशोदा कृष्ण के वात्सल्य भाव को व्यक्त करने वाले पद न० १८५, ४४६ तथा कृष्ण जन्म से

सम्बद्ध पद नं० १८९ आदि प्रस्तुत किये जा सकते हैं । तो भी अधिकांशपद विरह, प्रेम, रमण, छडिता, परकीया, रतिप्राप्त तथा नखशिख वर्णन से सम्बन्ध रखते हैं ।

बाललीला—इसमें कृष्ण के बालचरित विषयक पद संकलित हैं किन्तु अन्तिम पद स्पष्टतया रास-आरतो का पद है । पदों की संख्या ३० है । इस रचना के अन्त में संकलनकर्ता ने जो नोट दिया है उसमें भाषा के आधार पर अन्त के दो पदों के नरसी कुल दोनों में शका की गई है ।^{१०} रचना का नाम कदाचित् सग्रहकार का ही दिया हुआ है जैसा कि नरसी की अधिकांश रचनाओं के विषय में कहा जा सकता है ।

हीडोलाना पद—इस शीर्षक के अन्तर्गत ४५ पद संग्रहीत हैं । वृन्दावन की कोमा, वर्षाऋतु तथा सखियों के साथ राधा कृष्ण का हिडोला मूलना यही समस्त पदों के मुख्य विषय है ।

भक्तिज्ञाननां पदों—इस नाम से जिन ६६ पदों का संग्रह किया गया है उनमें सभी का विषय भक्ति और ज्ञान नहीं है । पद नं० ४ नरसी का आत्मचरित-परक पद है जिसमें ढेढ़ के प्रमग का वर्णन है, पद नं० ६, ७, ८ 'द्रोपदी की प्रार्थना' के पद हैं जिनमें अनेक अवतारों तथा अनेक भक्तों के उद्धार का कथन है और पद नं० ९, १७ कृष्ण के गोचारण से सम्बन्धित हैं । शेष पद अवश्य नरसी के आध्यात्मिक अनुभवों तथा ईश्वर, जीव, प्रकृति, ब्रह्म, माया एवं भक्ति विषयक विचारों को व्यक्त करते हैं । इस दृष्टि से यह पद समूह अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

कृष्ण जन्म सम्बन्धी पद—

- | | |
|-------------------|-------|
| १. जन्म समाना पद | ११ पद |
| २. जन्म बधाईना पद | ८ पद |

श्री कृष्ण जन्म समाना पद के प्रारंभिक पद में गुरु वदना है ।^{११} इसके अतिरिक्त अन्य किसी ग्रंथ के प्रारंभ में गुरु वदना प्राप्त नहीं होती । नरसी ने इसका प्रारंभ आख्यानात्मक ढंग से किया है जो ढाल और साखी की व्यवस्था से प्रमाणित होता है । पहले ९ पदों में मथुरा में कृष्णजन्म, वसुदेव द्वारा योगमाया का लाया जाना तथा कंस द्वारा उसका वध वर्णित है किन्तु अन्त के १०वें और ११वें पद में कंसवध तक की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन कर दिया गया है । इस प्रकार यह सम्पूर्ण कृति सी लगती है ।

श्रीकृष्ण जन्म बधाई के आठो पदों में नद यशोदा के बालकृष्ण की क्रीड़ा तथा स्वरूप का वर्णन है ।

वसंतनां पद—जिस प्रकार वृद्धोलाना पद वर्षा ऋतु से सम्बन्धित है उसी प्रकार वर्गनना पद वसंत ऋतु तथा होली और फाग से सम्बन्धित है। लीला, विलास, शृंगार और नृत्य गायन के वानावरण में राधाकृष्ण तथा सखियों के उल्लास का विविध प्रकार से वर्णन किया गया है। पद नं० १४, १८ तथा २२वे में वात्सल्य भाव मिलता है अतएव यह पद अप्रासंगिक प्रतीत होते हैं। वसंत के पदों की कुल संख्या ११६ है।

मीरा को १५वीं शती में मानने वाले विद्वानों का मत अब पूर्णतया भ्रान्त सिद्ध हो चुका है। त्रिपाठी और झावेरी की धारणा का आधार कर्नल टाड द्वारा मीरा को महाराणा कुम्भ (मृत्यु मन् १५६८ ई०) की पत्नी मानना था।^{११} थूथी ने झावेरी के अनुकरण पर ही मीरा का समय १४०३—१४७० ई० मान लिया परन्तु तारापोरवाला द्वारा दिये गये समय १४९९—१५४७ ई० का क्या प्रमाण है, ज्ञात नहीं। मुंशी और शास्त्री आदि आधुनिक गुजराती इतिहासकार गौरीशंकर, हीराचंद ओझा तथा मृ. जी. देवीप्रसाद आदि राजस्थानी विद्वानों के आधार पर मीरा को १६वीं शती में ही मानते हैं। हिन्दी साहित्य के गण्यमान्य इतिहासकारों का भी प्रायः यही मत है।^{१२} यों कुछ लोगों का मत कर्नल टाड के मत के पुनर्स्थापन की ओर भी है अर्थात् वे मीरा को राणा कुम्भ की पत्नी और १५वीं शती के उत्तरार्ध में स्थित मानना चाहते हैं।^{१३} उन लोगों द्वारा केवल शका ही उठायी गयी है। ऐसे प्रमाण अभी प्रस्तुत नहीं किये गये जिनके आधार पर उनके मत को निश्चयात्मकता प्राप्त हो। ऐसी स्थिति में मीरा को १६वीं शती में स्वीकार करना ही समुचित प्रतीत होता है। हिन्दी तथा गुजराती के विद्वानों का बहुमत इसी पक्ष में है।

रचनाएँ—मीरा के गुजराती पद बृहत् काव्य दोहन, भाग १, २, ५, ६ और ७ में प्रकाशित हैं। एक 'सत्यभामानु रूपाणु' नामक रचना भी प्राप्त होती है।^{१४} परन्तु देखने से ज्ञात होता है कि यह बीस कड़ियों का एक लम्बा पद ही है। इन समस्त पदों की संख्या १६० है। तारापोरवाला द्वारा SCGL में जो १०६ पद प्रकाशित हैं वे बृहत् काव्य दोहन में से ही संग्रहीत हैं। प्राचीन काव्य सुधा, भाग ४ में भी बहुत से पद छपे हैं जिनका समावेश भी लगभग काव्य दोहन के पदों में ही हो जाता है। सभी पद गुजराती भाषा के सिद्ध नहीं होते। कुछ पद मिश्रित भाषा के हैं। स्थिति की स्पष्टता के लिए अधिक विवेचन की अपेक्षा है अतएव बृहत् काव्य दोहन के विभिन्न भागों को लेकर पृथक्-पृथक् निरूपण आवश्यक है।

भाग १ लु—इस भाग में 'सत्यभामानु रूपाणु' समेत कुल १० पद हैं। सभी पदों की भाषा गुजराती है। सत्यभामानु रूपाणु, में पारिजात पुष्प न

पाने पर सत्यभामा के मान और कृष्ण द्वारा उनके मनाये जाने का वर्णन है।

भाग २ जु — इसमें भी सब पद गुजराती के हैं और उनकी संख्या १७ है।

भाग ५ मो — इसमें गुजराती के १५ पद प्राप्त होते हैं।

भाग ६ टो — इस भाग में केवल ५ पद हैं। चौथा पद खड़ी बोली का है। तीसरे में खड़ी बोली और फारसी का मिश्रण है। दूसरा और पाचवाँ दो पद गुजराती के हैं। पहले में खड़ी, वज तथा गुजराती तीनों का सम्मिश्रण है। दूसरे पद में 'दास मीरा नो स्वामी' में दामी के स्थान पर दास का प्रयोग उसे सगयास्पद बना देता है। खड़ी बोली के पद भी प्रामाणिकता की दृष्टि से मदिग्ध है।

भाग ७ मो — इस भाग में मीरा के सर्वाधिक गुजराती पद संकलित हैं। किन्तु इनमें मिश्रित भाषा के पदों के अतिरिक्त विशुद्ध व्रजभाषा के पदों की संख्या भी कम नहीं है। समस्त पद गिनती में ११३ हैं जिनमें से ३५ पद गुजराती के नहीं हैं^{११}। शेष ७८ पदों में भी कुछ पदों की भाषा मिश्रित है।

सारे पदों का शीर्षक 'कृष्ण कीर्तन' दिया गया है परन्तु राम विषयक पद भी अनेक मिलते हैं।

केशवदास कायस्थ के 'कृष्णक्रीडाकाव्य' का रचना काल मुवी और यास्वी दोनों ने (सं० १५२९) सन् १४७३ माना है जो असत्य है। कवि ने काव्य के रचना काल का उल्लेख स्वयं निम्न पक्तियों में कर दिया है।

तिथि सवत निधि इसका द्योय ।

संवत्सर शोभन कृत होय ।

दक्षिणायन शरद ऋतु सार ।

आश्वनि शुक्ल पक्ष गुरुवार ।

तिथि द्वादशी बली वृद्धि योग ।

शत तारक त्रिप्रहरनो भोग ।

—पृ० ३१०

इसमें दिये हुए सम्वत्सर, तिथि, मास पक्ष, दिवस एवं योग गणना करने पर सं० १५९२ ही में पड़ते हैं, सं० १५२९ में नहीं। (पिल्लड की Indian chronology



के अनुसार) । न जाने किस आधार पर शास्त्री ने स० १५२९ को शुद्ध मान लिया । उन्होंने लिखा है कि 'गणितनी दृष्टि पण आ आपाढी सबत् होवाथी ते दिवसे ओटले मा० १५२९ ना आश्विन सुदि १२ ने दिवसे वरोवर गुरुवार आवी रहे छे । ओ जोता शका करवा कोई खास कारण न थी ।'^{५९} अब स्वयं वे भी इस के पक्ष में नहीं हैं । कदाचित् यह लिखते समय उन्होंने योग तथा सम्बत्सर का ध्यान में नहीं रखा था अन्यथा दूसरा कोई कारण प्रतीत नहीं होता । रामलाल चुघीलाल मोदी स० १५९२ के पक्ष में हैं । वे केशवदास को वल्लभाचार्य का परवर्ती विठ्ठलनाथ का समकालीन समझते हैं तथा इन पर अष्ट मखाओं के काव्य का अम्बर भी मानते हैं ।'^{६०} कृष्णक्रीडा-काव्य के सर्ग १४ में कुछ ब्रजभाषा मिश्रित पद मिलते हैं । स० १५२९ में अर्थात् मूर के जन्म स० १५३५ से पहले गुजरात में ब्रजभाषा की रचनाएं मिलना आश्चर्यजनक ही नहीं असम्भव भी है । स० १५९२ तक अवश्य अष्टछाप के कवियों का प्रभाव गुजरात तक व्याप्त हो चुका था । फिर 'निधि दसका दोय' से स्पष्ट ही 'नौ दशक और दो' अर्थात् ९२ का बोध होता है । 'वामतो गति' का प्रश्न यहाँ उठाना असंगत है क्योंकि कवि ने १५ के लिये एक पूर्ण पद 'निधि' दे दिया है जिसे पहले ही लेना होगा अन्यथा स० २९१५ मिथ्य होगा ।

स० १५२९ की मान्यता का मूल कारण यह है कि कच्छ से उतारी हुई स० १७८७ की फार्बस गुजराती सभा वाली जिस हस्तप्रति के आधार पर कृष्णक्रीडाकाव्य का प्रकाशन हुआ है उसके हाशिये में 'संवत् १५२९ वर्ष उलव' लिखा हुआ है । साथ ही पाचवी गुजराती साहित्य परिषद के विवरण में छपे 'कायस्थ कविओ' नामक लेख में लीलुभाई चु० मजूमदार ने 'संवत् पदर ओगणतीस होय' ऐसा मत दिया है परन्तु वह कहाँ से प्राप्त हुआ है यह अज्ञात है ।

अतएव केशवदास को १५वीं शती में मानना सर्वथा अनुपयुक्त है । 'कृष्णक्रीडा-काव्य' के रचनाकाल की दृष्टि से वे स्पष्टतया १६वीं शती में आते हैं ।

रचना : कृष्णक्रीडाकाव्य—फार्बस गुजराती सभा से प्रकाशित इनकी रचना पर 'श्रीकृष्णलीलाकाव्य' नाम छपा हुआ है जो अशुद्ध है । वस्तुतः नाम 'कृष्णक्रीडाकाव्य' होना चाहिए क्योंकि सगन्ति में लेखक ने सर्वत्र 'कृष्णक्रीडाया' का प्रयोग किया है । भालण के दशम स्कंध की तरह यह भी भागवत दशमस्कंध का अनुवाद है । राधा, ब्रजभाषा के पद तथा अन्य पुराणों के मदर्भों के कारण इसका भी वैसा ही महत्व है । प्रारम्भ में संस्कृत का 'गोपीजनवल्लभाष्टक' दिया हुआ है जिसे पुष्टिमार्गीय साहित्य में हरिगम कृत माना जाता है ।'^{६१} संभव यह भी है कि यह अष्टक केशवदास तथा हरिराय दोनों के अतिरिक्त किसी अन्य प्राचीनतर कवि की रचना हो । केशवदास

ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर सानुवाद श्लोक दिये हैं। रचना के अन्त में कवि ने रचना के विस्तार का निर्देश कर दिया है।

नाकर ने अपने 'हरिचन्द्राख्यान' में समय का निर्देश कर दिया है जो असंदिग्ध है। अतः उनके समय के विषय में कोई शका प्रस्तुत नहीं होती।

नाकर

रचना : भ्रमरगीता—गुजराती साहित्य में नाकर का स्थान उनके आख्यानों के कारण ही श्रेष्ठ माना जाता है। कृष्ण सम्बन्धी काव्य उनका एक मात्र 'भ्रमरगीता' ही मिलता है जो अप्रकाशित है। आख्यान शैली में लिखित तथा भागवत पर आधारित यह काव्य नाकर की अन्य रचनाओं की तुलना में साधारण कजोटि का है। प्रारंभ में कवि गणेश, सरस्वती ही की वदना नहीं करता बल्कि कालिदास, श्रीहर्ष आदि कवियों एवं ज्योतिष, गीता आदि शास्त्रों का भी स्मरण करता है। काव्य का रूप भावात्मक न हो कर वर्णनात्मक है। भागवत के गोपी उद्धव संवाद का एक प्रकार से पुनर्लेखन जैसा कर दिया गया है।

कवि के स्वतः दिये हुए 'छिह्नुनरि' शब्द से, उपलब्ध हस्त प्रति के सं० १६०२ को संगति बैठकर कुछ विद्वानों ने सं० १५७६ के आसपास चतुर्भुज का समय निर्दिष्ट किया है।^{१०}

चतुर्भुज

रचना : भ्रमरगीता—चतुर्भुज की एकमात्र रचना भ्रमरगीता है। इसकी शैली फागु काव्यों जैसी है। कवि रचना का अन्त 'इति श्री कृष्ण गोपी विरह मेलापक भ्रमरगीता फाग' लिखकर करता है। इस पुष्पिका में प्रयुक्त 'फाग' शब्द से सिद्ध होता है कि कवि ने सजग होकर फागु शैली में काव्य रचना की। भाषा प्राचीन है। 'गुजराती' के सं० १९८९ के दीपोत्सवाक में भोगीलाल साडेकरा ने इसे प्रकाशित किया। रचना का विषय स्पष्ट ही भागवत पर आधारित उद्धव गोपी संवाद है। चंद्रावली के नामोल्लेख की दृष्टि से भी इस रचना का विशेष महत्व है।

भीम द्वारा काव्य के अन्त में लिखित 'प्रगट वीठलो' तथा बिट्ठल नाथ विषयक धोल के आधार पर शास्त्री ने इन्हे गोसाईं बिट्ठलनाथ का समकालीन माना है और इनका जीवन काल सं० १५७२-१६३६ के बीच निर्धारित किया है।^{११}

भीम वैष्णव

रचना : रसिकगीता—कृष्ण सम्बन्धी इनकी एकमात्र रचना है रसिकगीता। यह विषय की दृष्टि से भ्रमरगीता ही है। इनका प्रकाशन वृ० का० दीहन, भाग

३ जु तथा S C G L में हो चुका है । काव्य के अन्त में विट्ठलनाथ तथा वल्लभा-
चार्य का स्मरण किया गया है ।

कवि द्वारा स्वयं दिये गये समय के आधार पर उसका काव्य काल स० १६०९
के आसपास निर्धारित होता है ।^{६०}

ब्रहेदेव

रचना : भ्रमरगीता—ब्रहेदेव की निस्संदिग्ध रचना केवल भ्रमरगीता ही है ।
यो पांडवगीता की भी संभावना है किन्तु उसके विषय में शास्त्री किसी निर्णय पर नहीं
पहुँच सके हैं ।^{६१} भ्रमरगीता का आधार अन्य भ्रमरगीताओं की तरह भागवत का
भ्रमर प्रसंग ही है । गैली की दृष्टि से इसमें नरसी की चातुरी की छाया प्रतीत होती
है । 'रठियालो रास सोहायणो' कह कर कवि इसे 'रास' काव्य की परम्परा में सम्बद्ध
करता है । यह बृ० का० दोहन, भाग १ लु में प्रकाशित है और चालीस कड़वों की
संक्षिप्त रचना है ।

कीकु क काव्य की हस्तप्रतियाँ स० १६०० के आसपास की प्राप्त होने के कारण
शास्त्री ने इनका समय स० १५५० के लगभग माना है ।
कीकुवसही कीकु का काव्यकाल १६वीं शती के पूर्वार्ध में ही कही
हो सकता है ।

रचना : बालचरित—कृष्णपरक काव्य कीकु ने एक ही लिखा है जिसका नाम
है 'बालचरित' । विषय की दृष्टि से यह अप्रकाशित रचना महत्वपूर्ण है । इसमें
कृष्ण के बाल रूप तथा बाल त्रीड़ाओं का वर्णन मिलता है । दोहा चौपाई की आख्या-
नात्मक शैली में कवि ने भागवत की कथा के अनुसरण पर इस काव्य का निर्माण
किया है ।

स० १६४९ तक की प्राचीन हस्तप्रतियों तथा भाषा के कतिपय प्राचीन
प्रयोगों के आधार पर शास्त्री वासणदास को स० १६००
वासणदास के आसपास स्थापित करते हैं ।^{६२} अन्य अपेक्षित प्रमाणों
के अभाव में यह उचित ही प्रतीत होता है ।

रचनाएँ—कृष्णवृन्दावन राधारस, हरिचुआक्षरा तथा सत्यभामानी ककोतरी,
यह तीन ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें वासणदासकृत माना जाता है । दूसरी और तीसरी
की सूचना गु० ह० भकलित यादी से प्राप्त होती है और पहली की कविचरित से ।
तीसरी रचना सगयास्पद है ।^{६३} सभी रचनाएँ अप्रकाशित हैं ।

कृष्ण वृन्दावन राघवरास—रचना का मुख्य विषय वृन्दावन में राधाकृष्ण और गोपियों की रासक्रीड़ा है । प्रतिलिपिकार अमरवैकुण्ठ ने पुष्पिका में 'इति श्री भागवते महापुराणे कृष्णवृन्दावने राघवरास' लिखा है । शास्त्री ने 'राघवरास' को अशुद्ध समझकर उसके स्थान पर 'राधारास' शुद्ध समझा । परन्तु कवि की रचना में 'राघवरास' का स्पष्ट प्रयोग मिलता है—यथा 'ते ता राघवरास भावि भणता' । शार्दूल-विक्रीडित वृत्त होते के कारण गण और वर्णक्रम में भी यहाँ राघवरास ही उचित है । ऐसी स्थिति में इसे निश्चयपूर्वक 'कृष्ण वृन्दावन राधारास' नहीं कहा जा सकता । समभव है कवि भालण की तरह रामानदी हो और इसलिए उसने 'राघव' शब्द का प्रयोग किया हो । रचना के अन्त में कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन है । प्रारम्भ में शीर्ष स्थान पर 'श्री कृष्ण लीला' लिखा भी है । वर्णन कई भागों में विभाजित है और प्रत्येक अपने में पूर्ण है । एक प्रकार से यह रचना कई रचनाओं की शृङ्खला जैसी है । 'चन्द्राउली विलास सम्पूर्ण' 'लीलाउली विलास', 'इति श्री गोपी सम्वाद सम्पूर्ण' तथा 'इति श्री राधारग सम्पूर्ण' लिखकर पृथक्-पृथक् प्रसंगों की पूर्णता का निर्देश किया गया है । एक प्रकार से इसमें समस्त कृष्ण लीला समाहित है किन्तु 'राधारग' की प्रधानता के कारण कदाचित् ग्रथान्त में इसे पूर्ण रचना मान लिया गया है । सारी रचना संस्कृत वृत्त शार्दूलविक्रीडित में है । कुल वृत्त १३५ है । विविध खंडों में विभाजित होने पर भी छंदों की क्रम-संख्या टूटी नहीं है जिससे इसके एक ही रचना समझे जाने का प्रमाण मिलता है ।

हरिचुआक्षरा—यह १०३ दोहों में वृन्दावन सौन्दर्य तथा होली एवं फाग के विषय को लेकर लिखी गयी रचना है । वर्णन की दृष्टि से पहली रचना के सदृश है । कवि कृष्ण को राधा तथा अन्य सखियों से संयुक्त रूप में चित्रित करता है ।

काशीसुत शोधजी काशीसुत शोधजी ने अपनी अनेक रचनाओं में रचना सवत् का उल्लेख किया है जिससे उनका समय स० १६४७-४८ निर्धारित होता है ।^{६७}

रचना : रुक्मिणीहरण—यों तो शोधजी ने विराटपर्व, सभापर्व, हनुमानचरित तथा अबरीष कथा आदि अनेक काव्य रचे परन्तु कृष्णपरक उनकी एकमात्र रचना रुक्मिणीहरण ही प्राप्त है जो अप्रकाशित है । कवि ने कृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक इस काव्य की रचना अनेक पुराणों की कथाओं के आधार पर की है । भागवत, हरिवंश तथा विष्णुपुराण का स्वतः उल्लेख किया है ।

श्रीभागवत, हरीवंश मां ओ कथा विष्णुपुराण ।

कंहिअक छ बीस्तार कंहि सक्षेप सुध जाण ॥१३॥

अतएव कथा-वस्तु की दृष्टि से रचना छोटी होते हुए भी महत्वपूर्ण है । 'शेषजी' नाम इसमें नहीं है । केवल 'कासीसुत' का ही प्रयोग मिलता है । कवि की अन्य रचनाओं से इस नाम की पुष्टि होती है । शैली कडवावद्ध है तथा कथा के अनेक प्रसंग रोचक एवं नवीन हैं ।

इनकी भाषा में प्राप्त 'अतरि' जैसे प्रयोगों के आधार पर शास्त्री ने इनका समय विक्रम की १७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना है ।^{६८}

संत

किन्तु इस विषय में अधिक निश्चित होने के लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता है ।

रचना : भागवत अनुवाद—मत की एकमात्र रचना भागवत का अनुवाद ही है । ग्रंथ अप्रकाशित है । प्राप्त प्रनि में १, २, ३, ४, ८, ९ तथा ११वाँ स्कंध पूर्ण है । दशमस्कंध आदि अंत में तथा द्वादश स्कंध अंत में टूटा है । दोहा चौपाई में सरल रीति से सारी भागवत को अनुवादित किया गया है ।

फूढ १६वीं तथा १७वीं शती ई० के सधिकाल के कवि है । शास्त्री ने इनका समय स० १६५२—१६८३ के आसपास माना है ।^{६९} स० १६५७ तक का समय १६वीं शती ई० के अन्तर्गत आता है । इसमें उनकी

फूढ

एक रचना का निर्माण हुआ है । अन्य कृष्ण विषयक रचना 'मल्लअखाडाना चंद्रावला' का समय ज्ञात नहीं ।

पांडवविष्टि स० १६७७ में रची गयी जो १६वीं शती की सीमा में नहीं आती । उसकी हस्तप्रति भी उपलब्ध नहीं है ।^{७०}

रचनाएँ—फूढ की कृष्णपरक दो रचनाएँ, 'रुक्मिणीहरण' तथा 'मल्लअखाडाना-चंद्रावला' प्राप्त होती हैं जो इस शती में ग्राह्य हैं । दोनों अप्रकाशित हैं ।

रुक्मिणीहरण—राग, वलण तथा कडवा पद्धति में इसका निर्माण हुआ है । कथावस्तु की दृष्टि से यह भागवत पर ही आधारित है ।

मल्लअखाडानाचंद्रावला—इसमें फूढ ने ७५ चंद्रावलों में कसवध का वर्णन किया है । इसका भी आधार भागवत ही है ।

१६वीं शती—ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में कृष्ण सबन्धी अधिकांश काव्य रचना सम्प्रदायों के अन्तर्गत हुई । इन सम्प्रदायों में वल्लभ, राधावल्लभीय, गौड़ीय, निम्बार्क तथा हरिदासी सम्प्रदाय प्रमुख हैं । १६वीं शती के कवियों तथा उनके काव्य का परिचय स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिये प्रत्येक सम्प्रदाय के साहित्य का पृथक-पृथक निरूपण हुआ है । इसके

अतिरिक्त जो कृष्णपरक काव्य इन सम्प्रदायों से स्वतन्त्र होकर रचा गया उसका वर्णन एक भिन्न वग में किया गया है ।

इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत अष्टछाप के आठों कवि सूरदास, कुभनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, गोविन्द स्वामी, नन्ददास, छीन स्वामी तथा चतुर्भुजदास आते हैं ।

उनमें से पहले चार वल्लभाचार्य के विषय थे और अन्तिम चार वल्लभ सम्प्रदाय गो० विठ्ठलनाथ के । डॉ० दीनदयालु गुप्त तथा प्रभुदयाल मीतल द्वारा दिये गये इन कवियों के जीवन काल में कुछ विभिन्नता है किन्तु उसे नगण्य माना जा सकता है क्योंकि सभी कवि अन्ततः १६वीं शती की सीमा में ही आते हैं । इन कवियों की रचनाओं पर हिंदी साहित्य के कई विद्वानों द्वारा स्वतन्त्र रूप से विचार किया जा चुका है अतएव आवश्यक मतभेद का निर्देश मात्र करते हुए यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय दे देना ही पर्याप्त होगा ।

सूरदास की रचनाएँ (स० १५३५—१६३८—३९) —सूरदास की रचनाएँ आज भी विवाद का विषय हैं । डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा एकमात्र सूरसागर को प्रामाणिक मानते हैं पर डॉ० दीनदयालु गुप्त, मुशीराम शर्मा, प्रभुदयाल मीतल तथा द्वारिकादास परीख आदि विद्वान् साहित्यलहरी और सूरसारावली को भी प्रामाणिक सिद्ध करते हैं ।^{११} इनके अतिरिक्त सूर की अन्य रचनाओं सूरसाठी, सूरपचीसी, सेवा-फल आदि की स्थिति भी विवादास्पद है । एक ओर 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' में उन्हें सूरसागर के अन्तर्गत ही स्वीकार किया गया है ।^{१२} दूसरी ओर सूरनिर्णय में स्वतन्त्र रचना माना गया है ।^{१३} वस्तुतः इन्हें स्वतन्त्र रचनाएँ मानना उचित नहीं है क्योंकि सूरसागर से भिन्न इनके अस्तित्व के विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं होते । जहाँ तक सूरसारावली और साहित्यलहरी का प्रश्न है हिन्दी के विद्वानों का बहुमत उन्हें सूरदास की ही रचनाएँ मानने के पक्ष में है । इस सम्बन्ध में और भी गहन अनुसंधान की आवश्यकता है । तब तक उन्हें सूरदास की पूर्णतया प्रामाणिक रचनाएँ मानने की अपेक्षा विवादास्पद एवं संदिग्ध रचनाएँ कहना अधिक उचित प्रतीत होता है । इन शब्दों के साथ बहुमत की अपेक्षा न करते हुए इन दोनों रचनाओं को प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकार किया गया है ।

सूरसागर—यह सूरदास की एकमात्र पूर्णतया प्रामाणिक रचना है किन्तु इसका रूप और विस्तार बहुत अशों में अनिश्चित है । सूरदास के नाम से प्रचलित अनेक रचनाएँ वास्तव में इसी का अंग मात्र हैं । दूसरी ओर इसके अनेक ऐसे अंग हैं जो स्वतन्त्र रचनाओं जैसे लगते हैं । यों इसे 'श्रीमद्भागवत, वारहो स्कन्धी का ललित रागरागिनियों में अनुवाद' माना जाता रहा परन्तु वस्तुतः अनुवाद की अपेक्षा इसे

मौलिक रचना मानता अधिक उपयुक्त होगा । इसके अन्तर्गत कई कथाओं का एक से अधिक बार वर्णन हुआ है । एक प्रकार से यह मूर की कृष्ण विषयक लगभग समस्त रचनाओं का संकलन है जिनका मुख्य आधार भागवत पुराण है । किन्तु भागवत-तर कथाओं का भी इसमें स्पष्ट समावेश है । अनेक कथाएँ तथा वर्णन पूर्णतया मौलिक हैं । डॉ० दीनदयालु गुप्त ने सूरसागर के अन्तर्गत निम्नलिखित १६ प्रामाणिक रचनाओं को समाविष्ट माना है ।^{१५}

१. भागवत भाषा	९. दशमस्कंध भाषा
२. सूरदास के पद	१०. नागलीला
३. गोवर्धन लीला	११. सूरपचीसी
४. व्याहली	१२. भँवरगीत
५. सूर रामायण	१३. दानलीला
६. सूर साठो	१४. मानलीला
७. राधारसकेलि कौतुहल	१५. सेवाफल
८. सूरसागर सार	१६. सूर शतक

उपलब्ध सूरसागर भागवत की तरह ही 'द्वादश स्कंध' में विभाजित है । कदाचित् स्वयं सूरदास ने ही इसे स्कंधवद्ध रूप में रचा है ।^{१५} सूरसागर में प्रथम नवम तथा दशम पूर्वार्ध और उत्तरार्ध सबसे अधिक विशाल एवं महत्वपूर्ण हैं । शेष इनकी तुलना में अत्यन्त अल्प और नगण्य में हैं । सम्पूर्ण पद-संख्या ४५७८ है और स्कंधवार पद-संख्या निम्नांकित रूप में प्राप्त होती है ।

(१) २१९, (२) ३८, (३) १८, (४) १२, (५) ४, (६) ४, (७) ८, (८) १४, (९) ७२, (१०) पूर्वार्ध ३९३६, (१०) उत्तरार्ध १४२, (११) ६, (१२) ५

प्रथमस्कंध में प्रारम्भिक ११२ पद विनय के हैं । स्कंधवार पद-संख्या से नितान्त स्पष्ट है कि सूरसागर का मुख्य भाग दशमस्कंध के आधार पर ही निर्मित हुआ है । सूरसागर और भागवत में समानता से अधिक भिन्नता प्राप्त होने के कारण दो एक विद्वानों का अनुमान है कि 'वल्लभाचार्य जी ने व्यासजी की जिस समाधिभाषा को प्रमाण रूप माना है उसी का सूरदास ने गायन किया' ।^{१६} विचार करने पर यह अनुमान अधिक यथार्थ प्रतीत नहीं होता । यह भी अनुमान किया जाने लगा है कि सूरसागर के इस द्वादशस्कंधी रूप में भिन्न विषय-क्रमानुसारी जो एक अन्त्य रूप मिलता है वह कदाचित् मूल के अधिक निकट रहा होगा । वस्तुतः यह पक्ष अभी प्रमाण सापेक्ष है । सूरसागर की एक विशेषता यह भी है कि भागवत के प्रथम स्कंध

से द्वादश स्कंध पर्यन्त की प्रत्येक प्रमुख कथा को वर्णनात्मक रीति से बड़े पदों में भी गथा है। इनकी शैली पद शैली से भिन्न है।

सूरसागर का प्रकाशन वेवटेस्वर प्रेस बम्बई, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ तथा नागरीप्रचारिणी सभा काशी से हुआ है। वेवटेस्वर प्रेस वाले सूरसागर के सब पदों को अष्टछापी सूर कृत मानने में डॉ० दीनदयालु गुप्त को कुछ संदेह है।^{१०} नवल किशोर प्रेस की प्रति के दो भाग हैं। एक में भिन्न-भिन्न रागों के अनुसार नित्य कीर्तन के पद हैं और दूसरे में कृष्णकथानुसार लीला के पद। इसमें सूर के अतिरिक्त अन्य अष्टछापी कवियों के पद भी मिश्रित हैं।

सूरसारावली—११०७ द्विपद छंदों में निर्मित इस रचना को सूरसागर का सार ही नहीं 'सूचीपत्र' तक माना गया परन्तु वस्तुतः यह एक स्वतन्त्र रचना है जिसमें सूरसागर तथा भागवत की कथा का सम्मिश्रण भी प्राप्त है। कथाओं का प्रवाह अविच्छिन्न है किन्तु स्वध्वज्य में विभाजित नहीं। इसकी कथावस्तु का आरम्भ प्रकृति पुरुष रूप पारब्रह्म के सृष्टि विस्तार को होली और फाग का रूपक देकर होता है और इस रूपक का निर्वाह अन्त तक किया गया है। अवतारों के वर्णन में भागवत का अनुकरण है। रामावतार की कथा सागोपाग रूप में विस्तार से दी गई है तथा कृष्णावतार की कथा में मथुरालीला की प्रमुखता है। अनेक नवीन कल्पनाएँ हैं। अन्तिम भाग में रुक्मिणी के प्रश्न के उत्तर के रूप में ब्रज, वृंदावन, राधा, यशोदा तथा राम आदि लीलाओं का समावेश है। यह रचना सूरसागर के बम्बई और लखनऊ वाले संस्करणों के आरम्भ में प्रकाशित हुई है।

साहित्यलहरी—यह कृष्ण राधा के नायक नायिका भेद के रूप में प्रस्तुत करने वाले ११८ दृष्टिकूट पदों का संग्रह है। उपसंहारों के रूप में ५३ पद और संग्रहीत हैं जो सूरसागर में भी प्राप्त होते हैं। इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस ब्राकीपुर में हो चुका है।

कुंभनदास की रचनाएँ (स० १५२५-१६३९)—दानलीला के एक ३१ छंद के विस्तृत पद, जो स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हो चुका है, के अतिरिक्त कुंभनदास का समस्त काव्य स्फुट पदों के ही रूप में प्राप्त है।

नाथद्वार के निज पुस्तकालय में ३६७ पदों का एक संग्रह प्राप्त होता है और विद्याविभाग काँकरीली में १८६ पदों का जिसका डॉ० दीनदयालु गुप्त ने उल्लेख किया है।^{११} किन्तु काँकरीली में अब हजारीलाल शर्मा द्वारा कुंभनदास के २३२ पद संग्रहीत हो चुके हैं।

कुभनदास के इन पदों में राधाकृष्ण से सम्बन्धित विविध लीलाओं का वर्णन मिल जाता है । दान प्रसंग, युगलरूप, मिलन, विरह, मान, खडिता, गोदोहन तथा रास आदि सभी विषयों के पद प्राप्त होते हैं ।

परमानंददास की रचनाएँ (स० १५५०-१६४०) —यद्यपि खोज रिपोर्ट में 'श्रव चरित्र' तथा 'दानलीला' नामक रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है किन्तु प्रामाणिकता की दृष्टि से एकमात्र 'परमानंदसागर' ही परमानंद की असंदिग्ध रचना सिद्ध होती है ।^{१९} मीतल ने इन रचनाओं के अतिरिक्त 'उद्धवलीला' परमानंद दास के पद तथा संस्कृत रत्नमाला का भी उल्लेख किया है किन्तु न तो इनका कोई परिचय ही दिया है न उनकी प्रामाणिकता पर ही विचार किया गया है ।^{२०} परमानंदसागर का विस्तार लगभग २००० पदों तक जाता है । यह सख्या नाथद्वार तथा काँकरौली में प्राप्त इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियों पर आधारित है ।

परमानंदसागर में सूरसागर की तरह सम्पूर्ण भागवत की कथा का समावेश न होकर दशमस्कन्ध तक के प्रसंगों का वर्णन है । भँवरगीत को छोड़कर अन्य विषयों पर इसमें कथात्मक लम्बे पद भी नहीं हैं । पदों का वर्गीकरण विषयानुसार है । कृष्ण की बाललीला, गोपी प्रेम, गोपी विरह तथा भ्रमर गीत पर अधिक सख्या में पद उपलब्ध होते हैं । इसके अतिरिक्त राधा को लेकर मान, खडिता, युगल लीला, रास आदि पर तथा अन्य स्फुट विषयों पर भी पद प्राप्त होते हैं ।

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन संग्रह के तीनों भागों में ५०० से अधिक पद ऐसे प्रकाशित हैं जिनके रचयिता परमानंददास हैं । इनके अतिरिक्त अन्य पद संग्रहों में भी यत्रतत्र परमानंददास रचित पद उपलब्ध हो जाते हैं ।

कृष्णदास की रचनाएँ (स० १५५२-१६३८) —कृष्णदास की प्रामाणिक, रचना केवल उनके पद ही सिद्ध होते हैं । कीर्तन संग्रह के तीन भागों में प्रकाशित २४८ पदों के अतिरिक्त इनके ६७६ पदों के हस्तलिखित संग्रह की दो प्रतियाँ एक काँकरौली तथा एक नाथद्वार में उपलब्ध हैं । इन स्थानों में प्राप्त अन्य संग्रहों में भी 'कृष्णदास के पद' मिलते हैं ।^{२१}

कृष्णदास की संदिग्ध रचनाओं के रूप में डॉ० दीनदयालु गुप्त ने भ्रमरगीत, प्रेमसत्त्व निरूपिता तथा वैष्णववदना को स्वीकार किया है साथ साथ रास-पचाध्यायी विषयक ३१ छंद के एक लम्बे पद को प्रेमरसरस तथा पद संग्रह को 'कृष्ण-दास की बातों' नाम दिये जाने की संभावना व्यक्त की है ।^{२२}

मीतल ने कृष्णदास की रचनाओं का नामोल्लेख मात्र किया है यथा—

भ्रमरगीत, प्रमत्तत्व निरूपण, भक्तमाल की टीका, वैष्णव वदन, नानी, प्रेम रसरशि, हिडोरा लीला आदि ।^{१९} इनमें कुछ नाम अशुद्ध प्रतीत होते हैं ।

गोविंदस्वामी की रचनाएँ (स० १५६२-१६४२) — गोविंदस्वामी की प्रामाणिक रचना के रूप में उनका २५२ पदों का संग्रह ही स्वीकार किया गया है जिसकी अनेक हस्तप्रतियाँ काँकरीली तथा नायद्वार के पुस्तकालयों से उपलब्ध हुई हैं ।^{२०} इन प्रतियों में नायद्वार की स० १७३३ की प्रति सबसे पुरानी है । इधर काँकरीली में विभिन्न पद संग्रहों के आधार पर गोविंदस्वामी के पदों का जो संग्रह किया गया है उसकी पद संख्या ७६० है । इस प्रकार २५२ पदों के अतिरिक्त इतनी सख्या में प्राप्त सभी पदों को सदिग्ध नहीं माना जा सकता । गोविंदस्वामी के पद गद्यवि कृष्ण की अनेक लीलाओं से सम्बद्ध हैं फिर भी कुछ लीला और किशोर लीला के पद विशेष रूप से प्राप्त होते हैं ।

नंददास की रचनाएँ (स० १५७०-१६४०) — नंददास की रचनाओं के विषय में पर्याप्त शोधन हो चुका है । उनके नाम से प्राप्त २८ या ३० रचनाओं में से अधिकतर अप्रामाणिक सिद्ध हुई हैं । डॉ० दीनदयालु गुप्त के अनुसार प्रामाणिकता का श्रेय निम्नलिखित १४ रचनाओं को प्राप्त हुआ है ।^{२१}

- | | |
|-----------------|-------------------------|
| १. रसमजरी | ८. विरहमजरी |
| २. अनेकार्थमजरी | ९. रूपमंजरी |
| ३. मानमजरी | १०. रक्मिणीमंगल |
| ४. दशमस्कंध | ११. रामपंचाध्यायी |
| ५. दयामसगाई | १२. भँवरगोन |
| ६. गोवर्धनलीला | १३. सिद्धान्तपंचाध्यायी |
| ७. सुदामाचरित्र | १४. पदावली |

किन्तु इनमें से दो एक रचनाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद है । उमाशंकर शुक्ल गोवर्धनलीला को स्वतन्त्र रचना के रूप में स्वीकार नहीं करते और सुदामाचरित को सदिग्ध मानते हैं ।^{२२} प्रभुदयाल भीमल ने गोवर्धनलीला का उल्लेख ही नहीं किया है । सुदामाचरित को स्वीकार करने के साथ साथ उस पर संदेह किये जाने का संकेत कर के भी स्थिति स्पष्ट नहीं की ।^{२३} गोवर्धनलीला को स्वतन्त्र रचना मानना अनुचित नहीं क्योंकि दशमस्कंध की लीला से कुछ साम्य होते हुए भी आद्यन्त युक्त यह रचना सर्वथा वही नहीं है । जहाँ तक पदावली का प्रश्न है उसकी प्रामाणिकता तो सिद्ध है किन्तु पद सख्या के विषय में उक्त तीनों विद्वानों के मत में पर्याप्त

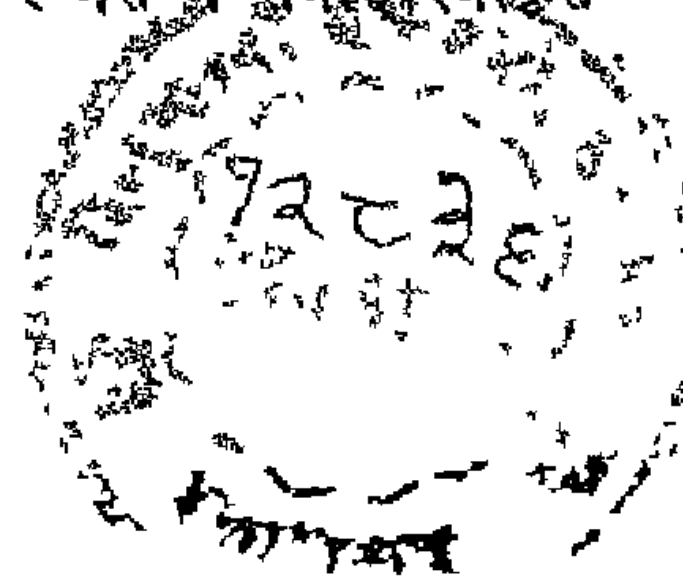
भिन्नता है। भीतल के अनुसार 'नंददास कृत लगभग ४०० पद उपलब्ध हैं'।^{१८} उमाशंकर गुक्ल ने मूलपाठ में ३५ और परिशिष्ट में २४८, इस प्रकार पदावली के अन्तर्गत कुल २८३ पद प्रकाशित किये हैं।^{१९} जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास 'नंददास पदावली' के नाम से लगभग ७०० पदों का संग्रह है इसका उल्लेख कई विद्वानों ने किया है।^{२०} काँकरीली के विद्या विभाग की ओर से नंददास के स्फुट पदों का जो संकलन हुआ है उसमें ७६२ पद हैं। ऐसी स्थिति में चतुर्वेदी जी के संग्रह में ७०० के लगभग पदों का उपलब्ध होना अविश्वसनीय नहीं।

विषय की दृष्टि से नंददास की उक्त प्रामाणिक रचनाओं पर विचार करने में ज्ञात होता है कि अन्ततः कृष्ण से सम्बद्ध होने हुए भी यह सभी रचनाएँ पूर्णतया कृष्ण-परक नहीं कही जा सकती। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने विषयानुसार चार वर्गों में विभाजित करके वस्तु स्थिति को अधिक स्पष्ट कर दिया है।^{२१}

मानमजरी, अनेकार्थमजरी तथा रसमजरी कवि की इन तीनों प्रारम्भिक रचनाओं का उद्देश्य मूलतः कृष्णलीला वर्णन नहीं है। यद्यपि प्रारम्भ में कृष्ण वदना मिलती है और यत्रतत्र उनकी प्रेम लीलाओं का संकेत भी, तथापि वस्तु की दृष्टि से यह प्रस्तुत अव्ययन में किसी प्रकार भी उपयोगी नहीं हैं। रसमजरी के नायिका भेद के उदाहरणों का अवश्य रीतिकालीन अन्य कृतियों की तरह महत्व हो सकता है किन्तु शेष दो केवल कोश काव्य हैं। इनके अतिरिक्त शेष सभी रचनाएँ विषय की दृष्टि से उपयोगी हैं और उनका परिचय नीचे दिया जाता है।

दशमस्कंध—दोहा चौपाई की शैली में लिखित नंददास की यह अपूर्ण रचना है। भागवत दशमस्कंध के उन्तीस अध्यायों को इसमें एक प्रकार से अनूदित किया गया है। वार्ता साहित्य में इस रचना के अपूर्ण रहने का कारण कथावाचक ब्राह्मणों का विरोध कहा गया है तथा उससे यह भी ज्ञात होता है इसके निर्माण की प्रेरणा कवि को तुलसीदास की रामायण से मिली थी इस दृष्टि से, इसका रचना काल सं० १६३१ के बाद ही संभव है।^{२२}

दयामसगाई—यद्यपि इसकी कुछ प्रतियों में 'तारपाणि' की छाप भी प्राप्त होती है तथापि अनेक, हस्तप्रतियों, रचनाशैली एवं वस्तु के आधार पर यह रचना नंददास की ही सिद्ध होती है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इसे स्वतंत्र ग्रंथ न मानकर 'एक लम्बा पद मात्र' माना है।^{२३} वदना और अंत के अभाव से यह उचित ही है। २८ छंदों के इस वर्णनात्मक पद में राधाकृष्ण की सगाई का वर्णन है। कृष्ण गारुडी बनकर छल से राधा का काल्पनिक विष उतारते हैं और इस प्रकार अंत में सगाई स्वीकृत कराने में सफल होते हैं।



गोवर्धनलीला—नददास के दशमस्कंध में तथा इस रचना में कुछ पंक्तियों एवं भावों की समानता होते हुए भी प्रारंभ में गुरु वंदना तथा अन्त में कवि की छाप से युक्त यह काव्य भी स्वतन्त्र कृति ही ज्ञात होता है। नाथद्वार की प्रति में इसको 'गोवर्धनपूजा' और 'गोवर्धनलीला' दोनों सजाएँ दी गयी हैं। विषय शीर्षक में ही स्पष्ट है। रचना वर्णनात्मक होते हुए भी संक्षिप्त है।

सुदासाचरित्र—इस रचना के विषय में डॉ० दीनदयालु गुप्त का यह अनुमान कि यह रचना नददास कृत सम्पूर्ण भागवत भाषा का, जो अब अप्राप्य है, अंश है।^{१६} उचित ही प्रतीत होता है। इसकी रचना शैली ठीक वंसी ही है जैसी दशमस्कंध की। कवि ने 'दशमस्कंध' विमल सुख बानी, सुनत परीछित अतिरति मानी' लिखकर स्वयं इसी तथ्य को स्वीकार किया है। रचना का विषय नाम से स्वतः प्रकट है।

विरहमंजरी—इस छोटी सी कृति में नददास ने 'द्वादश मास विरह की कथा' का चित्रण किया है। प्रारंभ में चार प्रकार के विरह का उल्लेख करके फिर क्रम से चतुर्दश मास तक नाना प्रकार से उद्दीपन सामग्री प्रस्तुत करते हुए ब्रज-वार्त्तिकियों की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है। प्रत्येक मास के वर्णन का आदि अंत दोहे में तथा मध्य आठ दस चौपाइयों में विरचित है।

रूपमंजरी—५८० पंक्तियों की यह प्रेम कथा रूपमंजरी नामक निर्भयपुरी के राजा की कन्या को नायिका रूप में प्रस्तुत करती है। गिरिगोवर्धन पर कृष्ण की प्रतिमा देखकर तथा स्वप्न में दर्शन पाकर वह उनकी ओर आकृष्ट होती है और अन्त में अपनी सखी इंदुमती की सहायता से कुंज में उनसे मिलकर कृतार्थ भी होती है। दोहा चौपाई की शैली में विस्तार में इसी कथा का वर्णन किया गया है। कथा वस्तु का आधार भागवत से नहीं लिया गया है।

रुक्मिणीमंगल—१३३ रोला छंदों में कृष्ण रुक्मिणी विवाह की भागवतोक्त कथा को मूलधार मानकर इसकी रचना की गई है। 'विधिवत् कियो विवाह तिहू पुर मंगल गावै' में प्रयुक्त मंगल शब्द इसके नामकरण की व्याख्या करता है। कथा-कथन में कल्पना का भी पर्याप्त आश्रय लिया गया है।

रासपंचाध्यायी—यह नददास की सर्वमान्य एवं सर्वप्रसिद्ध कृति है। २९ से ३३ तक भागवत दशमस्कंध पूर्वार्ध के पाँच अध्यायों में वर्णित रासलीला का उसी क्रम से ३०१ रोला छंदों में वर्णन किया गया है। कवि ने भाव युक्त होकर रास का आलेखन किया है अतएव इसे अनुवाद नहीं कहा जा सकता। उमाशंकर शुक्ल ने इसके ८३ संदिग्ध छंद 'नददास' की परिशिष्ट में दे दिये हैं।

भंवरगीत——७५ छंदों में विरचित गोपी-उद्धव-नगद विषयक इस रचना की अनेक हस्तप्रतियों में 'जनमुकुट' नामक कवि की भी छाप प्राप्त होनी है।^{१५} परन्तु रचना गौरी और वसु की दृष्टि से यह नददास की ही रचना भिन्न होती है। इसके प्रारम्भ में नददास है और न कथा की भूमिका, जिससे ज्ञान होना है कि कदाचित् यह रचना किसी अन्य विशाल रचना का अंग हो। यह भी संभव है कि मूरदास के भंवर गीत से प्रभावित होने के कारण इसका ऐसा रूप हो।^{१६}

सिद्धान्तपंचाध्यायी—नददास की यह रचना रासपंचाध्यायी में वर्णित रास-क्रीडा की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करती है। रासप्रसंग के 'पृथग्विक' वर्णनों की आलोचना का तथा तद्विषयक अलौकिकता पर की गई गकाओं का शास्त्रीय उत्तर एवं समाधान उपस्थित करना ही इस रचना के निर्माण की मूल प्रेरणा प्रतीत होती है जो निम्नलिखित पक्तियों से स्पष्ट है।

जो पंडित सिंगार ग्रंथ मत यामे सानै ।

ते कछु भेद न जानै हरि कौ विषई मानै ॥४९॥

१३८ रोला छंदों में रास का यह सैद्धान्तिक विवेचन समाप्त हुआ है। रास पंचाध्यायी की कुछ प्रतियों में इसकी पक्तियाँ भी प्रक्षिप्त मिलती हैं।^{१७}

पदावली—पदावली के पदों की संख्या ७०० तथा ८०० के बीच में है, इसका निर्देश किया जा चुका है। विषय की दृष्टि से इन पदों में पुष्टिमार्गीय वर्षोत्सव संबंधी लगभग सभी प्रसंगों का वर्णन मिल जाता है। यों नददास ने बाललीला पर कोई स्वतन्त्र रचना नहीं की किन्तु पदों में इस विषय का भी समावेश है। हिंडोला, वसंत, खडिता, मान आदि प्रसंगों पर भी पर्याप्त पद प्राप्त होते हैं।

छीतस्वामी की रचनाएँ (सं० १५६७—१६४२)—स्फुट पदों के अतिरिक्त छीतस्वामी की कोई सम्बद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती। इन पदों की संख्या के विषय में मतभेद नहीं है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने 'बल्लभ सम्प्रदायी छपे कीर्तन संग्रहों' में से ६४ पदों की, जो छीतस्वामी विरचित हैं, सूची दी है और मिश्र बन्धुओं के ३४ पदों के अप्राप्य संग्रह तथा जवाहरलाल चतुर्वेदी के निजी संग्रह का उल्लेख किया है।^{१८} प्रभुदयाल मीतल के अनुसार, उनके रचे हुए अधिक से अधिक २०० पद प्राप्त हो सके हैं, जिनमें से अधिकांश कीर्तन संग्रहों में दिये हुए हैं।^{१९} विद्याविभाग काँक-रौली में हजारीलाल शर्मा द्वारा जो संग्रह किया गया है उसमें २३२ पद हैं। इस संग्रह का आधार विभिन्न हस्तलिखित पद-संग्रह हैं। विषय की दृष्टि से इन पदों की स्थिति अष्टछाप के अन्य कवियों की पदावली के ही समान है। कृष्णलीला से सम्बन्धित

लगभग सभी विषयों पर पद प्राप्त होते हैं इनमें दान, मान, सभोग, बाल-लीला तथा यमुना-प्रसादा प्रमुख हैं।

चतुर्भुजदास की रचनाएँ (स० १५९७—१६४२)—अन्य अष्टछापी कवियों की तरह चतुर्भुजदास के पदों का संग्रह भी विद्याविभाग काँकरीली की ओर से उस्तानी द्वारा किया गया है जिसमें ४३६ पद संग्रहीत हैं। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने चतुर्भुजदास के अनेक हस्तलिखित पदसंग्रहों का उल्लेख किया है जिनकी पदगणना ३०० के लगभग है।^{१०} कवि की प्रामाणिक रचना के रूप में उन्होंने इन्हीं को स्वीकार किया है। इनके अतिरिक्त 'दानलीला' को भी प्रामाणिक माना है, जो वास्तव में कवि का एक लम्बा पद है। ना० प्र० सभा की खोज-रिपोर्ट में उल्लिखित 'भट्टमालती', 'भक्तिप्रताप', 'द्वादशयज्ञ', तथा 'हितूज की मंगल' अष्टछापी चतुर्भुजदास की रचनाएँ नहीं हैं। इनमें से अन्तिम तीन राधावल्लभीय चतुर्भुजदास द्वारा रचित हैं।

वृंदावन में गोस्वामी हितहरिवंश^{११} द्वारा संस्थापित युगल रूप राधावल्लभ के उपासक इस सम्प्रदाय के कवियों ने भी पर्याप्त कृष्ण-काव्य का सृजन किया। १६वीं शताब्दी में हितहरिवंश के अतिरिक्त उनके अनुयायी सेवक राधावल्लभीय सम्प्रदाय जी, व्यासजी, भगवतहित, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास तथा झूठास्वामी के नाम प्रमुख हैं। इनमें से भगवतहित, परमानन्ददास तथा झूठास्वामी की कोई सुमम्बद्ध रचना प्राप्त नहीं होती। केवल स्फुट पद यत्र तत्र प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं। हितहरिवंश के पुत्र वनचद आदि ने भी कविता की किन्तु उनके भी कतिपय स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं। शेष कवियों की कृतियों का परिचय नीचे दिया जाता है।

हितहरिवंश की वाणी—ब्रजभाषा में हितहरिवंश की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

१. श्रीहितचौरासी

२. श्रीहित स्फुटवाणीजी

ये दोनों ही प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। हितचौरासी में ८४ पद संग्रहीत हैं जिनमें राधाकृष्ण के अनुराग, सभोग, कुंजक्रीड़ा, रास, मान, नखशिख, आदि का वर्णन है। सभी पद रागबद्ध हैं। यह रचना हित सम्प्रदाय में गीता भागवत की तरह पूज्य मानी जाती है और सभी साम्प्रदायिक कवियों द्वारा आदर्श रूप में ग्रहण की गई है।

स्फुटवाणी में १५ पद, ३ सवैये, २ कुडलियाँ, २ छप्पय तथा १ अरिल्ल, इस प्रकार कुल २३ मुक्तक संग्रहीत हैं। यह कवि की प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है।

विषय की दृष्टि से अधिकांश पद हितचौरासी के पदों के समान हैं। कुछ पदों में (११, १६) नद और वृषभानु के द्वार का आनन्दोत्सव वर्णित है। स्फुटवाणी के जेप अंशों में कृष्ण भक्ति की महत्ता का गायन किया गया है।

सेवक जी की वाणी—हितहरिवंश के शिष्य सेवक जी (जन्म स० १५७०) की वाणी 'श्री हितचौरासी सेवकवाणी' के नाम से गुरु की रचना के साथ ही प्रकाशित हो चुकी है।^{१०२} इस वाणी का विषय यद्यपि प्रधान रूप से हितहरिवंश की प्रशंसा है तथापि 'श्री हितरमरीतिप्रकरण' और 'श्री हितभक्तभजन प्रकरण' आदि कुछ प्रकरणों में राधाकृष्ण की कुंज क्रीड़ा का वर्णन भी मिलता है। मिश्र-बन्धुओं ने वाणी के अतिरिक्त इनके 'भक्ति परचावली मंगल' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है^{१०३} पर वह उपलब्ध नहीं है। सेवकवाणी के पदों तथा छंदों की संख्या सीमित ही है किन्तु समस्त वाणी का विस्तार लगभग २०० मुक्तकों तक है जिसमें दोहा, छप्पय, मयैया आदि अनेक छंद प्रयुक्त हैं।

व्यास जी की वाणी—ओडछा नरेश मधुकरशाह के गुरु हरिराम व्यास ने (जन्म स० १५६७)^{१०४} जो हितहरिवंश के सर्वप्रधान शिष्य थे, विस्तृत रूप में काव्य रचना की। उनकी समस्त रचनाएँ 'श्रीव्यासवाणी' नाम में दो भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इस प्रकाशन का आधार तीन विभिन्न हस्तप्रतियाँ हैं। पहली में ६२७ पद, दूसरी में ६९० पद तथा तीसरी में, जो स० १८९० की है, ७२२ पद मिले किन्तु प्रस्तुत प्रकाशित वाणी में पद संख्या ७५६ है और साथ में १४६ साखियाँ और दोहे भी हैं।^{१०५} यह ७५६ पद दो भागों में विभाजित है। पहले भाग में 'सिद्धान्त रस' के ३०१ पद हैं तथा दूसरे में 'रस विहार' के ४५५ पद हैं।

सिद्धान्तरस के पद—इस शीर्षक के अन्तर्गत आने वाले सभी पद सिद्धान्तपरक नहीं हैं। प्रारम्भ में वृन्दावन, मधुपुरी, यमुना, महाप्रसाद तथा नाम रूप की स्तुति तथा गुरु महिमा का वर्णन है। इसके उपरान्त 'श्री साधुन की स्तुति' के रूप में समस्त प्रसिद्ध भक्तों का यश वर्णन है जो एक प्रकार से कृष्णकाव्य की सीमा से बाहर की वस्तु है। शाक्त निन्दा कलिकाल प्रवाह आदि प्रकरण भी इसी कोटि में आते हैं। किन्तु शेष अंश किसी न किसी तरह कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध है। विनय, विरह, मनो-पदेश, भक्ति ज्ञान आदि विभिन्न विषयों के व्याज से युगलरूप की उपासना ही व्यजित होती है।

रस विहार के पद—इन पदों में राधाकृष्ण का कुजविहार, शय्याविहार, जल-क्रीड़ा, षड्भक्तुरास, षोडशशृंगार, नखशिख, मान, भोजनविलास, होली, हिंडोला,

विवाह आदि अनेक अनेक प्रकार से वर्णित हैं । 'रासचन्द्रिका' पृथक् रूप से पद्य-बद्ध की गई है जिसमें राधा-रास को छोड़ कर शेष अंश भागवत के आधार पर लिखित है । राधा और कृष्ण के जन्मोत्सव से सम्बन्धित पद भी प्राप्त होते हैं और कुछ म गोपाल मंडली का भी चित्रण है । कतिपय पदों में खंडिता के भाव भी व्यक्त हैं । इन थोड़े से अपवादों के अतिरिक्त सभी पदों में राधा-कृष्ण के युगलरूप का ही आलेखन हुआ है ।

ब्रज प्रदेश चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र रहा है किन्तु जहाँ तक ब्रजभङ्ग कृष्ण-काव्य का प्रश्न है १६वीं शती में केवल दो कवियों को कृतिवाही उनलब्ध होती है । ये कवि हैं गदाधर भट्ट तथा सूरदास मदनमोहन ।

गौड़ीय सम्प्रदाय गदाधर भट्ट जीव गोस्वामी के शिष्य थे और सूरदास मदनमोहन सनातन गोस्वामी के । ये चैतन्य के समकालीन थे ।^{१०६}

रामचन्द्र गुक्क के अनुसार गदाधर भट्ट का कविताकाल स० १५८०—१६०० के बाद तथा सूरदास मदनमोहन का स० १५९०—१६०० के लगभग है ।^{१०७} स्फुट पदों के अतिरिक्त दोनों कवियों का कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता ।

गदाधर भट्ट की वाणी—'पोहिरो वाणी श्री श्रीगदाधर भट्ट जी की' के नाम से प्रकाशित इनकी मशहूर वाणी में रास के अतिरिक्त कतिपय संस्कृत के गीत तथा वृन्दावन की प्रशंसा में लिखित ५४ रोका छंदों का 'योगमोठ' भी सम्मिलित है । संग्रह में छोटे बड़े सभी प्रकार के पद हैं जिनकी संख्या ८० के लगभग है ।

यशोदा, नंद, बधाई, वृन्दना, यमुना, वशी, वर्रा, वपन, हो गो, हिंडोला आदि पर अनेक तो पद हैं ही किन्तु राधा कृष्ण के शृंगार, रास, विलास, विवाह तथा मान का विशेष विस्तार से वर्णन किया गया है । एक दो स्थल पर श्रीकृष्ण की ब्रज-गोकुल लीलाओं का भी सदर्थ प्राप्त हो जाता है । कुछ पदों में नाम माहात्म्य तथा दैन्य भाव भी व्यक्त हैं । पदों का वर्गीकरण एवं क्रम-निर्धारण उचित रूप से नहीं हुआ है ।

सूरदास मदनमोहन की वाणी—'सुहृत् वाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की' नामक प्रकाशित संग्रह में इनके १०५ स्फुट पद उल्लब्ध होते हैं । इनके काव्य के प्रधान विषय बाल रूप, मुरली रास, विवाह, खंडिता, होली धमार, फाग तथा हिंडोला आदि हैं । यो प्रारम्भ के उपदेश तथा राधा कृष्ण जन्म की बधाई के पद भी हैं । नखशिख, कुंज विलास तथा दान मान का भी वर्णन प्राप्त हो जाता है । वर्णनात्मक शैली में लिखा हुआ धमार का विस्तृत वर्णन (पद न० ८२, रागगौरी) एक स्वतन्त्र रचना श्रद्धा प्रतीत होता है ।

यह सम्प्रदाय ब्रज के उक्त अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की अपेक्षा प्राचीनतर है किन्तु १६वीं शती से पहले इसमें भी कोई काव्य रचना उपलब्ध नहीं होती। १५वीं शती के प्रसंग में श्रीभट्ट और हरिव्यास का १६वीं शती निम्बार्क सम्प्रदाय का निर्णीत किया जा चुका है। इन दो कवियों के अतिरिक्त एक कवि परशुरामदेव भी इसी शती में प्राप्त होते हैं।^{१०८}

✓ श्रीभट्ट की रचना जुगलसत—किवदन्ती के अनुसार तो यह एक सहस्र पद के रचयिता है किन्तु इनकी उपलब्ध रचना एकमात्र 'जुगलसत' ही है।^{१०९} श्रीभट्ट की इस कृति में राधा कृष्ण के युगलरूप को आलम्बन मान कर १०० पदों का निर्माण किया गया है यह शीर्षक से ही व्यजित है। पद विभिन्न प्रकार के हैं और उनके साथ एक एक दोहा भी समाविष्ट है जो पद का संक्षेप मात्र होता है। इन सौ पदों का विषयानुसार वर्गीकरण प्रस्तुत करने के लिये निम्नलिखित उद्धरण दे देना ही पर्याप्त होगा।

दस पद है सिद्धान्त, बीस षट ब्रजलीला पद।

सेना सुख सोलहौ, सहज सुख एक बीस हृद।

आठे सख, अरु उनत बीस उच्छव सुख लहिए।

श्री जुत श्रीभट्टदेव रच्यो 'सत जुगल' जो कहिए।^{११०}

हरिव्यास की रचना : महावाणी—श्रीभट्ट के शिष्य इन हरिव्यास देव की ब्रजभाषा की केवल एकमात्र रचना महावाणी ही प्राप्त होती है जो गुरु के 'जुगलसत' का भाष्य कहा जाता है।^{१११} इस महावाणी के पाँच सुख हैं:—

१. सेवा २. उत्साह ३. सुरत ४. सहज ५. सिद्धान्त

सेवा सुख में अष्टयाम सेवा का वर्णन है। उत्साह-सुख और सहज-सुख में सभोग शृंगार का उदय, विकास एवं पर्यवसान वर्णित है। सिद्धान्त सुख के अन्तर्गत उपास्य तत्व, सखीनामावली तथा महावाणी के गूढ़ विषयों की तालिका प्रस्तुत की गयी है। अनेक स्त्रोत भी इस रचना में समाविष्ट हैं। हरिव्यास ने अपने समस्त पदों में 'श्री हरिप्रिया' की छाप दी है। 'जुगलसत' के आधार पर निर्मित होने के कारण 'महावाणी' का विस्तार भी उसी प्रकार निश्चित है।

✓ परशुराम देव की रचना : परशुरामसागर—श्री हरिव्यास देव के शिष्य परशुराम देव की एकमात्र रचना परशुरामसागर ही उपलब्ध होती है। इस अप्रकाशित बृहत् काव्य के कतिपय अंश 'निम्बार्क माधुरी' में उद्धृत हैं।^{११२} उसमें इस रचना का

जो विवरण दिया है उससे ज्ञान होता है कि इसमें 'बाइस सौ दोहा छप्प, छन्द और हजारों पद हैं जो भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, गुरुनिष्ठा, प्रेम-सम्बन्धी तथा उपदेशात्मक हैं'।^{१३} जो अश प्रकाशित है उनमें श्रृंगार विषयक पदों का नितान्त अभाव है केवल भक्त, विनय, आत्मनिवेदन तथा ज्ञान वैराग्य की चर्चा है। निम्बार्क माधुरी में परशुराम सागर में १०० दोहे तथा ३३ पद उद्धृत हैं।

१६वीं शती में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक तथा तानमेन के गुरु स्वामी हरिदास के अनिरिक्त उनके शिष्य विट्ठल विपुलदेव और प्रशिष्य बिहारिन देव के द्वारा काव्य रचना हुई। स्वामी हरिदास का कविता काल सम्बत १६००—१६१७ के लगभग माना जाता है।

हरिदासी सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास की रचना—उनकी रचनाओं के विषय में हिन्दी के इतिहासकार एक मत नहीं हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार इनके अनेक संग्रह प्राप्त हुए हैं जिनमें 'हरिदास जी की बानी' और 'हरिदास जी के पद' प्रमुख हैं।^{१४} रामचन्द्र शुक्ल ने तीन निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है।^{१५}

१. हरिदास जी को ग्रंथ
२. स्वामी हरिदास जी के पद
३. हरिदास जी की बानी

मिश्र बन्धुओं ने 'भरथरी वैराग्य' नामक रचना को हरिदास कृत माना है।^{१६} उक्त सभी रचनाओं का इतिहासकारों द्वारा केवल उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। किसी ने उनकी रूपरेखा तथा परिचय प्रस्तुत नहीं किया। वास्तव में इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध होती हैं जो पदावली के रूप में हैं। पहली रचना में १८ 'सिद्धान्त के पद' हैं तथा दूसरी 'केलिमाल' नामक रचना में युगल रूप राधाकृष्ण के नित्यवि, नखशिख, मान, दान, होरी तथा रास आदि विषयों के १०८ पद हैं।^{१७} ये दोनों रचनाएँ 'निम्बार्क माधुरी' में प्रकाशित हैं। वियोगीहरि ने भी इन्हीं दोनों रचनाओं की चर्चा की है किन्तु पद संख्या क्रमशः १९ तथा ११० दी है और नाम 'केलिमाल' के स्थान पर 'केलिमाला'। डॉ० दीनदयाल गुप्त ने कदाचित् इन्हीं का 'साधारण सिद्धान्त' तथा 'रास के पद' नाम से उल्लेख किया है।^{१८}

इन रचनाओं में सर्वत्र 'श्री हरिदास' अथवा 'हरिदास' की छाप मिलती है अतः नाभा जी के कथन 'रसिक छाप हरिदास की' की सार्थकता सिद्ध नहीं होती। उनके 'अवलोकित रहे केलि सखी सुख को अधिकारी' से 'केलिमाल' नाम की व्यंजना होती है जिसमें सखी भाव स्पष्ट है।

चिद्गुल विपुलदेव की रचनाएँ—इनकी कोई संवद्ध रचना प्राप्त नहीं होती । केवल चालीस स्फुट पद उपलब्ध होते हैं । इन पदों में श्री राधाकृष्ण के नित्य विहार सम्बन्धी विषयों का वर्णन है ।^{११९} ३१ पद निम्बार्क माधुरी में प्रकाशित हैं ।

विहारिनदेव की रचनाएँ—इनके द्वारा निर्मित ७०० दोहे और ३०० के लगभग पद प्राप्त होते हैं जिनकी रचना भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नीति, उपदेस, आचार्य निष्ठा, श्रृंगार आदि विविध विषयों पर हुई है ।^{१२०} जहाँ तक दोहों का प्रश्न है वे प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं होते किन्तु पदों में से ०० पद संकलित करके निम्बार्क माधुरी में प्रकाशित कर दिये गये हैं ।

इस वर्ग में १६वीं शती के वे सभी कवि आ जाते हैं जिन्होंने जवन किसी सम्प्रदाय की सीमा में रह कर कृष्ण काव्य की रचना नहीं की । ऐसे कवियों के भी दो वर्ग हैं । प्रथम वर्ग के कवियों की रचनाएँ स्वतन्त्र रूप में

सम्प्रदाय-मुक्त कवि प्रेरणा पाकर कृष्ण-भक्ति अथवा कृष्ण-यशगान के उद्देश्य में लिखी गई है किन्तु द्वितीय वर्ग के कवियों ने रीति अथवा नायिका-भेद के ग्रंथों के उदाहरण प्रस्तुत करने की दृष्टि से कृष्ण-काव्य की रचना की । प्रथम श्रेणी में मीरा, तुलसी, रहीम और नरोत्तमदास प्रमुख हैं तथा द्वितीय में कृपाराम, केशवदास, गग और आलम । नीचे इन समस्त कवियों की रचनाओं का परिचय दिया जाता है ।

प्रथम वर्ग के कवियों की रचनाएँ—ब्रजभाषा में मीरा के स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं । इन पदों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं^{१२१} जिनमें परशुराम चतुर्वेदी का

मीरा 'मीराबाई की पदावली' तथा महावीरसिंह गहलौत का 'मीरा जीवनी और काव्य' विशेष महत्वपूर्ण है । चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत संग्रह में शताधिक पद सुसंपादित एवं वर्गीकृत रूप में प्राप्त होते हैं तथा गहलौत के संग्रह का महत्व १०८ पदों में ४० अप्रकाशित पदों को पहली बार प्रकाश में लाने के कारण है । प्रस्तुत लेखक को भी मीरा के कतिपय अप्रकाशित पद प्राप्त हुए जो मीरांस्मृतिग्रंथ में प्रकाशित हो चुके हैं ।^{१२२} इस ग्रंथ में ललिताप्रसाद शुक्ल ने डाकोर वाली सं० १६४२ की हस्तप्रति से ६९ तथा काशीवाली हस्तप्रति से ३४ पदों को मुद्रित कराया है जिनकी भाषा प्राचीन राजस्थानी है । इसके विषय में विशेष विचार भाषा के प्रसंग में किया जायेगा ।

विषय की दृष्टि से मीरा के उपलब्ध पद मुख्यतया तीन निम्नलिखित भागों में विभाजित किये जा सकते हैं :

१. स्वचरित सम्बन्धी पद
२. निर्गुण भक्ति परक पद
३. सगुण भक्ति परक पद

अन्तिम भाग के अन्तर्गत मीरा का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, विरह, मिलन, आत्म-निवेदन आदि भावों से प्रेरित होकर लिखे गये तथा 'रूपवर्णन' होश, वसन्त, दान, मान, कुज शीड़ा, पनघट आदि विषयों पर लिखित सभी गद आ जाते हैं।

तुलसीदास की सम्स्त रचनाओं में कृष्णविषयक केवल एक रचना 'कृष्णगीतावली' ही उपलब्ध होती है। यह रचना 'तुलसी अष्टावली' तथा 'तुलसी रत्नावली' दोनों में प्रकाशित है। कवि की गीतावली में जिस प्रकार राम सम्बन्धी पद संगृहीत हैं उसी प्रकार इस श्रीकृष्ण-गीतावली में कृष्ण सम्बन्धी ६१ पद संग्रहीत हैं। इन पदों में कृष्ण के बाल रूप तथा अमरगीत का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। कुछ पदों में ब्रजलीला, रास तथा नखशिख का भी वर्णन है।

अब्दुरहीम खानखाना की रचनाओं में से केवल दो रचनाएँ, १. मदनाष्टक तथा २. रासपंचाध्यायी कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत आती हैं किन्तु इनमें से पहली रचना में मात्र आठ चौपदे हैं तथा दूसरी के केवल दो पद ही उपलब्ध होते हैं।^{१२३}

रहीम

इतकी कृष्ण सम्बन्धी एकमात्र रचना 'सुदामाचरित' है जो अनेक स्थलों से प्रकाशित हो चुकी है। रचना का विषय शीर्षक से प्रकट है। यह एक सुप्रसिद्ध खंडकाव्य है जिसमें दोहा, कवित्त, सवैया, छंद में सम्बद्ध रूप से कृष्ण-सुदामा मिलन की सारी कथा वर्णित है।

नरोत्तमदास

द्वितीय वर्ग के कवियों की रचनाएँ—इस वर्ग में कृपाराम की 'हिततरंगिनी', केशवदास की 'कविप्रिया' तथा 'रसिक प्रिया' और आलम-शेख की 'आलमकेलि' जैसी रचनाएँ आती हैं। इन रचनाओं में लक्षणों के उदाहरण रूप में प्रस्तुत भुक्तकों में राधाकृष्ण की विविध शृंगार लीलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। गग के नाम से उपलब्ध कृष्ण सम्बन्धी कतिपय कवित्त भी इसी श्रेणी में आते हैं।

ये सभी रचनाएँ प्रकाशित हैं।

१७वीं शती—गुजरानी

१६वीं शती की तरह इस शती में भी बहुसंख्यक कवि ऐसे मिलते हैं जिन्होंने कृष्ण सम्बन्धी काव्य रचना की। इनमें से अनेक को पहली बार प्रकाश में लाने का श्रेय शास्त्री को है। चित्र नं० ४ के देखने से विदित होता है कि उन्हीं के द्वारा सर्वाधिक

कवियों का उल्लेख हुआ है। किसी कवि का सभी इतिहासकारों ने परिचय नहीं दिया।^{१२४} आवेरी ने देवीदास, शिवदास तथा नरहरि, इन तीन अन्य कवियों का परिचय दिया है और मुंशी ने शिवदास एवं रत्नेश्वर का। रत्नेश्वर का उल्लेख त्रिपाठी ने भी किया है। देवीदास और शिवदास तारापोरवाला के SCGL में भी मिलते हैं। माधवदास तक के सभी कवि तथा केशवदास वैष्णव शास्त्री द्वारा उल्लिखित हुए हैं। विष्णुदास का भी किसी ने परिचय नहीं दिया है। चित्र न० ३ के अनुसार आगे निम्नलिखित १५ कवियों तथा उनके काव्यों का संक्षिप्त परिचय क्रमशः दिया गया है।

१. लक्ष्मीदास	९. फाग
२. देवीदास	१०. माधवदास
३. शिवदास	११. प्रेमानंद
४. भाऊ	१२. रत्नेश्वर
५. वैकुण्ठदास	१३. विष्णुदास
६. परमाणंद	१४. केशवदास वैष्णव
७. कृष्णदास	१५. रविदास
८. नरहरिदास	

लक्ष्मीदास ने अपने 'गजेन्द्रमोक्ष' में रचना समय स० १६३९ तथा 'चन्द्रहास-रंगान' में स० १६४७ दिया है जिससे उनका १६वीं शती में होना सिद्ध होता है परन्तु उनके जिस 'दशमस्कंध' के कारण उन्हें प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकार किया गया है उसका रचनाकाल स० १६७४ है।^{१२५} एक हस्तप्रति में स० १६०४ भी दिया है जो सदिग्ध है।^{१२६} दशमस्कंध एक तो उनकी प्रारम्भिक रचना नहीं लगती दूसरे उनका काव्यकाल स० १६७४ के आसपास तक माना भी जाता है क्योंकि उनकी एक छोटी रचना 'ज्ञानबाध' स० १६७२ में रची गयी मिलती है।^{१२७} अतएव स० १६७४ की प्रामाणिक एवं संभव प्रतीत होता है। ऐसी दशा में लक्ष्मीदास को १७वीं शती के अन्तर्गत स्वीकार करना अनुचित नहीं है।

रचनाएँ . दशमस्कंध, स्फुट पद—लक्ष्मीदास की कृष्णपरक रचनाओं में उनका 'दशमस्कंध' तथा कुछ स्फुट पद ही आते हैं। शेष रचनाओं में कुछ आख्यान काव्य हैं जो प्रस्तुत विषय की गीमा से बाहर हैं।

दशमस्कंध—लक्ष्मीदास की रास पंचाध्यायी के भालगकृत दशमस्कंध में प्रक्षिप्त रूप में पाये जाने का उल्लेख भालग के प्रसंग में हो चुका है। वह पंचाध्यायी इसी

दशमस्कंध का एक अंश है। यह दशमस्कंध अभी अप्रकाशित है। १९५५ कड़वों में भागवत दशमस्कंध के ९० अध्यायों का अनुवाद किया गया है।

स्फुट पद—रामविषयक पदों की तरह इनके कुछ पद कृष्णविषयक भी प्राप्त होते हैं जो मुख्यतया स्तुति रूप हैं। चार मुक्तक सर्वे भी मिलते हैं। इन स्वतन्त्र स्फुट रचनाओं की भाषा मिश्रित है।^{१३६}

देवीदास के समय का उल्लेख उनकी रचना 'रुक्मिणीहरण' के अन्तिम कड़वे में मिल जाता है।^{१३७} उससे ज्ञात होता है कि उनका काव्य-काल स० १६६० के लगभग रहा है। स० १६७५ की तौ हस्तप्रति ही प्राप्त होती है।

देवीदास

रचनाएँ—इस कवि की लगभग सभी रचनाएँ भागवत पर आधारित हैं और कृष्णविषयक हैं। तीस कड़वों की रचना 'रुक्मिणीहरण' बृहत् काव्यदोहन, भाग छठे में प्रकाशित है। 'भागवतसार' तथा 'रामपंचाध्यायी' तो सार में प्रथम अप्रकाशित हैं और दूसरी बृहत् काव्यदोहन भाग ८ में छपी है। रचनाओं के विषय नाम से ही स्पष्ट है।

शिवदास का काव्य-काल देवीदास के काव्य काल के समानान्तर ही रहा है जो उनकी अनेक रचनाओं में दिए हुए समय से प्रमाणित होता है।^{१३८} स० १६६७-७७ तक के समय में उन्होंने अपनी विभिन्न कृतियों का सृजन किया।

शिवदास

रचना . बालचरित—शिवदास आख्यानकार थे। उनकी मात्र एक रचना 'बालचरित' कृष्ण काव्य के अन्तर्गत आती है। भागवत का आधार लेकर कवि ने इसे 'दीनत्रय' में ही 'पदबद्ध' कर दिया। रचना कड़वावद्ध और वर्णनात्मक है तथा अभी तक अप्रकाशित है।

भाऊ

भाऊ का काव्यकाल स० १६७६-७९ के लगभग निश्चित है।^{१३९} शिवदास की तरह भाऊ भी आख्यानकार ही थे।

रचना : पांडवविष्टि—कृष्ण से सम्बन्धित इनकी एक रचना 'पांडवविष्टि' ही प्राप्त है। यह प्राचीन काव्य त्रैमासिक १८९० अंक ३, में प्रकाशित है। रचना का विषय कौरवों पांडवों के बीच कृष्ण का दूतत्व है।

इस कवि के समय के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। कवि अपनी रचना के प्रारम्भ में 'श्रीगोकुल चंदनि' को प्रणाम करता है जिसमें उसे गोकुलनाथ का शिष्य मान कर १७वीं शती वि० के उत्तरार्ध में स्वीकार किया है।^{१११} गोकुलनाथ की शिष्यता के विषय में शास्त्री ने अन्य प्रमाण नहीं दिये हैं अतएव कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता फिर भी भाषा और वस्तु के आधार पर कवि १७वीं शती का ही प्रतीत होता है।

बैकुण्ठदास

रचना : रासलीला—कवि की एकमात्र उपलब्ध रचना 'रासलीला' है जो अप्रकाशित है। विषय कृष्ण और गोपियों का रामप्रसंग है जो संक्षिप्त रूप में वर्णित है।

फाब्स गुजराती सभा में परमाणद के 'हरिरस' नामक काव्य की जितनी भी प्रतियाँ हैं उनमें ज्ञात होता है कि इसका रचनाकाल स० १६८९^{११३} है। गुजराती प्रेस की प्रति में स० १५०९ है जो पूर्णतः असम्भव है। परमानद का समय निस्संदेह १७वीं शती के अन्तर्गत ही आता है।

परमाणंद

रचना : हरिरस—इनकी केवल एक कृति हरिरस ही प्राप्त है। इसका आधार भागवत का दशम और एकादश स्कंध है। सारी रचना १२ वर्गों में विभाजित है। शैली वर्णनात्मक है। कुछ प्रसंग अत्यन्त संक्षिप्त कर दिये गये हैं और कुछ विस्तृत। अनुवाद पर विशेष आग्रह नहीं है। यह अभी अप्रकाशित है।

स० १६७३ में रचित 'सुदामाचरित' स० १७०१ में रचित 'मामेरु' तथा स०

१७०३ की रचना 'हुडी' के आधार पर कृष्णदास का काव्य काल १७वीं शती ही स्थिर होता है।^{११४}

कृष्णदास

रचनाएँ—'सुदामाचरित', 'रुक्मिणी विवाह' तथा 'रुक्मिणी हरण हमचडी' यही तीन रचनाएँ ऐसी हैं जो कृष्ण से सम्बन्धित हैं।^{११५}

सुदामाचरित—१५ कडवा की यह आख्यानात्मक रचना अभी अप्रकाशित है। विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है।

रुक्मिणी विवाह—कृष्णदास के नाम से प्रसिद्ध इस संक्षिप्त रचना में अनेक कवियों के पद संग्रहीत हैं। यही नहीं कुछ प्रक्षिप्त पद ऐसे भी हैं जिनका प्रसंग से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अन्तिम पाँच पद वल्लभ नामक कवि के हैं और उन्हें

सुगमता से 'राधाविवाह' शीर्षक दिया जा सकता है। 'कृष्णोदास' की छाप प्रारम्भिक पद और पाचवें, छठे तथा सातवें कडवे में ही है। दूसरे कडवे में मुरदास का 'विप्र-कोउ द्वारका पे जाय' पद, तीसरे में 'विजयो' का चौथे में 'जन रघुनाथ' का तथा आठवें में अन्तिम 'टपा' पंजाम्बर का है। 'कृष्णोदास' छाप वाले पदों की भाषा भी ब्रज मिश्रित है। ऐसी स्थिति में इस रचना को किसी एक कवि की कृति कहना नमूचित नहीं लगता। पर जो पद कृष्णदास के इसमें हैं उनको 'रविमणी विवाह' कहना अनुपयुक्त नहीं। रागबद्ध पदों के कारण ही कदाचित् इसको प्रकाशक श्री काशीराम करसन जी ने इसकी संज्ञा 'श्री रविमणी विवाहना पदो' दे दी। 'वैष्णवो ने त्या विवाहोत्सव प्रसंगे गवाता' लिखकर प्रकाशक ने इसकी लोक प्रियता की ओर संकेत किया है।

रविमणीहरण हनुचडी—मदेह के लिए थोड़ा-सा स्थान देते हुए भी शास्त्री हनुचडी को शिवदाममुत कृष्णदास की ही रचना मानने के पक्ष में हैं। उन्होंने ग्रंथारम्भ में आये हुए दामोदर के स्मरण की समता लेखक की अन्य रचनाओं में दिखाते हुए अपनी-अपनी उक्त धारणा व्यक्त की है।^{१९९} रचनाकाल की दृष्टि से ऐसा मानने में कोई व्याघात नहीं उपस्थित होता।

यह रचना अप्रकाशित है। 'हमची' 'हमाचडी', हनुचडी' आदि शब्द इसके एक विशेष प्रकार से गये होने का बोध कराते हैं। ५३ कडों की यह संक्षिप्त कृति कवि की अन्य रचनाओं की अपेक्षा निम्नकोटि की है।

नरहरिदास का समय उनकी अनेक गीताओं में दिये सबतों से पूर्णतया निश्चित हो जाता है। ज्ञानगीता में सं० १६७२, वासिष्ठगीता में सं० १६७४ और भगवद्गीता में सं० १६७७ दिया है।^{१९०} इस प्रकार इनका १७वाँ शती में होना असंदिग्ध है।

रचनाएँ : आनंदरास, गोपीउद्धव संवाद—नरहरि मुख्यतया ज्ञानमार्गी कवि थे फिर भी दो रचनाएँ कृष्ण से सम्बन्धित मिलती हैं, आनंदरास और गोपीउद्धव संवाद। दोनों अप्रकाशित हैं।

आनंदरास—इसका विषय कृष्ण की रासलीला से नितान्त भिन्न है। कवि ने सारी रचना में आनंद स्वरूप, परब्रह्म कृष्ण की भक्ति, सतसंग तथा प्रपंचत्याग की महिमा का गान किया है। २५ कडियों की यह छोटी सी रचना ज्ञानपरक होने के कारण अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखती है।

गोपी उद्धवसंवाद—‘हरिगुरु संत प्रमादे करी गाये ते रगभरे रास रे’ कह कर नरहरिदास इसे भी आनदरास की तरह रास शैली में रचित स्वीकार करने है। रचना का आधार भागवत का गोपीउद्धव संवाद होते हुए भी कवि ने अपने ज्ञानमार्गी होने के कारण उद्धव के तर्कों को विस्तार एवं मनोयोग से लिखा है। रचना छोटी और वर्णनात्मक है।

फाग के एकमात्र काव्य ‘कंसोद्धरण’ की उपलब्ध प्रतिलिपि में प्रतिलिपि-काल सं० १७५९ तथा रचनाकाल सं० ‘१६९७ फागण सुदी १२ बुधवार, विजय-सम्बत्सर’ दिया हुआ है। अतएव फाग का १७वीं शती के अन्तर्गत ही स्वीकार करना होगा। जो तिथि दी है वह गणना से शुद्ध है केवल सम्बत्सर ‘विजय’ नहीं आता है।

रचना : कंसोद्धरण—कवि ने स्वयं अपनी रचना का नाम ‘कंसोद्धरण’ दिया है जिसे शुद्ध करके वास्त्री ने ‘कंसोद्धारण’ लिखा है।^{१३८} शीर्षक से विषय केवल कंस के उद्धार तक ही सीमित प्रतीत होता है परन्तु कवि ने वास्तव में कंस-वध तक की समस्त कृष्णलीलाओं का प्रसंगान्तर में समावेश कर लिया है। यही नहीं कंसवध के बाद की कतिपय घटनाओं का भी उल्लेख है। शैली की दृष्टि से रचना वर्णनात्मक एवं कड़वावद्ध है और अभी अप्रकाशित है।

माधवदास ने अपनी रचना ‘दशमस्कंध’ का रचनाकाल सं० १७०५ दिया है जिससे उनका काव्यकाल १७वीं शती में ही निश्चित होता है।^{१३९}

रचना : दशमस्कंध—कृष्ण सम्बन्धी इनकी एक रचना दशमस्कंध ही प्राप्त है। यह भागवत दशम का अनुवाद मात्र है। कवि ने स्वतन्त्र रूप से कुछ परिवर्तन परिवर्धन नहीं किया है।

नरसी की तरह ही प्रेमानंद के जीवन और रचनाओं को लेकर गुजराती विद्वानों में पर्याप्त विस्वाद चलता रहा। जिसका अन्त अभी तक नहीं हो सका है। पर जहाँ तक उनके जीवनकाल का सम्बन्ध है, विशेष मत-भेद नहीं है। चित्र नं० ४ से विदित होता है कि झावेरी, तारापोरवान्ना और मुंशी के मत से इनका जीवन काल सन् १६३६—१७३४ निश्चित है। शास्त्री ने दूसरे ढंग से विचार करके प्रेमानंद का जन्मकाल सं० १७०० के लगभग माना है जिसमें केवल कुछ ही वर्षों का अंतर पड़ता

ह । शास्त्री का मत प्रेमानन्द के तिथियुक्त बारह ग्रंथों पर आश्रित है । इनमें सर्व-प्रथम रचना 'ओखाहरण' स० १७२२—२३ की है और अन्तिम 'रणयज्ञ' स० १७४६ की ।^{१४०} १७वीं शती ई० की सीमा सं० १७५७ तक जाती है अतएव इन तिथियुक्त ग्रंथों का निर्माणकाल इसी शती में आता है । इस विषय में सभी विद्वान एकमत हैं कि प्रेमानन्द का अधिकांश काव्यकाल १७वीं शती ई० की सीमा में ही है ।

रचनाएँ—यों तो प्रेमानन्द की रचनाएँ बहुसंख्यक हैं परन्तु उनमें कृष्णपरक बहुत अधिक नहीं है । प्रेमानन्द की केवल निम्नलिखित रचनाएँ ही प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत आती हैं ।

१. रुक्मिणी हरण	६. भ्रमरगीता
२. रुक्मिणीहरण ना सलोको	७. भ्रमरगचीशी
३. बाल लीला	८. मास
४. ब्रजवेलि	९. सुदामाचरित
५. दाणलीला	१०. दशमस्कंध (मोटो)

यहाँ दशमस्कंध के समाविष्ट करने पर कुछ आपत्ति की जा सकती है क्योंकि शास्त्री उसे प्रेमानन्द के काव्यकाल के अन्तिम अंश की रचना मानते हैं ।^{१४१} इस विषय में उन्होंने जो तर्क उपस्थित किये हैं वे अनुमान पर अधिक आधारित हैं । दशमस्कंध में रचना समय दिया नहीं है अतएव कुछ निश्चयपूर्वक कहना कठिन है । ऐसी स्थिति में इस रचना की महत्ता देखते हुए तथा स्पष्ट विरोधी प्रमाणों के अभाव में इसे प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकार कर लिया गया है । प्रेमानन्द के नाम से एक 'नानु दशमस्कंध' भी प्रचलित है परन्तु वस्तुतः वह उनकी रचना सिद्ध नहीं होता । इस विषय के प्रमाण दशमस्कंध का परिचय देने हुए प्रस्तुत किये जायेंगे । मास को छोड़कर उपर्युक्त सभी रचनाओं को शास्त्री ने प्रेमानन्द की शकारहित कृतियों की कोटि में स्वीकार किया है साथही ब्रजवेलि को बाललीला से पृथक् नहीं माना है ।^{१४२} इन रचनाओं के अतिरिक्त मुंशी ने 'भगवद्गीता' का भी उल्लेख किया है ।^{१४३} अम्बालाल बुलाकीराम जानी ने भी 'भागवत सम्पूर्ण' का नाम गिनाया है ।^{१४४} भगवद्गीता की कोई हस्तप्रति नहीं मिलती और भागवत सम्पूर्ण की सत्ता भी नाममात्र की ही है ।

रुक्मिणीहरण ना सलोको, बाललीला, ब्रजवेलि, भ्रमरगीता तथा मास को मुंशी द्वारा दी गयी प्रेमानन्द के काव्यों की सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है ।^{१४५} शास्त्री ने 'प्रेमानन्द, एक अध्ययन' में जो सूची दी है उसमें उक्त अन्य रचनाएँ तो हैं

पर 'मास' सम्मिलित नहीं है। गु० ह० सकलितयादी में अवश्य वास्त्री ने 'महिना' नाम से मास का उल्लेख किया है।^{१६६} पर यह सूची भी पूर्ण नहीं कही जा सकती क्योंकि ब्रजवेलि का समावेश इसमें नहीं मिलता। धूथी ने भास की सत्ता 'बार मास तो विरह' नाम से स्वीकार की है।^{१६७} ब्रह्मानन्द, शिवानन्द तथा अन्य प्रेमानन्द के पद प्रशिष्ट हो जाने से इसके कर्तृत्व के विषय में शका की गयी परन्तु विचार करने पर जान होता है कि यह वास्तव में प्रेमानन्द की ही रचना है। के० ह० ध्रुव ने इसे सम्पादित करके गु० ब० मो० के 'बुद्धि प्रकाश' में प्रकाशित किया। प्रेमानन्द की उपर्युक्त रचनाओं में भास के अनिरिक्त, रुक्मिणीहरण, दशमस्कन्ध, दाणलीला, अमर-पचीशी, अमरगीता तथा सुदामाचरित भी प्रकाशित हो चुके हैं। ब्रजवेलि, रुक्मिणीहरण ना सलोको, बाललीला तथा अमरगीता अभी अप्रकाशित ही हैं। नीचे प्रेमानन्द की स्वीकृत रचनाओं का साक्षिप्त परिचय क्रमशः दिया गया है।

रुक्मिणीहरण—इस रचना में रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की कथा को अनेक पुराणों का आधार लेकर वर्णित किया गया है। यह एक आख्यान काव्य है जिसमें कुल २५ कड़वे हैं। बीच बीच में पद भी मिलते हैं। यह प्राचीन काव्यमाला, ग्रंथ १४ में प्रकाशित है।

रुक्मिणीहरण ना सलोको—इस रचना का विषय भी रुक्मिणी-कृष्ण-विवाह ही है। एक प्रकार से यह 'रुक्मिणीहरण' का संक्षेप-सा है जिसे कवि ने स्वयं स्वीकार किया है।^{१६८} रचनाकाल स० १७४० दिया हुआ है।^{१६९}

बाललीला—यह केवल एक लम्बा-सा पद है, ग्रंथ नहीं। यशोदा नाना प्रकार की बातें कह कह कर कृष्ण को जगाने का प्रयत्न करती है। सारी बाललीलाएँ प्रसंगान्तर से आ जाती हैं। यह दीर्घ पद कदाचित् कृष्णविषयक लिखे रास का अवशिष्ट है क्योंकि शीर्ष स्थान पर हस्तप्रति में 'कृष्ण ना रास मा थी बाललीला' दिया हुआ है।^{१७०}

ब्रजवेलि—ब्रजवेलि में प्रेमानन्द ने दशमस्कन्ध की लीला का संक्षेप में वर्णन किया है। यह कवि के 'संक्षेपे दशम लीला कही विस्तारी जी' कथन से भी प्रमाणित होता है। इस रचना का वस्तुविधान स्वतन्त्र है अतः इसे बाललीला के अन्तर्गत मानना भ्रामक है।

दाणलीला—राधा तथा उनकी सखियों से कृष्ण द्वारा दधिदान लिये जाने की कथा को आख्यान का रूप देकर इस काव्य की रचना की गयी है। रचना छोटी ही है और इसमें कुल १५ अंश हैं। १३ तक कड़वाबद्ध है और १४वें तथा १५वें अंशों में पद है। यह बृहत् काव्य दोहन भाग १ लु० में प्रकाशित है।

भ्रमरगीता—भागवत के भ्रमर प्रसंग पर आधारित प्रेमानंद की रचनाएँ कई रूपों में प्राप्त होती हैं अतएव उनके यथार्थ रूप का निश्चय करना सरल नहीं है। प्राचीन काव्य सुधा, भाग १ नु, में प्रकाशित भ्रमरगीता को सकलितयादी में 'नानु' विज्ञेयण के साथ दिया गया है।^{१५१} यह कदाचित् इमलिंग कि इसका मूल 'नानु' दशमस्कंध में प्राप्त होता है। इस दशमस्कंध में प्राप्त भ्रमरगीता में प्रेमानंद की छाप है और भाषा, शैली आदि के आधार पर भी कर्तृत्व के विषय में कोई शक नहीं उठता। किन्तु 'नानी भ्रमरगीता' और प्रा०का० मुद्रा में प्रकाशित भ्रमरगीता एक होते हुए भी कुछ सिद्धता रखती है। पहली में दूसरी की अपेक्षा कुछ परिवर्तनों अनिक्त है यद्यपि इन परिवर्तनों में भ्रमरगीता का कुछ भी लक्षण नहीं है। इनमें कृष्ण के जन्म से लेकर अध्ययन काल तक का वर्णन करते हुए भ्रमर प्रसंग से पहले तक की सारी कथा समाविष्ट है।

दूसरी ओर इस भ्रमरगीता की तुलना प्रेमानंद के मोटु दशमस्कंध के भ्रमर प्रसंग से करने पर ज्ञात होता है कि यह एक प्रकार से उसका पूर्व रूप जैसी है। दोनों में पर्याप्त समानता है। संभवतः नानु दशमस्कंध की भ्रमरगीता का ही परिवर्धित एवं पुनर्निर्मित रूप मोटु दशमस्कंध में रख दिया गया है। कथा के रूप में अनेक परिवर्तन हो गये हैं फिर भी कुछ वर्णन लगभग एक जैसे ही हैं। कुछ पद तो ज्यों के त्यों समाविष्ट कर लिये गये हैं। मोटु के १२७, १३१, १३२ और १३३वे कड़वों में आये पद क्रमशः नानु के ३, ९, १०, ११ और १२वे कड़वों में आये पदों के समान हैं। बड़ी भ्रमरगीता में 'भ्रमरगीता समाप्त' लिखकर अंत का निर्देश भी कर दिया गया है जिससे ज्ञात होता है कि दशमस्कंध के अन्तर्गत होकर भी यह एक स्वतन्त्र एवं अपने में पूर्ण रचना है। छोटी भ्रमरगीता में ऐसा कोई निर्देश नहीं है।

इस प्रकार सभी गीताओं को देखने में स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमानंद ने भ्रमरगीता को उत्तरोत्तर परिवर्धित करके कई बार लिखा।

भ्रमरपचीसी—यह भी विषय की दृष्टि से एक भ्रमरगीता ही है केवल नाम और आकार का भेद है। कवि ने 'संवाद उद्धव ब्रज वनिता ने भ्रमरगीता ने भाषु जो' लिखकर इस वस्तुगत अभेद को स्वीकार भी किया है। इसकी हस्तप्रति का प्रारम्भ 'अथ भ्रमरपचीसी लखी छे' के द्वारा होता है और अंत 'इति भ्रमरगीता सम्पूर्ण समाप्त' के द्वारा।^{१५२} इस प्रकार दोनों ही नाम संभाव्य हैं। छंद सख्या को विषय के साथ सम्बद्ध करके नामकरण करने की प्रथा भी प्राचीन है अतएव संभव है कि प्रेमानंद ने 'भ्रमरपचीसी' नाम दे दिया हो। इसके २५ पदों में अनेक पद ऐसे हैं जो पूर्वोल्लिखित भ्रमरगीताओं में प्राप्त हो जाते हैं। प्रारम्भिक अंश

समेत आठ पद तथा १५वाँ, १८वाँ और २४वाँ पद नवीन रचना हैं किन्तु शेष सभी पद नानी भ्रमरगीता से भी हैं।

मास—अतिम पंक्ति 'भट्ट प्रेमानन्द मास गाये' के अनुसार 'मास' नाम ही उचित प्रतीत होता है यद्यपि 'द्वादश मास', 'बार मास' 'मास बार', 'सुरति नहीना', 'सुगति-मान' तथा 'मास सुगती' आदि अनेक नाम विभिन्न हस्तप्रतियों से मिलते हैं। इसमें अनेक कवियों के पद प्रक्षिप्त होने का उल्लेख पहले किया जा चुका है। संभवतः यह कवि की प्रारम्भिक कृतियों में से हैं। प्रतिलिपिकार के जन साधु होने से इसकी व्यापक लोकप्रियता सिद्ध होती है।

इस 'मास' काव्य में कवि ने प्रत्येक मास की प्राकृतिक उद्दीपन सामग्री से वातावरण चित्रित करके गद्या के मन पर होने वाली विविध प्रतिक्रियाओं का वर्णन किया है। सारी रचना बारह अंगों में विभाजित है और प्रत्येक अंग में १६ पंक्तियाँ हैं। हर अंग क्रम का निर्वहण करते हुए भी अपने में स्वतन्त्र है।

सुदामाचरित—आख्यान के रूप में लिखी हुई यह रचना अधिक बड़ी नहीं है। कथानक का आधार भागवत होने हुए भी इसमें अनुवाद नहीं किया गया है। कल्पना द्वारा वर्णनों को विस्तार दिया गया है। प्रेमानन्द ने इसकी रचना नदरबार में की थी। वृ० का० दोहन भाग १ लुं के अतिरिक्त और भी कई व्यक्तियों ने इसे प्रकाशित किया।^{१५३} इसका रचनाकाल निश्चित नहीं है। किसी प्रति में स० १७०५ किसी में स० १७४८ और किमी में स० १७३२ या स० १७३८ मिलता है।^{१५४} गुजरात में प्रति शनिवार की भव्या को इसके पाठ का प्रचलन है।^{१५५}

दशमस्कंध—रचना के नाम के साथ यहाँ 'भोटु' विशेषण नहीं लगाया गया है क्योंकि उसकी आवश्यकता 'नानु दशमस्कंध' की सापेक्षता के कारण हुई थी जिसके रचयिता प्रेमानन्द नहीं सिद्ध होते। प्रेमानन्द का यह दशमस्कंध एक अपूर्ण रचना है। शेष भाग को उनके शिष्य सुन्दर ने पूर्ण किया। प्रेमानन्द की रचना कहाँ तक है यह विवादग्रस्त है। ५३वें अध्याय के १६१ वें कड़वे तक प्रेमानन्द की छाप मिलती है किन्तु १६२ से १६५ तक के कड़वों को भी उन्हीं की रचना कहा जाता है। इस ग्रंथ के सशोधक एवं प्रकाशक इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने अनेक कारण देकर निष्कर्ष रूप में लिखा है कि 'आ १६५ मा सुधीनी सर्व कृति प्रेमानन्द ती निर्विवाद ठगे छे।'^{१५६} प्रेमानन्द अपनी इस रचना में अनन्य राम-भक्त के रूप में सम्मुख आते हैं। 'विवेक वणझरो' तथा 'रणयज्ञ' की तरह इस ग्रंथ का प्रारम्भ भी राम की ही वदना से होता है। 'रामचरण कमल मकरद, लेवा इच्छे प्रेमानन्द'। इस

पंक्ति को बीच-बीच में लिखकर उन्होंने अपनी इस अनन्यता को और भी स्पष्ट कर दिया है ।

‘व्यासवाणी जाणी जथा, तेहवी प्राकृत जोडी कथा’ से प्रकट है कि प्रेमानंद ने मुख्यतया भागवत के दशम स्कंध को आधार मानकर इसकी रचना की है किन्तु इसको अनुवाद किसी तरह भी नहीं कहा जा सकता । कहीं-कहीं अन्य पुराणों की कथाएँ भी दी गयी हैं । कवि ने अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा से सर्वत्र नवीनता लाने का प्रयास किया है । प्रेमानंद के दशमस्कंध के एक सुविज्ञ संपादक की भी यही धारणा है ।^{१५७} पर एक विद्वान् का ऐसा भी मत है कि प्रेमानंद ने संस्कृत भाषा तथा मूलभागवत से अतभिन्न होने के कारण रूपान्तर में फेरफार कर दिया है ।^{१५८} प्रेमानंद की कृष्णपरक रचनाओं में यह सबसे विशाल कृति है । इसका निर्माण उदरपोषण के निमित्त न होकर भक्ति के उद्देश्य से हुआ है । अख्यान शैली के अतिरिक्त इसमें कहीं-कहीं पद शैली का भी प्रयोग मिलता है । प्रेमानंद ने दशमस्कंध की रचना उसको समस्त ज्ञान का सार समझ कर की, यह कवि की निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट है .

सकल शास्त्र निगमनुं तत्त्व । सर्व शिरोमणि श्री भागवत ।

ते मध्ये सार छे दशमस्कंध । जोड़ुं हुं प्राकृत पदबंध ।

उसके पीछे संस्कृत की प्रतिस्पर्धा में प्राकृत भाषा के सौन्दर्य को प्रस्तुत करने की भावना भी निहित थी । प्रेमानंद ने इसे स्पष्ट शब्दों में स्वीकार भी किया है ।

‘नानु दशमस्कंध’ प्रेमानंद की रचना नहीं है । अब तक नटवरलाल द्वारा स्थापित मान्यता के अनुसार नानु दशमस्कंध प्रेमानंद की रचना माना जाता रहा । शास्त्री ने भी इसको स्वीकार किया और उसे प्रेमानंद की शंकारहित कृतियों में स्थान दिया ।^{१५९} किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत प्रतीत होती है जिसके प्रमाण इस प्रकार हैं .

१. प्रेमानंद की छाप कड़वा ४२ और कड़वा ४३ के बीच आने वाली भ्रमर-गीता में ही है अतः यह अंश स्पष्टतया प्रक्षिप्त है ।
२. सारी रचना कड़वाबद्ध है, मात्र प्रेमानंद छाप वाला अग पद शैली में है । ‘पद पुरणे’ लिखकर उस अंश की पूर्णता का बोध करा दिया गया है ।
३. इस रचना में अनुवादात्मकता है जो प्रेमानंद के स्वभाव के प्रतिकूल है । प्रेमानंद का तथाकथित ‘मोठु दशमस्कंध’ इसका साक्षी है ।

४. प्रेमानंद ने मोट्टु दशमस्कंध' में सर्वत्र राम को इष्टदेव माना है पर इस रचना का रचयिता रामोपसाक नहीं है ।
५. यह रचना शिव-पार्वती सवाद और उनके विवाह के उपाख्यान से प्रारम्भ होती है जो पद्मपुराण पर आधारित है । यह अंश भी प्रेमानंद का रचा हुआ नहीं लगता ।
६. हस्तप्रति के आदि अंत ब्रूटक होने से वास्तविक कवि का नाम एवं रचना-काल अज्ञात है ।

ऐसी स्थिति में इसे प्रेमानंद कृत मानना वृद्धिसंगत नहीं है । प्रेमानंद की भ्रमर-गीता के प्रक्षिप्त होने के कारण भ्रमवश सम्पूर्ण रचना को प्रेमानंदकृत मान लिया गया । प्रस्तुत अध्ययन में इसीलिए इसे प्रेमानंद की कृतियों में स्थान नहीं दिया गया है ।

रत्नेश्वर का अधिकांश काव्य-काल १७वीं शती के अन्तर्गत ही आता है ।

उनके दशमस्कंध के अंत में दिया हुआ समय सं० १७३९
रत्नेश्वर इसका समर्थक है ।^{६०} दो एक को छोड़ कर कवि की सभी रचनाएँ इसी शती की सीमा में आती हैं ।^{६१}

रचनाएँ: दशम एवं एकादश स्कंध, बारमास—कृष्णपरक रचनाओं में भागवत के 'दशम और एकादश स्कंध' का अनुवाद तथा 'बारमास' की गणना की जा सकती है । रत्नेश्वर ने वैसे पहले और दूसरे स्कंध का भी अनुवाद किया है किन्तु वे कृष्ण से सम्बद्ध नहीं हैं । सं० १७३९ में दशमस्कंध को समाप्त करने के बाद ही सं० १७४० में एकादश स्कंध की भी रचना हुई । दशमस्कंध तो गोवरधनदास नारायणभाई तथा गट्टूलाल द्वारा दो स्थानों से प्रकाशित हो चुका है किन्तु एकादशस्कंध अभी अप्रकाशित ही है ।^{६२} रत्नेश्वर ने एक प्रकार से श्रीधर के तिलक का भाषान्तर किया है जिसके कारण काव्य की दृष्टि से उनके दोनों स्कंधों का कोई स्वतंत्र महत्व नहीं है । प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में उसका सारांश एक संस्कृत श्लोक तथा दो एक गुजराती के छंदों में दे दिया गया है । सम्पूर्ण अध्याय की रचना एक ही राग या रागिनी में की गई है ।

बारमास में प्रेमानंद के मास के तरह ही राधा के मनोभावों का वर्णन है । 'राधा विरहनां बारमास' के नाम से यह रचना बृ० का० दोहन भाग ६ठुं तथा प्रा० का० सुधा भाग १ लुं में मुद्रित हो चुकी है । रचनाकाल सं० १६९८ दिया गया है जो सदेहास्पद है ।^{६३}

अप्रकाशित काव्य 'रुक्मिणीहरण' के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध आख्यानका-

विष्णुदास को ही स्वीकार किया जाता रहा। शास्त्री ने इस रचना की गणना उन्हीं की रचनाओं के साथ ही है।^{१४४} किन्तु बाद में गद्रेष्ठ हो जाने के कारण उन्होंने इसे विष्णुदास की शकारूपद रचनाओं की कोटि में स्थान दिया।^{१४५} इस रचना में निर्माण-काल सं० १७१६ दिया हुआ है।^{१४६} प्रसिद्ध विष्णुदास का काव्य-काल सं० १६२४-१६६८ के लगभग आता है। इस कृति को उन्हीं की रचना मानने से यह अत्यन्त वृद्धावस्था की रचना सिद्ध होती है। जो काव्य की अप्रौढता को देखते हुए संभव प्रतीत नहीं होता। अधिक संभावना इसी बात की है कि यह किसी इतर विष्णुदास की कृति है।

रचना : रुक्मिणीहरण—रुक्मिणीहरण की हस्तप्रति का आदि अक्ष खंडित है। कवि स्पष्टतया भागवत का आधार स्वीकार करता है।^{१४७} काव्य साधारण कोटि का है। अनुवाद भी सुन्दर नहीं है।

एक केशवदास का उल्लेख १६वीं शती में हो चुका है। उसी नाम का यह अन्य कवि १७वीं शती में उपलब्ध होता है। कवि ने केशवदास वैष्णव अपनी एक रचना का समय सं० १७३३ दिया है जिससे काल निर्णय में कोई कठिनाई प्रस्तुत नहीं होती।^{१४८}

रचना : मथुरामहिमा—इन केशवदास की कृष्णविषयक केवल एक ही रचना उपलब्ध होती है जो 'मथुरालीला' के नाम से प्रा० का० सुधा के तीसरे चौथे भाग में प्रकाशित हो चुकी है। शास्त्री ने 'वल्लभवेल' के रचयिता केशवदास वैष्णव का वर्णन कविचरित में किया है किन्तु उसमें इसका उल्लेख तक नहीं है।^{१४९} वे 'वल्लभवेल' के लिए 'एक मात्र मल्ल काव्य' का प्रयोग करते हैं जिससे स्पष्ट है कि वे मथुरालीला को उन्हीं केशवदास की कृति नहीं मानते। पर ऐसा भी नहीं है क्योंकि गु० ह० सकलित यादी में केशवदास की रचनाओं में 'मथुरालीला' का भी समावेश उन्होंने किया है।^{१५०} वस्तुतः गोकुलनाथ जी के शिष्य यही केशवदास दोनों काव्यों के रचयिता थे। वल्लभवेल में वल्लभाचार्य के वंश का वर्णन है अतएव वह कृष्ण-काव्य की श्रेणी में नहीं आती।

'मथुरालीला' का वास्तविक नाम 'मथुरामहिमा' है क्योंकि स्वयं कवि ने इसी नाम का अनेक स्थल पर व्यवहार किया है।^{१५१} संपादक ने मूल को ध्यान में देखे बिना ग्रंथ का नाम 'मथुरालीला' दे दिया जिसका कारण कदाचित् ग्रंथान्त में प्रयुक्त 'कृष्णलीला' शब्द है।^{१५२}

मथुरामहिमा—‘पूरणकथुं य आख्यान’ लिख कर कवि ने मथुरामहिमा को स्वतः एक आख्यान काव्य माना है। कड़वावद्ध इस रचना में यत्र यत्र रागों का निर्देश भी है।

भागवत को मूलाधार मानकर भी कवि ने स्वतंत्र रूप से रचना की है। फलतः अनेक प्रसंग ऐसे भी हैं जो भागवत में प्राप्त नहीं होते। विषय विस्तार की दृष्टि से कवि का निम्नलिखित कथन महत्वपूर्ण है—

‘. . . मथुरा महिमा श्री भगवान् ।

द्वारामति नी लीला जेह, श्री शुक विस्तारो कहे अह ।

प्राकृत महिमा बुध अनुसार । दास केशव कहे कर्णो विस्तार ।

मथुरामहिमा में इस प्रकार जरासंध और मुचकुंद वध तक की कथा समाविष्ट है। कवि ने विशेष विस्तार गोपी उद्धव के प्रसंग में किया है। इस स्थान पर षड्कलु वर्णन भी मिलता है। कवि की स्वाभाविक वृत्ति ब्रजगोपी-विरह के चित्रण की ओर है। राधा के वर्णन और कृष्ण के जीवन की उत्तरकालीन लीलाओं के चित्रण के कारण यह काव्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

१७वीं शती—ब्रजभाषा

इस शती में भी ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य के सृजन की परिस्थिति लगभग १६वीं शती के समानान्तर ही रही। उक्त बल्लभीय, राधावल्लभीय, गौडीय, निम्बार्क तथा हरिदासी में से प्रत्येक के अन्तर्गत कुछ न कुछ काव्य रचना उपलब्ध होती है। रीति-काव्य-धारा में अपेक्षाकृत अधिक काव्य-निर्माण हुआ। नीचे पूर्वनिर्धारित क्रम के अनुसार ही १७वीं शती के कृष्ण-काव्य का परिचय दिया गया है।

इस सम्प्रदाय में इस शती में जिन कवि का नाम प्रमुख रूप से सामने आता है

वह है रसखान। रसखान बिटुलनाथ के शिष्य थे और उनका

बल्लभ सम्प्रदाय काव्य-काल सं० १६७० के लगभग है। इनके अतिरिक्त

हरिरायजी (सं० १६४७-१७७२) तथा बिटुलनाथ के

अन्य शिष्य शोभाचंद द्वारा भी काव्य-रचना के प्रमाण मिलते हैं।

रसखान की रचनाएँ—रसखान की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं जो प्रकाशित हैं।

१. प्रेमवाटिका (रचनाकाल सं० १६७१)

२. सुजान रसखान

प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं जिनमें प्रेम की महिमा का वर्णन किया गया है। सुजान

रसखान में विभिन्न प्रकार के कुल १२९ पद्य हैं । रागरत्नाकर में भी रसखान के १३० पद्य संग्रहीत हैं ।^{१७३} इन पद्यों में कवि ने मुख्यतया राधा-कृष्ण की प्रीति तथा प्रणयलीलाओं का ही विशेष वर्णन किया है । कुछ छंदों में बालरूप का भी चित्रण मिलता है ।

हरिरायजी की रचनाएँ—इन्होंने रसिक, रसिकराय, हरिधन, हरिदास आदि कई नामों से काव्य रचना की ।^{१७४} संस्कृत में तो इनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं परन्तु ब्रजभाषा में कुछ स्फुट पद, कवित्त और धोल आदि ही उपलब्ध होते हैं जिनमें देव्यभाव तथा वल्लभ-यश वर्णन की प्रधानता है ।^{१७५} इन स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त एक छोटी सी प्रबन्धात्मक रचना 'दानलीला' भी प्राप्त हुई है । इसकी हस्तप्रति काँकरौली में है । दानलीला में ३६ दोहे हैं और प्रत्येक के अन्त में 'नागरि दान दै' जोड़ दिया गया है ।

शोभाचंद की रचना : भक्तिविधान—भक्तिविधान का रचनाकाल स० १६८१ दिया हुआ है । सारा ग्रंथ प्रश्नोत्तर के रूप में है । कुल ९३१ दोहे हैं । श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व, उनके अनेक नाम रूप, तन्त्र मन्त्र आदि से भक्ति की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है । उपामना-विधान, पूजा-प्रकार, भोग इत्यादि का भी विस्तार से निरूपण मिलता है साथ ही व्रत उपवास के नियम तथा प्रत्येक मास की साधना का पुष्टिमार्ग के अनुसार प्रतिपादन भी किया गया है । रचना अप्रकाशित है और हस्तप्रति विद्या-विभाग काँकरौली में है ।

इस सम्प्रदाय में, १७वीं शती में यद्यपि अनेक कवियों कान्हर, स्वामी, लाल-स्वामी, दामोदरदास, ध्रुवदास तथा हितविठ्ठल आदि की गणना की जाती है तथापि ध्रुवदास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं । अन्य कवियों में कान्हर राधावल्लभीय सम्प्रदाय स्वामी तथा हितविठ्ठल के केवल स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं जिनकी प्रामाणिकता के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । लालस्वामी तथा दामोदरदास के नाम से अनेक ग्रंथों का उल्लेख मिलता है परन्तु उपलब्ध उनमें से एक भी नहीं होते ।^{१७६} अतएव केवल ध्रुवदास की रचनाओं का परिचय यहाँ दिया गया है ।

ध्रुवदास की रचनाएँ—'राधावल्लभ-भक्तमाल' में ध्रुवदास के नाम से निम्न-लिखित पाँच रचनाएँ उल्लिखित हैं ।^{१७७}

- | | |
|-----------------|-------------------------|
| १. ब्यालीस लीला | ४. सिद्धान्त पद मांझ |
| २. पदावली | ५. शृंगाररहस्यमुक्तावली |
| ३. खिचरी उत्सव | |

व्यालीस लीला वस्तुतः व्यालीस रचनाओं का सकलन है किन्तु उसे एक ग्रंथ माना गया है।^{१७८} डॉ० रामकुमार वर्मा ने व्यालीस लीला का 'ध्रुवदास की बानी' के नाम से उल्लेख किया है तथा उसके अन्तर्गत आने वाली अनेक रचनाओं को अनेक 'विषय' समझा है। यही नहीं 'मिद्वान्तविचार' तथा 'भक्तनामावली' का जो व्यालीस लीला में ही सम्मिलित है पृथक् रूप से उल्लेख किया है।^{१७९}

राधावल्लभ-भक्तमाल में जिन पाँच रचनाओं का उल्लेख मिलता है उनमें से पहली को छोड़कर शेष चार के विषयों में नाम के अतिरिक्त और कुछ भी सूचना प्राप्त नहीं है। पहली रचना व्यालीस लीला की स० १८२५ की एक हस्तप्रति प्रयाग म्युनि-सिपल संग्रहालय में मिलती है।^{१८०} काँकरौली में भी एक प्रति है (ब० न० ८३-९) किन्तु उसमें केवल २४ लीलाएँ ही हैं। ध्रुवसर्वस्व नाम से 'व्यालीस लीला' में से निम्नलिखित २३ रचनाएँ रामकृष्ण वर्मा द्वारा प्रकाशित की जा चुकी हैं

- | | |
|-------------------|----------------------------|
| १. वृन्दावन सत | १३. नृत्यविलास |
| २. सिगार सत | १४. रगहुलाम |
| ३. रसरत्नावली | १५. मानरसलीला |
| ४. नेहमजरी | १६. रहमिलता |
| ५. रहस्यमजरी | १७. प्रेमलता |
| ६. मुखमजरी | १८. प्रेमावली |
| ७. रतिमंजरी | १९. भजन कुडली |
| ८. वनविहार | २०. बृहद्वामनपुराण की भाषा |
| ९. रंगविहार | २१. भक्तनामावली |
| १०. रसविहार | २२. मनमिगार |
| ११. आनन्ददशाविनोद | २३. भजनसत |
| १२. रगविनोद | |

इन २३ रचनाओं के अतिरिक्त 'व्यालीस लीला' की शेष १९ अप्रकाशित रचनाओं के नाम नीचे दिये जाते हैं -

- | | |
|--------------|---------------|
| १. हितसिगार | ६. अनुरागलता |
| २. रसानंद | ७. आनन्दलता |
| ३. ब्रजलीला | ८. भजनाष्टक |
| ४. दानविनोद | ९. आनन्दाष्टक |
| ५. रसहीरावली | १०. वैदकलीला |

११ सिद्धान्तविचार	१६. मनमिक्षा
१२ जुगलध्यान	१७ प्रीतिचौवनी
१३ ख्यालहुलास	१८ रसमुक्तावली
१४ प्रिया जु की नामावली	१९ मङ्गलसभामिगार
१५. मुखमजरी	

नामकरण की दृष्टि से वर्गीकृत करने पर इन रचनाओं में ६ अक्षरी रसमुक्ता, रसहीरा, रसरत्न, प्रेम, प्रियाजु की नाम, भक्तनाम, ५ लोली रसानन्द, मान, दान, व्रज, वद्यकजान, ४ मजरी नेह, रति, रहस्य, सुख, ४ लता रहस्य, आनन्द, प्रेम, अनुराग ३ विहार वन, रग, रस, ३ सिंगार सति, हित, मङ्गलसभा, ३ सत वृंदावन, भजन, सिंगार, २ विनोद रग, अनन्ददसा, २ हुलास रग, ख्याल तथा २ अष्टक भजन, आनन्द मिलने हैं। वष ८ रचनाएँ निर्तविलास, प्रीति चौवनी, मनमिक्षा, बृहद्वासन पुराणभाषा, सिद्धान्त विचार जीवदशा, जुगलध्यान तथा भजन कुंडली एकाकी हैं।

प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं की इस समस्त सूची में कई ऐसी रचनाएँ सम्मिलित हैं जो प्रस्तुत निबन्ध की सीमा में नहीं आती। 'प्रियाजु की नामावली' काव्य-कृति न होकर साधारण नामावली मात्र है। 'सिद्धान्त विचार' भी गद्य ग्रंथ है। इसी प्रकार भक्तनामावली में भी भक्तमाल की तरह भक्तों का परिचय दिया गया है। 'वैदकलीला' कृष्ण-काव्य से सीधे सम्बन्ध नहीं है। 'बृहद्वासनपुराण की भाषा' का शीर्षक से ही अनुवाद ग्रंथ होना सिद्ध है। अतएव इनके अतिरिक्त शेष कृतियों का परिचय संक्षेप में आगे दिया जाता है।

रसमुक्तावली—आदि में गुरुवन्दना से युक्त १९० दोहा चौपाइयों की इन रचना का मुख्य विषय 'मखीभाव' का प्रदर्शन है। स्नानकुंज, सिंगारकुंज, भोजनकुंज आदि विविध कुंज-भवनों में ललितादिक सखियाँ राधाकृष्ण की सेवा में रह रहकर उनका विहार देखती हैं।

रसहोरावली—इस रचना की विशेषता इसका षड्ऋतु वर्णन है। प्रत्येक ऋतु में राधाकृष्ण का विलास अंकित किया गया है। रचना १६३ दोहा चौपाइयों में समाप्त हुई है।

रसरत्नावली—५० दोहों की इस कृति की मूल वर्ण्यवस्तु कवि के अनुसार 'रसिकरसिकनी केलि' ही है। प्रसंगान्तर में नखशिख आदि का भी वर्णन मिल जाता है।

प्रेमावली—इसके अन्तर्गत राधाकृष्ण का “प्रेमरस” विपरीत वेश धारण तथा मभोग शृंगार का वर्णन है । एक कुडलिया को छोड़कर शेष सारी रचना दोहो में है । कुल छंद सख्या १२७ है ।

रसानंद लीला—कवि ने इस ग्रंथ का रचनाकाल ‘सवत सौषोडश पंचासी’ सं० १६८५ दिया है । प्रारंभ में की गई श्री हितहरिवंश की वदना तथा ‘मोपै है अबहो मति थोरी’ से व्यञ्जित होता है कि कदाचित् यह कवि की प्रारंभिक काल की रचना है । वस्तु के रूप में वृंदावन, नर्त्ताशय, रतिविलास, विविध व्यजन तथा पुष्प-शृंगार का वर्णन है । सारी रचना में १८६ दोहा चौपाइयाँ हैं ।

मानलीला—काकगोली की प्रति में इसकी पुष्पिका में इसका नाम ‘मान विनोदलीला’ दिया है किन्तु प्रयागवाली प्रति में ‘मानलीला’ ही लिखा है । ध्रुवसर्वस्व में इसका प्रकाशन ‘मानरमलीला’ के नाम से हुआ है । इसमें अपने ही प्रतिविम्ब में अन्य स्त्री की धारणा हो जाने से राधा मान करती है । वाद में सखी की मध्यस्थता द्वारा उसका परिहार हो जाता है । छंद सख्या ३८ है जिसमें दोहा सोरठा अरिल्ल तीनों प्रयुक्त हैं ।

दानविनोदलीला—इस नाम का संकेत स्वयं कवि ने पहले ही दोहे में ‘देखें लाडिली लाल की लीला दान विनोद’ लिखकर कर दिया है । विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है यद्यपि सारी घटना एक नवीन रूप से कल्पित की गई है । रचना छोटी है और केवल २२ दोहो में ही समाप्त है ।

ब्रजलीला—इसमें राधाकृष्ण के प्रथम परिचय, तज्जन्य प्रीति तथा उसके विकास की विविध स्थितियाँ, विछोह, मूर्छा तथा ललिता की सहायता से स्त्रीवेष धारण करके मिलन, प्राप्ति आदि का वर्णन है । समस्त रचना दोहा चौपाइयो में है जिनकी सख्या १९२ है ।

नेहमंजरी—१७० दोहा चौपाइयो में लिखित प्रारंभिक अप्रौढ़कृति जैसी इस रचना में वृंदावन, कुसुमशृंगार, राधाकृष्ण, रति तथा उसके दर्शन से गोपियों के उत्साह का वर्णन है ।

रतिमंजरी—इस रचना में अभयार्पित रूप से मभोग शृंगार का वर्णन प्राप्त होता है । शैली की दृष्टि से नेहमंजरी के ही समान है और छंद सख्या ८२ है ।

रहस्यमंजरी—यह विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से नेहमंजरी के समान है और छंद सख्या १०४ है ।

सुखमंजरी—‘अद्भुत वैदक मधुररस दोहा भये पचीस’ से प्रकट है कि २५ दोहों की इस रचना का विषय वैद्यक लीला है। कामज्वर से पीड़ित कृष्ण को राधा व्याधिमुक्त करती है।

रहसिलता—‘ध्रुवसर्वस्व’ में इसको ‘रहसिलीला’ सजा दी गई है। इसमें मुख्यतया रासक्रीड़ा का वर्णन है। यद्यपि कवि ने रचना की सीमा ‘दोहा रहसिलतानि के अष्ट उपर पचास’ लिखकर निर्धारित की है तथापि यह कथन यथार्थ नहीं है। रचना में दोहे के अतिरिक्त चन्द्रायण छंद भी प्रयुक्त है तथा अन्त में कवि की ‘भजन कुडली’ नामक रचना की १९वीं कुडली भी सम्मिलित करली गई है।

आनन्दलता—इसमें राधाकृष्ण की केलि, क्रीड़ा, यमुना, कुंज, आदि भाव तथा स्थल सभी में आनन्द का अस्तित्व प्रदर्शित किया गया है। ‘दोहा तीसरे बीस कहे आनंदलता अनग’ से स्पष्ट है कि इस रचना में ५० दोहे हैं। कोंकरोली की प्रति में यह उपलब्ध नहीं है।

प्रेमलता—इस रचना में ६८ दोहा चौपाइयों में प्रेम की प्रशंसा की गई है तथा उसके सूक्ष्म स्थूल भेद का भी वर्णन है। बीच बीच में कुंजविहार, सखी-संग और लाल-लाडिली की प्रीति का दिग्दर्शन भी है।

अनुरागलता—इस रचना में भी प्रेमलता की तरह राधाकृष्ण के अनुराग का वर्णन है। गैली की दृष्टि से भी कोई नवीनता नहीं है।

वनविहार—इसमें ५५ दोहे में वन का, वसंत का तथा दूल्ह-दुल्हिनी राधा-कृष्ण के विवाह एवं विलास का वर्णन है।

रंगविहार—सखी द्वारा आरसी में राधा का रूप दिखाये जाने पर कृष्ण का विकल हो जाना तदुपरान्त मिलन, सभोग और नखशिख आदि इसमें ५६ दोहों में वर्णित है।

रसविहार—२२ दोहों की इस संक्षिप्त रचना का विषय राधाकृष्ण का सखियों समेत यमुनाजल-विहार है।

मनिसिंगार—इस रचना की सीमा ‘दोहा कहि सिंगार मनि साठ सु चौतिस आठ’ कह कर कवि द्वारा निर्धारित की गई है जिसके अनुसार इसमें १०२ दोहे होना चाहिये परन्तु वस्तुतः ९२ दोहे ही उपलब्ध हैं। इस दृष्टि से चौतिस के स्थान पर ‘चौबिस’ पाठ की संभावना अधिक प्रतीत होती है। यही नहीं दोहे के अति-

रिक्त अग्निल्ल छद भी इसमें प्रयुक्त है जिसकी कवि ने दोहों में ही गणना कर ली है ।
वर्ण्य वस्तु में राधाकृष्ण को नायक नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा उनके
श्रृंगार एवं नखशिख का प्रचुर वर्णन है ।

हितसिगार—निकुंज बिलाम, शलरंज खेल, नखशिख तथा कोककला का वर्णन
कवि ने इस रचना के 'अस्मी दोह दोहा कवित' में प्रस्तुत किया है ।

मंडलमभासिगार—ध्रुवदास की यह रचना अन्य रचनाओं की अपेक्षा
विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर राधा
की अगणित शक्तियों के नाम गिनाने का प्रयास किया है । मंडलाकार कुंजों की पक्ति
में बने चोखट द्वारों वाले गभा मंडप के मध्य स्थित युगल रूप का विशद वर्णन किया
गया है । प्रत्येक कुंज का भिन्न नाम है और उसका भिन्न प्रयोजन । इन सबमें विहार
करने के उपरान्त समस्त सखी समूह के साथ राधाकृष्ण का रास होना है तदुपरान्त
जलक्रीडा । इसका रचना काल सं० १६८१ दिया हुआ है और इसमें दोहा, सवैया,
कवित आदि कुल २२१ छंद हैं ।

वृंदावन सत—रचना का विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह रचना सं० १६८६
में पूर्ण हुई ।^{१८९} 'यह प्रबन्ध पूरन भयो' लिख कर कवि इसे प्रबन्ध कहना चाहता है
परन्तु १२२ दोहों की इस रचना में वस्तुतः प्रबन्धात्मकता का अभाव है । केवल
वृंदावन के लता कुंजों तथा उसकी महिमा का वर्णन किया गया है ।

भजनसत—भजनसत में ध्रुवदास ने भक्ति के स्वरूप की व्याख्या, विषयो की
निंदा, ज्ञान के पंथ का तिरस्कार तथा युगलरूप के प्रेम की चर्चा की है । वस्तु
की दृष्टि से अन्य रचनाओं से पृथक् होने के कारण इसका स्वतंत्र महत्त्व है । दोहों
की संख्या ११३ है ।

सिगारसत—भजनसत की तरह यह भी महत्त्वपूर्ण रचना है यद्यपि इसका
महत्त्व दूसरी दिशा में है । रचना के स्वरूप को स्पष्टतया व्यक्त करने के लिये कवि
के शब्द ही उद्धृत कर देना उपयुक्त होगा :

बांधी ध्रुव गुन शृंखला प्रथम चालीस रु तीन ।
दुतिय चालीसर तीसरी द्वे पर चालीस कीन ॥ ३ ॥
प्रथम शृंखला मांहि कछु कह्यो लाडिली रूप ।
निरखिलाल सखि रहे छवि सो छवि अतिहि अनूप ॥ ४ ॥
दुतिय शृंखला सुनतही श्रवणनि अति सुख होइ ।
प्रेम रतन गुन रूप सों मानों राखे गोइ ॥ ५ ॥

अब सुनि तीजी शृङ्खला रति विलास आनद ।
 तिहि रसमादक मत रहे श्री वृंदावन चंद ॥ ९७ ॥
 भये कवित सिंगार के इकसत अरु पच्चीस ।
 दोहनि मिलि सब ठीक हो इकसत दस चालीस ॥ १५० ॥

इस प्रकार इसका निर्माण विशेष रूप से कवित सत्रियों में हुआ है । विंगण की दृष्टि से विशेष नवीनता नहीं है ।

रंगविनोद—‘दोहा रंगविनोद के रचि कीन्हें चाण्डीम’ के अन्तर्गत ध्रुवदास ने अपनी धारणा के अनुसार, नवरस, ज्योतिर तथा राधा-कृष्ण विहार का वर्णन किया है ।

आनन्ददसाविनोद—इस रचना में नायिका-भेद के साथ स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के ‘मदनरस’ का चित्रण है । छंद मंख्या ५७ है जिसमें दोनों के अतिरिक्त ३ कवित भी सम्मिलित हैं ।

रंगहुलास—५२ दोहों की इस कृति का विषय वही नखशिख, वनविहार तथा रति वर्णन है । आदि अन्तहीन इस रचना का नाम पुष्पिका से ही ज्ञात होता है ।

ख्यालहुलास—यह प्रयागवासी ‘ब्यालीसलीला’ की हस्तप्रति की अन्तिम ‘लीला’ है और काँकरोली वाली प्रति में अप्राप्य है । इस की रचना किसी निश्चित क्रम के अनुसार नहीं हुई है इसे कवि ‘दोहा ख्याल हुलास के तहाँ प्रबन्ध कछु नाहि । आगे पाछे है भये जो आए उर माहि ।’ लिखकर स्वीकार करता है । विषय की दृष्टि से इसमें युगलप्रीति उपदेश, चेतावनी आदि की प्रधानता है । समस्त दोहों की संख्या ६० है ।

भजनाष्टक—नाम से ही आकार प्रकार स्पष्ट है । फलश्रुति के नवे दोहों में इस अष्टक को ‘हृद्रोग’ का नाशक कहा गया है क्योंकि वर्ण्यवस्तु के अनुसार पंचवाण के वाण फिर कर उसी को लगे हैं जिससे वह जर्जर होकर नतशील हो चुका है ।

आनन्दाष्टक—यह भी भजनाष्टक की तरह ध्रुवदास की लघुतम रचना है । जिसमें वृंदावनरस तथा राधाकृष्ण की प्रीति की वखान है । इसमें भी फलश्रुति के दोहों समेत ९ दोहों हैं । इसके पाठ का फल त्रिगुण अधिकार का नाश कहा गया है ।

निर्लेखिलास—नृत्य का वातावरण उपस्थित करने के कवि ने इस रचना के अन्तर्गत विभिन्न गतियों में दोने वाले राधा रास का चित्रण किया है। दोहा चौपाई के साथ कुंडलिया का भी प्रयोग है। सारी रचना ४६ छंदों में समाप्त है।

प्रीतिचौवनो—इस कृति के निर्माण का उद्देश्य 'वृंदावन रसरीति' गायज्ञान के निमित्त पाठक के हृदय में 'प्रीति' प्रस्फुटित करना है जिसके लिए प्रेम का मोदा-हरण नैदानिक निरूपण ५४ दोहों में किया गया है। अन्त के दो अतिरिक्त दोहों में फलधुति का कथन है।

मनसिखा—भ्रुवदास ने इस रचना के ६८ दोहों में गन को नाना रूप से विषय वासना की निंदा करते हुए वृंदावनरस में रमण तथा राधा-वल्लभलाल के भजन करने का उपदेश दिया है।

जीवदिसा—'दिशा' से कदाचित् यहाँ 'दशा' का तात्पर्य है। ३९ दोहा चौपाई कवित्त में कवि ने कृष्ण-भक्ति तथा नामस्मरण की महिमा का गान किया है और योग, ज्ञान तथा मोक्ष को अनावश्यक ठहराया है। यह रचना प्रयागवाली प्रति में ही है।

जुगलध्यान—जुगलध्यान की कोंकरीली की प्रति में अनुपलब्ध है। जीवदिसा की तरह यह भी प्रयाग की हस्तप्रति में ही प्राप्त होती है। इसमें राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति का रूप-वर्णन है। मेहदी, आभूषण, नखशिख तथा शृंगार आदि विषयों पर 'अष्टदस दोहा' 'वरने' गए हैं।

भजन कुंडली—इस रचना में १२ दोहे तथा १० कुंडलियाँ सकलित हैं। सारी कृति में प्रेमभक्ति का महत्व, वृंदावन की प्रशंसा और युगलरूप का यश वर्णित है। प्रेमभक्ति के आगे नवधाभक्ति को भी अरुचिकर माना गया है।

इस शती में इस सम्प्रदाय के दो प्रमुख कवि उपलब्ध होते हैं।

१. वल्लभ रसिक

गौड़ीय सम्प्रदाय २. माधवदास

वल्लभरसिक षड्गोस्वामियों में से गोस्वामी रघुनाथ भट्ट के शिष्य गदाधर भट्ट के पुत्र थे।^{१८९} गदाधर भट्ट का समय नाभाजी के प्रमाण से १६वीं शती निश्चित होने के कारण स्वभावतः इनका कविताकाल १७वीं शती के अन्तर्गत आ जाता है।

माधवदास इस सम्प्रदाय में 'माधुरी जी' के नाम से विख्यात हैं। उनके वास्तविक नाम का ज्ञान विद्या विभाग कॉकरोली में उपलब्ध उनकी 'माधुरियो' की एक हस्तप्रति (बंध सं० ७४) से होता है। इनकी पुष्पिकाओं में 'श्री माधवदास विरचिता' अभिन्न रूप से प्राप्त होता है। वशीवट माधुरी में 'माधवदास कपूर श्री वृंदावन बामी रचित' दिया है जिससे ज्ञात होता है कि यह जाति के कपूर खत्री थे।

आगे इन दोनों कवियों की रचनाओं का परिचय दिया जाता है।

वल्लभरसिक की वाणी—वल्लभरसिक का सग्रहीत-काव्य बाबा कृष्णदास द्वारा 'वाणी वल्लभरसिक जी की' के नाम से प्रकाशित किया जा चुका है। इसकी भूमिका में इसे 'पद सग्रह' कहा गया है।^{१६१} परन्तु वस्तुतः यह एक काव्य सग्रह है क्योंकि पदों के अतिरिक्त इसमें कई प्रवन्धात्मक ऐसे अंश भी उपलब्ध होते हैं जो पदों से भिन्न शैली में लिखित हैं। इन्हें पदों के अन्तर्गत परिगणित कर लेना उचित नहीं। ऐसी छोटी-छोटी रचनाओं का शीर्षक सहित संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

सांझी रागगोरी—२१८ पक्तियों की इस सम्पूर्ण रचना में ललिता विद्याखादि सखियों से सेवित राधाकृष्ण के महल निवास, भोग-विलास, नखशिख, कुसुम-शृंगार, नृत्य गान तथा रति-रमण का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

होरी खेल—इस रचना के ५९ दोहों में कवि ने साजवाज से होली का वर्णन किया है। राधाकृष्ण आपस में तथा उनकी 'जोरी' के साथ सखियाँ फाग खेलती हैं।

उक्त दोनों रचनाओं के अतिरिक्त निम्नांकित कई रचनाएँ मात्र शीर्षक से दी गई हैं जिनका विषय नाम से विदित हो जाता है।

१. रास की माझ
२. दिवारी का माझ
३. गुलाबकुज की माझ
४. जलक्रीड़ा की माझ
५. वर्षा की माझ
६. वर्षा के बंगला पर की माझ
७. सदा की माझ

सातवीं रचना इन सब में बड़ी है और उसकी भाषा पंजाबी मिश्रित ब्रजभाषा है।

इनके बाद ६७ दोहे एक स्थल पर संकलित हैं जिनके विषय विभिन्न हैं। इन्हीं के साथ २२ कवित्त सवैया भी हैं जिनमें युगल मूर्ति की विविध शृंगार चेष्टाओं का वर्णन है।

मुरनोल्लास नाम से २७ दोहा चौपाइयो की कुज-रति विषयक रचना स्वतन्त्र कृति जैसी लगती है इसमें आदि अंत तथा नाम का संकेत नहीं मिलता ।

‘बारह बाट अठारह पैडे’ में अवश्य कवि ने नाम का उल्लेख स्पष्टतया कर दिया है । यथा—

जब अंखियन अंखियां लखियां तौ बारह बाट अठारह पैडे
पैरी करो एक सै आठ । बलभरसिकन को जब पाठे ॥१०८॥

शीर्षक से रचना का विषय स्पष्ट नहीं होता । इस रचना में नेत्रों की विशेष महत्ता वर्णित है ।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त ५० पद प्राप्त होते हैं जिनमें लगभग इन्हीं रचनाओं के विषयों का पुनरावर्तन है ।

माधवदास की रचनाएँ—इन्हें द्वारा विगूँचित ‘ग्रंथ समूह’ में निम्नलिखित आठ रचनाएँ मिलती हैं ।^{१८४}

- | | |
|-----------------------|----------------------|
| १. उत्कंठामाधुरी | ५. दानमाधुरी |
| २. वंशीवटमाधुरी | ६. मानमाधुरी |
| ३. केलिमाधुरी | ७. होरीमाधुरी |
| ४. वृंदावनविहारमाधुरी | ८. प्रिया जू की बधाई |

ये सभी ‘श्री माधुरी वाणी’ के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं । काँकरौली में जो प्रति है उसमें तीसरी, सातवीं और आठवी रचना उपलब्ध नहीं है । ‘होरी माधुरी’ नाम कल्पित प्रतीत होता है क्योंकि होली विषयक इन छे पदों के अन्तःसाक्ष्य से यह प्रमाणित नहीं होता । संभवतया संपादक ने अन्य रचनाओं के सादृश्य के आधार पर इसकी कल्पना कर ली हो । ‘प्रिया जू की बधाई’ में राधा के जन्म से सम्बन्धित केवल दो पद ही प्राप्त होते हैं अतएव इसे भी स्वतन्त्र रचना मानना श्रासक है । पहली छे रचनाओं का परिचय क्रम से संक्षेप में आगे दिया जाता है इन सभी रचनाओं के आदि में कृष्ण रूप चैतन्य महाप्रभु की वन्दना की गई है ।

उत्कंठामाधुरी—आरम्भिक अंश में ‘मिलन उत्कंठा’ तथा विरह वेदना पर विशेष बल देते हुए इसमें राधाकृष्ण की कुंजकेलि, होरी खेलि, तथा उनके रूप शृंगार का वर्णन किया गया है ।

वंशीवटमाधुरी—इस ‘माधुरी’ के अन्तर्गत वृंदावन की निकुंज शोभा विविध वर्ण की वनस्पतियों, जलकीड़ा, भोजन, सेजमुख, नौकाविहार तथा रास

आदि का विगद आलेखन है । रचना-काल काँकरौली की प्रति के अनुसार स० १६९९ है ।

केलिमाधुरी—कवि ने इसका रचनाकाल स० १६८७ अन्तिम दोहे

‘वत सोलह सैं असी सात अधिक हियधार ।

केलिमाधुरी छवि लिखी श्रावण वदि बुधवार ॥१२९॥

में लिख दिया है । रचना का विषय राधाकृष्ण का केलि-विलास है ।

वृंदावनमाधुरी—इस रचना में वृंदावन के विनायक कुंज, उनकी प्राकृतिक गोभा तथा उनमें राधाकृष्ण की कामक्रीड़ा का चित्रण है । काँकरौली की प्रति में इसका निर्माण-काल स० १६९९ दिया हुआ है ।

दानमाधुरी—इसमें कृष्ण राधा ललितादि सखियों से दान माँगते हैं । वाद-विवाद की चरम परिणति ‘दम्पति मुख’ में होती है ।

मानमाधुरी—इस रचना का विषय कृष्ण के शरीर में आत्मप्रतिविम्ब देखकर राधा का मान करना तदुपगन्त ललिता की महायत्ना से उसका परिहार होना है । इन सारी रचनाओं की छंद सख्या का परिचय श्री माधुरी वाणी की भूमिका में दिया हुआ है जो यहाँ उद्धृत किया जाता है ।^{१८५}

‘उत्कठा माधुरी में ३ कवित्त २०३ दोहा । वशीवटमाधुरी में ३६ कवित्त ५ सवैया १४ रोला ३२ चौपाई १ सोरठा २२० दोहा । वृंदावन माधुरी में १२ कवित्त २ सवैया ३१ चौपाई ३ सोरठा ४५ दोहा । केलिमाधुरी में ६ कवित्त ९२ चौपाई १ छंद १ सवैया ११ सोरठा १ छप्पे १५ दोहा ६ रोला । दानमाधुरी में १७ कवित्त ३ सोरठा १६ दोहा । मानमाधुरी में १६ कवित्त १५ सवैया ६ सोरठा ९ दोहा ।

निश्चित रूप से इस शती में निम्बार्क सम्प्रदाय के दो कवि ‘रूपरसिक देवजी’ तथा ‘तत्त्ववेत्ता जी’ ही प्राप्त होते हैं । ये दोनों ही १६वीं शती के प्रसंग में उल्लिखित हरिव्यासदेव के शिष्य थे ।^{१८६} इस दृष्टि से इनका अस्तित्व

निम्बार्क सम्प्रदाय १७वीं शती में असादिग्व है । इनके अतिरिक्त वृंदावनदेव जी तथा गोविन्ददेव जी के नाम भी विचारणीय हैं ।

एक ओर वृंदावनदेव का अस्तित्व स० १७५६ में माना गया है और उन्हें हरिव्यासदेव के शिष्य परशुरामदेव का प्रशिष्य कहा गया है ।^{१८७} दूसरी ओर उनके शिष्य गोविन्ददेव के लिये लिखा गया है कि ‘इनका कविता-

काल सवत् १६७० के लगभग समझना चाहिये ।^{१८८} यह स्थिति स्पष्टतया असम्भव है । वास्तविक बात यह है कि इन दोनों में से किसी का भी समय निश्चित नहीं है अतएव ऐसी अनिश्चित दशा में इनको १७वीं शती के अन्तर्गत न स्वीकार करना ही समीचीन प्रतीत होता है । नीचे पहले दोनों कवियों की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है ।

रूपरसिक देव जी की रचनाएँ—इनकी तीन रचनाओं का परिचय मिलता है ।^{१८९}

१. बृहदोत्सव मणिमाल
२. हरिव्यासयशामृत
३. नित्यविहार पदावली

उनमें से पहली और तीसरी अभी अप्रकाशित हैं । निम्बार्कमाधुरी में केवल आरम्भ की दो रचनाओं से उद्धरण दिये गये हैं । उसमें नित्यविहार पदावली का कोई उद्धरण नहीं मिलता ।

बृहदोत्सव मणिमाल—इसमें कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारों का भी समावेश है किन्तु राधाकृष्ण के जन्म, मंगल बधाई, से लेकर नित्य वसंत, होरी, झूला प्रभृति समस्त उत्सव व्यवस्थित एवं विस्तृत रूप से वर्णित हैं । इस विशाल रचना की पद संख्या १९९४ है ।^{१९०}

हरिव्यासयशामृत—इसका प्रधान विषय स्वगुरु महिमा है परन्तु कृष्ण-भक्ति के स्वरूप पर भी पर्याप्त पद, दांहे तथा चौपाइयाँ मिलती हैं ।

नित्यविहार पदावली—यह केवल १२० पदों की संग्रहीत एक छोटी वाणी है । इसमें केवल शुद्ध नित्यविहार रस के पद वर्णित हैं । गोकुल लीला का सर्वथा अभाव है ।^{१९१}

तत्त्ववेत्ता जी की वाणी—इनकी कोई प्रबन्धात्मक रचना तो उपलब्ध नहीं होती किन्तु हस्तलिखित रूप में छप्पय, छंदों का एक संग्रह अजमेर में महन्त श्री हरि-शरण जी के पास अवश्य प्राप्त हुआ है ।^{१९२} इसमें से ५२ छप्पय निम्बार्क माधुरी में उद्धृत हैं । ये सभी एक प्रकार की शैली में रचित हैं । 'कृष्ण वसुदेव कुमारा' को विराट रूप में प्रस्तुत किया गया है यही इनकी मुख्य विशेषता है ।

हरिदासी सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा को देखने से स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि १७वीं शती में इस सम्प्रदाय के तीन कवि सरसदेव जी, नरहरिदेव जी तथा

रसिकदेव जी आते हैं।^{१९३} इनके अतिरिक्त विहारिनिदेव के शिष्य नागरीदासजी भी गणनीय हैं। इन चारों कवियों की वाणी दृढ़ी सम्प्रदाय हरिदासी सम्प्रदाय के अष्टाचार्यों की वाणी में गिनी जाती है। काल-क्रम की दृष्टि से इनका स्थान सरसदेवजी (स० १६११—८३) से भी पहले आता है क्योंकि इनका समय स० १६०० से १६७० माना जाता है।^{१९४} एक प्रकार से इनका काव्यकाल १६वीं तथा १७वीं शती ईसवी का सधिकाल है। नरहरिदेव के शिष्य रसिकदेव भी इसी शती के अन्तर्गत आ जाते हैं। उनका निकुञ्ज प्राप्तिकाल स० १७५८ दिया हुआ है।^{१९५} इसी क्रम से नीचे इन कवियों की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

नागरीदास की वाणी—इनकी सौ पदों की वाणी प्राप्त है।^{१९६} यह अप्रकाशित है। इसमें से ५० पद तथा सबैये निम्बार्कमाधुरी में उद्धृत हैं। ये पद मुख्यतया राधाकृष्ण के वनविहार, जलविहार तथा हिडोला आदि विषयों से सम्बद्ध हैं। 'नवल चौबोला', 'सरस चौबोला' जैसे पदों में एक विशेषण का निर्वह आदि से अत तक किया गया है और सारी वस्तु उसी के अनुसार निरूपित है।

सरसदेव की वाणी—इनकी वाणी के ५१ कवित्त तथा पद निम्बार्कमाधुरी में प्रकाशित रूप में प्राप्त होते हैं। कवित्तों का विषय उपदेश तथा पदों का युगल रूप राधाकृष्ण की विविध शृंगार क्रीड़ाएँ हैं। कुजविलास, जलविहार तथा झूला आदि विषयों के भी पद हैं।

नरहरिदेव की वाणी—इनके फुटकर पद ही प्राप्त होते हैं जिनमें से ७ पद निम्बार्कमाधुरी में प्रकाशित हैं। इनका विषय राधाकृष्ण का शृंगार तथा सुरतविहार आदि है।

पीताम्बरदेव की रचनाएँ—इनके द्वारा निर्मित रचनाओं का नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है।^{१९७}

- | | |
|--------------------|----------------------|
| १. रस के पद | ४. सिद्धान्त की साखी |
| २. सिंगार के पद | ५. सिंगार की साखी |
| ३. केलिमाल की टीका | |

इनमें स्पष्टतया पदों और दोहों की प्रधानता है। विषय की दृष्टि से पदों में गुरुवदना, राधाकृष्ण-प्रीति-वर्णन तथा शृंगार एवं विहार का चित्रण है। गौडीय कवि वल्लभरसिक की शैली में लिखित एक ६४ पक्तियों की 'माझ' भी मिलती है जिसमें पंजाबी का पुट है इसका विषय भी शृंगार, नखशिख तथा विहार वर्णन है।

रसिक देव की रचनाएँ—इनके द्वारा विचरित ११ ग्रंथों का उल्लेख मिलता है।^{१९८}

- | | |
|------------------------|----------------|
| १. भक्त सिद्धान्तमणि | ७. रससार |
| २. पूजाविलास | ८. गुरुभगल यश |
| ३. सिद्धान्त के पद | ९. बाललीला |
| ४. रस के पद | १०. ध्यानलीला |
| ५. रससिद्धान्त के साखी | ११. वाराहसहिता |
| ६. कुंजकौतुक | |

इन रचनाओं के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है। निम्बार्कमाधुरी में रसिक देव के १० पद, ४ साखी तथा 'युगलध्यान' के ८३ दोहे उद्धृत हैं। 'वाराहसहिता' नामक रचना प्रस्तुत विषय की सीमा से बाहर प्रतीत होती है।

ऐसे कवियों में इस शती में सेनापति, बिहारी, मतिराम तथा देव के नाम प्रमुख हैं। इनमें से बिहारी और देव को निश्चिन्त रूप से सम्प्रदाय मुक्त कवि नहीं कहा जा सकता। निम्बार्कमाधुरी में दोनों को निम्बार्क सम्प्रदाय के

स्वतन्त्र वर्ग के कवि अन्तर्गत माना गया है।^{१९९} सेनापति (जन्म सं० १६४६) को टट्टी सम्प्रदाय का वैष्णव कहा गया है।^{२००} यो सेनापति

रामोपासक प्रतीत होते हैं जिसके प्रमाण उनकी रचना में ही उपलब्ध हो जाते हैं। ब्रजमाधुरीसार के अनुसार बिहारी और देव दोनों ही राधावल्लभीय अथवा 'हितकुल' के कवि ठहरते हैं।^{२०१} डॉ० नगेन्द्र देव के गुरु को विग्वसनीय रूप से राधा-वल्लभीय न मानकर उसकी सभावना मात्र स्वीकार करते हैं।^{२०२} ऐसी अनिश्चित स्थिति में इन कवियों की रचनाओं में साम्प्रदायिक तत्व के अभाव तथा रीति-परम्परा की प्रधानता के कारण इनको स्वतन्त्र वर्ग में रखना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

सेनापति की रचना : कवित्तरत्नाकर—सेनापति की दो रचनाएँ 'कवित्तरत्नाकर' तथा 'काव्यकल्पद्रुम' कही जाती हैं जिनमें से दूसरी अप्राप्य है।^{२०३} कवित्तरत्नाकर की चतुर्थ तरंग प्रस्तुत विषय की सीमा के अन्तर्गत नहीं आती। यह कृति प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है।

बिहारी की रचना : सतसई—सतसई के प्रधान आराध्य राधाकृष्ण हैं इसमें सदेह नहीं परन्तु उसमें अनेक दोहे ऐसे भी हैं जिनका कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है। बिहारी सतसई काव्य-कला की दृष्टि से ब्रजभाषा की अमूल्य निधि है।

मतिराम की रचनाएँ : रसरज, ललितललाम. सतसई—मतिराम के ग्रंथों में 'रसरज' और 'ललितललाम' प्रमुख हैं। रसरज में शृंगार रस को 'रसरज' मानकर

शास्त्रीय पद्धति से रस एवं नायिका-भेद का निरूपण हैं । ललितललाम अलंकार ग्रंथ है । दोनों रचनाओं के अधिकतर उदाहरण कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत आते हैं । सतसई आद्योपान्त दोहो में रची गयी एक शृंगारिक रचना है ।

देव की रचनाएँ : भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास—देव के काव्य-काल का प्रारंभिक अंश ही इस शती में आता है क्योंकि उनका जन्म स० १७३० में हुआ था । फिर भी १७वीं शती ई० के अन्त (स० १७५७) के पहले उनकी तीन रचनाएँ भावविलास, अष्टयाम तथा भवानीविलास निर्मित हो चुकी थी^{१०४} अतएव प्रस्तुत अध्ययन में उनकी अन्य अनेक रचनाओं को छोड़कर केवल इन्हीं तीन को स्वीकार किया गया है । यह रचनाएँ पूर्णतया रीति-परम्परा के अनुकूल रची गयी हैं । उदाहरण प्रायः कृष्ण से सम्बद्ध हैं ।

पादटिप्पणियाँ

१. अपने इतिहास में तो नहीं किन्तु फार्बस गुजराती सभा के त्रैमासिक में छपे एक लेख में सुशी ने भयण का परिचय दिया है। सं० १९८४, पृ० ३२५:२६
२. क. फार्बस गुजराती सभा त्रैमासिक, पुस्तक १ खंड ० ई० १९३७, जनवरी-मार्च।
ख. G L Part II Chap. 1. Old Gujarat, page 91.
३. क. च, भाग १, पृ० ५८
४. वही, पृ० ६०
५. वही, पृ० ६१

६. क. “नरसिंह अने भालण कईक अंशे समकालीन छे भालणनो पूर्वकाल ते नरसिंहनो उत्तरकाल हतो . . . आथी भालण नो समय लांबा मा लांबो सं० १४९० थी सं० १५७० सुधी भूकी शकाये।”

भालण, पृ० ३

- ख. “आथी भालण सं० १५४५:४६ मां मरण पाव्यो हतो अेम आपणे अनुमान करी शकिये”

भालण उद्धव अने भीम, पृ० ६३८

७. “भालणनो कादंबरी मां प्राप्त थती मध्यकालीन गुजराती नो ३जी भूमिका भालण समय नी भाषा मिश्र २जी भूमिका पछीनी सां० १६२५ लगभग मां स्थापित थयेली भाषा छे”

क. च, भाग १, पृ० १००-१०१

८. पंदर से पीसतालीस मांहि गायन नलगुणग्राम जी ।
पद्य खटशत ने सात कर्यो छे हरिजन ना विश्राम जी ॥

९. संवत पंदर पंचोतरे शुक्लपक्ष कार्तिक मास ।
पंचमी तिथि बुधवासरे पुर्ण ग्रंथ अतीहास ॥२१॥
उत्तरकांड संपूर्ण शुणता उपजे मन हुलास ।
करजोडी भालणसुत वीनवे नीज सेवक वीष्णुदास ॥२२॥

उत्तरकांड, ५७

१०. ‘कौमुदी’ मार्च १९३१, पृ० २२६
११. पबोद प्रकाश, भूमिका, पृ० २५
१२. भालण, पृ० ६३

१३. क च, भाग १, पृ० ६८ पाद टिप्पणी २
 १४. भावना कृत दशमस्कंध, सं० ह० काटावाला पद संख्या ७७, २५१, २५३, २५४, २५५ तथा २६५
 १५. “भालणना दशमस्कंध मां कोई विष्णुदासना नामनां ब्रजभाषाना केटलाक पद जोवामां आवे छे । ओ कदाच आ विष्णुदासना पण होय केमके ओ नामनो कोई कवि ब्रजभाषा मां थयो होय ओम जणातुं नथी ।

भालणा, पृ० ६२.

१६ क भालणा रा० चु० मोदी पृ० ७८

ख. क च, भाग १, पृ० ११०

१७. G L page, 122.

१८. भालण, उद्धव अने भीम रा० चु० मोदी विरचित, पृ० ३१

“आ काव्य खरी रीति कृष्णविष्टि कहेवाय नहि, आतो कृष्णविष्टि करवा जाय छे ते सम्बन्धी अटले तेने “द्रोपदी प्रकोप” नाम आपी शकाय, भालण आखी कृष्णविष्टि लखी हशे के ते शंका भरेलु छे, केम के वधीअे प्रतोमां मात्र आ चार ज पदो जोवामां आवे छे ।

१९. क संवत पंदर रुद्रनी बीस । बरस ऊपरि ओक चालीस ।

हरिलीला षोडशकला, फलश्रुति, ८, पृ० २१३

ख. संवत पंदर रुद्रनी बीस, षट आगला वरस चालीस ।

प्रबोध प्रकाश, अक छद्मो, ७२, पृ० ७४

२० क. पंडित वोपदेव द्विज ओक, कीधुं हरिलीला विवेक ।

तिणि आधारि मि करी कथा, सरोवर जमलु कूड यथा ।

हरिलीला षोडशकला, पृ० २१२

ख. सोलकला शशिहर सकलंक, ओह श्रीकृष्ण कथा निकलंक ।

वही, फलश्रुति, ७, पृ० २१३

२१. अष्टछाप और बल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २६

२२. ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० ३६ ।

२३. नाम माहात्म्य, श्री ब्रजांक, अगस्त १९४०, ब्रजभाषा नामक लेख से

२४ निम्बार्क माधुरी, पृ० ६ तथा २३

२५ “सूरदास के पूर्ववर्ती बंजू बावरा के कुछ श्रृंगार गीत प्राप्त हुए हैं जिनसे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि इस प्रकार की रचना पहिले से ही होती आ रही थी ।”

ब्रजभाषा साहित्य का नाबिकामेद, नवीन संस्करण, पृ० ४२

२६ नन बान, पुनि राम, ससि गिनो अक गति बाम ।

श्रीभट प्रगट जु जुगलसत यह संवत अभिराम ॥

निम्बार्कमाधुरी, पृ० ६

२७. क रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म सं० १५६५, कविता-काल सं० १६२५ के लगभग दिया है ।

[हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८८]

ख वियोगीहरि ने भी लिखा है कि 'श्रीभट्ट का जन्मकाल अनुमानत १५६५ के लगभग जान पड़ता है और इनका कविता-काल संवत् १६२५ सिद्ध हुआ ।' [ब्रजमाधुरीसार पृ० १४८]

२८ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७४०

२९ वस्तु, वच्छराज तुलसी, 'Gujarat had only three poets and those of obscure fame in the sixteenth century and yet this century is not without its significance' CPG, page 30

३० M. G. L, page 52-53

३१ वसत, १९६१ संवत्, वर्ष ४ अक ८

३२ गुजराती साहित्य परिषद् रिपोर्ट १९०५

‘आ मूल दीवाओ मां कोई पण अन्य ज्योतिना प्रभाव थी ज्वालाओ प्रकटी होवी जोइअे ।’

३३ क गुजरात सं० १९८२ श्रावण, नरसिंह महेतानी कोयडो

ख कौमुदी, १५३२

ग नरसैयो भक्त हरिनी, उपोद्घात

३४. GL Chap IV. Note A, page 149

३५ वसत, १९६१ संवत्, भाद्र, अक ८

३६. पुष्टिप्रवाहमयीदा की टीका

३७. प्रस्थान, सं० १९८३, वैशाख-ज्येष्ठ तथा ऐतिहासिक मशोधन, पृ० १०३

३८ गुजरात सभा कार्यवही, १९४२ ४३, पृ० ८७ ८५

३९. Vaisnava Faith and Movement, page 47.

४० GL page 143.

४१. गुजराती हाथप्रतोंनी संकलित यादी गु व सो पृ० ८१ ८८

४२. क. नरसो ने गुणगावानी शे ते थी ई दशा मा भाखियुं रे ।

ख. ते नरसैइअे गाई रे विविधि विलास मां रे नाम तिनुं सहस्र पदनो रास ।

ते अहीं वाचो रे जिन्हें इच्छा वसे रे पुनि पुनि कहइ नव नरसइदास ।

ग. नृसिंह अनाथ, थावो हरिनाथ, सावो मम हाथ ते कण्टि खोजो ।

४३. क. प्रेमानन्द की 'भ्रमरपचीशी' में राही का केवल उल्लेख ही नहीं है वरन् राया, चन्द्रावली आदि सखियों के साथ वह उद्धव से समाषण करती हुई भी चित्रित की गई है ।

ख. त्याहां तेडो नाव नारि सोलसहसे साथि ते चन्दाउली ।

राधा संग रमे ते सोलसहसे साथि ते लीलाउली ।

२६. राधारग

४३. मङ्गल सना सिंगार, ४४ से ७७वें दोहे तक

४५. Significance of Nari Kunjar picture. By M. R. Mammular,
Baroda Oriental Conference Report, 1933, page 829

४६. गुजराती हाथ प्रतीनी संकलित पादी पृ० ८२

४७. GL, page 142. Rasa-ahirapadi as it stand at present, it is a loosely woven poem of about one hundred and twenty three padas

४८. राससहस्रपादी, केशवराम काशीराम शास्त्री द्वारा सम्पादित

४९. न कृ का. पृ० ४६८

५०. श्री गुरु ने प्रणाम करी ने वर्णवुं श्री जदुराय ।

श्री कृष्णजी लीला सांभलतां पातक दूर पलाय ।

न कृ का. पृ० ४२८

५१. इस विषय का विशेष विवरण 'मीराबाई की पदावली' के परिशिष्ट 'क' में परशुराम चतुर्वेदी द्वारा दिया गया है

५२. क० मिश्रबन्धु. मीरा का जीवनकाल स० १५७३

ख. रामचन्द्र शुक्ल, यही

ग. डॉ० रामकुमार वर्मा, मीरा का जीवनकाल स० १५५५-१६३०

घ. परशुराम चतुर्वेदी. मीरा का जीवनकाल स० १५५५-१६०३ विवाह काल, स० १५७३

५३. क. मीरा स्मृति ग्रन्थ, पृ० ४४

शंभुप्रसाद बच्चुना का लेख 'जनम जोगिणी मीरा'

ख. मीरा, एक अध्ययन, पद्मावती 'शबनम' विरचित, जीवन खंड, पृ० १४:८४

५४. गु. हा. संकलित पादी, पृ० १५७

५५. इन पैंतीसों पदों की क्रम संख्याएँ इस प्रकार हैं --

२, ३, २६, ३५, ३७, ४४, ४७, ४८, ५३, ५४, ५६, ७३, ७८, ८३, ८४, ८६, ८७, ८९, ९०, ९२, ९३, १०२, १०७, १११, ११३

५६. क. च. प्रथम भाग, पृ० ८०

५७. 'गुजराती'. स० १९३१

५८. श्रीकृष्णलीला काव्य, भूमिका पृ० १४

५९. संवत् पंदर बोतेर अभ्यास । बुधशुक्ल भादरव मास ।

बृ. का दोहन, भाग ६, पृ० ७०६

६०. क. च. भाग १, पृ० २३१-२३२

६१. क. च. भाग १, पृ० २६१-२६२

६२. बृ. का दोहन भाग १ तो, पृ० ६८३

संवत् १६०९ सोलनबोतरो वैसाख सुदि अेकादशी ।

महीदास सुत बहदे कहे, कृपा करी श्री हरि कहाविउ ।

- ६३ क च भाग १, पृ० २७६
 ४ क च, भाग २, पृ० २९९
 ५ क च, भाग २, पृ० ३७५
 ६६ क. गु हा सक्तलित यादी, पृ०
 ख क च भाग २, पृ० ३७५
 ६७ क सवत सोल सत्ताला जाण्य -स्विमणीहरण
 ख सवन शील शठताला सोय—हनुमान चरित्र
 ग सवत शील आठनाला विराटपर्व
 ६८ क च, भाग २, पृ० ४०५
 ६९ क च भाग २, पृ० ४०५
 ७० फूड जी 'पांडवविष्टि' के अन्तिम पृष्ठ का उल्लेख सूरतमाहित्य परिषद के विवरण में पृ० ७८ पर
 दिया है । इसी से इसकी सना का ज्ञान होता है
 ७१ क. सूरदास, पृ० ९७
 ख. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग १, पृ० २६८
 ग सूरसौरभ, प्रथम भाग, पृ० ३
 घ अष्टछाप परिचय, पृ० ९६
 ङ. सूरनिर्णय, पृ० १६९
 ७२ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २६८
 ७३. सूरनिर्णय, पृ० १६९
 ७४ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २६८
 ७५. व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादशस्कंध बनाइ ।
 सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ ।।
 सू मा स्कंध १
 ७६ सूरनिर्णय, पृ० १६१
 ७७. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २८०
 ७८ वही, पृ० ३१४ ३१५
 ७९ वही, पृ० ३११
 ८० अष्टछाप परिचय, पृ० १३५
 ८१ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग २, पृ० ३१५ ३२३
 ८२ वही, पृ० ३२४
 ८३ अष्टछाप परिचय, पृ० १६६
 ८४ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २८८, २८९
 ८५ वही, पृ० ३७२, ३७७

८६ नंददास, भाग १, भूमिका, पृ० २० २१

८७. अष्टछाप परिचय, पृ० १६८, २००

८८ वही, पृ० १६८

८९. नंददास, भाग १, भूमिका, पृ० ८६

९० क वही,

ख अष्टछाप और बल्लभसम्प्रदाय भाग १, पृ० ३००

९१. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय,, भाग १, पृ० ३०४

९२. वही, पृ० ३३८, ३३९

९३. वही, पृ० ३४०

९४. वही, पृ० ३४१

९५. क वही, पृ० ३४० ३४८

ख. नंददास, भाग १, पृ० ६८, ६९

९६ अष्टछाप और बल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ३४६

९७. नंददास, भाग १, पृ० ८२

९८. अष्टछाप और बल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ३६० ३६१

९९ अष्टछाप परिचय, पृ० २१२

१०० अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय भाग १, पृ० ३८१, ३८४

१०१ सम्प्रदाय में प्रचलित हिताब्द के आधार पर इनका जन्म सं० १५३० मिक्र होना है और जीवन-काल सं० १५३०, १६०६ तक परन्तु भागवतमुद्रित नामक कवि के 'हितहरिवशचमित्र' में जन्म काल 'पन्द्रह सौ उनसठ सम्बत्सर' दिया है।

१०२. इस विषय में साम्प्रदायिक मान्यता है

रोझे श्री वनचन्द्र जू, बोले सबन उमंग ।

सेवकवाणी कूं पढ़ों, श्री चतुराशी संग ॥

१०३ मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ३३२

१०४ सुभ सत पन्द्रह जान, सरसठ ता ऊपर अधिक ।

ता संबत मे आन, प्रगट भये श्री व्यास जी ॥

श्री व्यासवार्त्ता, पूर्वार्थ वक्तव्य पृ० ८०

१०५ वही, पृ० ८०

१०६. ब्रजमाधुरीसार, पृ० ९७

१०७ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १८३, १८७

१०८. निम्बार्क माधुरी पृ० ६९

१०९ वही, पृ० ९

११० ब्रजमाधुरीसार, पृ० १५६

१११ निम्बार्क माधुरी, पृ० २०

११२. वही, पृ० ७४ ७५
 ११३. वही, पृ० ७४ ७५
 ११४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७१४
 ११५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८६
 ११६. निम्बार्कमाधुरी, पृ० २०२
 ११७. ब्रजमाधुरीसार, पृ० १२४
 ११८. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग १, पृ० ६६
 ११९. निम्बार्कमाधुरी, पृ० २२४
 १२०. वही, पृ० २३३
 १२१. मीरा स्मृति ग्रन्थ, परिशिष्ट 'ख' मीरा परिचय, पृ० ५८
 १२२. वही, पृ० १४१
 १२३. रहीम रत्नावली, मायाशंकर याज्ञिक द्वारा संपादित, पृ० ३२
 १२४. शास्त्री के कविचरित के अभी दो भाग ही प्रकाश में आये हैं जिन्हमें सं० १७१६ तक के कवियों का समावेश है। प्रेमानंद का काव्यकाल इसके बाद आता है। उन्होंने अपनी नवीन कृति 'प्रेमानंद एक अध्ययन' में प्रेमानंद के समय पर प्रकाश डाला है।
 १२५. गु. हा. संकलित यादी पृ० २९५
 १२६. वही, पृ० १८६, २६२
 १२७. वही, पृ० १८६
 १२८. क. च., पृ० ३६५ ३६६
 १२९. सं० १६ संवत्सर साठो, माघ सुदी पखवाडो जी।
 ग्रंथ समर्पण करी गोविंद ने, प्रणमों जन देवीदास जी।
 गु. व. सो. ह. प्र. नं० २६४
 १३०. परशुराम आश्रयान, 'सवत सोल मडसठ वर्षे, बाल चरित्र, 'सवत सोल सडमठावन्य', तथा एका-दशी माहात्म्य, 'सवत सोल रातिर'
 १३१. क. च., भाग २, पृ० ४५२
 १३२. वही, भाग २, पृ० ५०२
 १३३. संवत सोल नवासो ओ। साके पनरचोपने कही ओ।
 ह. प्र. नं० ३२५
 १३४. क. च., भाग २, पृ० ४४६
 १३५. कृष्णदास के नाम से एक 'रामक्रीडा' का भी उल्लेख मिलता है परन्तु हस्तप्रति देखने पर ज्ञात होता है कि यह अष्टछापी कृष्णदास के रास विषयक पदों का संग्रह मात्र है।
 गु. हा. संकलित यादी, पृ० २२, ह. प्र. नं० ४६८४ बडौदा
 १३६. क. च., भाग २, पृ० ४४९, ४५१
 १३७. वही, भाग २, पृ० ५२७
 १३८. फा० गु० सभा, हस्तप्रति नं० ३६१

क. श्री कंसोधारण लीक्षते

ख. इति श्री कंसोधारण आक्षान्त सम्पूर्ण सथाप्त ।

१३६ संवत् सतर पांच्य ने साल नी सक्षां कहू
पनर सत ने एकोतेर ने

गु व सो हस्तप्रति न० ७३

१४० प्रेमानन्द, एक अध्ययन, पृ० ३०, ३१

१४१. संशोधन ने मार्ग पृ० ३१

मोटो दशमस्कंध सिद्धरूपो अनी आखरनी कृति समझाव वै च ।

१४२. प्रेमानन्द, एक अध्ययन, पृ० ३०

१४३. G L. Page, 183.

१४४ सुभद्राहरण प्रस्तावना, पृ० ११३ ११५

१४५ G L Page, 183

१४६ गु हा सकलित यादी, पृ० १२२

१४७. V G. Page, 245-246.

१४८ रुक्मिणी विवाह वरणी न जाए । संक्षेप मात्र आ सलोकी थाए ।

गु व सो ह. प्र. न० ८८५

१४९ संमत सतर ने चालीस साल । वैशाख सुखी वारस गुरुवार ।

—वही

१५० गु व सो ह प्र न० ७४५ अ

१५१ गु ह. सकलित यादी पृ० १२२

१५२. गु. व सो. ह प्र न० ८२१२

१५३. गु ह. सकलित यादी, पृ० १२६

१५४ वही, पृ० १२६ १२७

१५५ सुभद्राहरण, भूमिका अम्बालाल बुलाकीराम जानी रचित, पृ० ४७ ४८

१५६ श्रीमद्भागवत, कवि प्रेमानन्दकृत पद्यबध, पृ० ३५१

१५७ नर्मदाशंकर द्वारा सम्पादित श्रीमद्भागवत दशमस्कंध की भूमिका से ।

विशेष कहेवानु आछे के प्रेमानन्द ना ग्रंथ मा संस्कृत श्लोके श्लोक नुं भाषा-
न्तर नथो पण अध्याय अध्यायना कथा प्रसंगो ने वर्णन विस्तारे प्रफुल्ल कयों
छे । भक्तिबोध ने माटे कथा प्रसंग अने भक्तिबोध आनंद साथे हृदय मां
करे तेने माटे लोकप्रिय वर्णन विस्तार छे ।

१५८ गोवर्धनदास द्वारा सम्पादित रत्नेश्वर कृत दशमस्कंध के उपोद्घात से—

‘કવિ પ્રેમાનંદ જાતનો બ્રાહ્મણ અને સંસ્કૃત ભાષા થી અજ્ઞાન હોવાને લીધે મૂલ ભાગવત ગ્રંથ માં શું લખ્યું છે તેનો બરાબર અર્થ ન સમજતાં એ કવિએ પોતાના ધ્યાન માં આવ્યા પ્રમાણે સાધારણ કથા ભાગ લઈ તેમા અનેક ફેરફાર કરી ને ભાષાન્તર કર્યું છે ।

૧૫૯. પ્રેમાનંદ, એક અધ્યયન, પૃં ૩૦

૧૬૦. સંવત સતર ઓગણચાલીસ, ભાદ્રપદે તિર્થાર જી ।

દશમસ્કંધ થયો સંપૂર્ણ ઋષિ પંચમી રવિવાર જી ।

શ્રી મદ્ભાગવત, દશમસ્કંધ ।

૧૬૧. ગુ હા સંકલિત યાદી, પૃં ૧૭૩, ૧૭૫

૧૬૨. વહી, પૃં ૧૭૪

૧૬૩. વહી, પૃં ૧૭૩

૧૬૪. વહી, પૃં ૨૦૩

૧૬૫. કચ, ભાગ ૨, પૃં ૩૧૯

૧૬૬. સંવત ૧૭૧૬ સંવચ્છરમ્ શાઠી માઘ શુધ પક્ષ જી

ચઢૌદા મંગલ, હ પ્ર નં ૫૫૪

૧૬૭. છોપન મેં અધ્યાયે સંપૂર્ણ સાંભલતા સુલકારી જી ।

શુકદેવપરીક્ષત ને કહે કથાતણુ વિસ્તારી જી ।

—વહી ।

૧૬૮. સંવત સતરમે ત્રીંશસાર અષાઢસુદ દ્વિતીયા શનિવાર. ૩

૧૬૯. કચ, ભાગ ૨, પૃં ૪૬૪

૧૭૦. ગુ હા સંકલિત યાદી, પૃં ૫૫

૧૭૧. પ્રાં કાં સુઆં ભાગ ૩, પૃં ૧૪૧ મથુરામહિમા ગાઈ શું જાત

ગુરંજગદીશ મથુરા મહિમા ગાયો સાર. શ્રી ગુરુદેવ સંત આધાર ।

વહી, ભાગ ૪

૧૭૨. તેના ચર્ણ પ્રતાપે કરી. શ્રીકૃષ્ણ લીલા વિસ્તરી—વહી ।

૧૭૩. બ્રજમાધુરીસાર, પૃં ૨૦૦

૧૭૪. અષ્ટછાપ ઔર વક્તમસમ્મવાય, ભાગ ૧, પૃં ૫૦

૧૭૫. ‘સંસ્કૃત ન જાણનારાને અર્થે ભાષામાં પણ કેટલાક પદો આપ શ્રીએ રચ્યો છે, અને એ માર્ગે પણ ભાવનું માન કર્યું છે । બોલો પણ પ્રકટ કર્યા છે । તે જ રીતિએ આપના કેટલાક કથાલાદિ પણ સંપ્રદાય માં પ્રસિદ્ધ છે ।

—શ્રી હરિરાય વી જીવન અને બોધ, પૃં ૨૧-૨૨

१७६. राधावल्लभ भक्तमाल, पृ० ३२२, ३२५ ३२६

१७७. वही, पृ० ३३०

१७८. वही, पृ० ३२०

‘इस प्रकार आपने ब्यालीसलीला एक ग्रंथ बनाया यह ध्रुवदास जी की ब्यालीसलीला के नाम के विख्यात है ।

१७९. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७२४

१८०. बं व संख्या, २१४ पुस्तक नं० १६ ३०

१८१. सोलह से ध्रुव छासिया पुन्यो अगहन मास

१८२. बाणी वल्लभ रसिक जी की, पृ० १, भूमिका

१८३. वही, पृ० २, भूमिका

१८४. श्री माधुरी बाणी पृ० ४, भूमिका

१८५. वही, पृ० ५, भूमिका

१८६. निम्बाकैमाधुरी पृ० १३, १२९

१८७. वही, पृ० १४३

१८८. वही, पृ० १६६

१८९. वही, पृ० १९

१९०. वही, पृ० ९४, १००

१९१. वही, पृ० ९४

१९२. वही, पृ० १३१

१९३. वही, पृ० ३४०. ३४१

१९४. वही, पृ० २६९

१९५. वही, पृ० ३१६

१९६. वही, पृ० २६९

१९७. वही, पृ० २९९

१९८. वही, पृ० ३१६

१९९. वही, पृ० ४७९, ५००

२००. वही, पृ० ५७७

२०१. प्रजमाधुरीसार, पृ० ४४५

२०२. देव और उनकी कविता, पृ० २७

२०३. कवितारत्नाकर, भूमिका, पृ० ६

२०४. देव और उनकी कविता, पृ० ३६ ४३

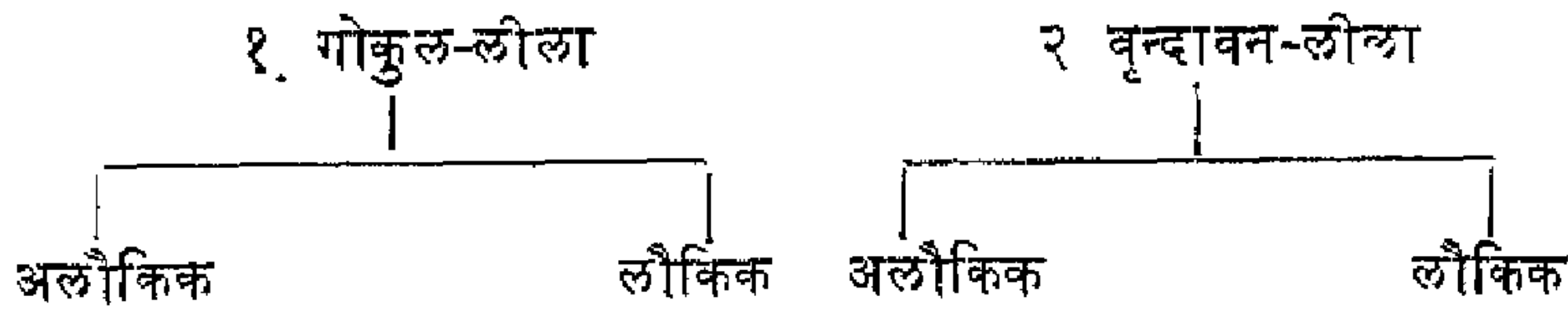
वर्ण्य वस्तु

विश्लेषण तथा विवेचन

कृष्ण-लीलाएँ—लीलास्थल की दृष्टि से कृष्ण-चरित को त्रिधा विभाजित किया जाता है ।^१

- १ ब्रज-लीला
- २ मथुरा-लीला
३. द्वारका-लीला

ब्रज-लीला पुनः दो भागों में विभाजित की जा सकती है जिनमें लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकार का चरित समाविष्ट है ।



आगे लीलाओं के इसी विभाजन के अनुसार गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य की समस्त वर्ण्य-वस्तु का तुलनात्मक निरूपण किया गया है ।

ब्रज-लीला

दोनों भाषाओं में साधारणतया इन कृष्ण-लीलाओं का वर्णन भागवत के दशमस्कन्ध पर आधारित मौलिक तथा अनूदित रचनाओं में प्राप्त होता है । लीला विशेष से सम्बन्धित स्वतन्त्र उल्लेखनीय रचनाओं का निर्देश यथावसर कर दिया गया है ।

पुराणोल्लिखित लीलाओं में से अनेक के वर्णन में कवियों ने पर्याप्त स्वतन्त्रता तथा मौलिकता का प्रदर्शन किया है, कतिपय कवियों ने ब्रज-लीला के अतर्गत कई नितान्त नवीन प्रसंगों की उद्भावना की है, ऐसे कवियों में ब्रजभाषा के सूरदास तथा गुजराती के प्रेमानन्द का नाम सर्वोपरि है, विश्लेषण की सुगमता के लिए विशिष्ट प्रसंगों का पृथक् निरूपण अपेक्षित है ।

अलौकिक गोकुल लीलाएँ

कृष्ण-जन्म—भालण, प्रेमानन्द आदि दशमस्कंधकारों के अतिरिक्त इस विषय में गुजराती में नरसी के 'श्रीकृष्णजन्मसमानां पद' तथा 'श्रीकृष्णजन्म बधाई ना पद' विशेष उल्लेखनीय हैं, ब्रजभाषा में अष्टछाप के समस्त कवियों द्वारा जन्म तथा बधाई के पद रचे गए। अन्य सम्प्रदायों के कुछ कवियों द्वारा भी बधाई के पदों का निर्माण हुआ।

कृष्ण-जन्म से पूर्व पृथ्वी की प्रार्थना से द्रवित हो कर 'हरि' ने भूभार उतारने के निमित्त अवतार धारण करने का वचन दिया जिसका वर्णन अनेक कवियों ने किया है किन्तु विष्णुपुराण का आधार लेकर 'हरिलीला पौडणफला' के रचयिता ने लिखा है कि देवेश ने अपने मस्तक के दो केश भी दिये। 'वलतां वचन कहि देवेश, मस्तकना आप्या दोइ केश' (पृ० १३०.) इसका उल्लेख भागवत में नहीं है फलतः अन्य कवियों ने ऐसा नहीं लिखा। भागवत में 'यह्मोवाजनजन्मर्क्ष' तथा 'निशीथे' के अतिरिक्त कृष्ण-जन्म की तिथि मास दिवस का कोई निर्देश नहीं किया है किन्तु लगभग सभी कवियों ने कदाचित् ब्रह्मवैवर्त का आधार लेकर स्पष्टतया इसका निर्देश किया है। ब्रह्मवैवर्त में जन्म के समय 'अर्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ' (कृ० पू० ७:६४) मास का उल्लेख व्रत के प्रसंग में किया गया है पर वार वहाँ भी नहीं मिलता। फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां भवेत्कोटिगुणं द्विजः (वही, ८ ६)। इस विषय में गुजराती तथा ब्रजभाषा में दी गई जन्म-तिथियों में मास और वार का अंतर महत्वपूर्ण है।^१ नरसी ने श्रावण मास, मंगलवार तथा लक्ष्मीदास और प्रेमानन्द ने 'श्रावण वदनी अष्टमी' दिन बुधवार दिया है। सूर ने केवल 'भादों की रात' और नंददास ने कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा रोहिणी नक्षत्र का भी उल्लेख किया है।^२

गुजराती कवि भालण ने कृष्ण-जन्म के अवसर पर इन्द्र-इन्द्राणी के सगवाद का वर्णन एक पद में किया है। इन्द्राणी अहीर बन कर गोकुल में निवास करने की इच्छा प्रकट करती है परन्तु इन्द्र 'प्रभु' की आज्ञा न समझ कर गगन में ही स्थिर रहने का निश्चय करते हैं।^३

अष्टछाप के कवियों ने जन्मोत्सव के समय ढाढी ढाढ़िन, के पद रचे हैं। चैतन्य सम्प्रदायी कवि गदाधर भट्ट ने कृष्ण जन्म की बधाई के पद भी लिखे हैं और अपने को 'मांगनो' भी कहा है।

१. आज कहूँ ते गोकुल में अद्भुत बरखा आई हो।

—ग० वाणी, पृ० १०

२. हो ब्रज माँगतो जू ब्रज तज अनत न जाऊँ जू ।

—वही, पृ० २१

गुजराती कृष्णकाव्य में ढाढी का प्रसंग नहीं मिलता केवल भालण के दशम स्कंध में जहाँ सूर का 'ब्रज भयो महारि के पूत' वाला पद प्रक्षिप्त मिलता है वही उनका ढाढी के प्रसंग का यह पद भी प्राप्त होता है ।

नंदजू मेरे मन आनद भयो सुनि गोवर्धन ते आयो ।

हों तो तुम्हारे घर को ढाढी सूरदास मेरो नाउँ ।

यह प्रक्षेप प्रकाशित प्रतियों में ही नहीं वरन् हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों में भी उपलब्ध होता है ।

कारागृह में कृष्णजन्म के समय की परिस्थिति का चित्रण प्रायः एक-मा ही मिलता है । दोनों भाषाओं के कवियों ने प्रकट होने के बाद कृष्ण को चतुर्भुज रूप में चित्रित किया है जो भागवत के 'चतुर्भुज' के अनुकूल है । किमी ने भी ब्रह्मवैवर्त के 'द्विभुजं मुरलिहस्तम्' का अनुसरण नहीं किया ।

किन्तु कृष्ण को गोकुल ले जाते हुए वसुदेव को जहाँ यमुना मार्ग देती है वहाँ कई कवियों के वर्णन में भास के बालचरित की छाया प्रतीत होती है । ब्रह्मवैवर्त में उसका वर्णन ही नहीं है । भागवत में यमुना के लिए 'मार्ग दक्षी' मात्र लिखा है किन्तु बालचरित में 'द्विधा छिन्न जलम्' मिलता है । भास की इस कल्पना का कारण रंगमंच को सुविधा कहा जा सकता है । गुजराती के भालण केशवदास तथा प्रेमानन्द और ब्रजभाषा के नन्ददास ने बालचरित जैसा ही वर्णन किया है, सूरदास में इसका वर्णन ही नहीं मिलता ।^१ कृष्ण के हुँकारने की तथा पीछे के जल के रुकने और आगे के जल के बह जाने की बात प्रेमानन्द ने अपनी ओर से सम्मिलित कर दी है । शिशु-विनिमय की बात भागवत में कृष्ण द्वारा ही वसुदेव को ज्ञात हुई और भागवतानुयायी कवियों ने इसी का अनुसरण भी किया है । गुजराती के केशवदास ने कृष्ण द्वारा स्पष्ट कथन न कराके उनकी प्रेरणा से ही वसुदेव में ऐसी बुद्धि आना लिखा है ।

'हरिये हृदये प्रेरयो वसुदेव'—श्रीकृ० की०, पृ० १९

बालचरित में शिशु-विनिमय का प्रसंग नितान्त मिश्र एक अपूर्वनिश्चित आकस्मिक रूप में घटित हुआ है किन्तु उसका किसी कवि द्वारा अनुकरण नहीं किया गया । गोकुल में कृष्ण-जन्म के समय उत्सव, उत्साह, बधाई आदि का जितना विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया उतना किसी भी कवि ने नहीं किया ।

पूतना-वध

भागवत में पूतना के लिए 'कसेन प्रहिता घोरा पूतना बालवातिनी' कहा है और वध के उपरांत उसके दाह-संस्कार का भी वर्णन है।^१ ब्रह्मवैवर्त में उसे कस की भगिनी तथा हरिवंश में धात्री बताया गया है।^२ स्तन में विष लगाने तथा सुन्दरी स्त्री का वेश धारण करने का वर्णन सब में प्राप्त होता है।

गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनों भाषाओं के कवियों ने पूतना को 'बकी' के रूप में ग्रहण किया है जिसका आधारसंभवतः भागवत का पूतना के लिए प्रयुक्त 'खेचरि' शब्द हो सकता है। कुछ गुजराती कवियों ने ब्रह्मवैवर्त के अनुसार उसे कस की बहिन भी लिखा है और उसके द्वारा कृष्ण की मासो बनने का भी उल्लेख किया है।^३ गुजराती कवियों में भालण ने न 'पूतना' नाम दिया है और न 'बकी' ही।

गुजराती में नरसी तथा भालण और ब्रजभाषा में मूर द्वारा भागवतोक्त पूतना के दानवी रूप और दाह-संस्कार का वर्णन नहीं किया गया है। ब्रजभाषा के कवियों द्वारा पूतना का कस की भगिनी एवं कृष्ण की मासो के रूप में भी चित्रण नहीं हुआ है। गुजराती के कवि प्रेमानन्द ने वसुदेव देवकी को पूतना के ब्रज-प्रयाण की सूचना से दुखी चित्रित किया है।^४

पूतना गई गोकुळ विषे वसुदेव जाणी बात,
दपती दुखीया थयां ते करे बहु अश्रुपात।

ब्रजभाषा के किसी कवि ने इसका चित्रण नहीं किया।

सिद्धर ब्राह्मण

सूरसागर में पूतना-वध के अनन्तर कस द्वारा कृष्ण-वध के लिए भेजे हुए 'सिद्धर बाभन' का प्रसंग वर्णित है। इसका भागवत में अभाव है। किसी परवर्ती कवि द्वारा भी इसका अनुवर्णन नहीं किया गया।

सूरदास के सिद्धर की कथा पूतना की कथा से पर्याप्त साम्य रखती है। पूतना की तरह ही वह भी नदभवन से कृष्ण को मारने पहुंचता है और जब यशोदा यमुना जाती है तो अपना मनोरथ पूर्ण करना चाहता है। भेद यह है कि कृष्ण पूतना की तरह सिद्धर का वध नहीं करते वरन् उसे ब्राह्मण समझ कर केवल भूमि पर गिराने के बाद उसकी जीभ भरोड़ देते हैं। अपना भोलापन दिखाने के लिए मटकियाँ फोड़ कर कुछ दधिमाखन उसके मुँह में लिपटा देते हैं। तब तक यशोदा पानी लेकर आ जाती है और ब्राह्मण को घर से बाहर कर देती है।^५ सूरसागर में जिस स्थल पर

यह पद है वहाँ पूर्वापर प्रसंग देखते हुए यह अप्राभागिक है क्योंकि पदान्त के बाद पुनः 'सुन्यो कस पूतना भारी' लिखकर पूतना के प्रसंग को ही उठा लिया जाता है। सिद्धर की असफलता का न तो कोई समाचार कस तक पहुँचता है और न उसकी किसी प्रतिक्रिया का ही चित्रण मिलता है। संभव है इस कथा का मूल हरिवंश में पूतना वध के बाद वर्णित एक ब्राह्मण द्वारा रक्षा कवच देने की कथा में निहित हो।

कागासुर-वध—'सिद्धर बाभन' की तरह कागासुर की कथा भी भागवत में नहीं मिलती किन्तु पद्मपुराण में काकरूणधारी एक राक्षस के द्वारा कृष्ण की हथेली पर प्रहार किये जाने का वर्णन है जिसका अनुमोदन ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण से भी होता है।^{१०} मूरसागर में इसका वर्णन है किन्तु नन्ददास के दशमस्कंध में कागासुर की घटना का कोई संकेत नहीं है। गुजराती के कवियों द्वारा भी इसका वर्णन नहीं किया गया है, केवल फाग नामक कवि के 'कमोद्धरण' काव्य में एक स्थल पर 'कक वरु' का उल्लेख मिलता है जिसमें कंस उन्हें कृष्ण की आँख निकालने तथा अग्निसरोज में की आशा देता है।^{११} मूरदास ने कागासुर की कथा का सागोपाग वर्णन किया है। उन्होंने काग को भी अन्य असुरों की तरह कंस प्रेरित बताया है।

कागासुर को निकट बुलायो तासो कहि सब वचन सुनायो।

—सू० सा० पृ० १६५

मोती बोन की कथा—यह मोती बोन की कथा संभवतः गर्गसंहिता से ली गई है। गुजराती कवि पूजासुत परमानंद ने अपने हरिरस के द्वितीय वर्ग में इसका वर्णन किया है :

सीचो दुधहसे अवणपर फल फलीआ बहु मोती।

मुगताफल उगीया देखीने बीसमे पामो जसोदा जोती ॥

छंद म० १९५, फा. ह. प्र. ३२५

विराट् आश्र वृक्ष—नरसी मेहता ने गोकुल में एक वीरे हुए विराट् आश्र वृक्ष का वर्णन किया है जिसे यशोदा ने सींचकर बड़ा किया और जिसकी अलौकिकता के कारण ब्रजनारियाँ उसे देखने आती हैं।^{१२} नरसी का इसी प्रकार का एक अन्य पद है जिसमें संभवतः कृष्ण को ही आश्र वृक्ष के रूप में एक रूपक के द्वारा वर्णित किया गया है। 'सोल सहस्र कोकिला' से सोलह हजार गोपियों की और यदुकुल में वसुदेव द्वारा बोन तथा यशोदा द्वारा दूध से सींचे जाने से गोकुल में मथुरा में उत्पन्न हुए कृष्ण के लालन पालन की व्यंजना होती है।^{१३}

शकट-भजन अथवा शकटासुर-वध—यह प्रसंग भागवत के दशम स्कंध के सातवें अध्याय में उपलब्ध होता है और पूतना-वध के ठीक बाद में वर्णित है । और वहाँ न इसमें किसी असुर की कल्पना का मिश्रण है और न इससे कंस का कोई सम्बन्ध ही ज्ञात होता है । भास ने अवश्य शकट को 'दाणव' के रूप में प्रस्तुत किया है

षअडो णाम दाणदो षअडवेषम् गहिवअ आअदो तं पि जाणिअ एक पादप्पहा-
रेण चुण्णो किदो षो वि दाणवो भविअ तत्तो एव्व सुदो ।

इस प्रकार कवियों में भी दो वर्ग हो गए हैं । भागवतानुयायी भीम, भालण तथा केशवदास ने शकट में असुरत्व नहीं देखा ।^{१५} इसके प्रतिकूल नरसी, प्रेमानन्द, परमानन्द, सूरदास तथा नददास ने असुरत्व की स्थापना की है ।^{१६}

वर्णन की दृष्टि से शकट को असुरत्व प्रदान करने वाले कवियों की निम्नलिखित कोटियाँ स्थापित हो जाती हैं ।

प्रथम कोटि—इसमें भीम, भालण आदि गुजराती के वे कवि हैं जिन्होंने भागवत के शकट-भजन का अनुवाद मात्र कर दिया है ।

द्वितीय कोटि—इसमें गुजराती के परमानंद तथा ब्रजभाषा के नददास आते हैं जिन्होंने शकट को असुरत्व प्रदान तो किया किन्तु कंस से उसका कोई सम्बन्ध व्यक्त नहीं किया । नददास ने उसे अभिचार का असुर कहा है और उसका शकटरूप धारण करना न कह कर उसमें अटकना कहा है ।

तृतीय कोटि—इस कोटि में गुजराती के नरसी, प्रेमानंद तथा ब्रजभाषा के सूरदास आते हैं जिन्होंने शकटासुर को पूतना की तरह कंस द्वारा प्रेरित लिखा है । इस कोटि के कवियों में भी प्रत्येक कवि ने अपनी अपनी इच्छा के अनुसार कथा को विकसित तथा कल्पित किया है ।

नरसी तथा प्रेमानंद ने कंस द्वारा शकटासुर के भेजे जाने का उल्लेख किया है । इस असुर ने शकट का रूप धारण कर लिया इस विषय में 'शकट रूपे थयो' लिखकर प्रेमानंद और 'शकट को रूप धरि असुर लीनो' लिखकर सूरदास दोनों एक मत हैं । प्रेमानंद तथा सूरदास ने इस कथा के विकास में विशेष मौलिकता प्रदर्शित की है ।

प्रेमानंद के अनुसार कंस ने पूतना-वध सुनकर शकट, वच्छू, तृणावर्त, बग, अघ आदि को तत्काल बुलाकर कृष्ण को मारने का आदेश दिया जिसका सर्वप्रथम पालक था शकटासुर ।

भद साभली चाल्या भूर, प्रेथमे आव्यो शकटासुर ।

—श्रीमद् भा०, पृ० २४८

सूरदास ने शकटासुर के मुख से कंभ के सामने कृष्ण का नाश कर आने अथवा जीवित लाने की करबद्ध याचना कराई है जिसे सुनकर कस उसे वीड़ा देता है—

दोउ कर जोरि भयो तब ठाढ़ो प्रभु आयसु में पाऊँ ।

ह्या ते जाइ तुरत ही मारों कही तो जीवित ल्याऊँ ।

यह मुनि नृपति हर्ष मन कीनो तुरतहि वीरा दीनो ।

—सू० सा०, पृ० १३६

तदुपरात सूर ने एक ही पद में शकट सहार का वर्णन समाप्त कर दिया किन्तु प्रेमानंद ने कुछ अन्य उद्भावनाएँ भी की हैं । पहली तो यह कि द्वार की कुंडी आदि खटखटाकर यत्नपूर्वक रुदन से चुप कराकर जब यशोदा कृष्ण को शकट के नीचे छोड़ जाती है तो कुछ बालकों से कह जाती है कि ताली बजाते रहना 'बीजा बालकों ने कहे ताली पाड़ो' दूसरी यह कि कृष्ण कुद्ध होकर अपने बामपाद की वृद्धि करके स्थूल रूप में परिणत हो जाने वाले उस शकट का सहार करते हैं ।

क्रोध रूप थया अशरण शर्ण ।

वृद्धि पमाइयो डाबो चर्ण ।

तीसरी यह कि यशोदा लौटकर शकट-भंग को उन बालकों का अन्याय बताती है जिसका वे प्रतिवाद करते हैं ।

बीजा बाळ ने यशोदा कहे छे, ओ अन्या सर्व तमारो छे;

तमो शकट भांज्यु सर्वे मळी खीजी यशोदा थई आकळी;

बालक कहे अन्या न थी अतमणो, तारे पुत्रे पग वधार्यो घणो;

ऐसा वर्णन ब्रह्मवैवर्त में भी है परन्तु प्रेमानंद ने उसे अधिक स्वाभाविक तथा नवीन रूप प्रदान कर दिया है ।

पप्रच्छुर्बालबलिकान् गोपा बभञ्ज शकटं कथम्

—अ० १२, श्लो० ११

चौथी यह कि शकटासुर मरने पर अपना काष्ठाकार त्यागकर पुनः दानव रूप ग्रहण कर लेता है जिसको नद बाहर निकलवा फेंकते हैं—

काष्ठाकार गाडाने गयो । शकट दानव रुपे थयो ।

नदे दैत्य नखाव्यो बहार . .

पाँचवी और अंतिम यह कि शकटासुर को लेने विमान आता है 'आव्यु शकटासुर ने विमान रे' ।

गुजराती कवियों में पालणू उल्लेख करने वाले केवल केशवदास हैं । गोष ने झोली का उल्लेख किया है जो गुजरात की विशेषता है । प्रेमानंद ने इसके लिए यशोदा के किकरी द्वारा सारी मगवाने तक का वर्णन किया है ।

साडी एक लावी किकरी

ब्रजभाषा के कवियों ने पालने का ही उल्लेख किया है ।

गुजराती कवियों में प्रेमानंद तथा केशवदास ने शकट के नीचे कृष्ण को मुलाने के प्रयत्न में यशोदा से 'हालरू' अथवा लोरी गवाई है । सूरदास ने शकट के प्रसंग में तो नहीं किन्तु तृणावर्त-वध के उपरान्त 'हालरू' गाने का उल्लेख किया है:

जन बलि जाइ हालरू हालरो गोपाल ।

—सू० सा०, पृ० १३९

तृणावर्त-वध

—तृणावर्त की स्थिति शकटासुर से भिन्न है । भागवत में ही इसके दैत्य होने तथा कस द्वारा भेजे जाने का स्पष्ट उल्लेख है:

दैत्यो नाम्ना तृणावर्त कंसभृत्यः प्रणोदितः

—१०.७.२०

भागवत के अनुसार एक दिन अचानक गोद में कृष्ण का पर्वत तुल्य असह्य भार अनुभव करके यशोदा ने उन्हें पृथ्वी पर छोड़ दिया और गृह काज में लग गई । समस्त ब्रज को अस्त करता हुआ तृणावर्त आया और कृष्ण को उठा ले गया किन्तु कृष्ण का भार न वहन करने के कारण और उनके द्वारा कठ ग्रसे जाने से उसकी मृत्यु हो गई । ब्रज में एक शिला पर उसकी देह गिरी और उसके सारे अवयव विशीर्ण हो गए । गोपियों ने कृष्ण को राक्षस की छाती से उठाकर यशोदा को दिया जिसे देखकर नदादि सभी प्रसन्न हुए ।

इस मूल कथा भाग में से कवियों द्वारा बहुत से अंश स्वीकृत किये गए और बहुत से नहीं भी । गुजराती में केशवदास ने पूर्णतया भागवत का अनुकरण किया है । ब्रजभाषा में मूर और नंददास ने तथा गुजराती में भालण, केशवदास और प्रेमानंद ने भार-वृद्धि का वर्णन किया है किन्तु भारी पड़ने का जो कारण दोनों ने दिया है वह एक दूसरे से भिन्न है, भागवत में इसका कोई भी कारण नहीं दिया है ।^{१०} भालण

तथा नंददास के अनुसार कृष्ण इसलिए भार वृद्धि करने हैं कि वे यशोदा को तृणावर्त के आघात से दूर रखना चाहते हैं किन्तु सूर तथा प्रेमानंद ने इसे स्पष्ट नहीं किया है ।

गुजराती के एक कवि फाग ने अपने कसोद्वरण में अघासुर के साथ तृणावर्त की घटना के भी वृन्दावन में घटित होने के उल्लेख किया है जो भ्रातृ है

वृन्दावन माहे असूर अघासुर त्रणावन शत्रारयो ।

गुजराती के अन्य कवियों में नरसी ने 'तृणावर्त तत्क्षण हण्यो रे' लिखकर तृणावर्त-वध का सकेत मान किया है वर्णन नहीं । नंददास ने तृणावर्त के कस द्वारा भेजे जाने का कथन नहीं किया है किन्तु भालण, सूर और प्रेमानन्द आदि ने किया है ।^{१८}

भालण की गोपियाँ कृष्ण को अकेला छोड़ने पर यशोदा की गालियाँ देती हैं ।

वीलो मूक्यो रे बाल, जशोदा ने देगाळ ।

—द० स्क०, पृ० ३१

और नदादि गोप खोए हुए कृष्ण की खोज बताने वाले को पुरस्कार देने की बात करते हैं

दृष्टे देखाडे कहान ने तो रिद्धि आपु अति घणी ।

प्रेमानंद तृणावर्त के कारण यमुना को उलटी दिशा में प्रवाहित चित्रित करते हैं जो अन्य किसी कवि ने नहीं किया है और न भागवत में भी है ।

विपरीत यमुना जी नु जळ बहेतुं हरि ह्या हयो हाहाकार

—श्रीमद् भा०, पृ० २५०

गोपियों के ऋद्धन के अतिरिक्त प्रेमानंद ने लंद तथा उपनंद द्वारा कृष्ण की खोज करने का भी उल्लेख किया है, यह भी अन्यत्र नहीं मिलता ।

गोपीना वृंद आकदकरे, उपनन्द नन्द जी शोधता फरे ।

कृष्ण द्वारा तृणावर्त के संहार का वर्णन सभी कवियों ने प्रायः भागवत के अनुसार किया है किन्तु संहार के अनन्तर उसके पुतला सदृश बाह-कर्म तथा दिव्यदेह पाकर विमान द्वारा स्वर्ग-गमन का वर्णन दोनों भाषाओं में केवल प्रेमानन्द ने ही किया है ।^{१९} भालण तथा सूरदास ने शकटासुर-वध तथा तृणावर्त-वध के बीच बाल-छवि वर्णन के कतिपय पद लिखे हैं ।

कृष्ण का मृत्तिका-भक्षण एवं यशोदा द्वारा विश्व-दर्शन

भागवत में मृत्तिका-भक्षण के प्रसंग में यशोदा द्वारा कृष्ण के मुख में विश्व-दर्शन का वर्णन तो है ही किन्तु इससे पूर्व भी एक स्थल पर जम्हाई लेते समय इसका उल्लेख है—

प्रीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ।

मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा .. ॥ ३७ ॥

—स्कंध १०, अ० ७

मृत्तिका-भक्षण के समय भागवतकार ने पुनः इसी का वर्णन कुछ विस्तृत रूप में किया है:

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थासु च खं विशः ।

—अ० ८, श्लो० ३७

शार्ङ्गधरपद्धति में इस विषय का एक श्लोक है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल से ही मृत्तिका-भक्षण काव्य का स्वतन्त्र विषय बन चुका था ।

कृष्णेनाम्ब गतेन रतुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया,
सत्यं कृष्ण, क आह ह्येष, मुसली मिथ्याम्बपश्याननम्,
व्यादेहोति विदारिते च वदने दृष्ट्वा समस्तं जगत्,
माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात् स वः केशवः ॥

जम्हाई लेते समय के विश्व-दर्शन का वर्णन ब्रजभाषा में नन्ददास के दशम स्कंध में मिलता है ।^{१७} सूरदास ने इसका यमलार्जुन के प्रसंग में उल्लेखमात्र किया है ।^{१८} नन्ददास ने आगे चल कर इससे नामकरण का प्रसंग सम्बद्ध कर दिया ।^{१९} इस प्रसंग में प्रेमानन्द ने कृष्ण द्वारा मुख में विश्व-रूप-दर्शन कराने का कारण यशोदा का दुःखी होना बताया, इस प्रकार उन्होंने एक नवीनता उत्पन्न कर दी है । तथा विराट विश्व का विस्तृत चित्रण करने के साथसाथ यशोदा के ज्ञान पाने तथा पुनः माया-वश होने का वर्णन करके और भी मौलिकता का प्रदर्शन किया है ।^{२०}

जृम्भा के स्थान पर मृत्तिका-भक्षण के प्रसंग में विश्व-दर्शन का विषय अधिक परम्परासिद्ध प्रतीत होता है क्योंकि दोनों भाषाओं के अनेक कवियों ने इसे इसी रूप में प्रस्तुत किया है

भागवतकार ने कृष्ण के मिट्टी खाने का वर्णन स्वतंत्रतापूर्वक न करके बलदेव आदि अन्य गोप बालको द्वारा की गयी शिकायत से उसकी व्यंजना की है किन्तु सूर ने स्पष्टतया उसका चित्रण किया है।^{३५} उन्होंने शिकायत का भी वर्णन किया है।^{३६} भागवत के 'हितैषिणी' शब्द को चरितार्थ करते हुए नंददास ने यशोदा द्वारा कृष्ण के साथी बालको की देखभाल करने का आदेश दिलवाया है जिसका वर्णन स्वयं भागवत में नहीं है।^{३७} इसके अतिरिक्त विश्व-दर्शन में भागवत के 'ब्रज सहा-त्यानमवाप' को निम्न पक्तियों में अत्यधिक स्पष्ट करके प्रस्तुत किया है जो सूरसागर में भी नहीं मिलता।

पुनि अपन पै सहित ब्रज देखि, जसुमति चकित भई जु विसेखि ।
तहँ पुनि मुतहि लिये कर साँटी, डौटति ज्यों न भखन करै माटी ।

नरसी और भीम ने मृत्तिका-भक्षण के प्रसंग का उल्लेख मात्र किया है।^{३८} भालण ने इस विषय का वर्णन ही नहीं किया है। उनके दशमस्कंध में जो प्रक्षिप्त पद है वह ब्रजभाषा का है।^{३९} केशवदास के श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य के पंचम सर्ग का नाम-करण ही यह मृद्-भक्षण पर किया गया है।^{४०} सूर की तरह केशवदास ने मिट्टी खाने का स्पष्ट वर्णन किया है।^{४१} उन्होंने नंददास की तरह मुख में ब्रज का वर्णन तो दिया है किन्तु उसमें कृष्ण यशोदा के उसी रूप में दीखने का चित्रण नहीं किया।

वदन माह ब्रज दीशे वस्यू, चराचर देखी कहे कारण किशू ।

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० ४७

प्रेमानंद ने इस विषय में विशेष मौलिकता न प्रदर्शित करके भागवत का ही अनुसरण किया है। स्वाद के कारण मुट्ठी भर भर मिट्टी खाने की भावना अवश्य नवीन है।

अेक बार कौतिक कीधु नाथे मृत्तिका भक्षण करी;
स्वाद लाग्यो सामळिया ने मुखमां मूके मुठडी भरी ।

—श्रीमद् भा०, पृ० २५४

महराने के पाँडे का भोग और नंद का देवार्चन

ब्रजभाषा में प्राप्त महराने के पाँडे की कथा तथा गुजराती में उपलब्ध नंद के देवार्चन के प्रसंग में पर्याप्त साम्य है। पाँडे की कथा का वर्णन एकमात्र सूर के काव्य में मिलता है और नंद के देवार्चन का केशवदास के श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य तथा परमानन्द के हरिरस में। सूरसागर में पाँडे की कथा से सम्बन्धित पाँच पद मिलते

है।^{३०} एक प्रकार से सारी कथा प्रथम पद में ही पूर्ण हो जाती है।^{३१} कथा का मुख्य आधार यह है कि कृष्ण अपना ध्यान किये जाने पर स्वतः प्रकट होकर भोग लगाने लगते हैं और इस प्रकार अपना अवतारी होना चरितार्थ करने हैं। गुजरात के उक्त कवियों द्वारा वर्णित नद के देवार्चन का प्रसंग भी इसी आधार पर निर्मित है, उसका लक्ष्य भी कृष्ण का ईश्वरत्व प्रदर्शन है।^{३२}

केशवदास तथा परमानन्द द्वारा वर्णित प्रसंग लगभग समान ही हैं। परमानन्द के अनुसार कृष्ण के उठाये न उठने के कारण उनके अवतारी होने का बोध यशोदा को होता है और केशवदास के अनुसार गर्ग की भविष्यवाणी के स्मरण से।

पांडे की कथा में कृष्ण स्वयं अपने मुद्र से अपना भोग लगाने का आदेश ब्राह्मण को नहीं देते किन्तु नद के देवार्चन में वे स्पष्टतया अपना पूजा कराने की आज्ञा देते हैं।

उलूखल बंधन और यमलार्जुन मोक्ष

भागवत में दी हुई यह कथा हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त तथा पद्मपुराण की कथा से कुछ भिन्न और अधिक परिवर्धित है। दोनों भाषाओं के कवियों ने इस विषय में भागवत का ही अनुसरण किया है। केवल प्रेमानन्द ही अपवाद हैं। प्रेमानन्द ने भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त दोनों का मिश्रण कर दिया है, ब्रजभाषा में मूर ने इसका दो बार वर्णन किया है। पहले वर्णन में कई स्थलों पर मौलिकता का प्रदर्शन मिलता है। पर दूसरा वर्णन अनुवादात्मक अधिक है। प्रेमानन्द के अति रिक्त भालण तथा केशवदास आदि अन्य दशभस्करंधकारों ने भी यमलार्जुन-मोक्ष का वर्णन किया है।

प्रेमानन्द द्वारा दोनों कथाओं का सम्मिश्रण तथा स्वकल्पित वर्णन—ब्रह्मवैवर्त में नारद के शाप से केवल एक कुशेरपुत्र नलूकवर का, जो रंभा के साथ क्रीडा कर रहा था अर्जुन पृक्ष को जाना वर्णित है किन्तु भागवत में नलूकवर और मणिग्रीव दोनों का।^{३३} प्रेमानन्द ने नलूकवर और मणिग्रीव दोनों का रंभा के साथ गमन वर्णित किया है।^{३४} ब्रह्मवैवर्त में जहाँ 'बद्ध वस्त्रेण वृक्षे च' लिखा है प्रेमानन्द ने वस्त्र को न स्वीकार करके भागवतोक्त 'दाम' को ही स्वीकार किया है। परन्तु दूसरी ओर वृक्ष-गत को लेकर होने वाले नद यशोदा के विनंदाद को जिसका संकेत ब्रह्मवैवर्त में है, उन्होंने स्थान दिया है।^{३५} यही नहीं प्रेमानन्द ने अपना ओर से इस गंभीर परिस्थिति का शुभ परिहार भी करा दिया है जो ब्रह्मवैवर्त में भी नहीं है।

प्रेमानन्द ने यमलार्जुन का यमुनातटवर्ती होना तथा उनके गिरने से कृष्ण का छिप जाना चित्रित किया है यह भी उनकी अपनी कल्पना प्रतीत होती है।^{३८} भागवत के वर्णन से ऐसा लगता है कि वृक्ष घर के समीप ही थे। इस घटना के अंत में कृष्ण के यमुनातट पर खेलने जाने का उल्लेख 'सरित् तीर गतं कृष्ण भग्नार्जुनमथा हृदयत्' इसकी और भी पुष्टि करता है।

भागवत में डोरी के लिये 'तदगि द्व्यगुल न्यून' लिखा है और अन्य कवियों द्वारा इसका अनुकरण भी किया गया है परन्तु प्रेमानन्द ने दो के स्थान पर 'चार' कर दिया है।

साधी साधी थाकी यशोमती

रहे टुकड़ आगल चार रे।

—श्रीमद भा०, पृ०, २५६

सूरदास की मौलिकता—भागवत के अनुसार यशोदा द्वारा कृष्ण के उलूखल बंधन का कारण उनका घर में माखन चुराना है किन्तु सूरदास ने इससे भिन्न कारण दिये हैं। सवेरे एक ग्वालिन शिकायत करती है और दूसरी कृष्ण का वह पकड़ कर यशोदा के सानने लाती है तथा उलाहना देती है।^{३९} सूर ने इसी के साथ भागवत के 'यथावृत्तिच्यमाने पयसि' का भी संकेत 'उफनत क्षीर जननि करि व्याकुल, इहि विधि भुजा छुड़ायो' लिखकर कर दिया है, परन्तु यहाँ कृष्ण बँधी हुई भुजा को छुड़ाते हैं और फिर बाँधे जाते हैं, इसके अनन्तर अन्य ग्वालिन यशोदा को कृष्ण के बाँधने पर फिर उलाहना देती है।

दूसरा कारण नितान्त नवीन है। कृष्ण ने किन्हीं ग्वालिन के लडके को मारा है और वह इसकी सूचना बलराम को देती है। इसके अनन्तर बलराम का यशोदा के पास आकर कृष्ण के बाँधने पर रोय प्रकट करना और अपने को स्थानान्तरित करने की याचना करना आदि मारा का मारा प्रसंग मौलिक है।^{४०}

उलूखन-बधन ही कृष्ण के 'दामोदर' नाम के मूल में माना जाता है। सूर तथा अन्य कई कवियों ने इसका स्पष्ट निर्देश किया है।^{४१} भागवत में दामोदर शब्द के द्वारा इसका संकेत मात्र कर दिया गया है।^{४२}

तद्दामोदरेणतरसोत्कलितांघ्रिवन्धौ

भास ने अवश्य इसका उल्लेख किया है—

'दामोदलोणाम होदु त्ति'

—वाल्मीकि, अं ३

परन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि सूर ने इस सत्य से अवगत होते हुए भी कृष्ण के उदर-बन्धन के स्थान पर कर-बन्धन का वर्णन किया है।^{५१}

कृष्ण द्वारा यशो को चतुर्भुज रूप में दर्शन देने की बात भी सूर की अपनी कल्पना प्रतीत होती है।

दोउ कर जोरि करन दोउ अस्तुति चारि भुजा तिन्है प्रकट दिखाई।

—मू० सा०, पृ० १८३

इसके अतिरिक्त बन्धन के प्रसंग में भागवत में तो यशोदा 'स्वगेहदामानि' अर्थात् अपने घर की रस्सियों का ही प्रयोग करती है किन्तु ब्रजभाषा के कई कवियों ने इसे बढ़ा कर कई घरों की रस्सियों से बाँधने का वर्णन किया है। गुजराती कवियों ने इसी को दूसरे प्रकार से प्रस्तुत किया है।^{५२}

लौकिक गोकुल लीलाएँ

कृष्ण के संस्कार

नामकरण—नामकरण का उल्लेख भागवत के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त, विष्णु तथा ब्रह्मपुराण में भी मिलता है। इसका वर्णन दोनों भाषाओं के कवियों ने किया है परन्तु प्रेमानंद ने सर्वाधिक विस्तार दिया है। नंददास, भालण केशवदास आदि ने भागवत का ही आधार लेकर अनुवाद कर दिया है। सूर के वर्णन में अनुवादात्मकता तो नहीं है परन्तु संक्षेप अधिक है।

भागवत में वसुदेव द्वारा नामकरण के लिये गर्ग के भेजे जाने का उल्लेख मात्र है^{५३} किन्तु प्रेमानंद ने अपनी कल्पना से इस प्रसंग का सांगोपांग वर्णन किया है। वे अपने दशम स्कंध में वसुदेव द्वारा गर्ग का बुलाया जाना तथा उनका अच्छी प्रकार सत्कार एवं चरणामृत लेना वर्णित करते हैं। फिर वसुदेव उनसे सारा रहस्य बताकर दीनतापूर्वक गोकुल जाने, नामकरण कर आने तथा जन्मपत्र बनाने की प्रार्थना करते हैं। इसके साथ वसुदेव की दक्षिणा का स्मरण आता है जिसे चुकाने में अपने को असमर्थ पाकर वे भविष्य में कृष्ण द्वारा चुकाए जाने की बात करते हैं।^{५४} इसके उत्तर में गर्ग कहते हैं कि वे कृष्ण रूप में भगवान के दर्शन करने जा रहे हैं अतएव ऐसी ओछी बात कहना उचित नहीं।^{५५}

आगे चलकर गोकुल में नामकरण संस्कार का भी जो वर्णन प्रेमानंद ने किया है वह भागवत पर ही सर्वथा आधारित नहीं है। भागवत में बलराम के नामकरण में केवल 'राम' 'बल' और 'संकर्षण' इन तीन का ही कथन है किन्तु ब्रह्मवैवर्त में

‘हलधर’, ‘मुसली’ आदि अन्य नामों का भी समावेश है । दोनों में ‘सकर्षण’ नाम की व्युत्पत्ति भी विभिन्न प्रकार से दी गई है ।^{१८} प्रेमानंद ने यहाँ पर स्पष्टतया ब्रह्मवैवर्त का अनुसरण किया है ।^{१९} ‘मुसली’ आदि नाम न देने से यह भी स्पष्ट है कि यह केवल आशिक अनुकरण है, अनुवाद नहीं ।

दूसरी बात यह है कि प्रेमानंद ने बलराम से कृष्ण के नामकरण के समय की परिस्थिति में भेद कर दिया है जिसका श्रेय कदाचित् उन्हीं को है । भागवत आदि पुराणों में सम्पूर्ण नामकरण सस्कार एकान्त में होता है किन्तु प्रेमानंद न केवल कृष्ण का नामकरण एकान्त में कराया और साथ ही गर्ग द्वारा उनकी प्रदक्षिणाएँ भी ।^{२०} भागवत में एकान्त की बात वसुदेव अथवा गर्ग से न कहला कर नंद के मुख से कहलाई गई है । भागवत में बलराम का नामकरण कृष्ण से पहले होता है परन्तु ब्रह्मवैवर्त में बाद को । प्रेमानंद ने इस विषय में भागवत का आधार लिया है । ब्रह्मवैवर्त में गर्ग इस अवसर पर गोलोक का वृत्तान्त सुनाते हैं । प्रेमानंद ने उसे ग्रहण नहीं किया । परन्तु गर्ग द्वारा कहे गये कृष्ण जन्म के रहस्य को अधिक विस्तार से वर्णित किया है ।^{२१} नंद कृष्ण को देखकर मोहग्रस्त हो जाते हैं और उक्त रहस्य उन्हें भूल जाता है ।^{२२}

भूरसागर में इस प्रसंग से सम्बन्धित केवल दो ही पद मिलते हैं जिसमें न वसुदेव के द्वारा गर्ग के भेजे जाने की बात है और न नामकरण की ही । एकान्त की भी बात नहीं है क्योंकि बंदीजन चारण आदि सभी नद गृह में जा पहुँचते हैं ।^{२३}

नंददास ने नामकरण के प्रसंग को उसके पूर्व आने वाले जम्हाई के प्रसंग से सम्बद्ध कर दिया है जिसका उल्लेख उसके अन्तर्गत किया जा चुका है । उनका तथा गुजराती के भालण और केशवदास आदि के द्वारा किया हुआ वर्णन भागवत पर ही आधारित है ।

अन्नप्राशन—भागवत में तो नहीं किन्तु ब्रह्मवैवर्त में इसका उल्लेख है ‘अस्यान्नप्राशन्तायाह नामनुकरणाय च’ (कु० ख० १३, ४७) भूरदास तथा परमानंद दास आदि अष्टछायी कवियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी कवि ने इसका वर्णन नहीं किया है ।^{२४} सूर ने इसका कई पदों में पूर्णता से वर्णन किया । मणि-कंचन के थालों में षट्स व्यंजन बनते हैं और नंद स्वयं जाकर सारी जाति को बुला लाते हैं ।

वर्षगांठ—वर्षगांठ का प्रच्छन्न उल्लेख जन्मनक्षत्र के रूप में भागवत में दो स्थानों पर मिलता है ।^{२५} प्रथम में स्त्रियों के एकत्र होकर विधिपूर्वक कार्य सम्पादित करने का वर्णन है । इसका सूर तथा वल्लभरसिक ने अनुसरण किया है ।^{२६}

कर्णछेदन—कर्णछेदन का कोई पौराणिक उल्लेख नहीं मिलता और सूर ने ही इसका वर्णन किया है।^{१७}

रक्षाबन्धन—इसका भी पौराणिक आधार नहीं है, ब्रजभाषा के ही कुछ कवियों ने इसका भी वर्णन किया है।^{१८}

बाल-लीला

पुराणों में कृष्ण की बाल-लीलाओं को सर्वाधिक महत्व भागवत में प्राप्त हुआ। पूतना तृणावर्त आदि से सम्बन्धित पूर्वोक्त अलौकिक लीलाओं के अतिरिक्त अनेक लौकिक लीलाओं का भी वर्णन उसमें मिलता है। भागवत को लौकिक लीलाओं को आधार मानकर तथा स्वतंत्र रूप से भी अनेक कवियों द्वारा कृष्ण के बाल-चरित का विवेक विस्तार किया गया। ऐसे कवियों में ब्रजभाषा के सूर तथा गुजराती के भालण के नाम अग्रगण्य हैं। ब्रजभाषा ने सूर के अतिरिक्त अन्य अष्टछापी कवियों तथा रसखान, तुलसीदास आदि ने भी कृष्ण के बाल-विनोद का चित्रण किया है, इसी प्रकार गुजराती में तरसा, केशवदास, प्रेमानंद, तथा शिवदास आदि ने।

आगे कृष्ण के घुटनों चलने, तुतलाने, खेलने माखन चोरी करने आदि लौकिक बाल-लीलाओं का उनकी पौराणिक पृष्ठभूमि अथवा स्वतंत्र स्थिति को स्पष्ट करते हुए संक्षेप तुलनात्मक निरूपण किया गया है।

घुटनों और पैरों चलना—इसका आधार भागवत ही है किन्तु एक तो उसमें बलराम और कृष्ण दोनों को समान महत्व दिया गया है दूसरे यशोदा, रोहिणी तथा नंद किसी के द्वारा चलना सिखाने का कोई संकेत नहीं मिलता।^{१९} सूर ने कृष्ण के उलटने, घुटनों चलने तथा पैरों चलना सीखने का अत्यन्त सूक्ष्म रूप से वर्णन किया है। नंददास के नंद भी कृष्ण को उंगली पकड़ा कर चलाते हैं। भालण ने इसका वर्णन न करके केवल कृष्ण के रेंगने का वर्णन किया है। उन्होंने तथा केशवदास ने इसके अतिरिक्त कीचड़ में हाथ डालने तथा सोते हुए सर्प की पूँछ पकड़ लेने का भी वर्णन किया है। कीचड़ से खेलने की बात भागवत पर आधारित होने के कारण प्रेमानंद आदि अन्य दशमस्कंधकारों ने भी वर्णित की है।^{२०}

हाथ में नवनीत लिए प्रतिबिम्ब दर्शन—इसका वर्णन सूर, नंददास, भालण आदि के द्वारा हुआ है।^{२१} सूर ने प्रतिबिम्ब संबंधी चित्रण अनेक रूप में किया है।

बछड़े की पूँछ पकड़ना—भागवत में 'प्रगृहीतपुच्छै' के रूप में इसका उल्लेख है। गुजराती भाषा के ही कवियों ने इसका वर्णन किया है।^{२२}

तोतली बोली—इसका वर्णन भागवत में नहीं मिलता किन्तु दोनों भाषाओं के कवियों ने किया है। प्रेमानन्द ने तोतली बोली के स्थान पर बोलना सीखने का वर्णन किया है।^{६५}

आँगन में नृत्य—इस लीला का उल्लेख भागवत में नहीं है पर दोनों भाषाओं के कई कवियों ने इसे चित्रित किया है।^{६६}

सुँह में अँगूठा डालना—भागवत में इसका वर्णन मार्कण्डेय ऋषि के प्रसंग में बारहवें स्कंध में मिलता है।

चारुगुलिभ्यां पाणिभ्यामुत्थीय चरणाम्बुजम् ।

मुखे निधाय विप्रेन्द्रो ध्यंतं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥

—अ० ९

दोनों भाषाओं के कवियों ने कदाचित् इसी को आधार मान कर ऐसा चित्रण किया है।^{६७}

लघुशंका करना—भागवत के 'कुल्ले मेहनादीनि वत्सो' के आधार पर कुछ गुजराती कवियों ने इसका वर्णन किया है।^{६८}

मथानी पकड़ना—उलूखल-वंधन के प्रसंग में भागवत के एक श्लोक में इसका उल्लेख है।

तां स्तन्यकाश आसाद्य मथ्यन्तीं जननीं हरिः ।

गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥४॥

—स्क १०, अ० ९

दोनों भाषाओं के कवियों ने इसका वर्णन किया है।^{६९} सूर तथा नरसी ने मथानी पकड़ने को लेकर पौराणिकता के आधार पर असाधारण परिस्थिति का चित्रण किया है जिसका संकेत भागवत में नहीं है। भालण ने भागवत का ही अनुकरण किया है और प्रेमानन्द ने भी।

चोटी बढ़ने की लालसा से दुग्धपान—यशोदा द्वारा चोटी बढ़ने का प्रलोभन देकर दूध पिलाने की बात भागवतकार ने नहीं लिखी है पर सूर ने उसका वर्णन किया है।^{७०} नरसी के पद में भी दूध पीने के कारण बेणी के बलभद्र की बेणी से भी अधिक मोटी हो जाने का वर्णन है।

बेण बागे बहला जी तमारी, बलभद्र पे मोटी थाय रे।

—ना० कृ० का०, पृ० ४६२

‘वेण’ का अर्थ यहाँ बाँसुरी नहीं है अतएव ‘वागे’ शब्द ‘वाढो’ के अर्थ में प्रयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि इसके बिना ‘वलभद्र पे मोटी थाय रे’ से इसकी संगति ही नहीं बैठती। भालण ने यद्यपि चोटी बढने तथा दूध पीने का वर्णन एक ही पद में किया है परन्तु दूसरे को पहले का कारण बता कर प्रलोभन देने की बात व्यक्त नहीं की।^{१९}

जैवन—इसका भी भागवतकार द्वारा वर्णन नहीं मिलता। सूर ने ‘नन्द’ और ‘कान्ह’ को एक साथ जीमते हुए चित्रित किया है।

‘जैवत कान्ह नन्द इक ठौरे’।

—सू० सा० पृ० १६१

नरसी ने यशोदा द्वारा कृष्ण के जिमाने का वर्णन किया। वहाँ इस प्रसंग में नन्द तथा रोहिणी का कोई स्थान नहीं है केवल बलराम के साथ भोजन करने का उल्लेख है।^{२०}

चंदखिलौना—भागवत में इसका उल्लेख है ही नहीं, यह प्रसंग कदाचित किसी अपौराणिक लोक प्रचलित परम्परा के कारण कृष्ण की बाल-क्रीड़ा के साथ समाविष्ट हुआ है क्योंकि नवी शती के मध्य की कृति तिरुमोली (दक्षिण के कवियों की कृष्ण लीला विषयक गीतियों का संग्रह) में पेरियालवार द्वारा लिखित चन्द्र और कृष्ण विषयक एक गीत उपलब्ध होता है।^{२१} पेरियालवार के इष्टदेव वटपत्रशायी बालमुकुन्द बताए जाते हैं।^{२२} गीत में यशोदा की भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई है किन्तु इसका कहीं भी वर्णन नहीं मिलता कि यशोदा चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को दिखाकर कृष्ण का मन बहलाती है। गुजराती और ब्रज दोनों भाषाओं में उसका वर्णन मिलता है।^{२३}

सूरदास के कृष्ण चन्द्रमा को खेलने के लिये ही नहीं चाहते वरन् उससे क्षुधा शान्ति करने की इच्छा भी करते हैं और वे जलभाजन में प्रदर्शित चन्द्र-बिम्ब से सतुष्ट न होकर रोते रोते सो जाते हैं, परन्तु नरसी के कृष्ण यह सब नहीं करते। एक बार तो वे माखन पाकर चन्द्रमा की याचना करना भूल जाते हैं और दुबारा जल में उसका प्रतिबिम्ब देखकर शांत हो जाते हैं। न वे चन्द्रमा को भोजन के लिए चाहते हैं और न यशोदा उनसे यही कहती है कि चन्द्र तुम से डरता है। सूरदास का वर्णन अधिक विस्तृत है और उसमें नन्द आदि का उल्लेख करके विविध प्रकार की परिस्थितियों का संकेत किया गया है।

नरसी के अतिरिक्त किसी अन्य गुजराती कवि द्वारा इस प्रसंग का वर्णन प्राप्त नहीं होता।

कृष्ण का सोना और मीठी कथा—शकट-भंजन के प्रारम्भ में भागवत में कृष्ण के शयन का वर्णन है जिसकी ओर शकट के प्रसंग में संकेत कर दिया गया है। यहाँ तात्पर्य उन कवियों से है जिन्होंने कृष्ण के शयन को स्वतन्त्र रूप से वर्णित किया है।

सूरदास ने यशोदा द्वारा कृष्ण के वहलाने सुलाने के निमित्त रामकथा कहलाई है जिसमें कृष्ण सीताहरण के प्रसंग को सुनते ही चौंक कर लक्ष्मण से धनुष माँगने लगते हैं। इस प्रकार के वर्णन से उनका अवतारी रूप स्पष्ट किया गया है।

रावण हरण कर्यो सीता को सुनि करुणामय नीद विसारी।

सूर व्याम कर उठे चाप को लछिमन देहु जननी भ्रम भारी।

—सू० सा०, पृ० १५७

इसके अतिरिक्त सूर ने कई अन्य प्रसंगों में तथा स्वतंत्र रूप से भी सोने का वर्णन किया है।^{१०} ब्रजभाषा के अन्य किसी कवि ने सभवतः उपर्युक्त प्रकार का वर्णन नहीं किया। गुजराती कवियों में भी शयन का ही वर्णन मिलता है, इसका नहीं।^{११} भालण के 'सूतो मूतो अति हसे' और सूर के 'कबहुँ अधर फरकावै' वाले पद लगभग समान स्थिति को व्यक्त करते हैं।

कृष्ण का जगाया जाना, प्रभाती—सूर ने कृष्ण के जगाये जाने का वर्णन किया है। प्रभात होने पर कृष्ण के साथी ग्वाल-वाल आ जाते हैं। यशोदा उन्हें इसकी सूचना दे कर जगाती है।^{१२} नरसी की यशोदा ग्वाल-वालों को बुला देने के लिए कहती है।

हमणां हु तेडावु संगे रमवा गोवाला।

—न० कृ० का०, पृ० ४६६

यो नरसी ने अनेक प्रभातियाँ लिखी है जिनमें जगाये जाने का वर्णन भी है।

(पृ० ४७५)

खेल—मखाओ के साथ कृष्ण नाना प्रकार के खेल खेलते हैं। सूर ने भौंरा-चकडोरी, चौगान, चोरमिहीचिनी आदि खेलने का वर्णन किया है।^{१३} नरसी ने भी आँख मिचौनी का उल्लेख किया है किन्तु प्रसंग नितान्त पृथक् है। उद्धव से अपने जीवन की क्रीडाओं को कहते हुए कृष्ण इस खेल की भी याद करते हैं:

ते दाडेने रम्या रे आंखविचामणी रे,

छबीलो छुपाणा कदम केरी छांह।

—न० कृ० का०, पृ० ५३१

भागवत में इन खेलों का वर्णन वृंदावन जाने के बाद मिलता है।

हाऊ—कृष्ण को डराने के लिए हाऊ का वर्णन दोनों भाषाओं में मिलता है।^{१८} भालुण और केशवदास के पद आपस में बहुत मिलते हैं, केवल एक दो जगह पर पाठभेद है। सूर ने इसे कृष्ण के ईश्वरत्व से समन्वित करके भी प्रस्तुत किया है।

माखनचोरी—कृष्ण की लौकिक बाललीलाओं में कदाचित् सबसे प्रमुख स्थान माखनचोरी का ही है। यह कथा न तो विष्णुपुराण में है न महाभारत में, हरिवंश में प्रसंगवश आ गई है, भागवत में अवश्य इसकी बड़ी धूमधाम है। भागवत के अतिरिक्त यह ब्रह्मवैवर्त तथा भास के बालचरित में भी है।^{१९}

भागवत में यह एक प्रकार से यमलार्जुन-मोक्ष तथा उलूखल-बंधन की भूमिका स्वरूप भी आती है और उसने पहले भी इसका वर्णन है। कृष्ण चोरी में माखन स्वयं ही नहीं खाते वरन् बदरों को भी खिलाते हैं, वर्तनों को तोड़ देते हैं, कभी कुछ न पाने पर सोते हुए बालको को रला देते हैं। छींके पर रखे हुए वर्तनों में उलूखल आदि पर चढ़ कर छेद कर देते हैं और अंधेरे घर में अपनी मणियों के प्रकाश में चोरी करते हैं।^{२०}

दोनों भाषाओं के कवियों ने इस लीला का वर्णन किया है। सूरसागर में भागवत से इस विषय में निम्नलिखित भिन्नताएँ हैं।

१. माखनचोरी का वर्णन गोपियों के उपालभ के माध्यम से ही न करके स्वतंत्र रूप से भी किया गया है।

२. स्वतंत्र रूप से किये गए वर्णनों में अनेक ऐसी बातें हैं जिनका भागवत में संकेत तक नहीं है।

३. भागवतोक्त कई बातों का वर्णन या तो मिलता ही नहीं या परिवर्तित रूप में मिलता है। न मिलने वाली बातों में उदाहरणार्थ कृष्ण के द्वारा बन्दरों को माखन खिलाना और परिवर्तित रूप में सोते हुए बालको पर दही छिड़क देना। भागवत में उन्हें जगाने का ही वर्णन है।

सूर द्वारा वर्णित माखनचोरी के विभिन्न रूप—

अ. अंतर्धामी कृष्ण एक ब्रज युवती के मन की बात समझ कर उसकी इच्छा-पूर्ति के लिये अकेले माखनचोरी करते हैं और अपने प्रतिबिम्ब को अन्य बालक समझ कर उससे चोरी छिपाने का आग्रह करते हैं।

आ. ग्वाल-बालो के साथ चोरी करते हैं।

इ. अँधेरी साँझ में ग्वालिन के घर जाते हैं, छिपने के लिये चतुर्भुज रूप धारण कर लेते हैं। ग्वालिन उन्हें पकड़ कर यशोदा के पास ले जाती है।

ई. चीटी निकालने के वहाँ चोरी करते हैं।

उ. अनेक ब्रज बालाएँ कृष्ण को आलिंगन में भर कर मुख पाती और चाहती थी कि कृष्ण उनके घर चोरी करे। ऐसी एक विशिष्ट गोपी को कृष्ण पाँच वर्ष की अवस्था से बारह वर्ष के होकर रिझाते हैं। उपालभ देते हुए वह अपनी फटी चोली यशोदा को दिखाती हैं।

ऊ. पकड़े जाने पर स्त्री का रूप धारण कर लेते हैं।

ए. कृष्ण रास्ते चलती गोपियों के पास से माखन लूट भी लेते हैं।

अन्य कवियों द्वारा माखनचोरी का वर्णन^{६२}

नंददास ने भी उलूखल एवं सखाओं के सहारे ऊपर चढ़ कर माखन चुराने तथा अपने प्रतिविम्ब में भेदन बताने की बात कहने का वर्णन किया है। तुलसीदास ने कृष्ण गीतावली में भागवत की ही तरह गोपियों द्वारा 'गोरस हानि' के उलाहने देने का वर्णन किया है। नरमी का वर्णन भी उपालभ के ही रूप में है परन्तु उसमें कुछ भिन्नता है। कृष्ण बाँसुरी फेंक कर ऊँची मटकी को तोड़ देते हैं, तसले से दही पी लेते हैं और गोपी को भुला देने के लिए उसका हार तोड़ देते हैं। भालण और केशवदास के वर्णनों का आधार भागवत ही है किन्तु केशवदास ने यशोदा-गोपी-सवाद को विशेष विस्तार से प्रस्तुत किया है, उसमें कुछ नवीनताओं का भी समावेश मिलता है जैसे, कृष्ण गोपी द्वारा पकड़े जाने पर उसी गोपी के बालक का रूप बना लेते हैं। प्रेमानंद ने भी भागवत के अनुसरण के अतिरिक्त इस प्रसंग में माखनचोरी को एक नवीन रूप दिया है। एक बार कृष्ण एक गोपी के घर घुस जाते हैं। वह जान जाती है और द्वार बंद करके उन्हें समझाती हैं फिर यशोदा के पास आ कर कहती हैं कि मैंने कृष्ण को माखन चुराते पकड़ लिया। यशोदा जब आकर देखती हैं तो कृष्ण अतर्कित हो जाते हैं। सारी गोपियाँ चकित होती हैं कि वे किस प्रकार निकल भागे इतने में यशोदा को एक दासी आकर सूचना देती है कि कृष्ण जाग गये हैं, चलो। यशोदा घर आती हैं तो कृष्ण वही मिलते हैं। इस प्रकार गोपियों का कथन असत्य सिद्ध हो जाता है।

बाल कृष्ण के व्याह की बात—तुलसीदास तथा भालण ने इसका भी उल्लेख किया है। तुलसी की यशोदा सास ससुर और दुलहिन का नाम लेकर कृष्ण को माखन चोरी से रोकती हैं।^{६३}

गोदोहन सीखना—भागवत में गोकुलवासी कृष्ण को गोदोहन में प्रवृत्त नहीं दिखाया गया है, किन्तु सूरमागर में उनके द्वारा गोदोहन-कार्य सीखने का वर्णन प्राप्त होना है।^{१४} नरसी ने गोदोहन का जो वर्णन किया है उसमें कृष्ण सीखने की इच्छा व्यक्त नहीं करते वरन् एक गोपी उन्हें इस कार्य में पटु समझ कर आमन्त्रित करती है।^{१५} नरसी के अतिरिक्त गुजराती के अन्य किसी कवि ने इस प्रकार का वर्णन नहीं किया है।

अलौकिक वृन्दावन-लीलाएँ

वृन्दावन-गमन—गोकुल से वृन्दावन गमन करने का निश्चय सूर के अनुसार यशोदा और नंद, नंददास, भालण तथा केशवदास के अनुसार उपनंद, प्रेमानंद के अनुसार नंद, उपनंद तथा वृषभानु की सम्मति से हुआ।^{१६} इन सबमें भालण, नंददास और केशवदास के वर्णन भागवत के अधिक निकट हैं क्योंकि उसमें उपनंद का इसी प्रकार उल्लेख है।

तत्रोपनन्द नामाह गोपोज्ञान वयोधिकः

—१० ११:२०

इस घटना का अन्य पुराणों में कुछ भिन्न प्रकार से वर्णन है किन्तु सभी कवियों ने भागवत का ही आधार लिया है। हरिवंश में भेड़ियों का आक्रमण भी गोकुल छोड़ने का कारण बनता है।^{१७} किन्तु किसी भाषा के कवि ने ऐसा नहीं लिखा। हरिवंश में वृन्दावन-गमन के समय कृष्ण की आयु सात वर्ष की है पर सूर ने पाँच वर्ष और प्रेमानंद ने चार वर्ष की मानी है।^{१८} सूर का वर्णन सक्षिप्त तथा प्रेमानंद का विस्तृत है।

प्रेमानंद के विस्तृत वर्णन में वस्तु की दृष्टि से कई बातें विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

प्रेमानंद ने वृन्दावनस्थ इस नवीन निवारा-स्थल में भी गोकुल नाम का उल्लेख किया है।

बहूल निवास श्री गोकुल गाम; घणी गाय माटे गोकुल नाम।

—श्रीम० भा०, पृ० २६०

यही नहीं संध्या समय कृष्ण के गोकुल फिर जाने और वृन्दावन में आए हुए वत्सासुर के नाशोपरान्त उन्होंने गोकुल में आनंदोत्सव होने का स्पष्ट संकेत किया है।

आणद गोकुल मां घणो, वच्छ-वध पराक्रम कह्युरे।

—श्रीम० भा०, पृ० २६१

इसके अतिरिक्त प्रमानंद ने वृन्दावन में आ जाने के बाद भी गोकुल की बाल-लीलाओं, माखन-चोरी आदि का वर्णन किया है।^{१८} ऐसा मिश्रण कदाचित् प्रमानंद ने ब्रह्मवैवर्त के 'बकप्रलम्बकेशवधपूर्वकवृन्दावनगमननामषोडशोऽध्यायः' के अनुसार किया हो। नरसी ने भी बकासुर, अघासुर तथा केजी आदि का गोकुल ही में उल्लेख किया है।^{१९}

वत्सासुर तथा बकासुर—इनके सम्बन्ध में दोनों भाषाओं के कवियों में प्रायः बहुतो ने भागवत का अनुसरण किया है केवल प्रमानंद ने परिवर्धित करके नवीनता प्रदान की है। सूर के वत्सासुर-वध में भी एक नवीनता है वह यह है कि एक बार बलराम और दुवारा कृष्ण द्वारा उसे मृत्यु प्राप्त हुई।^{२०} प्रमानन्द ने वत्स और बक दोनों असुरों को गोकुल के अन्य असुरों की तरह कंस से सम्बद्ध कर दिया है तथा वपु-वृद्धि द्वारा उनके वध के पश्चात् विमान के जाने का वर्णन किया है। भागवत में इन बातों का किञ्चित् संकेत नहीं है। प्रमानंद ने बक को बकी अर्थात् पूतना का भाई बताया है। भालण तथा नददास ने भी वैसा ही उल्लेख किया है। नददास ने तो बक का कंस से स्पष्ट सम्बन्ध बताया है।^{२१} जिसका आधार कदाचित् भागवत का 'बकं कंस सखं' है। इस स्थल पर बकी-बक का यह सम्बन्ध न भागवत में दिया है न ब्रह्मवैवर्त में। दूसरी ओर कृष्ण के अग्निवत् होने के कारण बक के मुख से निकलने का वर्णन दोनों पुराणों में है पर प्रमानंद ने नहीं किया।

अघासुर-वध—इस प्रसंग में आकर भागवत में भी बकी-बक के साथ अघासुर के भ्रातृ सम्बन्ध तथा कंस प्रेरित होने की बात स्वीकार की गई है।^{२२} सभवतः इसी उल्लेख के कारण कवियों ने बकासुर को पूतना का भाई लिखा है। सूरदास ने अघासुर के वध का दो बार वर्णन किया है फिर भी उक्त दोनों बातों में से किसी का उल्लेख नहीं किया, नददास में अवश्य यह बातें पाई जाती हैं।^{२३} भालण ने अघासुर को कंस से सम्बद्ध न करके केवल पूतना से ही सम्बन्धित माना है। प्रमानंद की स्थिति भालण के विपरीत है। उन्होंने अघासुर को कंस द्वारा प्रेरित लिखा है पर पूतना के भाई होने की ओर संकेत नहीं किया। अघासुर के लिए भी स्वर्ग से विमान आया यह बात लिखना प्रमानंद नहीं भूले।

अघासुर स्वर्ग गयो बेसी दिव्य विमान रे।

—श्रीम० भा०, पृ० २६३

विधि मोह—इस कथा का भी आधार भागवत ही है। सूर ने इसका वर्णन चार पाँच बार किया है।^{२४} परन्तु किसी भी स्थान पर भागवत की तरह बलराम की

जिज्ञासा की बात 'सर्वं पृथक्त्यं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणाबलोऽवैत्' (१०:१३:३९) का उल्लेख नहीं मिलता। फिर सूर ने भागवत के 'अन्यत्रे' को स्पष्टतया ब्रह्मलोक में बदल दिया।

‘हरि लै बालक वत्स ब्रह्मलोकहि पहुँचाये’

—सू० सा०, पृ० १९३

इसके अतिरिक्त एक स्थल पर क्षण में ब्रह्मा का भूतल और क्षण में ब्रह्मलोक आना जाना भी लिखा है।^{१६} यह एक नवीनता है। सारी कथा को संक्षेप में कहते हुए भाल्लण ने भी सूर की तरह ब्रह्मा के बार बार आने जाने का उल्लेख किया है।^{१७} नददास और केशवदास ने भागवत का प्रायः अनुवाद ही किया है। प्रेमानंद के विधि-मोह वर्णन में भी अनेक नवीनताएँ हैं ब्रह्मा को परीक्षा लेने की प्रेरणा अधासुर-वध में प्रदर्शित कृष्ण की अलौकिक शक्ति को देखकर ही नहीं हुई वरन् उसके चर्म पर बैठ कर ग्वालों का जूठा खाते देख ब्रह्मा को उनके ईश्वरत्व पर सन्देह हुआ जिसके कारण उन्होंने गोवत्सहरण किया।^{१८} सूर की तरह प्रेमानंद ने भी 'अन्यत्रे' के स्थान पर स्पष्टतया ब्रह्मलोक का उल्लेख किया है।

वच्छ मूक्या ब्रह्मलोकमां वळी ब्रह्माजी आव्या फरी ।

—श्रीम० भा०, पृ० २६४

ब्रह्मा द्वारा मीन-रूप धारण—नरसी मेहता ने विधि-मोह का वर्णन न करके एक नवीन कथा दी है जिसका वर्णन कदाचित् अन्य किसी कवि ने नहीं किया। इस कथा में ब्रह्मा कृष्ण को ग्वाल वालों के समेत कलेऊ करते देखकर महाप्रसाद पाने की इच्छा से मीन रूप धारण करके यमुना में प्रविष्ट हो जाते हैं, कृष्ण इसे जान कर यमुना में हाथ न धोकर कमली से ही हाथ पोछ डालते हैं। एक अन्य स्थल पर यही कथा पाठ भेद से पुनः वर्णित मिलती है।^{१९}

धेनुकासुर-वध—इस प्रसंग में पुराणों में महत्वपूर्ण मतभेद है। हरिवंश और भागवत के अनुसार तालवनवासी गर्दभों का स्वामी धेनुकासुर बलराम पर प्रहार करता है और वे ही उसका सहार करते हैं किन्तु ब्रह्मवैवर्त में एक तो यह कथा कालीय-दमन और गोवर्धन-धारण आदि के पश्चात् दी गई है दूसरे उसमें धेनुक को दुर्वासा-शापित बालिपुत्र साहसिक बतलाते हुए उसके वध का श्रेय कृष्ण को दिया गया है।^{२०}

दोनों भाषाओं के उन सब कवियों में जिन्होंने इस प्रसंग का वर्णन किया है केवल भालण और प्रेमानंद ने ब्रह्मवैवर्त का अनुसरण करके कृष्ण द्वारा धेनुक का वध कराया है। भागवत के १५वें अध्याय की इस कथा को भालण ने १९वें अध्याय में प्रलम्ब-वध और दावाग्निपान के पश्चात् दिया है। भालण ने भी धेनुक के वध का श्रेय कृष्ण को दिया है और ब्रह्मवैवर्त के अनुसार ही गोकुल का उल्लेख किया है अन्यथा भागवत के अनुसार घटनास्थल तो वृन्दावन ही है।^{१०१} प्रेमानंद का यह अनुसरण आंशिक है क्योंकि न तो उन्होंने दुर्वासा-शाप का उल्लेख किया है और न कम में ही उन्होंने भागवत की भाँति इसको कालीय-दमन के पूर्व रखा है। गुजराती के केशवदास और ब्रजभाषा के सूर तथा नंददास ने भागवतानुसार धेनुकासुर का वध बलराम से हो कराया है।^{१०२}

कालीय-दमन—यह कथा भागवत के अतिरिक्त ब्रह्म, विष्णु, पद्म, हरिवंश और ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी प्राप्त होती है परन्तु सूरदास ने जिस रूप में इसे प्रस्तुत किया है वह इनमें से किसी पुराण में नहीं मिलता। सूरदास ने इस प्रसंग को कंस से सम्बद्ध कर दिया है। नारद कंस के पास जाकर उसके सामने कालीदह के कमल नद के द्वारा मँगवाने का प्रस्ताव रखते हैं फलतः कंस एक दूत के हाथ तत्काल राजाज्ञा पत्र द्वारा नद के पास भेज देता है। पत्र पाकर नद और यशोदा भयभीत एवं दुखी हो जाते हैं। सब अतर्यामी कृष्ण उनके पास जाकर कारण पूछते हैं और जानने पर कंस के पास कमल भेजने का आश्वासन देते हैं। कालीदह से फूल लाने तथा गोप कन्याओं को देने का उल्लेख भास ने अपने बालचरित के चतुर्थ अंक में किया है परन्तु कंस से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इन भूमिका के पहले सूर कृष्ण को यमुनादह में गिरने का स्वप्न देखते हुए चित्रित करते हैं।^{१०३} यमुनादह में कूदने का दूसरा कारण भी सूर ने दिया है। कृष्ण सखाओं के साथ यमुना तट पर कंदुक-क्रीड़ा करने जाते हैं। खेलते खेलते उनके द्वारा श्रीदामा की गेंद यमुनादह में गिर जाती है। श्रीदामा उसे पाने का हठ करता है और तब कृष्ण अपना वास्तविक उद्देश्य बताकर एक तट-वर्ती कदम्ब से कूद कर जल में प्रविष्ट हो जाते हैं।^{१०४} भागवत में इस कथा-वस्तु का उल्लेख नहीं है।

गुजराती कवि प्रेमानंद ने कमल लाने की बात का संकेत किया है और कंदुक-क्रीड़ा का वर्णन भी जो सूर जैसा ही है। यहाँ अन्तर एक तो यह है कि श्रीदामा का उल्लेख नहीं है दूसरे यमुना से गेंद निकालने की शर्त भी कृष्ण ने ही लगाई है।^{१०५}

दह में प्रविष्ट होते ही कृष्ण और नागपत्नियों में वार्तालाप होता है जिसे ब्रज-भाषा में सूर ने प्रस्तुत किया है और गुजराती में नरसी तथा प्रेमानंद ने। भागवत

म नागपत्निया नाग नाथे जाने के बाद उसकी मुक्ति के लिए प्रार्थना करती दिखाई गई है, उसके पहले नहीं। नरसी ने नाग-दमन का पूर्णतः भिन्न कारण दिया है। कृष्ण मथुरा में द्यूत-क्रीड़ा में नाग का शीश हार आए हैं उसी को प्राप्त करने के लिए वह यमुनादह में प्रवेश करने हैं।^{१०१}

सूरदास के अनुसार कृष्ण ने सोते हुए नाग की पंछ पर पैर रख कर उसे वक्रान्त जगा दिया वित्तु प्रेमानन्द ने कृष्ण की मुरली के नाद में उसके जग जाने का वर्णन किया है।^{१०२} भागवत में नाग कृष्ण के कूदने से प्रलाडित जल के शब्द को सुनकर आ जाता है सोने की बात वहाँ है ही नहीं। इसके अतिरिक्त शेष वर्णन प्रायः सभी कवियों ने भागवत के ही अनुसार दिया है। सूर ने अगती तवीन कथा का उपसंहार भी अंत में दिया है। कृष्ण नाग नाथने के बाद कमलों का समूह उस पर लाद कर तट तक लाते हैं। बाद में सब कमल सहस्र गादियों में भरकर पत्र सहित गोपी के द्वारा कंस के पास भिजवा दिये गए। कंस प्रसन्न हो कर नंद को 'शिरो पाव' देता है और कृष्ण बलराम को कलेवा भी भेंटता है।^{१०३} प्रेमानन्द ने नाग-लीला को गोकुल में ही घटित माना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने १६वें अध्याय के वर्णन में कदम्ब विषयक परीक्षित की जिज्ञासा का शुकदेव द्वारा जो समाधान कराया है वह भी भागवत के दशम स्कंध के १६वें अध्याय में नहीं है। ऐसा वर्णन भालण ने भी किया है जो उनके दशम स्कंध के उसीसवें अध्याय में मिलता है। प्रेमानन्द—'कदमनो वृक्ष केम रह्यो ते वदो व्यास कुमार' ॥ श्रीम० भा०, पृ० २७३ भालण—'वृक्ष कदंब जे सूक्यो नहि ते कहो मुजने खरु' ॥ द० स्क०, पृ० ६५

प्रेमानन्द का कालीय-दमन प्रसंग कंस से किसी प्रकार भी सम्बद्ध नहीं है और कदंब इस दृष्टि से वे सूर की अपेक्षा भागवत के अधिक समीप है।

प्रलम्बासुर-वध—भागवत में यह असुर एक गोप के वेश में आता है और उसका संहार बलराम करते हैं, विष्णु, ब्रह्मा, हरिवंश, आदि पुराणों में भी यही रूप है। परन्तु ब्रह्मवैवर्त में प्रलम्ब एक साँड है जिसका वध कृष्ण करते हैं।^{१०४} भास भी संकर्षण से ही प्रलम्ब का वध कराते हैं।

सूरदास ने इस कथा के दोनों रूपों को संयुक्त कर दिया और कृष्ण द्वारा गोप रूप प्रलम्बासुर का वध उसी प्रकार कराया जिस प्रकार ब्रह्मवैवर्त में है। उसमें कृष्ण वृष रूप असुर के दोनों सींग पकड़ कर मार डालते हैं, इसमें दोनों हाथ वह कृष्ण को तृणावर्त की भाँति आकाश में उड़ा ले जाता है।^{१०५} सूर और प्रेमानन्द ने उसे कंस से सम्बद्ध कर दिया है। प्रेमानन्द के अनुसार प्रलम्ब को मार कर कृष्ण-बलराम सगोप

गोकुल लौट आते हैं नन्ददास भालण तथा केशवदास इन सभी न भागवत का ही आधार लेकर इस कथा को लिखा है। फलतः कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं मिलता। नरसी ने दावानलपान के अनंतर एक 'बवानुर' का उल्लेख किया है। सम्भवतः उनका तात्पर्य प्रलम्बासुर से ही है यदि ऐसा है तो नरसी ने उसे गोप रूप में न प्रस्तुत कर के वृष रूप में ही प्रस्तुत किया है।^{११२}

गुजराती कवि कीकुवसही ने प्रलम्बासुर के आगमन के पहले कृष्ण बलराम की मंडली द्वारा राजा प्रजा तथा हाट का नाटकीय वर्णन किया है। गोप बालकों में से कोई सुनार बनता है कोई बजाज।^{११३}

दावानल-पान—भागवत में दावानलपान का दो बार वर्णन है तथा ब्रह्मवैवर्त में एक बार। किन्तु दोनों में अंतर यह है कि भागवत के कृष्ण दावानल का पान कर जाते हैं और ब्रह्मवैवर्त में उसका शमन करने हैं।^{११४} इन दोनों पुराणों में दावाग्नि के उद्भूत होने का कोई कारण नहीं दिया गया किन्तु सूर ने इसे भी अन्य असुरों की तरह क्रम से सम्बद्ध कर दिया। नन्ददास ने दावानल को अभिचार-जन्य माना पर पान करने के विषय में निश्चित कुछ नहीं कहा। एक जगह तो कृष्ण की एक शक्ति उनका आज्ञा से उसका पान करती है और दूसरी जगह स्वयं कृष्ण उसका पान करते हैं।^{११५}

गुजराती के किसी कवि ने ऐसा वर्णन नहीं किया। भालण तथा केशवदास ने भागवत का अनुसरण मात्र किया है। सूर ने इस कथा का वर्णन केवल एक बार प्रलम्ब-कथा के पूर्व किया है परन्तु अन्य सभी कवियों ने भागवत की भाँति दो बार वर्णन किया है। दावानल-पान करने से पहले कृष्ण का गोपो को आँख मीचने का आदेश देना भागवत में दूसरे प्रसंग में है किन्तु सूर तथा प्रेमानन्द ने कदाचित् उसी के प्रभाव से पहले प्रसंग में भी उसका समावेश किया है। नरसी ने भी ऐसा वर्णन एक स्थल पर किया है परन्तु उन्होंने आँख खुलने पर गोपो का मुँहबन से भाँड़ीरक बन पहुँच जाने का उल्लेख किया है।^{११६}

प्रेमानन्द ने १९वें अध्याय में जो वर्णन किया है उसमें दो नवीनताएँ उल्लेखनीय हैं। प्रथम, गोपों द्वारा दावानल से त्रस्त गायों की रक्षा की प्रार्थना किये जाने पर कृष्ण का वेणुनाद से उन्हें आकर्षित करना, वे सब की सब उनके दर्शनार्थ आग की ओर ही दौड़ती हैं परन्तु उनका एक रोम भी मलिन नहीं होता। द्वितीय यह कि दावाग्नि उनका पीछा करता हुआ कृष्ण के पास आता है और कृष्ण उसे वही अजलि में लेकर पी जाते हैं। घटना के अन्त में प्रेमानन्द सबके गोकुल लौट आने का उल्लेख करते हैं, बीच में वृन्दावन नाम आने से यह सिद्ध होता है कि उसका घटनास्थल वृन्दावन ही है गोकुल नहीं।^{११७}

‘वृन्दावन पावक परजल्यो

—श्रीम० भा०, पृ० २७४

गोवर्धन-धारण—यह प्रसंग भागवत (अ० २४, २५, २६, २७) के अतिरिक्त ब्रह्म, विष्णु, पद्म, हरिवंश तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी प्राप्त होता है किन्तु सूर और प्रेमानन्द को छोड़कर नन्ददास, भालण, केशवदास आदि दोनों भाषाओं के कवियों ने प्रायः भागवत का अनुवाद मात्र कर दिया है। दशम स्कंध से पृथक् नन्ददास ने इस विषय पर स्वतन्त्र रचना ‘गोवर्धनलीला’ भी रची। सूरसागर में गोवर्धन-धारण का प्रसंग तीन बार वर्णित है और वह भागवत से निम्न अंगों में भिन्न है।^{११८}

१. भागवत में इस कथा का प्रारम्भ नन्द और कृष्ण के विचार-विनियम से होता है किन्तु सूर इसका प्रारम्भ यशोदा और नन्द के सवाद से करते हैं। नन्द इन्द्रपूजा को विस्मृत कर देते हैं जिसका स्मरण यशोदा दिलाती है तथा साथ ही अपनी सखियों को भी सूचित करती है।

२. नन्द, उपनन्द और वृषभानु को बुलवाते हैं। भागवत में ‘वृद्धाश्रमपुरोग-मान्’ के द्वारा अन्य गोपों की उपस्थिति का संकेत मात्र है।

३. सूर के कृष्ण नन्द के आगे इन्द्र के स्थान पर गोवर्धन की पूजा का प्रस्ताव अत्यन्त संक्षेप में रख देते हैं, भागवत की तरह वे उसकी श्रेष्ठता के प्रतिपादन में कर्म-विधान की दार्शनिक व्याख्या नहीं करते। इस विषय में कृष्ण को एक स्वप्न होता है। गोवर्धन-पूजा के लिए जाने वालों में सूर राधा का भी उल्लेख करते हैं।

४. भागवत में कृष्ण स्वयं द्वितीय रूप धारण करके अपने को पर्वत कहते हुए भोग स्वीकार करते हैं किन्तु सूर के अनुसार पर्वत ही सहस्रभुजशाली रूप धारण करके भोग लगाता है और उसका यह रूप बिल्कुल कृष्ण के समान है।

५. इन्द्र ने जलवृष्टि के लिए भागवत में केवल ‘सावर्तक’ गण को आज्ञा दी है जबकि सूर ने ‘मेघवर्तक’ आदि अनेक नाम दिये हैं।

६. भागवत के अनुसार गर्व-भजन के अनन्तर इन्द्र केवल सुरभि को लेकर एकान्त में कृष्ण के आगे प्रणत होते हैं किन्तु सूर ने उनके साथ समस्त देवताओं के आने का वर्णन किया है।

इसी प्रकार प्रेमानन्द के वर्णन की निम्न विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं।^{११९}

१. कथारम्भ के समय संवाद के प्रसंग में यशोदा और नन्द के स्थान पर वृषभानु और उपनन्द का उल्लेख मिलता है।

२. कृष्ण न गोवर्धन-पूजा के पक्ष में जो तक दिये ह उनमें कम विधान का आधार नहीं लिया गया है ।

३. प्रेमानंद के अनुसार कृष्ण ही पर्वत में से हाथ लम्बा करके पूजा स्वीकार करते हैं ।

४. इन्द्र को उसकी उपेक्षा की सूचना नारद द्वारा मिलती है तब इन्द्र बारह मेघों को आज्ञा देते हैं जिनके नाम नहीं दिये गए हैं ।

५. प्रसंग के अंत में परीक्षित प्रश्न करते हैं कि सात दिन जो मूसलाधार वृष्टि इन्द्र ने की उसका सारा जल कहाँ गया और शुकदेव जी उत्तर देते हैं कि वह उनकी क्रोधाग्नि से प्रतप्त गोवर्धन में लीन हो गया । एक बूँद भी बाहर नहीं गई । भागवत में ऐसे प्रश्न का कोई संकेत नहीं मिलता ।

समानताएँ—१. गोपों ने अपने लकुट लगाकर गोवर्धन उठाए रखने में कृष्ण की सहायता की थी । इसका वर्णन सूर और प्रेमानंद दोनों ने किया है पर प्रेमानंद में विशेष प्रकार का विस्तार तथा मौलिकता है । उनके अनुसार यशोदा ने मथानी लगा दी जो छोटे बालक नहीं पहुँच पाते उन्होंने उलूखल और वृषभ का सहारा लिया । जिसके मन में गर्व आया कृष्ण ने उसकी ओर पर्वत को झुका दिया आदि ।^{१२०}

२. कनिष्ठिका उँगली पर पर्वत-धारण की बात ब्रह्मवैवर्त में और हाथ पर उठाने की बात भागवत में है । सूर तथा नददास ने भागवत और प्रेमानंद, भालणादि ने ब्रह्मवैवर्त का अनुकरण किया है तथा किसी किसी ने एक पग से सात दिन खड़े रहने का भी उल्लेख किया है ।^{१२१}

इस समय प्रेमानंद ने कृष्ण को चतुर्भुज रूप में प्रस्तुत किया है, नददास ने दोनों हाथों से वेणु बजाने का वर्णन किया है । नरसी मेहता के एक पद से, जिसमें गोवर्धन-धारण का भी उल्लेख है, ज्ञात होता है कि उनकी कल्पना में कृष्ण का चतुर्भुज रूप था किन्तु उसमें चारों हाथों की जो क्रियाएँ वर्णित हैं वे गोवर्धन धारण की स्थिति की द्योतक नहीं हैं ।^{१२२}

वरुणगृह से नंद का उद्धार तथा गोपों द्वारा वैकुण्ठ दर्शन—यह घटना केवल भागवत में वर्णित है । एकादशी व्रत के पश्चात् नंद यमुना स्नान के लिए जाते हैं वहाँ जल में प्रविष्ट होते ही वरुण का एक असुर उन्हें पकड़ कर वरुण लोक ले जाता है । कृष्ण उन्हें बचाने के लिए जाते हैं । वरुण उन्हें भगवान समझ कर पूजा स्तुति करते हैं फिर वे नंद को साथ लेकर वापस लौट आते हैं । नददास ने इन्द्र की तरह वरुण

के गव को भी चूर करने की बात कही है, सूर ने एक भृत्य के स्थान पर वरुण के अनेक दुर्तों द्वारा वरुणपाय से बद्ध करके नंद को वरुण लोक ले जाने की बात लिखी है। ऐसे ही कुछ अन्य सामान्य अन्तर हैं।^{१०३}

गुजराती कवियों में प्रेमानंद में इसी प्रकार के कतिपय अन्तर मिलते हैं किन्तु इस कथा के विशेष महत्त्वपूर्ण न होने के कारण वे भी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इस प्रसंग का एकमात्र उद्देश्य कृष्ण को परमेश्वर सिद्ध करना है।

वैकुण्ठ-दर्शन—भागवत के निम्नलिखित श्लोक में इसका साधारण सा उल्लेख है—

इति संचिन्त्य भगवान् महाकाश्रुणिको हरिः।

दर्शयामास लोकस्त्वं गोपाना तमसः परम ॥

—१०:२८ १४

सूर ने इसका उल्लेख नहीं किया पर प्रेमानंद ने इसे अधिक विस्तार दिया है। प्रेमानंद के अनुसार कृष्ण गोकुल को ही वैकुण्ठ में परिणत कर देते हैं। नंददास ने ऐसा चमत्कार प्रदर्शित नहीं किया केवल यही लिखा—

वैकुण्ठ मधि सुख है जिते। सब वृन्दावन ठाठा तिते।

—नद०, पृ० ३२०

सर्प, शंखचूड़, अरिष्ट, केशी और व्योम वध—भागवत में रास के अनन्तर वर्णित इन प्रसंगों में से अरिष्ट तथा केशी की कथा अन्य अनेक पुराणों में प्राप्त होती है। ब्रह्मवैवर्त में केशी-वध रास से बहुत पूर्व प्रलम्बासुर-वध के ठीक बाद में मिलता है। अरिष्टासुर का नाम इस पुराण में नहीं है किन्तु प्रलम्बासुर का रूप भागवत के अरिष्टासुर के ही समान है। भागवतकार ने पूतना और केशी को ही कंस से सम्बद्ध माना है।^{१०४}

सूरदास ने भी केशी के प्रसंग को इन पाँचों की अपेक्षा अधिक विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है। ब्रजभाषा में सूरसागर में ही इसका वर्णन है। इसके अतिरिक्त सूर ने सर्प रूपी विद्याधर, शंखचूड़, अरिष्ट, केशी तथा व्योमासुर के वध के प्रसंगों को भी वर्णित किया है। सूर ने अरिष्टासुर नाम न दे कर वृषभासुर नाम दिया है तथा केशी को व्योमासुर की तरह गोप रूप दे दिया है और व्योमासुर को भौमासुर कहा है।^{१०५}

गुजराती कवियों में नरसी ने इन घटनाओं का कृष्ण के जीवन में उल्लेख भी नहीं किया है। भालण, केशवदास प्रेमानंद तथा अन्य सभी दशमस्कंधकारों ने कथा-क्रम में यथास्थान इन प्रसंगों का वर्णन किया है। इनमें प्रेमानंद ने स्वभावानुसार

भागवत का अनुवाद मात्र न करके प्रायः सभी प्रसंगा को कुछ न कुछ परिवर्धित अथवा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। अरिष्ठासुर के स्थान पर उन्होंने भी वृषभासुर का प्रयोग किया है साथ ही उसे कस से सम्बद्ध भी कर दिया है। यह वृषभासुर वृन्दावन न जाकर गोकुल जाता है। प्रेमानंद ने केगी को मूर की भौंति गोप रूप नहीं दिया। व्योमासुर को भी कस की आज्ञा से आया हुआ लिखा है और संक्षेप में उसके वध का भी वर्णन किया है।^{१२६}

लौकिक वृन्दावन लीलाएँ

गोचारण—गोचारण का वर्णन प्रायः प्रत्येक अलौकिक लीला के प्रारम्भ में मिलता है क्योंकि कृष्ण इसी निमित्त प्रातः घोष से बाहर जाते थे और मध्या समय लौटते थे। मूर ने इसका वर्णन अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया है। उन्होंने गोप बालकों की विविध क्रोड़ाओं, गायों के भटक जाने, उन्हें खोजने, बंशी बजाकर या वृक्ष पर चढ़ कर उन्हें बुलाने आदि अनेक बातों का समावेश किया है।^{१२७}

भालण और प्रेमानंद आदि गुजराती कवियों ने कृष्ण के गाय बछड़े चराने का वर्णन किया है। प्रेमानंद ने इस प्रसंग में मूर की भौंति गायों के नाम भी दिये हैं। उनके कृष्ण बछड़े अन्य गोपों को चराने के लिये दे देते हैं और स्वयं गायें चराते हैं। मूर ने कृष्ण के साथ जिन बालकों का वर्णन किया है वे सयाने हैं पर प्रेमानंद के अनुसार समान।^{१२८}

कात्यायनि-व्रत और चीरहरण—इसका वर्णन भागवत द० स्क० के अध्याय २२ और ब्रह्मवैवर्त, कृष्णजन्मखण्ड के अध्याय २७ में प्राप्त होता है। दोनों भाषाओं के कवियों ने भागवत का ही अनुसरण किया है केवल दो एक स्थलों पर ब्रह्मवैवर्त का प्रभाव दिखता है। जैसे मूरसागर के एक पद में राधा-कृष्ण के वार्तालाप और कदंब का उल्लेख। किन्तु यही पद कुछ पाठभेद से दूसरे रूप में भालण के दशम स्कंध में भी प्राप्त होता है। अतः इस विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसमें भी वृषभानुदुलारी राधा का उल्लेख नहीं है केवल 'कदम्ब' का है।^{१२९} राधा का उल्लेख इस प्रसंग में अन्य किसी गुजराती कवि ने नहीं किया।

भागवत में चीरहरण करके कृष्ण बस्त्रों को 'नीप' पर तथा ब्रह्मवैवर्त में 'कदंब' पर रखते हैं। मूरदास ने चीरहरण लीला के दोनों वर्णनों में 'कदंब' और 'नीप' दोनों का उल्लेख किया है।^{१३०} अन्य कवियों में भालण, प्रेमानंद आदि ने कदंब का ही

वर्णन किया है।^{१३१} नीप और कदंब संस्कृत साहित्य में पर्याय रूप में तो व्यवहृत होते ही हैं किन्तु उनका भिन्न अर्थ भी होता है, जैसा कि भागवत के 'कदम्बनीपा' (१०. ३०: ९) से प्रकट है।

सूर तथा प्रेमानन्द ने भागवत की कथा के अतिरिक्त कुछ अश और उद्भावित किये हैं—

सूर द्वारा प्रस्तुत अन्तर

१. कात्यायिनि के स्थान पर शिव की पूजा।
२. कृष्ण का जल के अन्दर प्रकट होकर गोपियों की पीठ मलना।
३. गोपियों का यशोदा के पास उलाहना ले जाना।
४. कृष्ण का सोलह सहस्र गोप कन्याओं के वस्त्र तथा भूषण चुराना।

प्रेमानन्द द्वारा प्रस्तुत अन्तर

१. प्रारम्भ में कृष्ण के अभाव में तुलसी, पीपल, गाय आदि की पूजा का उल्लेख है, मध्य में कात्यायिनि की।
२. कृष्ण वस्त्र वृक्ष पर रख कर खखारते हैं जिससे गोपियों को वहाँ किमी पुरुष के होने का आभास होता है।
३. गोपियाँ वस्त्र पाने के बाद कृष्ण को नग्न करने की बात सोचती हैं जिसे जानकर कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं।

गुजराती के फाग नामक एक कवि ने इसी चीरहरण के अवसर पर गोपियों के नृत्य तथा कृष्ण के साथ रमण का भी वर्णन किया है।^{१३२} इन अन्तर्गों के अतिरिक्त घटना के मूल उद्देश्य, पति रूप में कृष्ण की प्राप्ति, अन्त में कृष्ण द्वारा रास के समय मनोकामनापूर्ति आदि का वर्णन सभी कवियों ने भागवत के ही अनुरूप किया है।

ब्राह्मण पत्नियों पर अनुग्रह—भागवत दशमस्कंध के २२वें अध्याय में दिया हुआ यह प्रसंग कवियों द्वारा प्रायः अनुवादात्मक रूप में वर्णित हुआ है। केवल एक ब्राह्मण पत्नी विशेष की कथाने, जिसमें उसने कृष्ण के पास न पहुँचने पर प्राण त्याग दिये हैं, सूर तथा प्रेमानन्द को अधिक आकर्षित किया। सूर ने उसके सम्बन्ध में अनेक पद लिखे हैं और उसे गोपी के रूप में प्रस्तुत किया है।^{१३३} प्रेमानन्द ने उसके रोके जाने का सम्पूर्ण वर्णन करके मृत्यु के अनन्तर चतुर्भुज रूप में परिणत हो जाने का उल्लेख भी किया है।^{१३४}

राधा प्रधान कृष्ण लीलाएँ

राधा-जन्म—ब्रह्मवैवर्त में राधा के पिता वृषभानु, माता कलावती, पति रायाण तथा जन्मस्थान गोकुल का स्पष्ट निर्देश है।^{१२५} पद्मपुराण में राधा के जन्म की तिथि 'भाद्रे मासे सितेपक्षे अष्टमी सप्तके तिथौ' बताई गई है। उज्ज्वलनीलमणि के एक श्लोक से राधा की माता कीर्ति सिद्ध होती है।^{१२६} कृष्णकाव्य में ब्रह्मवैवर्त के वृषभानु को पिता रूप में सर्वत्र लिया गया है परन्तु माता के रूप में कीर्ति को ही माना गया है। राधा का जन्मस्थान भी वरसाने में स्थित 'रावल' ग्राम माना गया है। ब्रजभाषा में राधा-जन्म की बधाई के पद सूर, नन्ददास, माधवदास, हरिराम व्यास आदि द्वारा लिखे गये हैं और उन्हीं में ये बातें प्राप्त होती हैं।^{१२७}

हरिराम व्यास ने श्रोदामा को राधा का भाई कहा है यद्यपि ब्रह्मवैवर्त में वह कृष्ण का किकर कहा गया है।^{१२८} सूर ने राधा-जन्म सम्बन्धी पद नहीं रचे। गुजराती कवियों में किसी ने राधा-जन्म को काव्य का विषय नहीं बनाया और न वृषभानु के पितृत्व को छोड़ कर अन्य किसी सम्बन्ध का ही उल्लेख किया है।

राधा कृष्ण का प्रथम मिलन—सूरदास ने इसका पर्याप्त विस्तार से चित्रण किया है और जिस रूप में यह प्रसंग मूरसागर में है, प्राचीन कृष्ण-काव्य में कहीं भी उस रूप में उपलब्ध नहीं होता। सूर के कृष्ण बालकों के साथ भौरा-चकडोरी खेलते ब्रज खोरी में निकलते हैं वहाँ सप्त वर्षीया सुन्दरी राधा से उनकी भेंट होती है। कृष्ण उसे अपने घर आमन्त्रित करते हैं। बिछुड़ते समय वस्त्र बदल लेते हैं। घर पर जब राधा की माँ पूछती है कि देर से क्यों आई तो वह कहती है कि मेरे साथ की एक लड़की को साँप ने डस लिया था कृष्ण ने मंत्र से उसे ठीक कर दिया इससे देर हुई। राधा नंदमहर के घर आती है यशोदा उसकी चोटी गूँथकर, कृष्ण की 'जोटी' समझकर, गोद भर देती है। वह अपने घर लौट जाती है और वृषभानु तथा उनकी स्त्री दोनों अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।^{१२९}

नन्ददास ने भी 'श्यामसगाई' के प्रारम्भिक पदों में राधा के प्रति यशोदा के आकर्षित होने का वर्णन किया है। इस प्रकार का वर्णन अन्य किसी कवि ने नहीं किया। उज्ज्वलनीलमणि के 'राधाप्रकरणम्' में बालिका राधा के प्रति यशोदा के आकर्षण का वर्णन भी है। भालण में एक स्थल पर यशोदा द्वारा राधा के बधू बनाने की बात लिखी है।

राधा सरस्वी रूपे रुडी बहुअर बहेली लाऊ जी ।

—द० स्क०, पृ० ५०

सूर ने इस प्रसंग में ब्रह्मवैवर्त में दी हुई उस घटना का भी उल्लेख कर दिया है जिसके आधार पर भीमगोविन्द के प्रथम श्लोक 'मेघवैदुर . . .' का निर्माण हुआ, मेघाच्छन्न आकाश देखकर नद राधिका के साथ कृष्ण को घर भेज देते हैं । मार्ग में दोनों किशोर रूप में रमण करते हैं । ब्रह्मवैवर्त में यही पर विवाह का भी वर्णन है । परन्तु सूर ने उसे राम के प्रसंग में स्थान दिया है ।^{१४०}

यमुना तट पर राधा कृष्ण के मिलन का उल्लेख नरसी ने भी किया है । एक स्थान पर उन्होंने उनको ब्रज का राजा रानी कहा है । एक अन्य स्थान पर एक सखी राधा कृष्ण के परिणय की बात यशोदा से कहती है । राधा कृष्ण का मिलन नरसी ने दूसरी प्रकार से भी दिखाया है । एक और स्थल पर अन्य-परिणीता राधा कृष्ण को बुलाने आती है ।^{१४१}

ध्रुवदास ने अपनी ब्रजलीला नामक कृति में प्रथम मिलन का वर्णन बाल्यावस्था में न करके पूर्ण किशोरावस्था में किया है । एक सखी कृष्ण को राधा के अद्भुत रूप की सूचना देती है और एक सरोवर के निकट सकेल स्थल निश्चित करती है । कृष्ण प्रति दिन उसी स्थल की ओर जाते हैं । एक दिन जब वह एक कुज में बैठे थे कि राधा वहाँ खेलने आई । कृष्ण राधा का रूप देखकर मूर्च्छित हो गये और राधा भी विकल हो गई । इसके पश्चात् ललिता दोनों को विह्वलता देखकर पुनः मिलाने का उपक्रम करती है ।^{१४२}

कृष्ण का स्त्री-रूप धारण करना—सूरदास, नददास, ध्रुवदास, व्यास आदि ब्रजभाषा के कई कवियों ने राधा से मिलने के लिए कृष्ण के स्त्री रूप धारण करने का वर्णन किया है । ध्रुवदास की ब्रजलीला, में इस युक्ति के बताने का श्रेय ललिता को है । बरसाने में जब लोग स्त्री-वेष धारी कृष्ण का परिचय पूछते हैं तो ललिता उन्हें उपनंद की पुत्री बता देती है ।^{१४३} सूर ने मानलीला के प्रसंग में कृष्ण के दूती का रूप धारण करने की बात लिखी है ।^{१४४} नददास ने दूती-वेष के स्थान पर सखी-वेष धारण करने का वर्णन किया है ।^{१४५} व्यास ने भी इसका संकेत किया है । नरसी के एक पद में राधा के द्वारा कृष्ण का वेष धारण करने का वर्णन मिलता है । इसके अतिरिक्त दो एक पद ऐसे भी हैं जिनमें कृष्ण स्त्री रूप धारण करते हैं किन्तु इस कार्य का निमित्त नरसी ने पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया ।^{१४६}

राधा-व्यंतर तथा कृष्ण का गारुड़ी बनना—ब्रह्मवैवर्त में एक स्थल पर विरहिणी राधा के मूर्च्छित होने तथा कृष्णदर्शन से मूर्च्छा दूर हो जाने का वर्णन है । इस प्रसंग

मे न सर्प की बात है और न कृष्ण के गारुडी बनने की।^{१४७} परन्तु ब्रजभाषा तथा गुजराती दोनों भाषाओं के काव्य में कृष्ण के गारुडी बनने की कथा मिलती है।

नन्ददास ने तो इस प्रसंग को लेकर 'श्याममगाई' नामक एक स्वतंत्र कृति का निर्माण किया। यशोदा वृषभानु के यहाँ राधा कृष्ण की सगाई का संदेश भिजवाती है जो कीर्ति द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है। कृष्ण यह जान कर राधा से ही विवाह करने का निश्चय करते हैं और बरसाने के वाग में जा बैठते हैं। राधा सखियों समेत वहाँ आती है और कृष्ण के रूप को देखकर मूर्च्छित हो जाती है। सखी राधा की कृष्ण के प्रति अनुरक्ति जानकर उससे कहती है कि तू घर जाकर कह दे कि मुझे नाग ने काट खाया और तब हम कृष्ण को गारुडी बना कर ले आवेंगी। तब राधा को सखियाँ उठाकर घर ले जाती है और एक सखी कृष्ण के गारुडी होने की बात कहती है। दूसरी सखी यशोदा के पास जाकर कृष्ण को उप-चारार्थ बुला लाती है और वे 'दरस फूँक' दे कर राधा को विष-मुक्त करते हैं। इसके अनन्तर कृष्ण को सगाई स्वीकार कर ली जाती है।^{१४८}

सूरदास ने भी इसका वर्णन किया है परन्तु कथा को गोदोहन से सम्बद्ध कर दिया है।^{१४९} गुजराती कवियों में केशवदास ने इसका वर्णन तो किया है पर इसका सम्बन्ध न सगाई से दिखाया है और न गोदोहन से। अन्य-परिणीता राधा कृष्ण के साथ शय्यासीन थी और उसकी मूर्च्छा का कारण कृष्ण-रूप दर्शन न होकर व्यतर था जो राधा को रीछ के समान लगा। केशवदास ने सर्प से डसे जाने की कल्पना नहीं की।^{१५०}

वैदक लीला—इस वैदक लीला का मूल गीतगोविन्द का एक पद ज्ञात होता है।^{१५१} ध्रुवदास ने कृष्ण को वैद्य बनाकर राधा से उनका सयोग कराया है। यह वर्णन उनकी 'वैदक लीला' में न होकर 'मुखमजरी' में है।

कृष्ण के इस रूप का वर्णन कदाचित् किसी भी गुजराती कवि ने नहीं किया।

गोदोहन—राधा नन्द के घर खरिक में दोहिनी लेकर गाय दुहाने आती है, इस प्रकार उसे कृष्ण से मिलने का अवसर मिल जाता है। सूर ने इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार दिया है।^{१५२} गुजराती कृष्ण-काव्य में इस भूमिका में गोदोहन का वर्णन नहीं है।

हार खोने के बहाने राधा का कृष्ण से मिलना—सम्भवतः इस प्रसंग की उद्भावना सूर ने स्वयं की है क्योंकि इसका कोई पौराणिक आधार नहीं मिलता। ब्रज

और गुजराती के अन्य कवियों ने भी ऐसा कोई वर्णन नहीं किया ।

चतुर राधा अपनी 'मोतिसरी' की माला आँचल से बाँध लेती है और अपना माँ से यह कह कर कि माला खो गई है, कृष्ण से मिलने जाती है । कृष्ण स्वयं मखाओ को जीमता हुआ छोड़ कर राधा के आगमन की प्रतीक्षा करने है और राधा नद-महर के पिछवाड़े उन्हे बुला कर मिलती है । कृष्ण यशोदा से यह कहकर कि जगल में एक गाय व्याई है भाग आते हैं और कुज में दोनों रमण करते हैं ।^{१५३}

राधा के मोतियों में कंकड़ी मिलाना—इसका वर्णन हितहरिवंश ने किया है । सूर सागर में इस सम्बन्ध का जो पद प्राप्त होता है वह पद वस्तुतः हितचौरानी का है ।^{१५४} गुजराती में यह प्रसंग अनुपलब्ध है ।

कृष्ण का राधा की आँखें मींचना—राधा मुकुट देख रही है, कृष्ण पीछे से आकर उसकी आँखें मूँद लेते है । जब चन्द्रावली आती है तो राधा उसके पूछने पर सारी घटना बताती है । इसका भी वर्णन सूर ने ही किया है ।^{१५५}

पनघट की लीलाएँ—भागवत में कात्यायनि-व्रत और रास के प्रसंग में गोपियों का यमुना तट पर जाना वर्णित है किन्तु उसमें पनघट की लीलाओं का कोई संकेत नहीं है और न अन्य किसी पुराण में ही है । इन लीलाओं का वर्णन दोनों भाषाओं के कवियों में सूरदास, हरिराम व्यास, मीरा तथा नरसी आदि ने कुछ तो लोक परंपरा से प्रेरित होकर और कुछ स्वतन्त्र उद्भावना से किया है ।

सूरदास—सूर के कृष्ण पनघट पर निम्न क्रीड़ाएँ करते हैं ।

१. यमुना तट पर मुरली बजाकर तथा अपनी मोहनी मूर्ति दिखाकर गोपियों को मुग्ध बनाते हैं ।

२. पनघट को रोक लेते हैं और कोई गोपी जल नहीं भर पाती ।

३. एक बार कृष्ण मखाओ सहित छिपे थे इतने में राधा आई और ज्योंही जलभर कर ले चली कृष्ण ने पीछे से उसकी गागर का जल लुढ़का दिया । उसने 'कनक लकुट' छीन लिया और बोली कि जब तक मेरी गागर नहीं भर देते लकुट न दूँगी । पर कुछ समय बाद विह्वलता के कारण उसके हाथ से लकुट छूट गिरता है । कृष्ण भी उसकी गागर भर कर उठवा देते हैं ।

४. ऐसे ही एक बार राधा सखियों सहित जल भरने आती है । कृष्ण उसकी छाँह में अपनी छाँह छुवाते हैं । इस प्रकार अनेक छल करके उसको काम विवश कर देते

हैं फिर गागर में 'कंकरी' मारते हैं जो राधा के शरीर में लगती हैं। वे कभी लट कभी वक्ष का स्पर्श करते हैं।

५ यमुना तट पर गेंडूरी फटकार देते हैं, गागरे फोड़ देते हैं। यगोदा के पास गोपियाँ उलाहना लेकर जाती हैं जिस पर अन्त को उन्हें अविश्वास हो जाता है।

ब्रजभाषा के अन्य कवियों ने इतने विस्तार से इन लीलाओं का वर्णन नहीं किया। इस विषय में हरिराम व्यास ने कई पद लिखे हैं। किसी में गोपी कृष्ण से सिर पर गागर रख देने की प्रार्थना करती हैं और पीलपट की ईडुरी बनाने को कहती हैं तथा किसी में कृष्ण उसके साथ रमण भी करते हैं किन्तु इन पदों में राधा के स्थान पर सामान्यतः नागरि या पनिहारी का उल्लेख है।^{१५}

मीरा के इन प्रसंग के पद दोनों भाषाओं में हैं। नरमी ने कहीं सरोवर से कहीं यमुना से जल भरने का उल्लेख किया है। मटकी में कंकरी मारने का भी वर्णन है तथा कृष्ण के आलिंगन आदि करने का भी।^{१६}

संभोग वर्णन—राधाकृष्ण के संभोग वर्णन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। गाथा सप्तशती (१३४ वि०), गौडवहो (७७५ वि०), ध्वन्यालोक (९१० वि०) से राधा कृष्ण की शारीरिक समीपता का प्रमाण मिलता है। ब्रह्मवैवर्त में (१२वीं शती वि०) अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ राधा कृष्ण के रति-युद्ध का स्पष्ट वर्णन है। जयदेव ने तो राधाकृष्ण के संभोग की विपरीतादिक दशाओं का विस्तृत वर्णन किया है।^{१७}

गुजराती तथा ब्रज दोनों भाषाओं के कवियों ने राधा कृष्ण के संभोग तथा तज्जन्य परिस्थितियों का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। कुछ कवियों ने रास-लीला, दानलीला आदि के अन्तर्गत भी इसका समावेश किया है। ब्रज के समस्त कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों के काव्य में रति-युद्ध का वर्णन मिलता है। प्रायः सभी कवियों ने स्फुट पदों में तथा श्रृंगार के विभिन्न प्रसंगों के बीच रतिवर्णन किया है किन्तु ध्रुवदास की 'रतिमंजरी' तथा माधवदास की 'केलिमाधुरी' का विषय ही यह है। गुजराती में भी ग्रामगिक वर्णनों के अतिरिक्त मुरत-युद्ध को आधार मान कर कई रचनाएँ हुईं। मयण कवि का 'मयणछन्द' तरसी की दोनों चातुरियाँ (षोडशी, छत्तीसी) इसी विषय को लेकर लिखी गयी हैं।

'रतिमंजरी' और 'मयणछन्द' में संभोग का वर्णन प्रस्तुत रूप में है किन्तु चातुरियों में सवादात्मक है। राधा अपनी प्रिय सखी से रति-रमण की सारी कथा कहती

हैं। नरसी की 'शृंगारमाला' में सुरत-संग्राम का कई पदों में वर्णन है और उनके 'सुरत संग्राम' में रूपक का आधार भी यही है।

चौपड़ और शतरंज खेलना—रूपक के रूप में ब्रजभाषा के कई कवियों ने राधाकृष्ण को कही चौपड़ और कही शतरंज खेलते हुए चित्रित किया है।^{१५९} पर गुजराती में ऐसा वर्णन नहीं है।

जल-क्रीड़ा वर्णन—ब्रजभाषा के कतिमय कवियों ने रास-वर्णन के अंतर्गत आई हुई जल-क्रीड़ा से भिन्न जल-केलिका वर्णन किया है। राधा कृष्ण कही नौका-विहार करते हैं कहीं जल-विहार।^{१६०} गुजराती कवियों ने ऐसा वर्णन नहीं किया।

इसके अतिरिक्त वेणी-गूंथना, महावर-देना आदि क्रीड़ाएँ ऐसी हैं जिनका वर्णन राधा कृष्ण के प्रेम-प्रसंग में कवियों ने किया है।

वसंत-क्रीड़ा

रास के प्रसंग में बालती-रास की परम्परा का जो इतिहास आगे दिया गया है उससे यह सिद्ध होता है कि वसंत ऋतु में राधा-कृष्ण की विलास-लीला के वर्णन की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। रास के साथ ही होलिकोत्सव का भी इसमें समावेश हो जाने तथा वसंत ऋतु के स्वयं विशेष उद्दीपक होने के कारण दोनों भाषाओं के कवियों ने वसंत-क्रीड़ाओं का विस्तार से वर्णन किया है। कुछ कवियों ने क्रीड़ाओं के वर्णन के साथ वसंत-वर्णन को स्वतंत्र महत्व भी दिया है।

गुजराती में इस प्रकार की रचनाओं में मुख्यतया नरसी के 'वसंतना पद' वासणदास का 'कृष्ण वृंदावन रास' तथा कतिपय अन्य काव्यों के स्फुट अंश आते हैं। ब्रजभाषा में सूर के वसंत तथा होरी सम्बन्धी अनेक पद, ध्रुवदास की 'व्यालीस लीला' की कई लीलाएँ, गदाधर भट्ट, माधवदास आदि अनेक कवियों द्वारा रचित स्फुट पद एवं प्रसंग इस सम्बन्ध में गणनीय हैं।

वसंत-क्रीड़ा की मुख्य वस्तु निम्नलिखित है -

१. वसंत के प्रभाव से मानिनी गोपियों का मान-मोचन।
२. होली, फाग-क्रीड़ा अबीर गुलाल आदि डालना, पिचकरी मारना।
३. नृत्य गीत होली-धमार चंग, ढफ, मृदंग झाँझ आदि का वादन।
४. कृष्ण के साथ गोपाल-मंडली तथा राधा के साथ गोपी-सूमह की प्रतिद्वंद्विता।

इन रचनाओं में वस्तु आदि सभी दृष्टियों से नरसी तथा सूर के पद सर्वप्रधान हैं अन्य कवियों द्वारा वर्णित वस्तु प्रायः इन्हीं कवियों की वस्तु के अतर्गत आ जाती है । मूरदास ने कतिपय ऐसे भी प्रसंग वर्णित किए हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं ।

१. श्रीडा में बलराम की उपस्थिति ।

आए बलराम श्याम आई तजि काम वाम ।

—सू० सा०, पृ० ५५७

२. शीला नामक गोपी विशेष से कृष्ण का उलझना ।

शीला नाम ग्वालिनी अचानक गहे कन्हाई ।

—सू० सा०, पृ० ५५६

३. बाँसों की मार ।

उत जेरी धरे ग्वाल बासन इत परी मार ।

—सू० सा०, पृ० ५५८

वारुणी-दान राधाकृष्ण का गठबन्धन, नद को गाली, गर्दभारोहण, तिथि-क्रम से होली-वर्णन आदि ऐसे ही प्रसंग हैं जिनकी उद्भावना मूरदास ने अपनी प्रतिभा से की है ।^{१६१}

नरसी मेहता ने भी होली के प्रसंग में हलधर का उल्लेख किया है । शीला के स्थान पर ललिता तथा चन्द्रभागा का विशेष रूप से वर्णन है । नरसी ने हलधर कदाचित् कृष्ण के पर्याय रूप से व्यवहृत किया है ।

१. ललिता ललीत मुख वचन बोले उठे अबोल गुलाल रे ।

२. मुख अंबर लइ हलधर हसीया, गोपी गोवाला साथे रे ।

भणे नरसैयो चन्द्रभागा ओ हलधर साह्या हाथे रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २३२

नरसी ने यहाँ भी अपने को दर्शक के ही रूप में उपस्थित किया है ।

गोविन्द गोपी होली रमे त्या जोये नरसैयो दास ।

—न० कृ० का०, पृ० २३७

नरसी ने बाँस की मार की जगह आपस की मार का चित्रण किया है

उलट्या हलधर गोप संग्गाथे पडे परस्पर मार रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २४१

वसंत पंचमी के उत्सव का वर्णन सूर तथा नरसी दोनों ने किया है ।^{१६२} नरसी

के एक पद में राधा-कृष्ण-विवाह वर्णित मिलता है जिसका साम्य सूर के विस्तृत विवाह-वर्णन से हो सकता है।

वसन विवाह आदर्यो हो, परण छे नद जी को लाल।

—न० कृ० का०, पृ० २५३

वर्षा-हिडोला—इस ऋतु में भाँ विलास-लीला तथा हिडोला झूलने का दोनों भाषाओं में वर्णन मिलता है। ब्रजभाषा में इस विषय में कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है। गौड़ीय और दल्लभीय सम्प्रदाय के अनेक कवियों के पदों में सूर के 'हिडोल लीला' के पद अधिक महत्वपूर्ण हैं। गुजराती में नरसी के 'हिडोलना पद' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वर्षा-विहार के अतर्गत निम्न मूल-वस्तु पाई जाती हैं।

१. वर्षा ऋतु का वर्णन
२. वर्षा सम्बन्धी अन्य प्रसंग
३. हिडोले का वर्णन
४. हिडोले पर राधाकृष्ण के झूलने-झुलाने का वर्णन

इन प्रसंगों पर उक्त दोनों कवियों की उद्भावित विशेषताओं का उल्लेख पृथक् पृथक् किया गया है।

वर्षा ऋतु वर्णन—स्वतन्त्र रूप से वर्षा-वर्णन पर कोई काव्य नहीं लिखा गया। मूरदास तथा नरसी ने केवल वर्षा पर कोई सम्पूर्ण पद तक नहीं रचा, कुछ पंक्तियों तथा अंशों में ही वर्षा की शोभा का चित्रण है।^{१.३}

वर्षा सम्बन्धी अन्य प्रसंग—ममस्त कृष्ण चरित में वर्षा सम्बन्धी अन्य प्रसंग कृष्ण-जन्म तथा गोवर्धन-धारण है, जिनका वर्णन हो चुका है। सूर ने वर्षा में राधा कृष्ण मिलन का भी वर्णन किया है।

गगन गरजि बहराइ जुरी घटा कारी।

... ..

दोउ घर जाहु सग, नभ भयो श्याम रग कुँवर गह्यो वृषभानवारी।

गए वन घन ओर नवलनदनद किशोर नवल राधा नए कुज भारी।

यह प्रसंग ब्रह्मवैवर्त के आधार पर वर्णित गीतगोविंद के पहले श्लोक 'मेघै-मँदुरमदर...' में है।

मघावृत नभो दृष्ट्वा श्यामल कान्तान्तर ।

—ब्र० वै० कृ० ख०, अ० १५

वर्षाकाल में राधाकृष्ण के कुज-विहार तथा विप्रलभ शृंगार का वर्णन ब्रजभाषा के अनेक कवियों द्वारा किया गया है ।

हिंडोला वर्णन—सूर तथा नरसी दोनों ने कृष्ण के हिंडोले को मणिरत्नजटित एवं स्वर्णविनिर्मित लिखा है दोनों ने ही उसे विश्वकर्मा की रचना माना है ।^{१६६}

सखियों के साथ झूलना-झुलाना—सूर ने इस क्रीड़ा में गोपियों के साथ गोपालों और बलराम का भी उल्लेख किया है नरसी में ऐसा नहीं है । सूर ने यमुनातट के अतिरिक्त रगमहल में भी हिंडोला झूलने का वर्णन किया है और बलराम वहाँ भी हैं ।^{१६५}

सखियों में सूर ने ललिता, विशाखा तथा नरसी ने चन्द्रावली का विशेष उल्लेख किया है ।^{१६६} नरसी ने कृष्ण को हिंडोला खींचते हुए दिखाया है, सूर ने नहीं ।

आ जोने आ जोने हरि हीडोले हीचतो रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ४४३

वृन्दावन-वर्णन

हरिवंश, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त आदि जिन पुराणों में कृष्णचरित उपलब्ध होता है उनमें वृन्दावन का भी वर्णन है । दोनों भाषाओं के अनेक कवियों ने वत्सासुर-वध से रास तक की समस्त लीलाओं के अंतर्गत वृन्दावन का भी वर्णन किया है । किन्तु ब्रज के राधावल्लभीय और गौडीय सम्प्रदाय में वृन्दावन की मान्यता विशेष होने के कारण इस प्रसंग पर स्वतंत्र रचनाएँ भी उपलब्ध हो जाती हैं, जैसे ध्रुवदास का 'वृन्दावन सत' और माधुरीदास की 'वृन्दावन माधुरी' । गुजराती में प्रासंगिक वर्णन के अतिरिक्त कोई स्वतंत्र काव्य नहीं है । केवल १६वीं शती के वासणदास के 'कृष्णवृन्दावनरास' में वृन्दावन वर्णन-नाम मात्र को प्राप्त होता है ।

वृन्दावन की महत्ता को नरसी, सूर तथा नंददास ने स्वीकार किया है । नरसी ने वृन्दावन को वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ तथा शोभावान् कहा है । वृन्दावन के द्वादश वनों में नरसी ने 'महावन' और वासणदास ने 'परसोलो' का उल्लेख किया है । सूर ने द्वादश वनों का संकेत मात्र किया है । नंददास ने वृन्दावन को 'चिद्वन' की उपाधि दी है ।^{१६७}

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में वृन्दावन-वर्णन का एक निश्चित रूप था जिसका अनुकरण उस सम्प्रदाय के सभी कवियों ने किया, ध्रुवदास उसमें प्रमुख हैं। हित हरिवंश ने इसका सूत्रपात इस प्रकार किया।

प्रथम जथामति प्रणऊ श्री वृन्दावन अतिरम्य ॥५७॥

—हितचौरासी

इस परम्परा को व्यास तथा ध्रुवदास ने पूर्णतया स्वीकार किया। ध्रुवदास ने व्यासीस लीलाओं में बहुत सी लीलाओं का प्रारम्भ वृन्दावन-वर्णन से ही किया है। 'वृन्दावनसत' में पूर्णरूप से वृन्दावन की महिमा का गान है जिसके अनुसार कोटि वैकुण्ठों से भी श्रेष्ठ वृन्दावन की पृथ्वी मणिखचित स्वर्ण की है, सब लता कल्प-वृक्ष हैं तथा सब पुष्प पारिजात।^{१५} ध्रुवदास ने 'मडलसभा सिंगार' में वृन्दावन में अगणित मडलाकार कुज वनों का उल्लेख किया है जैसे, कमल कुज, शृंगार कुज, रग कुज, विनोद कुज, आदि। 'रसमुक्तावली' में स्नान कुज, सिंगार कुज और भोजन कुज का भी वर्णन मिलता है। माधवदास की 'वृन्दावनमाधुरी' के वृन्दावन वर्णन में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं।^{१६}

१. सात रग के कुज। नरसी ने भी विभिन्न रगों का वर्णन किया है।
(न० कृ० का०, पृ० ६०५)

२. सबसे बड़ा माधुरी-कुज है जिसमें ६४ द्वार हैं, प्रत्येक द्वार पर एक सहचरी रहती है, जिनमें आठ मुख्य हैं।

३. वृन्दावन वृन्दा नामक सखी की प्रेरणा से इतना सौन्दर्यशाली होता है।

बारहमासा और षड्ऋतु-वर्णन—षड्ऋतु-वर्णन की परम्परा कालिदास के ऋतुसंहार तक जाती है किन्तु बारहमासा सम्भवतः साहित्य को लोक-काव्य से प्राप्त हुआ। षड्ऋतुओं का क्रमानुसार वर्णन प्रायः संयोग शृंगार के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत किया जाता रहा। बाद में उसका प्रयोग वियोग शृंगार में भी होने लगा। परन्तु बारहमासा में विरह भावना की अभिव्यक्ति होती रही इस प्रकार वह अधिकतर वियोग शृंगार के ही अंतर्गत आता है।

गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कृष्ण-काव्य में इन दोनों परम्पराओं का परिपालन मिलता है। षड्ऋतु-वर्णन ब्रजभाषा में नन्ददास की 'रूपमंजरी' तथा ध्रुवदास की 'रसहीरावली' और सेनापति के 'कवित्तरत्नाकर' के अंतर्गत और गुजराती में केशवदास की मथुरालीला में प्राप्त होता है। बारह महीनों का वर्णन ब्रजभाषा

म नददास की विरहमजरी म तथा गुजराती म १७वीं शती के प्रमानद की मास, और रत्नेश्वर की 'बारमास' नामक रचनाओं मे मिलता है। मास 'बारहमासा' का ही गुजराती रूप है। नरसी मेहता कृत काव्यसंग्रह मे भी एक पद के अन्तर्गत द्वादश मास का वर्णन है।

‘बार मास पूर्ण थया गाय नरसैयों दास’

—पृ० ५२५

सूरदाम ने वर्षा, वसत आदि विभिन्न ऋतुओं का पृथक् पृथक् वर्णन किया है किन्तु क्रमबद्ध रूप मे षड्ऋतु वर्णन नहीं मिलता। बारहमासा का भी वर्णन सूरसागर में नहीं है।

गुजराती कवि केशवदास ने जो षड्ऋतु वर्णन किया है वह प्रासंगिक रूप मे ही है, प्रधान रूप में नहीं, क्योंकि गोपियाँ उद्धव को उत्तर देने समय कृष्ण की क्रीडाओं का ऋतु क्रम से वर्णन करती हैं।^{१००} यह वर्णन सयोग शृंगार का उद्दीपक न होकर वियोग शृंगार के अन्तर्गत आता है। नददास का षड्ऋतु वर्णन भी वियोग पक्ष का ही प्रकाश करता है। रूपमजरी नामक कुमारी अपना हृदय कृष्ण को दे देती है और उनकी प्रतीक्षा मे दिन बिताती है। नददास ने इसी स्थान पर षड्ऋतुओं के प्रभाव का वर्णन किया है।^{१०१} केशवदास की गोपियाँ मिलन सुख से परिचित हैं किन्तु नददास की रूपमजरी अपरिचित। केशवदास ने शरद से और नददास ने वर्षा से वर्णन प्रारंभ किया है। इतना अन्तर होने हुए भी दोनों कवियों का षड्ऋतु-वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि वह सयोग शृंगार की परम्परा से भिन्न है।

सेनापति का षड्ऋतु-वर्णन प्रायः विप्रलम्भ का ही उदाहरण है परन्तु ध्रुवदास ने स्पष्ट रूप से उसे सयोग शृंगार की पृष्ठभूमि मे चित्रित किया है।^{१०२} यह वर्णन वसत ऋतु से प्रारंभ होता है जिसका कारण संभवतः सयोगावस्था ही प्रतीत होती है क्योंकि साहित्य मे सयोग शृंगार के उद्दीपन रूप में वसत ऋतु का विशेष स्थान है। ध्रुवदास ने सुख के आधार पर उपसहार में छहों ऋतुओं का वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है।

बरिषा ग्रीष्म नैन मुख, सरद वसंत विलास।

लपटन को मुख हिम सिसिर, प्रेम सुखद सब मास ॥१६०॥

बारहमासा का वर्णन गुजराती कृष्ण-काव्य मे अधिक मिलता है। नरसी, प्रेमानन्द तथा रत्नेश्वर की पूर्वोक्त रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। इसका कारण यह है कि

गुजरात में बारहमास वर्णन की परम्परा बहुत प्राचीन है। जैन काव्यों में इसके उदाहरण मिलते हैं जैसे १३वीं शती की रचना 'नेमिनाथ चतुष्पदी'। १६वीं शती की गणपति कृत 'माधवानल कामकदला' नामक प्रसिद्ध रचना में भी 'बारहमास' प्राप्त होता है। ब्रजभाषा में नंददास इस परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

द्वादश मास वर्णन में इन सभी कवियों ने स्वतंत्र क्रम का अनुसरण किया है केवल प्रेमानंद तथा नंददास ने चैत से फागुन तक का सीधा क्रम ग्रहण किया है। नरसी ने 'कार्तिक' से, और रत्नेश्वर ने 'मार्गशिर' से बारह महीनों की गणना की है।

गुजरात के सभी कवियों ने इस प्रसंग में राधा के विरह का वर्णन किया है और उसमें रत्नेश्वर ने स्पष्टतया कृष्ण के मधुरा जाने को कारणभूत माना है परन्तु नंददास ने राधा मात्र का विरह वर्णित न करके समस्त ब्रजगोपियों के विरह का वर्णन किया है और उसका कारण कृष्ण का द्वारावती गमन माना है।^{१०३}

संभवतः यही कारण है कि कुछ गुजराती कवियों ने 'बारहमास' के अन्त में कृष्ण के लौटने का भी संकेत कर दिया है जो नंददास ने नहीं किया है।^{१०४}

नंददास ने सारा बारहमास चन्द्रदूत को दिये गये सदेश के रूप में प्रस्तुत किया है।

दिष्टि परि गयी चंदा गैल ।

लागी ताहि सदेशो दैन ।

—नंद०, पृ० ३०

प्रेमानंद ने अपने 'मास' के अन्तर्गत केवल कार्तिक मास में चन्द्र के दूतत्व का प्रसंग उठाया है

चांदलिया तू तांहा जजे वसे जांहा मारा नाथ ।

बहेलो बलजे विट्ठल ने तेडी ताहारी रे माथ ।

चन्द्रदूत का वर्णन नरसी ने भी किया है परन्तु वह 'बारमास' से भिन्न दूसरे पद में मिलता है (न० कृ० का०, पृ० ५०७)

प्रेमानंद ने इस मास वर्णन में राधा की स्वप्नावस्था का भी चित्रण किया है जो उक्त अन्य कवियों में नहीं मिलता।

आज सहेजे नयन मळ्या सीणू गम्यू रे प्रभात ॥८३॥

.

जागी ने जोवा लागी रे चुंवन देवानी आज ॥८६॥

—प्रेमानन्द कृत 'मास'

दानलीला

गुजराती में १५वीं शती में भालण के 'दशमस्कन्ध' में तथा १६वीं शती में नरसी की 'दानलीला' एवं स्फुट पदों में, कीकुवसही के 'बालचरित' वासणदास के 'कृष्णवृन्दावनरास' और मीरा के कतिपय पदों में दान का प्रसंग आया है। ब्रज-भाषा में सूरसागर को दो दानलीलाएँ तथा मीरा, हरिदास आदि के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य अनेक कवियों के स्फुट पद प्राप्त होते हैं। १७वीं शती में ध्रुवदास की 'दानविनोदलीला', माधवदास की 'दानमाधुरी' तथा हरिराय जी की 'दानलीला' ये तीन स्वतन्त्र रचनाएँ मिलती हैं। स्फुट पद तो अनेक कवियों के हैं। गुजराती में इस शती में केवल प्रेमानन्द की 'दाणलीला' उपलब्ध है।

उक्त दानलीलाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस लीला का कोई निश्चित रूप कवियों के सामने नहीं था, जिसके फलस्वरूप कृष्ण द्वारा दान माँगने के अतिरिक्त अन्य सभी बातों के वर्णन में भेद अवश्य मिलता है। अतएव संक्षेप में यहाँ सबकी रचनाओं की वस्तु प्रस्तुत की जाती है।

नरसी की दाणलीला में प्रातःकाल यशोदा कृष्ण को जगा कर, जलपान के अनन्तर, गोचारण के लिए भेजती है। अनेक शृंगारों से युक्त कृष्ण बलभद्र के साथ खेलते, बन्दरों को पकड़ते तथा वही कलेऊ भी करते हैं। इतने में गाएँ इधर उधर हो जाती है और कृष्ण गोवर्धन पर चढ़ कर जब विभिन्न गायों के नाम ले ले कर पुकारते हैं तो सहसा उन्हें एक अनुपम स्त्री दिखाई देती है। वे दौड़कर उसके पास जाते हैं और सगम्य में पड़ जाते हैं कि वह रभा है कि पद्मिनी। राधा अपना परिचय देती है। कृष्ण राधा से कनक कलश भर दही का दान माँगते हैं। राधा कृष्ण को दान का अनधिकारी सिद्ध करती है। फिर दो टुका के गोरस के दान का महत्व ही कितना। कृष्ण हठ करते हैं राधा रूठ जाती है। वह स्वयं को मनाने के लिए वेणु वादन का प्रस्ताव रखती है। कृष्ण मुरली बजाते हैं और राधा प्रसन्न हो जाती है।

नरसी की 'चातुरी छत्तीमी' की सारी परिस्थिति इसी दानलीला से सम्बद्ध

हैं यद्यपि उसमें अन्त में दान का वर्णन न होकर संभोग शृंगार का पूर्ण वर्णन है ।

आज में तमारी चानुरी जाणी जी ।

मारगे बेटा छो थडने दाणी जी ।

—न० कृ० का० पृ० ११८

एक स्थान पर नरसी ने दान के प्रकरण को होली से सम्बद्ध कर दिया है ।^{१०५}
गोपियाँ कई बार कृष्ण को कस के पास ले जाने का भय दिखाती हैं ।

कस कने तु ने लडने जाशु

—वही, पृ० ५८०

भालण ने राधा कृष्ण के बर्नालाप को किंचित् विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है । उनकी परिणीता राधा 'सहियर साथ' मथुरा दधि बेचने जाती है । कृष्ण के मार्ग में रोककर दान माँगने पर राधा यशोदा जी से शिकायत करने का भय दिखाती है । एक गोपी राधा से उसके प्रति कृष्ण के विशेष आकर्षण की बात कहती है तब राधा आगे आकर विवाद कहती है और बीच में अपने पति की भोगविषयक असमर्थता तथा कृष्ण से भविष्य में परिणीत हो जाने की बात कहती है । अन्त में वह कृष्ण को अपने यहाँ याचक बन कर दान माँगने आने के लिए आमन्त्रित करती है फिर दोनों में समझौता हो जाता है । कुछ पदों में भालण ने दान की करबद्ध याचना कराई है । कृष्ण राधा के चरण भी स्पर्श करते हैं ।

पाणिये पायु ग्रह्य ।

—द० स्क०, पृ० १०३

प्रेमानन्द की रचना में राधा को मथुरा के मार्ग में कृष्ण के 'दाणी' बन बैठने की बात पहले ही जात हो जाती है और वह ललिता, चन्द्रावली, राई, विगाखा आदि मात सखियों के साथ कृष्ण पर विजय प्राप्त करने की लालसा से चलती हैं । घाट पर कृष्ण को देखकर वे लोग दूसरी ओर मुड़ जाती है । कृष्ण सबको पकड़ लाने के लिए गोपों को भेजते हैं । 'गोप मुदामो' आकर बताता है कि आज तो यूथ में 'राधा राणी' भी है, वही कहना नहीं मानती । यह सुनते ही कृष्ण के नेत्र लाल हो जाते हैं 'राधा राणी' तो क्या वे इन्द्राणी को भी बिना दान दिये नहीं जाने देंगे । गोप लोग कृष्ण की आज्ञा से लकुटियों द्वारा 'छाश' 'दध्नी माखण' भरी मटकियाँ फोड़ना आरंभ कर देते हैं । राधा इस स्थिति में क्रोधान्वित किन्तु मिलनेच्छु होकर 'राई' को दूती बना कर कृष्ण के पास भेजती है । दोनों पक्षों में विवाद होता है ।

कस का भय, यशोदा का भय, नद की 'आण' अनधिकार चेष्टा सभी प्रकार के तर्क-वितर्क के बाद भी समझौता नहीं होता। कृष्ण के सखा 'पिंडारिया' राधा की टोली को घेर लेते हैं। राधा कृष्ण का अहंकार नष्ट करने का संकल्प करती है। सवाद होते होने दिन बीत जाता है। कृष्ण 'छः बरसनो छोकरो' बताए गए हैं। अंत में राधा हार मान लेती है और परिणीता होने के नाते 'सास नणद जेठ' आदि को 'बाघण नागण जम' कहते हुए गृहस्थाश्रम की मर्यादा का उल्लेख करती है पर अंत में कृष्ण को पूर्ण समर्पण करती है। कृष्ण बशी वजाते हैं, अनेक रूप धारण करते हैं और गोपियों के साथ रात भर रमण करते हैं। गोपियाँ सबेरे कृष्ण के चरण छू कर विदा माँगती हैं।

दीवु आलिंगन हेत व्यापियु रे लोल ।

कुंज माहे रही रति मुख आपियुं रे लोल ।

जेटली हूती ब्रज सुन्दरी रे लोल ।

तेटला रूप धरिया श्री हरी रे लोल ।

स्पष्ट है कि गुजराती के इन तीनों कवियों की दानलीलाएँ एक दूसरे से अनेक स्थलों पर भिन्न हैं।

ब्रजभाषा के कवियों में इस प्रसंग को सबसे अधिक विस्तार सूर ने दिया है। सूरसागर में उनकी दो दानलीलाएँ उपलब्ध हैं और पहली के अंतर्गत भी वस्तुतः दो दान लीलाओं का वर्णन है। इस प्रकार यह प्रसंग तीन बार वर्णित हुआ है (पृ० २९६-३४१)। पहली बार के वर्णन में राधा का कोई उल्लेख नहीं है।

कृष्ण के सारे सखा 'पेड-पेड तह के लगे ठाठि ठगन को ठाट' छिप गए, ब्रज युवतियों के आने पर 'माखन दधि लियो छीनि कै' और 'चोली वन्द' भी तोड़ डाले कृष्ण ने अपना ईश्वरत्व प्रकट किया और 'जोवन दान लेउँगो तुमसे' कहा। गोपियाँ यशोदा के पास जाकर उल्लाहना देती हैं। 'मेरो हरि कहँ दसहि बरस को तुम यौवन मद उदमानी' कह कर वे गोपियों पर ही दोषारोपण करती हैं। सूर का प्रथम प्रसंग 'दानचरित सुख देखि के सूरदास बलि जाइ' के साथ समाप्त होता है। दानलीला का दूसरा प्रसंग कृष्ण, सुवल्ल, सुदामा एवं श्रीदामा की राधा आदि को कालिंदी तट पर घेरने की योजना से प्रारंभ होता है। दूसरे दिन कृष्ण सखाओं के साथ पेड़ों में छिप रहने का निश्चय करते हैं। जब राधा सखियों समेत आती है तो उनको घेर लेते हैं। वार्तालाप होता है, कृष्ण अपने ब्रह्मत्व को प्रकट करते हैं। बहुत विवाद के बाद गोपियाँ आत्मसमर्पण करती हैं और कृष्ण 'गुप्तहि जोवन

दान' लेते हैं। जाने के पहले सब गोपियाँ अपना सारा दधि माखन उनको खिला देती हैं पर मटकी भरी ही रहती हैं। इस पर गण-गधर्व कह उठते हैं-

‘धन्य ब्रजललनानि करते ब्रह्म माखन खान’

तीसरे प्रसंग में इदा, विदा, राधिका, व्यामा, कामा आदि ब्रजनागरी मृगार करके दधि बेचने जाती हैं और सखियों से यह कहला कर ‘यहि बन में इक बार लूटि हम लई कन्हाई।’ सूर इस प्रसंग को स्पष्टतया पूर्व प्रसंग से सम्बद्ध कर देते हैं। सारी घटनाएँ वैसे ही हैं। अंत में गोपियाँ ने ‘तनु जोबन धन अर्पन कीन्हो मन दै मन हरि को सुख दीन्हो’ और स्वतः दधि माखन खिलाया।

राधावल्लभी ध्रुवदास की ‘दानचिनोदलीला’ में दानलीला की सारी घटना सखियों की इच्छा से घटित होती है। यमुना तट पर कृष्ण खड़े होते हैं राधा उधर से आती है। कृष्ण को दान के लिए जो कुछ कहना है ललिता से कहते हैं। ललिता प्रवीण है। वह ‘इहि ठा बिन कुजेश्वरो नहि काहू की आन।’ कह कर कृष्ण को राधा के चरण छूने का आदेश देती है। कृष्ण उसके पैरों पर शोश रख देते हैं और राधा रतिदान देकर कृष्ण को प्रसन्न कर देती है।

गौड़ीय कवि माधवदास को ‘दानमाधुरी’ में वर्णित दानलीला बहुत कुछ ध्रुवदास के ही समान है ललिता वहाँ भी मध्यस्थ है। राधा का प्रभुत्व वहाँ भी घोषित है। कृष्ण सखियों को सौरभ सुगंध लाने के लिए भेज कर एकान्त की व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार ‘दान मिस दम्पति-सुख’ का वर्णन किया गया है।

हरिराय जी की दानलीला में वर्णित वस्तु का साम्य नरसी की दानलीला से अधिक है। हरिराय जी ने कृष्ण के गोवर्धन पर चढ़ कर टेरने, कनक कलश छीनने तथा राधा को कुंज में ले जाकर मनाने का जो वर्णन किया है वह नरसी की दानलीला में भी मिलता है।

इस प्रकार दानलीलाओं को वस्तु की दृष्टि से तीन वर्गों में रक्खा जा सकता है :

१ वे रचनाएँ जिनमें दान का प्रसंग केवल राधा-कृष्ण के बीच की घटना है। ब्रजभाषा के हरिराय तथा गुजराती के नरसी की रचनाएँ इसी वर्ग में हैं।

२ वे रचनाएँ जिनमें राधा-कृष्ण के अतिरिक्त अन्य गोप-गोपियों का भी समावेश है। इस वर्ग में भालण के दान विषयक पद, प्रेमानंद की ‘दानलीला’, नरसी

की 'चातुरी छनीमो' मूर की दूसरी और तीसरी दानलीला, माधवदास की 'दान माधुरी' तथा ध्रुवदास की 'दानविनोदलीला' आती हैं।

३ ऐसी रचनाएँ जिनमें राधा आदि गोपी विशेष का उल्लेख न करके समस्त गोपी समूह का वर्णन हो। मूर की पहली दानलीला तथा अन्य कवियों के कुछ स्फुट पद इसके अंतर्गत आते हैं।

नरसी, प्रेमानंद, मूर, माधवदास तथा ध्रुवदास ने दानलीला के अन्त में सभोग का वर्णन किया है। प्रेमानंद तथा मूर ने सभी गोपियों के साथ कृष्ण का रमण दिखाया है। पंक्ति में बिठा कर मंडली के साथ कृष्ण को दधि माखन खिलाने का मूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने वर्णन नहीं किया।

माधवदास तथा ध्रुवदास की रचनाओं में मध्यस्थ का काम 'ललिता' को दिया गया है परन्तु प्रेमानंद ने 'राही' को मध्यस्थ बनाया है।

ब्रजभाषा के कवियों ने दानलीला में राधा को स्वकीया किन्तु गुजराती के प्रेमानंद, भालण आदि ने परकीया का रूप दिया है।

मानलीला—यह प्रसंग १५वीं शती में मयण के 'मयणछेद', भालण के 'दशम स्कंध', १७वीं शती में नरसी की 'चातुरीषोडशी', मूरदास की तीन मानलीलाओं तथा कुछ स्फुट पदों में प्राप्त होता है। १७वीं शती में इस विषय पर गुजराती की एक भी रचना उपलब्ध नहीं है पर ब्रजभाषा में ध्रुवदास की 'मानलीला' तथा माधवदास की 'मानमाधुरी', यह दो रचनाएँ मिलती हैं।

इन काव्यों में मानलीला के कई रूप मिलते हैं। प्रथम और महत्वपूर्ण रूप वह है जिसमें राधा कृष्ण के शरीर अथवा कौस्तुभ मणि में पड़ते हुए अपने ही प्रतिबिम्ब को अन्य स्त्री समझ कर भ्रमवश मान करती है और अन्त में दूती, ललिता अथवा स्वयं कृष्ण द्वारा इस भ्रम का निवारण हो जाने पर मान त्याग देती है। मयण के अतिरिक्त दोनों भाषाओं के प्रायः सभी कवियों ने इसी वस्तु को किसी न किसी रूप में आधार बनाया है।

नरसी की चातुरीषोडशी में कृष्ण द्वारा आलिंगित होते समय राधा उनके हृदय में अन्य स्त्री की उपस्थिति जानकर मान करती है, कृष्ण ललिता से कहते हैं। वह उसे मनाने महावन जाती है और महज ही सकल हो जाती है फिर राधा शृंगार करके कृष्ण से मिलने महावन जाती है। कृष्ण ललिता को कौस्तुभ मणि पुरस्कार में देते हैं तदनन्तर राधाकृष्ण महावन में रमण करते हैं। नरसी की शृंगारमाला

आदि में भी इस विषय के पद हैं। एक पद में मणि के हार में अपना प्रतिविम्ब देखकर राधा के भ्रान्त होने का स्पष्ट उल्लेख है।^{१०६}

भालण ने मान का कारण कौस्तुभ में राधा का प्रतिविम्ब ही माना है।

कौस्तुभ मा निजरूप, देखी रीसावी प्यारी।

जाण्यु खोलासां बेठी छे मुज सरखी नारी।

—द० स्कं०, पृ० १०६

कृष्ण दूती के कथन से मणि उतार देते हैं और राधा अपना भ्रम समझ कर मान त्याग देती हैं।^{१०७} भालण ने दूती का कोई नाम नहीं दिया और मान के उपरांत रमण का भी वर्णन नहीं किया।

सूरदास, ध्रुवदास, माधवदास तथा हरिवंश ने मणि का उल्लेख न करके मान का कारण राधा द्वारा कृष्ण के शरीर में स्वप्रतिविम्ब दर्शन लिखा है।^{१०८}

सूर के कृष्ण मानभग के पश्चात् पीताम्बर ओढ़ लेते हैं जिससे पुनः भ्रम न हो।

यहि डर रहत पीतंबर ओढ़े कहा कहौ चतुराई।

अब जनि कहै हिये में को है बहुरि परी कठिनाई।

—सू० सा०, पृ० ५२३

दूती के रूप में ललिता का नाम सूर की दूसरी मानलीला के अन्त में मिलता है।^{१०९} यह माधवदास की मानमाधुरी में भी प्राप्त होता है अन्यत्र कवियों ने प्रायः 'चतुरदूतिका' 'दूती' अथवा 'सखी' का ही प्रयोग किया है। माधवदास के कृष्ण भी मान दूर करने के बाद एक झीना वस्त्र ओढ़ लेते हैं।^{११०}

मानलीला का दूसरा रूप वह जिसमें मान का कारण कृष्ण का बहुनायकत्व है। ऐसी दशा में राधा खडिता होकर मान करती है। स्फुट रूप से ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने इस विषय के पद तथा छंद रचे हैं।

सूरसागर में प्रथम मानलीला के पश्चात् राधा के खडिता स्वरूप का अनेक पदों में विस्तृत वर्णन है। कृष्ण के बहुनायकत्व के प्रसंग में उन्हें ललिता, चन्द्रावली, कीला, वृन्दा आदि सखियों से अनुरक्त चित्रित किया गया है।^{१११} बड़ी मानलीला में राधा कृष्ण से मिलते ही बहुनायकत्व के पूर्वाभास के कारण रूठ जाती है। उसके इस मान का कारण उसका रूप-यौवन-गर्व भी है जिसकी ओर एक सखी संकेत करती है।



नहि तेरो अति ही हठि नीको ।

सूर स्वरूप गर्व जोवन के जानति हौ अपने सिर टीको ।

—सू० सा०, पृ० ५०८

गुजराती में मानलीला वर्णन करने वाले कवियों ने मान का यह कारण भी दिया है । मयण के कृष्ण भोगी भ्रमर है और अकारण अबला को छोड़कर चले जाते हैं । राधा एक सखी को भेजती है, वह कृष्ण को लाती है और दोनों रमण करते हैं । मयण की 'माणिणी' का मान कृष्ण के प्रयास से नहीं वसन्त के आगमन से स्वतः समाप्त हो जाता है—

सखी ए वसंत प्रियारडु माननि मान धमुक्कीउ ।

—मयणछद, पद २६

नरसी और भालण में भी कृष्ण के बहुनायकत्व के कारण खडिता राधा के मान का वर्णन है ।^{१८२}

इस तुलनात्मक विवेचन के उपरांत भी सूर की मानलीलाओं में कुछ ऐसी विशेषताएँ शेष रह जाती हैं जिनका उल्लेख आवश्यक है:—

१. बहुनायक कृष्ण की एक अनुरक्ता गोपी 'चन्द्रावली' का राधा के पास जाकर उससे सुरत-भुख की बात पूछना । नरसी ने यह काम ललिता से लिया है ।^{१८३}
२. पाँच वर्ष के बालक कृष्ण का सहसा तरण होकर एकान्त अत.पुर में राधा से रमण ।^{१८४}
३. कृष्ण का दूती रूप धारण करके स्वयं राधा का 'दूढ मान' छुड़ाना ।^{१८५}

रास-लीला

कृष्ण-साहित्य की समस्त वर्ण्य वस्तु में रास सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय रहा है । प्राचीन ग्रंथों में इसका वर्णन भास के बालचरित, तामिल शिलाप्पदिकरम् एव आडाल के तिरुपावै, ब्रह्म, विष्णु, हरिवंश, पद्म, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण और जयदेव के गीतगोविन्द में विशेष रूप से प्राप्त होता है । बालचरित तथा हरिवंश में रास की सजा 'हल्लीषक' मिलती है ।^{१८६} तामिल साहित्य में इसे 'कुरवइ कुट्टु' कहा गया है ।^{१८७} शेष समस्त ग्रंथों में रास को रास के ही रूप में ग्रहण किया गया है । अर्थ की दृष्टि से सभी का तात्पर्य मंडलीरूप स्त्री-संयुक्त नृत्य विशेष से

है।^{१८८} यद्यपि भास कालीय नाग के फनो पर नर्तित कृष्ण के नृत्य को भी हल्लीषक ही कहते हैं जहाँ कथित परिभाषा घटित नहीं होती।^{१८९} पुराणों में रासवर्णन का प्राचीनतम रूप हरिवंश, ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में प्राप्त होता है। भागवत तथा पद्मपुराण में अपेक्षाकृत वर्णन अधिक विस्तृत हो जाता है। पद्मपुराण में दंडकारण्यवामी ऋषियों की कथा समाविष्ट हो जाती है। ब्रह्मवैवर्त में रास का वर्णन उक्त पुराणों की तुलना में 'बहुत अशों में' भिन्न रूप में उपलब्ध होता है। गीतगोविन्द तक आते-आते रास के निम्नलिखित कई प्रकार उपलब्ध होने लगते हैं।

१. गोपी-कृष्ण रास

२. राधा-कृष्ण-गोपी रास

३. राधा-कृष्ण रास

ऋतु की दृष्टि से रास के दो भेद किये जा सकते हैं—

१. शारदी रास

२. वासंती रास

रास के यह सभी भेदोपभेद गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनों के कृष्ण-काव्य में प्राप्त हो जाते हैं। गुजराती में इनके अतिरिक्त स्थान भेद से वृन्दावन-रास की उस सारी परम्परा से भिन्न द्वारका-रास का भी वर्णन मिलता है। जैसे नयर्षि के फागु में जिसका परिचय उक्त भेदों के परिचय के बाद आगे दिया गया है। नरसी मेहता का स्वानुभूत प्रत्यक्ष रास वर्णन और भीरा का निर्गुणरास, रास का एक नितांत भिन्न रूप प्रस्तुत करता है जो समस्त कृष्ण साहित्य में अद्वितीय है। इसी प्रकार ब्रजभाषा में राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास आदि के कमल-रास का वर्णन भी अन्यत्र नहीं मिलता। ब्रजभाषा के कतिपय कवियों ने ब्रह्मवैवर्त से प्राप्त राधा-कृष्ण विवाह के प्रसंग का भी रास के अन्तर्गत ही वर्णन किया है किन्तु गुजराती कृष्ण-काव्य में यह इस रूप में वर्णित नहीं है।

साधारणतया दोनों भाषाओं में भागवत की रास पंचाध्यायी (दशम, अ० २९-३३) की वस्तु को ही आदर्श रूप में ग्रहण किया गया है यद्यपि उसे शुद्ध रूप में कम कवियों ने प्रस्तुत किया है। प्रायः उसमें ब्रह्मवैवर्त तथा गीतगोविन्द की परम्परा का मिश्रण कर दिया गया है। भागवत के रास-वर्णन की मूल-वस्तु को निम्न अंशों में मुख्य रूप से विभाजित किया जा सकता है।

१. वेणुगीत

२. गोपी-कृष्ण सवाद

३. गोपी-गर्व, कृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपियों का कृष्ण-लीलानुकरण तथा कृष्णान्वेषण

४. यमुना तट पर कृष्ण का प्रकट होना, सभाषण, महारास, वाद्य एवं सगीत तथा कृष्ण का अनेक रूप धारण

५. जल-क्रीडा

रास के उपर्युक्त सभी प्रकारों, भेदों, विशिष्ट रूपों तथा भागवत राम के प्रमुख अंशों से सम्बन्धित सामग्री का तुलनात्मक निरूपण करने के पूर्व दोनों भाषाओं में रास विषयक साहित्य का निर्देश कर देना अत्यन्त आवश्यक है।

गुजराती में मुख्यतः रासक्रीडा पर लिखित काव्यों में १५वीं शती में नयर्षि का 'फागु', १६वीं में नरमी की 'रास महसपदी' वासणदास का 'कृष्णवृन्दावनरास' और १७वीं में देवीदास विरचित 'रासपंचाध्यायी नो सार' तथा बैकुण्ठदास कृत 'रासलीला' उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त अनेक दशमस्कन्धकारों तथा भागवत के अनुवादकों द्वारा राम का वर्णन किया गया है। इनमें १५वीं शती में भालण और हरिग्रीलाषोडशकलकार भीम, १६वीं में कृष्णक्रीडाकाव्यकार केशवदास और १७वीं में प्रेमानंद, माधवदास, रत्नेश्वर, लक्ष्मीदास आदि प्रमुख हैं। शिवदास के 'बालचरित' तथा परमानंद के 'हरिरस' में भी रास-वर्णन प्राप्त होता है।

ब्रजभाषा में १५वीं शती का प्रश्न ही नहीं उठता, १६वीं में रास पर ही आधारित रचनाओं में सूरदास के बहुमंख्यक पद, नंददास की 'रासपंचाध्यायी' तथा 'सिद्धान्तपंचाध्यायी' और १७वीं में ध्रुवदास की 'ब्यालीस लीला' की 'निर्तविलास' आदि अनेक रचनाएँ, माधवदास की वंशीवट एवं वृन्दावन विषयक कई माधुरियाँ गणनीय हैं। रहीम विरचित रासपंचाध्यायी का भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक सम्प्रदाय के अन्तर्गत रास के प्रसंग पर अनेक कवियों द्वारा पदों की रचना हुई और सम्प्रदाय-भुक्त कवियों ने भी इस विषय पर अनेक पद रचे। नंददास की सिद्धान्तपंचाध्यायी जैसी कोई रचना गुजराती में उपलब्ध नहीं होती जो रास के दार्शनिक महत्त्व पर प्रकाश डालने के निमित्त ही रची गई हो।

रास के विविध प्रकार [पात्रों की दृष्टि से]

गोपी-कृष्ण रास—कदाचित् रास का यह प्रकार परम्परा के रूप में सर्वाधिक प्राचीन है। बालचरित, हरिवंश, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण तथा भागवतपुराण का

रास-वर्णन इसी परम्परा के अन्तर्गत आता है।^{११०} इन पुराणों में रास विषयक इतनी समानता है कि कतिपय वही श्लोक सभी में मिलते हैं। 'तावायमाणा' से प्रारंभ होने वाला श्लोक तीनों पुराणों में प्राप्त होता है। रास की मूलवस्तु उक्त पहले दोनों ग्रंथों में ही उपलब्ध हो जाती है जिसका विकास शेष तीनों पुराणों में क्रमशः होता गया है। इस परम्परा में राधा जैसी किसी गोपी विशेष का स्पष्ट उल्लेख न करके समस्त गोपी समूह के साथ कृष्ण के रासरमण का वर्णन किया जाता है। भास ने कतिपय गोपियों तथा बलराम का नाम अवश्य दिया है^{१११} किन्तु राधा के अभाव में अतः उनका रास वर्णन इस परम्परा से बहुत पृथक् नहीं है क्योंकि ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में भी 'सहरामेण' से बलराम की उपस्थिति का संकेत किया गया है। ब्रह्मपुराण में गोपियों के नाम लेने की बात भी है पर नाम नहीं दिये हैं।^{११२}

रास-वर्णन की यह परम्परा गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कृष्ण-काव्य में व्यक्त हुई है किन्तु बलराम की उपस्थिति का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। ब्रजभाषा में केवल नंददास की रासपचाव्यायी में ही उसके पूर्णतया भागवत पर आधारित होने के कारण इसका शुद्ध परिपालन हुआ है किन्तु गुजराती में अनेक कवियों द्वारा विशुद्ध गोपी-कृष्ण रास का वर्णन हुआ है जिनमें भीम, केशवदास, सत, प्रेमानंद, माधवदास, शिवदास तथा रत्नेश्वर आदि के नाम अग्रगण्य हैं। नरसिंह ने भी यद्यपि गोपी-कृष्ण रास का ही वर्णन किया है तथापि अन्य कई कारणों से उनका 'फागु' इस परम्परा का काव्य सिद्ध नहीं होता। नरसी का समस्त रास-वर्णन यद्यपि इस परम्परा में नहीं आता तथापि अनेक पदों में उन्होंने गोपी-कृष्ण रास का वर्णन किया है।^{११३} इसी प्रकार ब्रजभाषा में भी कुछ परम्परानुसारी कवियों ने जहाँ पर भागवत का आधार लिया है वहाँ गोपी-कृष्ण रास का भी वर्णन मिल जाता है।^{११४} परन्तु सूर जैसे राधा-रास का वर्णन करने वाले कवियों के काव्य में पद ऐसे अपवाद स्वरूप ही प्रतीत होते हैं।

राधा-कृष्ण-गोपी रास—ब्रह्मवैवर्त पुराण के द्वारा भागवत की 'अनयाराधितो-नून' से व्यजित गोपीविशेष का राधा के रूप में स्पष्टीकरण तथा उसमें पाये जाने वाले राधामाधव के सखियों से युक्त विशद रास से ही संभवतः इस राधा-कृष्ण गोपी रास की परम्परा का प्रारंभ होता है। ब्रह्मवैवर्त के बाद राधामाधव से संयुक्त इस रास परम्परा का विविध रूपों में विकास हुआ जिसका एक प्रमाण गीतगोविन्द है।^{११५} परन्तु जयदेव ने राधा को रास से सम्बद्ध करते हुए भी गोपी-

कृष्ण रास के वर्णन में उन्हें पूर्ण पात्रता प्रदान नहीं की। 'ललितलवंगलता' वाले गीत में सभी राधा को ही 'नृत्यतियुवतिजनेनमम' का वर्णन भुनाती है अतएव राधा की पात्रता का प्रश्न ही नहीं उठता।

गुजराती और ब्रज दोनों ही भाषाओं के कवियों ने इस परम्परा का अनुसरण किया है किन्तु इस अनुसरण के भी कई स्तर हैं। पहला स्तर वह है जिसमें रास का समस्त वर्णन लगभग भागवत के ही अनुसार किया है केवल गोपी विशेष के स्थान पर तथा एकाध अन्य स्थल पर राधा का उल्लेख कर दिया गया है। गुजराती के दशमस्कंधकार लक्ष्मीदास की 'रामपंचाध्यायी' जो भालुण के दशम स्कंध में प्रक्षिप्त है, इसी स्तर की रचना है उन्होंने राधा का उल्लेख दो स्थलों पर किया है।^{११५} 'हरिरस' के रचयिता परमानंद ने भी रास में राधा को ऐसा ही स्थान दिया है। यद्यपि उनका उल्लेख लक्ष्मीदास की अपेक्षा अधिक मागोपाग है। उसमें राधा की मूर्छा का भी वर्णन है जिसका आधार ब्रह्मवैवर्त पुराण है।^{११६} प्रेमानंद ने रास-वर्णन तो भागवत के ही आधार पर किया है परन्तु केवल एक स्थल पर राधा का उल्लेख कर दिया है 'राधा भक्ति नो अवतार' (श्रीम० भा०, पृ० २९५)। ब्रजभाषा के कवियों द्वारा रास में राधा का पूर्ण स्वीकार हुआ है अतः इस प्रकार की आंशिक स्वीकृति का कोई उदाहरण उसमें प्राप्त नहीं होता।

रास-वर्णन का दूसरा स्तर उन कवियों के काव्य में व्यक्त हुआ है जिन्होंने राधाकृष्ण के युगल रूप को सम्पूर्ण रास में स्थान दिया है और विभिन्न प्रसंगों में स्थल स्थल पर राधा के अस्तित्व का प्रमाण दिया है। इस कोटि में गुजराती और ब्रजभाषा के बहुत से कवियों का रास-वर्णन आ जाता है। गुजराती में नरसी और वासुदेवदास तथा ब्रजभाषा में लगभग सभी साम्प्रदायिक कवियों ने इस प्रकार का रास-वर्णन किया है।^{११७} वासुदेवदास के रास-वर्णन में अन्य अनेक विभेद होने के कारण उसे पूर्णतया इसी स्तर में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस विषय में विशेष परिचय 'विशिष्ट रास वर्णन' शीर्षक के अंतर्गत दिया जायगा।

'राधा-कृष्ण-गोपीरास' वर्णन के तीसरे स्तर में कवियों ने राधा-कृष्ण सम्बन्धी कतिपय नवीन प्रसंगों का समावेश किया है जैसे राधाकृष्ण-विवाह, राधा की नथनी और हार का खो जाना। रास के अन्तर्गत विवाह का वर्णन ब्रजभाषा में सूरदास, भुवदास आदि के काव्य में मिलता है, गुजराती में नरसी के 'वसंतना पदों' में इसका संकेत है परन्तु विस्तृत वर्णन नहीं है। ब्रजभाषा में इसके विरुद्ध आभूषण खोने का प्रसंग उपलब्ध नहीं होता। राधाकृष्ण-विवाह का मूल स्रोत भी वास्तव

मे ब्रह्मवैवर्त पुराण ही है किन्तु उसमें विवाह रास के पूर्व होता है।^{१००} सूर ने रास के अन्तर्गत ही विवाह की कल्पना की है। यह शरद निशि की लग्न तथा मुरली ध्वनि से गोपियों के न्योते जाने के प्रसंग से स्पष्ट है जिसका ब्रह्मवैवर्त के विवाह-वर्णन से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।^{१०१} ध्रुवदास ने 'मंडलसभासिगार' में पहले विवाह का वर्णन किया है फिर रास का।^{१०२} वनविहारलीला ने पुनः विवाह का सर्वांगीण निरूपण मिलता है जिसमें गठजोरा, दूधाभानो के बाद 'रैनि मुहाग' का भी वर्णन है किन्तु रास से उसका कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। राधावल्लभीय गौडीय, हरिदासी तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों द्वारा राधा-कृष्ण का वर्णन 'दम्पति' अथवा 'दूल्हा दुल्हिनी' के रूप में विशेष रूप से प्राप्त होता है फलतः रास प्रसंग में विवाह-वर्णन का उतना आग्रह नहीं मिलता। रास में अधिकतर राधा-कृष्ण दम्पति के रूप में ही चित्रित किये गये हैं जैसा द्वितीय स्तर के राधा-कृष्ण-गोपीरास वर्णन से स्पष्ट है।

गुजराती में नरसी मेहता ने कई स्थलों पर राधा-कृष्ण के विवाह का चित्रण किया है किन्तु रास से उसका निश्चित सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। एक स्थल पर रास के ही अन्तर्गत राधा के विवाहित रूप का संकेत मिलता है।^{१०३} किन्तु शेष स्थलों पर विवाह वर्णन स्वतंत्र रूप से किया गया है।^{१०४} भालण, केशवदास, प्रेमानंद आदि अन्य किसी गुजराती कवि ने राधाकृष्ण-विवाह का वर्णन ही नहीं किया है अतः रास के प्रसंग से उसके सम्बन्धित होने का कोई प्रश्न नहीं उठता। भालण एक स्थान पर एक गोपी के मुख से, जो कदाचित् राधा ही हैं, कृष्ण को सदा के लिए अविवाहित कहलाते हैं—

लोक विषे लपट थयो रे, तारो विवाह न मळे वेद रे।

—द० स्क०, पृ० १४७

रास-क्रीडा के समय राधा के हार अथवा नथनी के खोये जाने का वर्णन गुजराती में तो अवश्य मिलता है^{१०५} पर ब्रजभाषा के किसी कवि ने ऐसा वर्णन नहीं प्रस्तुत किया। सूर ने केवल राधा की माला के टूट कर गिरने का ही उल्लेख किया है—

दरकि कचुकी तरकि माला रही धरणी जाइ।

—सू० सा०, पृ० ४४६

राधा-कृष्ण रास—ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्णजन्म खंड के ५२वें अध्याय के अन्तर्गत राधाकृष्ण के एकांत रास का भी वर्णन मिलता है और इसे राधामाधव-

रास की संज्ञा भी दी गई है।^{१०५} कृष्ण राधा के साथ अन्तर्धान हो जाने के अनन्तर उन्हीं के साथ रास-क्रीडा करते हैं। गुजराती कृष्ण-काव्य में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।^{१०६} ब्रजभाषा में सूरदास ने कृष्ण का राधा के साथ अन्तर्धान होना तो वर्णित किया है परन्तु इस प्रकार के रास का वर्णन उस प्रसंग में नहीं है (सू० सा०, पृ० ४४८) और किसी अन्य कवि ने भी नहीं किया, किन्तु अन्तर्धान होने के प्रसंग से भिन्न स्थलों पर राधामाधव रास विषयक पद, सूरदास, हरिवंश, गदाधर आदि कवियों ने रचे हैं यद्यपि उनमें उक्त गुजराती कवियों की भाँति एकांत का निर्देश नहीं है।^{१०७}

रास के विविध प्रकार [समय (ऋतु) की दृष्टि से]

शारदी रास—शरद काल की पूर्णिमा के अवसर पर रास-क्रीडा वर्णन करने की परम्परा का मौलिक रूप में गोपी-कृष्ण रास की परम्परा से अभिन्न सम्बन्ध रहा है। जिन पुराणों में इस रास का वर्णन मिलता है उन्हीं में शरद ऋतु का भी उल्लेख मिलता है—

शारदीं च निशां रम्यां अनश्चक्र रतिम्प्रति ।

—हरिवंश, विष्णु पर्व, अ० ७७

कृष्णस्तु विमलं व्योम शरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम् ।

—विष्णुपुराण ५: १३: १४

—ब्रह्मपुराण अ० ११८

शरदोत्फुल्ल मल्लिका ।

—भागवत, १० : २९ १

ब्रह्मवैवर्त में पूर्णिमा के स्थान पर त्रयोदशी का वर्णन है, ऋतु नहीं दी है—

शुभे शुक्ल त्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये भुजे ।

—अ० २८

गुजराती और ब्रजभाषा दोनों में कृष्ण काव्य में इस परम्परा के अनुकरण के अगणित प्रमाण हैं और यह प्रमाण पूर्वोक्तलिखित रास के लगभग सभी प्रकारों में उपलब्ध हो जाते हैं। कवियों ने गोपी-कृष्ण रास, राधा-कृष्ण-गोपीरास तथा राधा-कृष्णरास सभी को शारदी रास के रूप में चित्रित किया है।^{१०८} उन वर्णनों में जिस 'खटमासी' रात्रि का उल्लेख है उसका मूल कदाचित् ब्रह्मवैवर्त में वर्णित एक मास की रात्रि है।^{१०९}

वासंती रास—इस प्रकार के रास में प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सामूहिक नृत्य

का वर्णन विशेष रूप से किया गया है यद्यपि पौराणिक परम्परा की छाया भी यत्र तत्र मिल जाती है। कृष्ण-काव्य में शरदी रास की तरह इस रास की भी परम्परा पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होती है। 'बालचरित' का रास-वर्णन यद्यपि अधिक अंशों में वासती रास ही प्रतीत होता है किन्तु ऋतु सम्बन्धी कोई उल्लेख न होने से उसे उन दोनों परम्पराओं में से किसी में भी स्वीकार नहीं किया जा सकता ब्रह्मवैवर्त में इसका सूत्र अवश्य मिलता है —

कृत्वा क्रीडां तत्रैव वासंतो काननं ययौ
रेमे तत्रैव रासेशो वसन्ते मुमनोहरे ॥

—कृ० खड, अ० ५३

और 'गीतगोविन्द' पर भी इसी की छाया है—

विहरति हरिरिह सरस वसन्ते
नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरहि जनस्य दुरन्ते ।

—प्रथम सर्ग

मैथिल कवि विद्यापति के पदों में भी वासती रास के वर्णन मिलते हैं।^{११०} कदाचित् प्राकृत एवं अपभ्रंश काव्यों में इस रास की परम्परा प्रचलित रही जिसके दर्शन १५वीं शती के गुजराती कवि नयषि के 'फागु' काव्य में होते हैं।^{१११} १६वीं शती के केशवदास ने वासंती रास का अधिक स्पष्ट वर्णन किया है।^{११२} ब्रजभाषा में भी इसके कतिपय उल्लेखनीय सकेत मिल जाते हैं।^{११३} गुजराती में वासणदास ने सूर की तरह ही प्रारंभ में शरद ऋतु का निर्देश करके अन्त में 'ऐहवे माघव मास अंगि गाओ केसू ते फूल्यां बहू । कार्लिदी सुसुतीर धीर राधा खेले ते होली सहू ।' लिखकर एक स्थल पर वसंत का उल्लेख किया है।

नरसी, सूर तथा अन्य अनेक कवियों ने वसंत विषयक पदों में नृत्य का वर्णन किया है परन्तु वह होली से सम्बद्ध है।

रास के विविध प्रकार [स्थान की दृष्टि से]

वृन्दावन रास—नयषि को छोड़कर गुजराती और ब्रजभाषा के सभी कवियों ने रास-क्रीड़ा का क्षेत्र वृन्दावन का यमुनातट माना है जिसका उल्लेख सभी वर्णनों में प्राप्त होता है। सूर ने इस क्षेत्र की सीमाएँ भी दे दी हैं।^{११४}

द्वारका रास—गुजराती के नयषि और नरसी ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने द्वारका में रास का चित्रण किया है^{११५}—

(क) राज करइ श्रीरग...यादवनायकु अं ।

नाचइ गोपियवृन्द...

पुहता निजपुरी अं

(ख) ...मुजने श्री द्वारका मांहे राख्यो ।

...शरदपुनमतणो दिवस तहां आवीयो,

राममरयादनो वेण वाध्यो ।

रुकमणी आदि सहु नारि टोले मळी,

नरसहीअ तहां ताल साध्यो ।

वस्तु की इस विचित्रता को दो प्रकार से समजा जा सकता है । एक तो कदाचित् इस प्रकार की परम्परा गुजरात में प्रचलित रही हो दूसरे यह कि कवियों ने वास्तविक परम्परा से भिन्न स्वकल्पना से ऐसा वर्णन किया हो । दूसरी सम्भावना अधिक यथार्थ प्रतीत होती है ।

भागवत के रास की मूलवस्तु के आधार पर रास-वर्णन के विभिन्न अंशों का तुलनात्मक अध्ययन—इस वस्तु का विभाजन विवेचन के प्रारंभ में ही किया जा चुका है अनुवादकों के अतिरिक्त दोनों भाषाओं में कई कवि ऐसे मिलते हैं जिन्होंने भागवत की लगभग सम्पूर्ण वस्तु का अपने ढंग से उपयोग किया है जैसे गुजराती में नरसी, केशवदास और प्रेमानंद तथा ब्रजभाषा में सूर और नंददास । साथ ही बहुत से कवि ऐसे हैं जिन्होंने अनेक महत्वपूर्ण अंशों को अपने रास-वर्णन में स्थान नहीं दिया । कुछ ने परिवर्धन और कुछ ने संश्लेष भी किया है । भागवत-परम्परा के रास-वर्णन में भी भागवत के रास की छाया मिलती है । इस समस्त वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए पूर्वोक्त प्रमुख अंशों पर क्रमशः विचार करने की आवश्यकता है ।

१. वेणु-गीत—गीत के द्वारा गोपियों को आकर्षित करने की बात ब्रह्म तथा विष्णुपुराण आदि में भी प्राप्त होती है।^{११६} किन्तु बालचरित तथा हरिवंश में इसका उल्लेख नहीं मिलता । पौराणिक परम्परा के अनुसार भागवत ने 'जगौकलं वामदृशां मनोहरं' लिखा और उसे 'अनंग वर्धन' भी कहा । आगे चल कर भागवत-कार ने स्पष्ट कर दिया कि यह गीत केवल गीत न होकर वेणु-गीत है।^{११७}

ब्रजभाषा के लगभग सभी कवियों ने रास-प्रारंभ में इस वेणु-गीत का उल्लेख किया है किन्तु सूर ने—

'सूर नाम लै लै जन जन के मुरली बारबार बजाई'

लिखकर कदाचित् बालचरित तथा ब्रह्मपुराण का अनुसरण किया है। जयदेव तथा विद्यापति ने भी ऐसा वर्णन किया है।^{१२८} नंददास ने तो भागवत के 'योग माया-सुपाश्रितः' को वेणु से सम्बद्ध करके उसे 'जोगमाया की मुरली' कह डाला। ब्रज-भाषा के अन्य अनेक कवियों ने वेणु-गीत का उल्लेख अपने काव्य में किया है।^{१२९} गुजराती के कवियों में नयषि तथा केशवदास ने वेणु-गीत का उल्लेख नहीं किया है किन्तु शेष कवियों ने वेणु-गीत का बराबर वर्णन किया है।^{१३०}

कृष्ण की बाँमुरी को लेकर उपालभ के रूप में सूर आदि अनेक कवियों ने स्वतंत्र रूप से काव्य रचना की। ऐसी कुछ रचनाएँ नरसी, मीरा के गुजराती के पदों में भी प्राप्त होती हैं।

२ गोपी-कृष्ण संवाद—वेणुनाद से आकृष्ट 'तावार्यमाणाः पतिभिः...मोहिता' गोपियों को कृष्ण घर लौट जाने का आदेश देते हैं जिसका वे उत्तर देती हैं। इस गोपी-कृष्ण संवाद (भा० १० . २९ : १८-४१) का वर्णन ब्रजभाषा में सूरदास, नंददास आदि बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में ही उपलब्ध होता है। इसी प्रकार गुजराती में नरसी, भालण, केशवदास तथा कतिपय अनुवादकों में ही यह सवाद मिलता है। ब्रजभाषा में सूर और गुजराती में केशवदास ने इसका विशेष विस्तार से वर्णन किया है।^{१३१}

३ गोपी-गर्व तथा कृष्ण का अंतर्धान होना—उन्नीसवें अध्याय में ही उक्त सवाद के उपरान्त रमण में गोपियों के गर्वित होने तथा उस गर्व के कारण कृष्ण के अंतर्धान होने का प्रसंग भागवत में आता है। यह प्रसंग रास की अत्यन्त प्रमुख घटना है। भागवत में कृष्ण के अंतर्धान होने की बात दो स्थलों पर मिलती है। एक बार कृष्ण गोपियों में सौभाग्यमद होने पर अंतर्धान होते हैं और दूसरी बार उस गोपी विशेष की स्कन्धारोहण की इच्छा पर जो पहली बार उनके साथ अंतर्धान हुई थी।^{१३२} ब्रह्मवैवर्त में भी दोनों अंतर्धानों का वर्णन है।^{१३३} यह आश्चर्य की बात है कि नंददास जैसे भागवतानुकूल रासवर्णन करने वाले कवि ने पहले अंतर्धान को 'मजु कुज में तनक दुरे' के रूप में परिणत कर दिया और दूसरे का केवल 'किधौ चंद सौ रूसि चन्दिका रहि गई पाछे' लिखकर सकेत भर कर दिया है। सूर ने दोनों का स्पष्ट वर्णन किया है।^{१३४} गोपी-कृष्ण सवाद की तरह ही ब्रज के अन्य सम्प्रदायों के कवियों द्वारा अंतर्धान के प्रसंग का भी वर्णन नहीं हुआ है। गुजराती में इस प्रसंग का वर्णन नयषि, नरसी, प्रेमानंद, लक्ष्मीदास, वासणदास आदि अनेक कवियों द्वारा विविध प्रकार से रास के प्रसंग में किया गया है। नरसी

ने रास के अन्तर्गत आँखमिचौनी के खेल के उपरांत कृष्ण के अंतर्धान होने का वर्णन किया है ।^{२२५}

अंतर्धान के दूसरे प्रसंग में प्रेमानंद ने अपनी कल्पना से नवीनता उत्पन्न कर दी है । कृष्ण उस गोपी विशेष से वृक्ष की डाल का सहारा लेने के लिए कह कर छल से वृक्ष के नीचे अंतर्धान हो जाते हैं ।

विरह-विह्वल गोपियों द्वारा कृष्णलीलानुकरण—भागवत में कृष्ण के अंतर्धान हो जाने के पञ्चान् गोपियों की विरहावस्था का विगद चित्रण है जिसमें वे कृष्ण की अनेक लीलाओं का अनुकरण करती हैं ।^{२२६} दोनों भाषाओं के भागवतानुयायी पूर्व निर्दिष्ट कवियों ने ही इसका भी वर्णन किया है, नरयणि, भालण, वासणदास आदि ने नहीं । सूर ने स्पष्ट लिखा है—

करति है हरिचरित्र ब्रज नारि ।

देखि अति ही विकल राधा इहै बुद्धि विचारि ।

—सू० सा०, पृ० ४५२

सूर का वर्णन भागवत से कई प्रकार भिन्न है । एक तो यह कि भागवतकार ने इसका वर्णन गोपी विशेष से भेट होने के पूर्व किया है दूसरे उसका उद्देश्य तन्मयता व्यक्त करना है परन्तु सूर ने राधा से गोपियों की भेट हो चुकने पर राधा की विह्वलता निवारण के लिए इसका वर्णन किया है । नंददास ने भागवत का ही अनुसरण किया है ।^{२२७} नरसी तथा सूर के उक्त वर्णन में आश्चर्यजनक साम्य है । परिस्थिति तथा उद्देश्य दोनों ही समान हैं^{२२८}—

‘कृष्णचरित्र गोपी करे, वीलसे राधानार’ ।

पदांक दर्शन एवं कृष्णान्वेषण—पूर्व प्रसंग से यह प्रसंग सम्बद्ध है अतः इसकी भी स्थिति पूर्ववत् है । ब्रह्मवैवर्त में इसका वर्णन नहीं है । उदाहरण दोनों भाषाओं के कवियों के पाये जाते हैं ।^{२२९}

४ यमुना तट पर कृष्ण का प्रकट होना तथा संभाषण—यमुना तट का वर्णन तो अन्य कवियों में भी प्राप्त होता है पर प्रसंग के क्रम तथा संवाद से युक्त वर्णन भागवतानुयायी कवियों में ही मिलता है ।^{२३०} भागवत के दशम स्कंध के वत्तीसवें अध्याय में इसी प्रसंग का वर्णन है । सूर ने केवल कृष्ण के प्रकट होने का वर्णन किया है । नरसी ने इसी घटना को महत्त्व नहीं दिया और न उनकी ‘राससहस्रपदी’ में इसका वर्णन ही मिलता है ।

महारास—इसके वर्णन में प्रायः कवियों ने भागवत के दशम स्कंध के तैत्तिरीय अध्याय से प्रेरणा ली है। इस विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि सूर ने इसी महारास का दो बार वर्णन किया है। भागवत में कृष्ण के अतर्धान होने से पहले उनका गोपियों के साथ केवल रमण करना 'बाहु प्रसार परिरम्भ...रमयांचकार' वर्णित है। सूर ने यहाँ अपनी स्वतंत्र उद्भावना से रास का मांगोपाग वर्णन किया है। उनके इस रास-वर्णन पर ब्रह्मवैवर्त का भी कुछ प्रभाव लक्षित होता है।

अतर्धान होने से पहले के रमण को रास रूप में नरसी ने भी ग्रहण किया है जो 'वृन्दावन माहे रास रमतां' वाले पद से प्रकट है किन्तु गुजराती के अन्य कवियों प्रेमानंद, केशवदास आदि ने भागवत की परम्परा का ही पालन किया है। इस महारास के भी दो प्रमुख उपाग हैं—

१. वाद्य संगीत का आयोजन

२. कृष्ण का अनेक रूप धारण

वाद्य संगीत का आयोजन—ब्रजभाषा में हरिदास आदि अनेक कवियों ने अपनी गान विद्या की अभिरुचि का परिचय रास के इस अंश के वर्णन में दिया है।^{१३१} भागवत में संगीत शास्त्र के ज्ञान का प्रदर्शन नहीं है। रास में 'उरप-तिरप' का वर्णन अष्टछाप के कवियों ने भी अनेक बार किया है। गुजराती के कवियों के रास-वर्णन पर भी संगीत का प्रभाव यत्र तत्र परिलक्षित होता है।^{१३२}

कृष्ण का अनेक रूप धारण—भागवत में इसका वर्णन स्पष्टतया मिलता है कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोप्योषितः (१०: ३३: २०)। ब्रह्मवैवर्त में इस विषय की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि वहाँ रास में गोपियों के साथ उतने ही गोपों की उपस्थिति भी वर्णित है। कवियों ने गोपियों की १६००० मख्या का उल्लेख किया है जो भागवत में नहीं है। सूर कृष्ण के अनेक रूप धारण करने के साथ ही उन रूपों से प्रत्येक गोपी के साथ विवाह तथा रमण करने का भी उल्लेख करते हैं, जो ब्रजभाषा के अन्य कवियों में नहीं प्राप्त होता।^{१३३} 'द्वै द्वै गोपिन बीच जु मोहन-लाल बने छवि' से स्पष्ट होता है कि नंददास ने भागवत का पूर्ण आधार लिया है और गोपियों की मख्या नहीं दी। हरिवंश, ध्रुवदास, श्रीभट्ट, गदाधर भट्ट तथा हरिदास आदि राधा-प्रधान सम्प्रदायों के कवियों में कृष्ण के अनेक रूप धारण का वर्णन नहीं प्राप्त होता। इसका कारण 'दम्पति' अथवा युगल रूप का आग्रह तथा राधा की अन्य गोपियों की अपेक्षा श्रेष्ठता व्यजित करना प्रतीत होता है इसके प्रतिकूल भागवत में किसी गोपी विशेष को केन्द्ररूप में न लेकर सारी गोपियों की समानता प्रकट की गयी है।

गुजराती में भी रास-वर्णन के अतर्गत कृष्ण के अनेक रूपों का उल्लेख पाया जाता है।^{१३६} प्रेमानंद ने तो कृष्ण ही नहीं बल्कि चन्द्रमा के भी सोलह सहस्ररूप धारण करने का उल्लेख किया है।^{१३५} वासणदास ने 'साथि सोल सहस्र नारि शामा' कह कर सख्या की परम्परा का तो पालन किया है परन्तु कृष्ण के अनेक रूपों का वर्णन नहीं किया। नर्यषि ने गोपियों की सख्या 'सहस्र अठार' दी है। इन सख्याओं का मूल कदाचित् कृष्ण की हजारों यलिनियाँ हैं जिनका उल्लेख विष्णु पुराण में मिल जाता है—

षोडश सहस्राण्येकोत्तरशतानि स्त्रीणामभवन् ।

—४ : १५ : १९

देवताओं द्वारा रास दर्शन तथा चराचर में व्याप्त उसके अलौकिक रूप का उल्लेख नरसी हरिवंश आदि ने किया है।^{१३६}

५. जल-क्रीड़ा—भागवत में राम के अंत में यमुना में कृष्ण-गोपियों की जल-क्रीड़ा का वर्णन है।^{१३७} इसका वर्णन दोनों भाषाओं में प्राप्त होता है। ब्रजभाषा के मूर, नददास, श्रीभट्ट आदि ने इस जल-क्रीड़ा का स्वतन्त्र रूप से विकास किया है।^{१३८} माधवदास ने जल-क्रीड़ा का वर्णन रास में पहले सध्या समय ही कर दिया है और अन्त में सेज-मुख का चित्रण किया है।^{१३९} गुजराती में केवल नरसी और नर्यषि ने जलक्रीड़ा का वर्णन किया है।^{१४०}

रास में संभोग वर्णन—भावना के आवेश में रलीलता तथा अरलीलता का ज्ञान नहीं रह जाता। इसी के परिणामस्वरूप रास के अतर्गत संभोग का भी वर्णन किया गया है जो ब्रजभाषा तथा गुजराती दोनों भाषाओं के काव्य में देखा जा सकता है।^{१४१}

रास से सम्बद्ध अन्य महत्वपूर्ण वस्तुएँ—ऊपर वर्णित बातों के अतिरिक्त भी रास-वर्णन में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण बातें शेष रह जाती हैं जिनका उल्लेख करना विषय की दृष्टि से आवश्यक है। ये नरसी-मीरा तथा ध्रुवदास के रास-वर्णन में पायी जाती हैं।

नरसी के रास-वर्णन की प्रमुख ज्ञातव्य वस्तु यह है कि उन्होंने अनेक स्थलों पर अपनी पात्रता का उल्लेख 'दीवटिया' तथा ताल बजाने वाले के रूप में किया है।^{१४२} नरसी ने एक स्थल पर रास की आरती का भी वर्णन किया है।^{१४३}

अपने को 'दीवटिया' कहकर नरसी ने रास की शारदी पूर्णिमा में भी दीपको की सत्ता स्वतः स्वीकार की है । भागवत तथा इसी परम्परा के अन्य किसी भी पुराण में रास के समय ज्योत्सना के अतिरिक्त अन्य किसी कृत्रिम प्रकाश का वर्णन नहीं मिलता । ब्रह्मवैवर्त में दीपको का उल्लेख तो है 'दीप्त रत्न प्रदीपैश्च' (कृ० ख० २८११) किन्तु नरसी के मस्तिष्क में कदाचित् किसी तत्कालीन लौकिक रासमंडली के दीवटिये की छाया रही होगी ।

नरसी के इसी आत्मानुभूत रास से पूर्वोक्त राधा की नयनी खो जाने के प्रसंग को सम्बद्ध किया जाता है जिसके फलस्वरूप उन्हें विभिन्न वर्णों में रास लीला के दर्शन हुए ।^{१५६} परन्तु विविध वर्णों में जिस वस्तु का चित्रण नरसी के काव्य में मिलता है उससे तथा रास से कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता ।^{१५७}

नरसी ने एक अन्य पद में रास में नारद के सम्मिलित होने का उल्लेख किया है—

रास ने रमाइयां रे वृन्दावन मारे, नारद जी तो नाचता हुता तांहा छंम ।^{१५८}
ब्रह्मवैवर्त में श्रोता नारद होने के कारण श्लोकों में यत्र तत्र "नारद" शब्द आ जाता है सभव है वही इस भ्रम का कारण बना हो ।^{१५९} नरसी ने 'गोविन्दगमन' के प्रसंग में भी रास का उल्लेख किया है जो वस्तु की दृष्टि से सर्वथा नवीन है ।^{१६०}

मीरा के एक गुजराती पद में रास को निर्गुण भावधारा के रूप में ढाल कर प्रस्तुत किया गया है—

मारा प्राण पातलिया बहेला आवो रे तम रे विनाहं तो जनम जोगण छु ।
नाभि कमल थी सुरता रे चाली जइ ने तखत पर रास रचीला रे ।
सुखमना नाडी अनी सेज बिछावे ते दो रंग भीना छे रास धारी ।

ध्रुवदास ने रास के प्रसंग में राधा द्वारा कमल पत्रों पर विशिष्ट गति से राम करने का जो चित्रण किया है वह अन्य किसी भी कवि ने नहीं किया । कृष्ण राधा से उनकी गति सीखने की इच्छा व्यक्त करते हैं । इसे सुनकर राधा अद्भुत कौतुक करती है । उसे देखते ही कृष्ण रीझ कर राधा के पैर चूम लेते हैं । ध्रुवदास ने नृत्यविलास में इसका वर्णन पुनः किया है ।^{१६१} इसके अतिरिक्त दम्पति के परस्पर वस्त्र परिवर्तन करके रास करने का वर्णन भी ध्रुवदास ने किया है—

कबहुं पिया पट पीय के पिय प्यारी के बास ।

पहिरे दोउ आनद मे निरतत रास विलास ॥४७॥

—रहसिलता

मथुरा-लीला

अक्रूर के साथ कृष्ण का मथुरा-गमन—गुजराती में १६वीं शती में नरसी मेहता कृत 'गोविन्द गमन' नामक एक ही स्वतंत्र रचना इस विषय पर उपलब्ध होती है और ब्रजभाषा में सूरदास के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने इस विषय को महत्त्व नहीं दिया । नरसी के पश्चात् गुजराती कवि प्रेमानंद के दशम स्कंध में तथा केशवदास वैष्णव की मथुरालीला में अक्रूर का प्रसंग पर्याप्त विस्तार से वर्णित है ।

सूरदास तथा प्रेमानंद ने भागवत के ३८, ३९, ४०वें अध्यायों की कथा को परिवर्धित रूप में प्रस्तुत किया है परन्तु नरसी ने शुक-परीक्षित सवाद का वाह्यत अनुसरण करते हुए भी वस्तुतः सर्वथा भिन्न कथा दी है । गोविन्द-गमन में राधा तथा उनकी सखियों की प्रधानता है । चन्द्रभागा और राधा, कृष्ण के मधुपुर जाने के के समाचार से विकल हो कर सखियों से परामर्श करती हैं और प्रातःकाल कृष्ण को जगाने जाती हैं परन्तु कृष्ण के स्थान पर अक्रूर जग जाते हैं और वे उन्हीं को कुजभवन में पकड़ ले जाती हैं । कृष्ण अपने भक्त की यह दुर्दशा देखकर उसे अपना रूप देकर नन्दभवन पहुँचाकर स्वयं गोपियों की कामना पूर्ण करते हैं । दूसरे दिन राधा नरसी को ही पत्रवाहक बना कर कृष्ण के पास भेजती है । कृष्ण जाने के पहले राधा, गोपी, गायों आदि से मिलने का उपक्रम करते हैं । इसके बाद वे रथ पर अक्रूर के साथ बैठकर चलते हैं । रास्ते में उन्हें सखियों सहित राधा फिर मिल जाती है । वह उनको रोकने के लिए रथ की कील निकाल लेती है और कृष्ण से कुज में चलने का आग्रह करती है । कृष्ण भी कहते हैं कि यदि हाथी लाओ तो चलें । राधा ने तत्काल सखियों के साथ 'नारी कुंजर' की रचना की और कृष्ण को प्रेम-अकुश देकर कुंज में ले गई । वहाँ अन्य क्रीड़ाओं के अतिरिक्त रास-क्रीड़ा भी हुई । इसके पश्चात् कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं । परीक्षित-शुक सवाद के रूप में ही इसकी समाप्ति होती है ।^{२५०}

यद्यपि गोविन्द-गमन की उपर्युक्त कथा का अधिकांश कल्पित प्रतीत होता है तथापि इसका मौलिक आधार ब्रह्मवैवर्त पुराण में प्राप्त हो जाता है । इस पुराण

मे राधा सखियों समेत कृष्ण को रोकने का प्रयत्न करती है। गोपियाँ रथ तोड़ डालती हैं और अक्रूर को निर्वस्त्र तक कर देती हैं। कृष्ण राधा को समझाने के लिए रुक जाते हैं। ब्रह्मवैवर्त में राधा सम्बन्धी और भी बहुत सी वस्तु इस प्रसंग में दी जाती हैं जो गोविन्द-गमन में नहीं प्राप्त होती। 'नारी कुंजर' का कोई उल्लेख ब्रह्मवैवर्त में नहीं है।

कंस का कृष्ण-बलराम को बुलाने के लिए प्रेरित होना—भागवत में यह प्रेरणा कंस को नारद से तथा ब्रह्मवैवर्त में एक भयंकर स्वप्न से मिलती है, सूर ने दोनों को एक सूत्र में बाँध दिया है। स्वयं कृष्ण नारद को कंस के पास जाने के लिए कहते हैं तब कंस अक्रूर द्वारा उन्हें बुलाने का निश्चय करता है। वह भयभीत होकर एक दुःस्वप्न देखता है। ब्रह्मवैवर्त में वर्णित शक्ति राधा के स्वप्न देखने के प्रसंग को किसी कवि ने नहीं उठाया केवल प्रेमानन्द ने किसी एक ब्रज-स्त्री के स्वप्न का उल्लेख किया है।^{१५१}

अक्रूर को जल में कृष्ण दर्शन—भागवत के अनुसार जब अक्रूर मार्ग में यमुना स्नान करते हैं तो उन्हें जल में कृष्ण के दर्शन होते हैं। फिर कर देखने पर कृष्ण रथ से बैठे हुए वैसे ही दिखाई पड़ते हैं। अक्रूर कुछ उद्विग्न हो जाते हैं। भागवत से इस प्रकार कृष्ण के दर्शन का कोई कारण नहीं दिया गया किन्तु सूर ने अन्तर्द्वन्द्व ये फँस हुए भक्त के संदेह निवारणार्थ कृष्ण दर्शन कराया है जिससे अक्रूर उनकी प्रभुता को समझकर सन्तुष्ट हो जायें।^{१५२}

नरसी के गोविन्द-गमन में यह घटना नहीं है। प्रेमानन्द ने एक प्रकार ~~मन्त्र~~ से सूर का ही अनुसरण किया है। प्रेमानन्द के कृष्ण अक्रूर के साथ स्नान न करने का कारण 'नथी नहावानी टेव' बताते हैं और सूर के कृष्ण कलेऊ में व्यस्त होने के कारण नहीं नहाते।^{१५३}

मथुरा-दर्शन, रजक-वध, दरजी और माली पर कृपा तथा कुब्जा-उद्धार—भागवत में वर्णित मथुरा-प्रवेश और घनुर्मंग के बीच घटित होने वाली इन अनेक छोटी छोटी घटनाओं का वर्णन दशमस्कंधकारों ने प्रसंगानुकूल किया है। ब्रजभाषा में केवल सूरसागर में ही इनका वर्णन मिलता है परन्तु गुजराती के दशमस्कंधकार भालण, केशवदास तथा प्रेमानन्द के अतिरिक्त फांग के 'कंसोद्धरण', चतुर्भुज की 'भ्रमरगीता' तथा केशवदास की 'मथुरालीला' में भी यह उपलब्ध है।

कंस के जिस रजक का वध कृष्ण ने किया था सूर ने उसका सम्बन्ध तृणावर्त से स्थापित कर दिया। प्रेमानन्द ने अपने परियट (रजक) के वध के अनन्तर

दिव्य विमान से स्वर्ग भेज दिया।^{३५४} दरजी का नाम प्रेमानन्द ने 'सुलक्षण' दिया है और उसे सायुज्य मुक्ति दिलायी है जबकि भागवत में कोई नाम नहीं दिया गया है और उसे सारूप्य मुक्ति मिली है।^{३५५} माली का नाम भागवत में 'मुदामा' दिया है और सूर तथा प्रेमानन्द ने भी वही दिया है। भालण ने 'मुदामा' को अधिक दाम पाने वाला व्यक्ति माना है।^{३५६}

कुब्जा के प्रसंग का चित्रण प्रेमानन्द ने विशेष रूप से किया है। भागवत की त्रिवक्त्रा किन्तु सुन्दरी तरुणी कुब्जा को कवि ने कुरूप तथा वृद्धा वर्णित किया है, जिसे कृष्ण सुन्दर, तरुणी तथा सुडौल बना देते हैं। उस दासी की ओपड़ी को राजमहल में परिवर्तित कर देते हैं। प्रेमानन्द ने ये दोनों बातें ब्रह्मवैवर्त पुराण से ली हैं। कुब्जा के प्रसंग में सूरसागर में भी कृष्ण द्वारा सम्पत्ति तथा रूप दान का संकेत मिलता है।^{३५७}

धनुर्भंग तथा कुवल्यापीड, चाणूर, मुष्टिक आदि के पञ्चात् कंस का वध—इन घटनाओं का भी वर्णन दशमस्कंधकागे ने पूर्ववत् किया है जिसमें अनुवादात्मकता ही अधिक है। सूरदास ने धनुर्भंग के प्रसंग में कंस द्वारा किसी एक असुर के भेजे जाने का वर्णन किया है जिसे कृष्ण मार डालते हैं। इसका उल्लेख भागवत आदि में नहीं है।^{३५८}

कुवल्यापीड में युद्ध करने में सूर ने कृष्ण बलराम दोनों का योग दिखाया है। प्रेमानन्द ने कुवल्यापीड को अन्य असुरों की सी गति दिलायी है।^{३५९} अन्य पुराणों में जितने मत्स्य के नाम मिलते हैं, भागवत में उनमें 'शल' और 'कूट' के नाम और जुड़ गये हैं, जिनका वध कृष्ण और राम करते हैं। सूरसागर में इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता पर यह केशवदास आदि गुजराती कवियों की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। प्रेमानन्द ने इनके युद्ध में व्यतिक्रम कर दिया है और दोनों का वध बलराम से कराया है।^{३६०}

कंस-वध जैसी महत्वपूर्ण घटना को किसी कवि ने समुचित रूप में चित्रित नहीं किया। फूठ का 'मल्ल अखाडाना चन्द्रावला' नामक काव्य इस विषय का एक मात्र स्वतंत्र प्रयास है।

उग्रसेन को राज्य-दान, वसुदेव देवकी का कारा से मोक्ष, उपनयन संस्कार तथा सांदीपनि से शिक्षा-प्राप्ति—अधिकतर कवियों ने इन प्रसंगों का निर्देश मात्र कर दिया है। सूरसागर में सांदीपनि का प्रसंग है ही नहीं। वसुदेव देवकी

की मुक्ति के पश्चात् कृष्ण नद को विदा कर देते हैं और वे यशोदा को कृष्ण के गोकुल न लौटने की सूचना देते हैं। मूरदास ने इस अंश का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। नद यशोदा संवाद के अनन्तर उससे भी अधिक विस्तार से गोपियों तथा ब्रजवासियों की विरहावस्था का चित्रण किया है। यशोदा और राधा दोनों ही पथियों द्वारा देवकी और कृष्ण तक सदेश भेजती हैं।^{१६५} गुजराती में भालण तथा प्रेमानंद ने भी नद, यशोदा, देवकी तथा कृष्ण के भावनात्मक सघर्ष का चित्रण किया है परन्तु मूर की तुलना में वह अत्यन्त सक्षिप्त है। जिस रूप में नद, बभ्रुदेव और कृष्ण देवकी का वाद-विवाद प्रेमानंद ने प्रस्तुत किया है वह ब्रज-भाषा में उपलब्ध नहीं होता।

अपने दशमस्कंध में प्रेमानंद ने कृष्ण के अध्ययन काल को ऐसी घटनाओं का समावेश किया है जो उन्हींके अनुसार भागवतेतर श्रोता से उन्हें प्राप्त हुई थी। गुरु-पत्नी को ईर्ष्या की चिन्ता में प्रसन्न देखकर कृष्ण, दलराम और सुदामा तीनों 'सरपण' लेने वन में जाते हैं जहाँ आँधी पानी आ जाता है। गुरु यह जानकर अपनी पत्नी पर क्रुद्ध होते हैं और सबको खोजने निकलते हैं और कृष्ण को पाकर उन्हें विष्णु समझते हुए क्षमा याचना करते हैं। कृष्ण जो काष्ठ लाते हैं उन्हें देखकर नगरवासी चकित हो जाते हैं। वे उनको अपने घर उठा ले जाते हैं पर काष्ठ कम नहीं होते।

गुरु-विक्षिप्ता के रूप में गुरु-पत्नी के आग्रह पर यमलोक से मृत गुरु-पुत्र वापस ला देने की कथा भागवत के दशम स्कंध के अध्याय ४५ में है, परन्तु प्रेमानंद ने जिस रूप में उसका वर्णन किया है उसमें भी कई नवीनताएँ हैं। भागवत में कृष्ण समुद्र-ग्रस्त गुरु-पुत्र को लेने सीधे प्रभास क्षेत्र में समुद्र-तट पर जाते हैं परन्तु प्रेमानंद ने उसे शिप्रा-ग्रस्त लिखा है। इसीलिए उनके कृष्ण पहले शिप्रा तट पर जाते हैं। इसके अतिरिक्त जब वे यमपुरी में पहुँचते हैं तो वहाँ के सभी पापी, पचजन नामक राक्षस के वध से प्राप्त पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनते ही चतुर्भुज रूप धारण करके यमराज के सर पर पैर रखते हुए बैकुण्ठ चले जाते हैं।^{१६६} यह अंश भी भागवत में प्राप्त नहीं होता।

अमरगीत—ब्रजभाषा में 'अमरगीत' सम्बन्धी रचनाएँ गुजराती की अपेक्षा बहुत कम उपलब्ध होती हैं। १६वीं शती में मूरदास ने सूरसागर के अंतर्गत इस प्रसंग का विस्तार से वर्णन किया है तथा नददास ने 'भँवर-गीत' नामक एक स्वतंत्र रचना की। तुलसी की कृष्णगीतावली में तथा अष्टछाप के अन्य कवियों के स्फुट पदों में इस विषय के भी पद प्राप्त होते हैं। कृष्णदास का 'अमरगीत' संक्षिप्त

रचना है। १७वीं शती में कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती केवल मुक्तकों में उद्धव-गोपी सवाद यत्र तत्र वर्णित हुआ है।

गुजराती में १६वीं शताब्दी में नरसी के कुछ पद (शृंगारमाला और परिशिष्ट में) नाकर, चतुर्भुज तथा ब्रह्मदेव, तीनों की भ्रमरगीताएँ और भीम वैष्णव की 'रसिक गीता' प्राप्त होती हैं। भालण के दशम स्कंध में भी प्रसंगानुकूल इसका वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रेमानंद की 'भ्रमर पचीशी' नानुं मोटु दशमस्कंध की भ्रमर-गीताएँ आदि भी हैं। नरहरि का 'उद्धव-गोपी सवाद,' केशवदास की मथुरालीला और नूजासुत की 'हरिरस कथा' के अंत के कुछ अंश उल्लेखनीय हैं।

इस प्रसंग का आधार यो तो भागवत के दशम स्कंध के ४६, ४७ अध्याय हैं। किन्तु अनुवादकों को छोड़कर अन्य सभी ने इसमें कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य किये हैं। निम्न विषयों के परिवर्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

१. उद्धव के ब्रज-गमन का हेतु
२. नद यशोदा से भेट
३. कृष्ण का सन्देश
४. भ्रमर के प्रति उपालभ
५. गोपी-उद्धव-सवाद का आधार
६. उद्धव की कृष्ण से भेट तथा ब्रज-दशा वर्णन

उद्धव के ब्रज-गमन का हेतु—भागवत के कृष्ण उद्धव को अपना सन्देश देकर नद-यशोदा को प्रसन्न करने तथा गोपियों का विरह अन्य दुःख दूर करने के लिए भेजते हैं। सूरदास के कृष्ण उद्धव को गोपियों को ज्ञान सिखाने के लिए नहीं परन्तु स्वयं उनका ज्ञान-गर्व नष्ट करने के लिए ब्रज भेजते हैं। इस प्रकार सारी कथा का केन्द्र ही बदल जाता है। गुजराती कवियों में अनेक ने भागवत का आंगिक अनुसरण करते हुए गोपियों के दुःख निवारणार्थ ही उद्धव का ब्रज जाना वर्णित किया है।^{१६३}

भालण के कृष्ण केवल माता यशोदा के दुःख को दूर करने के उद्देश्य से उद्धव को ब्रज भेजते हैं परन्तु नाकर ने दोनों बातों का उल्लेख करके भागवत का पूर्णतया अनुसरण किया है।^{१६४}

एकमात्र गुजराती कवि भीम ने वही कारण दिया है जो सूरदास ने आरोपित किया है। दोनों का साम्य दर्शनीय है—

सूर—याहि और कछु नही उपाय ।

मेरो प्रकट कह्यो नहि वदि है, ब्रजही दउ पठाय ।
गुप्त प्रीति युवतिन की कहि कै याकौ करौ महत ।
गोपिन कौ परबोधन कारन जैहँ सुनत तुरन्त ।
अति अभिमान करैगो मन में योगिन की यह भाँति ।
सूरक्षाम यह निहचै करिकै बैठत है मिलि पाँति ।

—सू० सा०, पृ० ६४०

भीम—अवु अभिमान ज्यारे ओधे मन आणियुं ।

हवे अहने गोकुल मेहलु हरिअे अेम जाणियुं ।

—वृ० का० दो० भाग ७, पृ० ६९६

नंद यशोदा से भेंट—भागवत के दशम स्कंध के ४६वें अध्याय में उद्धव तथा नंद यशोदा के बीच होने वाले वार्तालाप का ही वर्णन है । सारी रात्रि वे नंद की जिज्ञासा और यशोदा का दुख शान्त करने के लिए ज्ञानोपदेश देते रहे ।

सूरदास ने इस प्रसंग का वर्णन बहुत ही संक्षेप में किया है । उद्धव कृष्ण का जो संदेश यशोदा को देते हैं उसमें ज्ञान का किंचित् भी स्थान नहीं है । भागवत में उद्धव गोधूलि बेला में आते हैं और नंद उनका स्वागत करते हैं किन्तु सूरदास ने झुंड की झुंड गोपियों का नंदादि के साथ स्वागतार्थ जाना वर्णित किया है—

नन्द हर्षित चले आगे सखा हर्षत अंग ।

झुंड झुंडन नारि हर्षत चली उदधि तरंग ।

—सू० सा०, पृ० ६४६

भागवत के अनुसार गोपियों को उद्धव का रथ देखकर अक्रूर के पुनरागमन का भ्रम होता है, कृष्ण बलराम के आगमन का नहीं किन्तु सूरदास ने दोनों का ही वर्णन किया है—

१. कैयों बहुरि अक्रूर कूर हैं जियत जानि उठि धायो हैं ।

—सू० सा०, पृ० ६४८

२. आवत बलराम श्याम सुनत दौरि चली बाम ।

मुकुट झलक पीतावर मन मन अनुरागे ।

—वही, पृ० ६४६

इस प्रकार सूर ने भागवत की वस्तु को नवीनता दे दी है ।

गुजराती में प्रेमानंद ने सवाद के प्रसंग को भागवत के अनुसार ही नानुं मोटु दशमस्कंध की दोनों भ्रमरगीताओं में समुचित स्थान दिया है। उनकी 'भ्रमरपच्चीशी' में भी इसका समावेश है। उद्धव नंद को भागवत जैसा ही ज्ञान का उपदेश देते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने इतना महत्त्व इस प्रसंग को नहीं दिया।

कृष्ण का संदेश—भागवत के कृष्ण उद्धव को मौखिक रूप से अपना संदेश देकर गोपियों की वियोग-व्यथा दूर करने का आग्रह करते हैं परन्तु वह संदेश क्या था इसका उसमें उल्लेख नहीं है। सूर के कृष्ण नंद-यशोदा, राधा, श्रीदामा तथा एक मित्र विशेष को पृथक्-पृथक् लिखित संदेश देते हैं—

पाती लिखि ऊधो कर दीन्ही ।

—सू० सा०, पृ० ६४३

कुब्जा भी राधा के लिए ऊधो को पाती लिख कर देती है।

तुलसी की 'कृष्णगीतावली' तथा नंददास के 'भँवरगीत' में पाती का प्रसंग नहीं है। उद्धव को मौखिक संदेश ही दिया गया है। गुजराती के किसी कवि ने 'पाती' द्वारा संदेश देने का वर्णन नहीं किया। नरसी मेहता ने लौटने समय उद्धव को, कृष्ण के लिए राधा द्वारा पत्र दिये जाने का अवश्य उल्लेख किया है—

लाव लाव सखी अक कागल लखीअ हरिने रे ।

लखीतग चरणरजदास राधिका नारी के ।

—न० कृ० का०, पृ० ४१५:१६

भ्रमर के प्रति उपालंभ—भागवत में उद्धव-गौपी-सवाद के समय कही से एक भौरा आ जाता है जिसको गोपियाँ कृष्ण का दूत मानकर कृष्ण को उपालंभ देने लगती हैं।^{२९५} इसी के आधार पर सारा प्रसंग 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। भ्रमर के आगमन को लेकर कवियों के दो वर्ग हो जाते हैं। प्रथम तो वे जिन्होंने भ्रमर का प्रसंग लिया है जिनमें सूरदास, नंददास, ब्रह्मदेव, नाकर और चतुर्भुज हैं। इनके पदों में अनेक पद ऐसे हैं जो वस्तुतः उद्धव के प्रति कहे गये हैं।^{२९६}

प्रेमानंद ने मोटु दशमस्कंध की भ्रमरगीता में भ्रमर को नितान्त नवीन रूप दे दिया है। भ्रमर गोपियों द्वारा कल्पित कृष्ण दूत नहीं है वरन् स्वयं कृष्ण उस रूप को धारण करके गोपियों के बीच आते हैं। गोपियाँ उन्हें पहचान लेती हैं परन्तु उद्धव इस रहस्य को अन्त तक नहीं जान पाते—

गोष्ठी साभलवा गोपी उद्धवनी, सांभल परीक्षित भूष ।

मथुरा थी श्रीकृष्ण पधार्या धरी भमरानु रूप ।

मधुकर बोले मधुरी वाणी, ते गोपी ना गुणगाय ।

उद्धव जी कांइये नव पीछे, गोपिअ ओलख्या हरिराय ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२८

दूसरे वर्ग में भीम, नरहरि, भालण आदि गुजराती के कवि हैं जिन्होंने भ्रमर का उल्लेख ही नहीं किया । उनका सारा वर्णन उद्धव-गोपी-संवाद के रूप में है और अपनी कृतियों का नामकरण भी उन्होंने उसी के अनुरूप किया है ।

गोपी-उद्धव-संवाद—भागवत में जो संदेश उद्धव ब्रजवासियों को देते हैं उसको सुनकर किसी में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती । गोपियाँ अवश्य कृष्ण की स्मृति में विभोर हो जाती हैं किन्तु उसी से उनका विरह निवारण भी हो जाता है और वे उद्धव की पूजा करती हैं । उद्धव भी ज्ञान का संदेश देने के पूर्व और पश्चात् गोपियों की भक्ति की मुक्त हृदय से प्रशंसा करते हैं । ^{२६३} इससे स्पष्ट विदित होता है कि ज्ञान तथा भक्ति, निर्गुण तथा सगुण और योग तथा उपासना में प्रतिद्वंद्विता दिखाकर एक से दूसरे को श्रेष्ठ सिद्ध करना भागवतकार का उद्देश्य नहीं था ।

गुजराती तथा ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने गोपियों द्वारा उद्धव के संदेश की कटु आलोचना, परिहास तथा तिरस्कार कराया है । ज्ञान और योग द्वारा निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के निवृत्ति मार्ग को उपहासास्पद सिद्ध करके गोपियाँ भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती हैं और उद्धव अन्त में पराजित होकर उसे स्वीकार कर लेते हैं । सूरदास तथा भीम ने भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन गोपियों का ही नहीं, कृष्ण का भी अभीप्सित सिद्ध करते हैं । नरसी के पदों में इसका कोई उल्लेख नहीं है ।

ब्रजभाषा के अन्य कवियों ने प्रायः सूर का ही अनुकरण किया है और गुजराती के कवियों भीम, प्रेमानंद आदि ने भी वैसे ही विचार व्यक्त किये हैं । इस प्रकार यह संवाद अपने आप में भागवत से पर्याप्त भिन्न रूप में विकसित हुआ है । नंददास, ब्रह्मदेव, नरहरि तथा प्रेमानंद ने उद्धव द्वारा ज्ञान पक्ष को विशेष विस्तार के साथ प्रस्तुत कराया है । संवाद के ही अन्तर्गत कुछ कवियों ने कृष्ण की विविध लीलाओं तथा अवतारों का भी संदर्भ दिया है । ^{२६४}

कुब्जा के प्रति व्यंग—भागवत की गोपियाँ कुब्जा के प्रति स्पष्ट रूप से व्यंग कही भी नहीं करतीं । एक स्थल पर मधुप के माध्यम से सपत्नी के प्रति ईर्ष्या भाव का प्रदर्शन मिलता है । मथुरा की स्त्रियों के प्रति भी जिज्ञासा मिश्रित इसी भाव

का प्रदर्शन किया गया है। इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर लक्ष्मी के प्रति उपालम्ब स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है।^{२९९}

वस्तुतः दोनों भाषाओं के कवियों ने कुब्जा को व्यग का आधार बना कर उसे वही स्थान दे दिया जो भागवतकार ने लक्ष्मी को दिया है। इस विषय में मूर, नद-दास, नरसी, प्रेमानन्द, भालण आदि सबकी स्थिति एक सी है। मूर की गोपियों के पास कुब्जा ने पत्र भी भिजवाया है जिससे वे भ्रमर के प्रति 'कुब्जिजा तोहि पठायो' कह कर ओर भी कटु व्यग करती है।^{३००}

उद्धव का कृष्ण से मिलकर ब्रज-दशा-वर्णन—भागवत में उद्धव के, गोपियों के भक्ति-भाव से, प्रभावित होने का विस्तार से वर्णन है, किन्तु कृष्ण से मिलकर उन्होंने क्या कहा इभर्त्ता नकेतमात्र है—

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्धेकं ब्रजौकसाम्
वसुदेवाय रामाय राज्ञे जोषायनान्यदात् ॥७०॥

—द० स्क० ४७ अध्याय

सूरदास के उद्धव कृष्ण को अत्यन्त विस्तार से ब्रज का समाचार देते हैं तथा भक्ति की महत्ता, जान योग की पराजय तथा गोपियों की विरह दशा का भी विस्तृत वर्णन करते हैं। नददास ने भी अपने भवरगीत के अन्त में इसी प्रकार का सक्षिप्त वर्णन किया है। गुजराती भ्रमरगीताओं की परिसमाप्ति उद्धव विदा के पदवात् ही हो जाती है। भालण ने बहुत ही संक्षेप में उपसंहार के रूप में सूदेश दिलाया है।

कुब्जा (सैरन्ध्री) रमण, अक्रूर गृह गमन, धृतराष्ट्र को संदेश प्रेषण—भागवत में यह तीनों प्रसंग भ्रमरगीत के पञ्चात् वर्णित हैं परन्तु मूरसागर में कुब्जा-कृष्ण ममागम का वर्णन भ्रमरगीत के पूर्व ही प्राप्त हो जाता है। शेष दोनों यथाक्रम बाद में मिलते हैं। इस विषय में भालण प्रेमानन्द आदि दशमस्कंधकारों ने भागवत के क्रम का अनुसरण करते हुए मूर की अपेक्षा अधिक विस्तार किया है परन्तु उसमें कोई उल्लेखनीय विगेषता नहीं है। प्रेमानन्द ने अवश्य कुत्ती और धृतराष्ट्र के अतिरिक्त अक्रूर के पांडवों से मिलने का वर्णन किया है जो भागवत में नहीं है।^{३०१}

जरामंध-विजय, कालयवन और मुचकुद वध, द्वारका-प्रस्थान—इन प्रसंगों के वर्णन की भी परिस्थिति पूर्ववत् ही है। मूरसागर में इनका वर्णन बहुत सक्षिप्त है, युद्ध का वर्णन नदी के रूपक मात्र तक सीमित है। कालयवन और मुचकुद वध की कथाओं का मात्र एक पक्ति में वर्णन है और जिस योग-प्रभाव से भागवत के कृष्ण ने समस्त मथुरावासियों को नवनिर्मित द्वारकापुरी में पहुँचा दिया उसका

सकेन भी सूर ने नहीं किया है। पूर्वोक्त गुजराती के कवियों ने इन सब प्रसंगों का सविस्तार वर्णन किया है। द्वारावती-प्रवेश के समय रथ की शोभा तथा चौगान के खेल का जो वर्णन सूर ने किया है वह न तो भागवत में है न गुजराती काव्यों में।^{१५२} भालण ने कालयवन की उत्पत्ति की कथा दी है जो ब्रह्म, विष्णु तथा हरिवंश पुराण में प्राप्त होती है।

द्वारका-लीला

रुक्मिणी-हरण—इस विषय को लेकर गुजराती में वज्रभाषा की अपेक्षा कहीं अधिक काव्य-रचना हुई। १५वीं शती में दोनों भाषाओं में रुक्मिणी सम्बन्धी किसी स्वतंत्र काव्य का निर्माण हुआ हो ऐसा ज्ञात नहीं होता। किन्तु १६वीं शताब्दी में रुक्मिणी-विवाह सम्बन्धी नरसी का एक पद तथा अन्य रचनाएँ प्राप्त होती हैं। काशीभुत शेषजी तथा फूड दोनों को 'रुक्मिणीहरण' नामक दो रचनाएँ मिलती हैं। भालण तथा केशवदास के दशमस्कंधों में वर्णित रुक्मिणी विवाह भी उपेक्षणीय नहीं है और वज्रभाषा में नंददास का 'रुक्मिणीमंगल' और सूरदास के सूर-सगर में 'श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह' तथा इसी विषय के उनके अन्य स्फुट पद प्राप्त हैं। १७वीं शती के वज्रभाषा साहित्य में रुक्मिणी पर एक भी काव्य नहीं मिलता किन्तु गुजराती में अनेक हैं। देवोदास का 'रुक्मिणी-हरण' प्रेमानंद के 'रुक्मिणी-हरण' ना सलोको और 'रुक्मिणी-हरण' कृष्णदास को रुक्मिणी-हरण हमचो या हमचडी' तथा विष्णुदास का इमो नाम का काव्य उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त इस शती में प्रेमानंद, लक्ष्मोदास आदि ने भी अपने दशमस्कंधों के अंतर्गत इस प्रसंग का वर्णन किया है।

सूर और नंददास ने मूलतः भागवत में दशमस्कंध उत्तरार्ध के ५२, ५३, ५४ अध्यायों में वर्णित कथा का ही अनुसरण किया है किन्तु गुजराती के कवियों ने अन्य पुराणों से भी सहायता ली है। शेषजी ने भागवत के अतिरिक्त हरिवंश और विष्णुपुराण का आश्रय लिया है।^{१५३} प्रेमानंद ने इसमें से प्रथम दो पुराणों के साथ ब्रह्मवैवर्त के श्रीकृष्णखंड का उल्लेख और किया है। विष्णुपुराण का आश्रय उन्होंने नहीं लिया है। रुक्मिणीहरण के रचयिता फूड तथा इस विषय के उक्त अन्य सभी गुजराती कवियों पर भागवत-पुराणों की कथा का प्रभाव है। भालण ने भी अन्य पुराण का आधार स्वीकार किया है—

‘कहीं कथा भागवतनी, काई अन्य पुराण’

—दशम०, पृ० २८०

इस प्रभाव को स्पष्टतया परिलक्षित करने के लिए आवश्यक है कि रुक्मिणी-हरण की कथा के विभिन्न अंशों पर पृथक्-पृथक् विचार किया जाय।

१. कुंडिनपुर—रुक्मिणी के पिता भीष्मक की राजधानी का नाम पुराणों में कुंडिनपुर ही मिलता है। परन्तु सूर, नंददास तथा भाळण ने 'कुंदनपुर' लिखा है और प्रेमानंद ने 'कुंतलपुर'।^{२७४} एक स्थल पर प्रेमानंद ने 'कुंदनपुर' भी लिखा है तथा सूर ने भागवतोक्त 'कुंडिनपुर' रूप को भी स्वीकृत किया है।

२. नारद का हस्तक्षेप—कुछ कवियों ने कृष्ण के प्रति रुक्मिणी के पूर्वराग का कारण नारद द्वारा उनका गुणगान माना है। भागवत में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। सूर ने भी नारद को स्थान नहीं दिया पर नंददास ने 'जब ते तुम्हरे गुणगन मुनिजन नारद गाए' लिखा है। गुजराती के गेध, देवीदास, कृष्णदास तथा प्रेमानंद ने यह कार्य नारद को ही दिया है। प्रेमानंद ने नारद को विवाह करवाने वाले पुरोहित का रूप दे दिया है। भीष्मक उनको श्रीफल के साथ कृष्ण के पास भेजते हैं। वे उन्हें श्रीफल देते हुए रुक्मिणी के प्रेम का वर्णन करते हैं।^{२७५}

प्रेमानंद ने नारद का कलहकारी स्वभाव भी दिखाया है। राह में आते हुए नारद रुक्म में मिलते हैं, उसको इस विवाह की सूचना देते हैं और द्रविड देश का राजा कहकर शिशुपाल का गुणगान करने लगते हैं। परिचय में अपने को शिशुपाल के लिए कुंडिनपुर में कन्या खोजने के लिए आया बताते हैं। रुक्म बहिन का विवाह शिशुपाल से करने की स्वीकृति दे देता है। फलतः आगे संघर्ष होता है। इस प्रसंग में नारद का यह रूप किसी पुराण में नहीं है।

३. कृष्ण के नाम रुक्मिणी की पत्री तथा वाहक हरिभट ब्राह्मण—हरिभट नाम के अतिरिक्त कथा के इस अंश का मूलाधार भागवत ही है। रुक्मिणी किसी 'आप्त द्विज' को बुलाकर 'गुह्य सदेश' भेजती है।^{२७६} पत्री का तथा किसी चमत्कारिक ढंग से ब्राह्मण के पहुँचने का उल्लेख वहाँ नहीं है। रुक्मिणी ने 'राक्षसेन विधिनोद्वह' तथा 'कुलदेवियात्रा' कह कर हरण की सारी विधि कृष्ण को बतला दी है। हरिवंश पुराण में कृष्ण ने बलराम से पूछ कर हरण किया।^{२७७} विष्णुपुराण में यह प्रसंग अत्यंत संक्षिप्त है। ब्रह्मवैवर्त में द्विज पत्रिका उग्रसेन को देता है।^{२७८} ब्राह्मण का नाम हरिभट किसी पुराण में प्राप्त नहीं होता।

हरण-विधि का स्पष्ट उल्लेख न करते हुए भी सूरदास और नंददास ने पाती का स्पष्ट वर्णन किया है। सूर ने 'द्विज पतिया दै कहियो श्यामहि' के साथ मौखिक सदेश के रूप में 'बाजे शख जानि हौ साची आयो यादवराय' लिखकर कृष्ण के

बुलाने का सकेत मात्र दे दिया है। नंददास ने केवल 'उचित होइ तो करिये' कहा है। रुक्मिणी-मंगल में कृष्ण आँखों से आँसू आ जाने के कारण द्विज में ही पत्रिका पढ़वाते हैं। हरिभट नाम दोनों में से कोई नहीं देता।

गुजराती के प्रेमानंद और देवीदास की कृतियों में हरिभट का स्पष्ट उल्लेख है शेष में नहीं। प्रेमानंद ने ब्राह्मण के बुलाने के स्थान पर स्वयं रुक्मिणी का उसके घर जाना वर्णित किया है। ब्राह्मण के चमत्कारिक ढंग से पहुँचने का दोनों ने भिन्न भिन्न रूप में वर्णन किया है। शेषजी ने कृष्ण के नंद और सुनंद नामक दो गणों का, देवीदास ने थक कर सोये हुए ब्राह्मण को कृष्ण कृपा का तथा प्रेमनंद ने चार योजन चल कर वृक्ष की छाया में सोये हुए भूखे ब्राह्मण को कृष्ण की कर्पिणी शक्ति का आश्रय दिलाया है। प्रेमानंद ने हरण-तिथि 'वैशाख सुदी हरिपर्वणि गुरु-चार कृपा अब तणी' का भी उल्लेख किया है। रुक्मिणी की पत्री पाने के पश्चात् शेषजी के कृष्ण उग्रसेन को उनकी मूर्चना देते हैं—

आनंद आणी उठी आने उग्रसेन कने जाय ।

बेह पाण्य जोडी गीस नामी पत्र मेहलू पाय ॥२७॥

४. देवी का प्रत्यक्ष प्रकट होता—इस प्रसंग में सूर ने 'गौरी मुनि मुसकायी' तथा नंददास ने 'ह्वै प्रसन्न त्रिविका कहति मुनु रुक्मिणि सुदरि' लिखकर देवी की प्रसन्नता का वर्णन किया है। भागवत में ऐसा कुछ नहीं है।

गुजराती में शेषजी ने 'मुद्रिका सहोन कर गह्यो सखी ये जाणे वैष्णवीमाय', 'देवीदास ने नमस्कार करता प्रमन्न थया आगीप अवे दीध' लिखा है किन्तु प्रेमानंद ने देवी द्वारा रुक्मिणी को आलिंगित करने तथा फिर उनको सखी बन जाने का भी वर्णन किया है—

हुतो सहेली रूपे थाऊ ।

अवा रुक्मिणी रस्ता मा रमे । जन जुवे तैने मनगमे ।

५. विवाह वर्णन—भागवत में 'पुरमातीय विधिवदुपयेमे कुलद्वह' (१०।१५।५३) अर्थात् द्वारका में विवाह के विधिवत् सम्पन्न होने का सकेत भर है। नंददास ने भी इसी प्रकार 'विधिवत् कियो विवाह तिहू पुर मंगल गाये' लिखा किन्तु सूरदास ने विवाह का पूर्ण वर्णन किया है। ब्रह्मा द्वारा, इन्द्र की उपस्थिति में, विवाह सम्पन्न होता है।

गुजराती में गेध जी तथा भालण रुक्मिणी-कृष्ण का पाणिग्रहण गर्गाचार्य द्वारा कराते हैं।^{१०} परन्तु केवदास, देवीदास और प्रेमानंद ने सूर की भाँति देवताओं द्वारा विवाह कराया है। केवदास ने देवताओं की उपस्थिति का ही वर्णन किया, देवीदास तथा प्रेमानंद ने ब्रह्मा को रुक्मिणी का पिता तथा सावित्री को माता बनाकर कन्यापक्ष का पूर्ण प्रतिनिधित्व करा दिया है।^{१००} विवाह का यह वर्णन ब्रह्म-वैवर्त पुराण में है उसमें भी सब देवता सम्मिलित होते हैं किन्तु विवाह द्वारका में न होकर कुंडिनपुर में होता है और कन्यादान भीष्मक स्वयं करते हैं, ब्रह्मा नहीं—

भीष्मकः साश्रुनेत्रश्च कन्यां कृष्णे सज्जर्य च ।

—१०९. ३६

नरसी के एक पद में, गर्गाचार्य के पुरोहित होने तथा ब्रह्मा के कन्यादान देने, दोनों का वर्णन है—

गर्गाचार्य हाथेवालो मेळव्यो ब्रह्माजी तो दे छे कन्यादान ।

—न० कृ० का० पृ० ५२५

कंकण छोड़ना—गुजराती में देवीदास तथा प्रेमानंद ने विवाह के साथ कंकण छोड़ने का भी वर्णन किया है किन्तु ब्रजभाषा में रुक्मिणी विवाह विषयक कव्य में यह प्रसंग नहीं है—

देवीदास—दोरडी दशगाठ बांधी छोड़े श्रीयदुराय रे ।

प्रेमानंद—तारे दोरडियो दशगाठ छवीलो दोरडो नव छूटे ।

रुक्मिणी की भक्ति-परीक्षा—भागवत दशम के ६०वें अध्याय में रुक्मिणी-परिणय के बाद के इस प्रसंग का वर्णन है सूरदास ने इसका वर्णन मूरसागर (पृ० ७३८) में किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने रुक्मिणी द्वारा राधा आदि ब्रज-वालाओं के स्नेह के प्रति जिजासा व्यक्त करायी है जिसका निवारण कृष्ण स्वयं करते हैं (पृ० ७५३. ५४) ।

गुजराती कवियों में भागवतोक्त पहले प्रसंग का वर्णन केवदास आदि दशम स्कंधकारों में मिल जाता है पर दूसरे का नहीं मिलता ।

उक्त अंशों के अतिरिक्त गुजराती में प्रेमानंद द्वारा बलराम के साथ नेमिनाथ का युद्ध में भाग लेना, रुक्मिणी से सुभद्रादि का परिहास, तथा ब्रजभाषा में सूर द्वारा 'गारिका' वर्णन विशेष महत्त्वपूर्ण है ।

सुदामा-दारिद्र्य-भंजन—ब्रजभाषा में इस विषय पर सूरदास, नंददास तथा नरोत्तमदास ने काव्य-रचना की और गुजराती में दशमस्कंधकारों के अतिरिक्त नरसी, कृष्णदास तथा प्रेमानंद ने । नरोत्तम तथा प्रेमानंद के सुदामाचरित की कथावस्तु अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक सुगठित और सुसम्बद्ध है । प्रेमानंद ने वर्णन में स्वाभाविकता लाने के लिए अनेक परिवर्धन किये हैं जो भागवत के सुदामाचरित में नहीं हैं । जैसे द्वारका जाते समय सुदामा से उनके पुत्रों का भोजन लाने का हठ, द्वारका के बालकों का सुदामा पर पत्थर फेंकना, कृष्ण की रुक्मिणी आदि पट-रानियों की उपस्थिति, कृष्ण द्वारा सुदामा को प्रत्यक्ष कुछ न दिये जाने पर सत्यभामा की चिंता तथा रुक्मिणी का शका निवारण, वृद्ध सुदामा दम्पति का तरुण हो जाना आदि ।^{२८१}

भागवत में शैव्या का उल्लेख है रुक्मिणी का नहीं पर यहाँ सब कवियों ने रुक्मिणी को ही उपस्थित माना है—

देवी पर्यचरच्छैव्या चामरव्यजनेन वै

—भागवत १०: ८०: २३

सुदामा के दारिद्र्य को अतिरज्जना और कृष्ण की मंत्री के आदर्शीकरण के अतिरिक्त मूल कथा में किसी कवि ने परिवर्तन नहीं किया ।

कौरवों पांडवों के बीच कृष्ण का दूतत्व—गुजराती काव्य में इस विषय पर अनेक स्वतंत्र आख्यान-काव्य लिखे गये हैं । भालण और नाकर की 'कृष्णविष्टि' तथा भाऊ और फूड की 'पांडवविष्टि' ऐसी ही कृतियाँ हैं । इनकी प्रेरणा भागवत न होकर महाभारत है ब्रजभाषा में इस विषय का कोई भी काव्य उपलब्ध नहीं होता ।

स्यमंतक मणि की कथा तथा कृष्ण के अन्य विवाह—सत्राजित की स्यमतक मणि और उससे सम्बद्ध जाम्बवान अक्रूर आदि की कथा भागवत दशम के ५६, ५७ वें अध्यायों में वर्णित है । इसी मणि के साथ सत्राजित अपनी पुत्री सत्यभामा तथा जाम्बवान अपनी पुत्री जाम्बवती कृष्ण को अर्पित कर देते हैं ।

सूरदास ने दो पदों (पृ० ७३५ ७३६) में इस कथा का वर्णन किया है । भालण ने कथा के साथ ही दोनों के विवाहों का विस्तृत वर्णन किया है जिसमें भागवत के अतिरिक्त हरिवंश आदि पुराणों का भी आधार लिया गया है ।^{२८२}

सत्यभामा के विवाह का वर्णन ब्रजभाषा में नहीं है । भागवत के ५८वें अध्याय में वर्णित कालिन्दी, सत्या, भद्रा, मित्रविन्दा और लक्ष्मणा के विवाह की ओर भी

सूरसागर के एक पद में सकेत किया गया है किन्तु सत्या के स्थान पर वहाँ सीता लिखा मिलता है—

हरि चरननि सीता चित दीन्हो ।

—सू० सा०, पृ० ७६३

अन्य गुजराती दशमस्कंधकारों ने भी इन विवाहों का संक्षेप में ही वर्णन किया है ।

सत्यभामा का मान तथा नरकासुर-वध—कृष्णविष्टि की भोंति गुजराती में सत्यभामा के मान के प्रसंग पर 'सत्यभामानु रसणु' नामक काव्य लिखने की एक परम्परा रही है । मीरा की इसी नाम की कृति (एक दीर्घ पद) तथा भालण के दशम स्कंध के अनेक पद (पृ० ३२५-३२९) इसके उदाहरण हैं । ब्रजभाषा में केवल सूरदास के एक पद में इस प्रसंग का सकेत मिलता है ।^{१८३}

भागवत में नरकासुर-वध के अनन्तर कृष्ण के द्वारा स्वर्ग से पारिजात वृक्ष लाकर सत्यभामा के उद्यान में स्थापित किये जाने की कथा दी गई है । किन्तु उसमें पारिजात के लिए सत्यभामा के रूठने का लेशमात्र भी इंगित नहीं किया गया है । सत्यभामा के भवन में इन्द्र आकर वरुण के छत्र तथा अपनी माता के कुंडल आदि के अपहरण की शिकायत करके कृष्ण को नरकासुर (भौमासुर) के वध के लिए प्रेरित करते हैं और कृष्ण सत्यभामा के साथ 'प्राग्य्योतिषपुर' जाकर उसका वध करते हैं तथा स्वर्ग से पारिजात लाते हैं । तत्पश्चात् वे नरकासुर द्वारा अपहृत अनेक राजाओं की सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं से उतने ही रूप धारण करके विवाह करते हैं । सूरसागर में इस प्रसंग का भी उल्लेख है (पृ० ७३७) गुजराती कवियों में भालण आदि दशमस्कंधकारों ने तथा शिवदास ने अपने 'नरकासुर नू आख्यान' में विस्तार से इसका वर्णन किया है ।

इस प्रकार सत्यभामा का रूठना और नरकासुर का वध वस्तुतः दो प्रसंग हैं जो पारिजात वृक्ष के द्वारा आपस में गुंफित हैं । जैसा भालण की रचना से स्पष्ट है—

सतभामा ने आगण रोप्यो मुख नी वाचा पाली ।

पारिजातक आणी ने श्यामा रीसावी टाली ।

—दश० स्क०, पृ० ३२५

मीरा के 'सत्यभामानु' रसणु' से नरकासुर की कथा का कोई सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता है ।

सूरसागर में स्वयं कृष्ण ही सत्यभामा के हृदय में पारिजात की प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। वे 'भक्त भय हरन अमुर अतकारी' कृष्ण नरकासुर के बरीशूह से कन्याओं के उद्धार के लिए ऐसा करते हैं।

गुजराती कवियों ने पारिजात के लिए सत्यभामा के लड़ने के सम्बन्ध में इससे भिन्न कथा दी है। नारद एक पारिजात का वृक्ष द्वारका में लाने हैं कृष्ण उसे रुक्मिणी को देते हैं। सत्यभामा सखी से इस बात को सुनते ही ईर्ष्यालु होकर कोणभवन में चली जाती है। कृष्ण उसे मनाने के लिए स्वर्ग से पारिजात लाकर देते हैं। मीरा तथा भालण ने यहाँ कथा दी है जो ब्रजभाषा में नहीं मिलती।

अन्य विरोधियों का वध—द्वारकावासी कृष्ण वाणायुर, पौडूक, शिशुपाल, शात्त्व और दन्तवक्र आदि का वध करते हैं। ये भागवत की कथाएँ सूरसागर में बहुत संक्षेप में प्राप्त होती हैं। गुजराती में भी दशमस्कंधकारों ने कोई विरोधता न दिखाते हुए इनका साधारण रूप में ही समावेश किया है। भागवत के 'पौडूक' को सूर ने 'पुडरीक' और भालण ने 'प्रौडक' बना दिया है।^{२८४}

बलराम का ब्रजगमन तथा यमुनाकर्षण—भागवत दशम के ६५ वें अध्याय में वर्णित इस कथा के प्रसंग में सूर ने ब्रजवालाओं के उद्गारों का विस्तार से वर्णन किया है जो गुजराती के दशमस्कंधकारों ने नहीं किया।

अन्य प्रसंग—भागवत में वर्णित नृग-उद्धार, नारद-संवाय, देवकी-पुत्र प्राप्ति आदि कुछ और प्रसंग भी दोनों भाषाओं की उपर्युक्त कृतियों में उपलब्ध होते हैं जिनमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

कुरुक्षेत्र में पुनर्मिलन—कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर कृष्ण तथा ब्रजवासियों के पुनर्मिलन का भागवत के ८२वें अध्याय में वर्णन है और गुजराती दशमस्कंधकारों ने उसी के अनुसार इसे भी चित्रित किया है परन्तु सूरदास ने उसका स्वतंत्र वर्णन करके पर्याप्त नवीनता का समावेश कर दिया है।

पहले द्वारका जाते हुए पथिक के प्रति ब्रजवालाओं तथा यशोदा के संदेश का वर्णन है फिर राधा की विरहावस्था विषयक पद है (पृ० ७५०-५४) उसके बाद कृष्ण रुक्मिणी का वार्तालाप है। कृष्ण रुक्मिणी से ब्रजवासियों के स्नेह की प्रशंसा करके अपना दुःख प्रकट करते हैं फिर सभा में यादवों से परामर्श करके कुरुक्षेत्र पर्व स्थान के लिए जा पहुँचते हैं। वहाँ से वे एक दूत ब्रज से नदादि को लेने के लिए भेजते हैं जो ब्रज आकर नंद यशोदा से संदेश कहता है। राधा

इसे सुनत ही रोन लगती ह । एक सखा उसे समझाती ह । तत्पश्चात् उत्साहपूर्वक सभी ब्रज वासी अपने अपने वाहनों पर कुरुक्षेत्र पहुँचते हैं । जब रुक्मिणी कृष्ण से पूछती है कि राधा कौन है तो कृष्ण राधा का परिचय देते हैं । रुक्मिणी राधा को अपने मन्दिर ले जाती है कृष्ण भी वहाँ पहुँचते हैं फिर राधा माधव का मिलन होता है । इसके बाद कृष्ण ब्रजवासियों से मिलते हैं (पृ० ७५७ तक) ।

भागवत में न रुक्मिणी-कृष्ण का सवाद है न पथिक द्वारा सदेश भेजने की बात । कृष्ण कोई दूत भी नहीं भेजते, नदादि स्वयं कृष्ण का कुरुक्षेत्र में आना सुनकर वहाँ पहुँच जाते हैं । कृष्ण पहले नद यशोदा से मिलते हैं फिर गोपियों से ।

सूर ने राधाकृष्ण के मिलन को ही प्रधानता दी है ब्रजवासियों तथा राधा-कृष्ण के पुनर्मिलन का वर्णन ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण जन्म खंड के १२६-२७ अध्यायों में मिलता है परन्तु उसमें अकेले कृष्ण ब्रज जाते हैं और सबको गोलोक ले जाते हैं । ब्रह्मवैवर्तकार ने कुरुक्षेत्र में राधाकृष्ण मिलन नहीं कराया अतएव सूर द्वारा वर्णित प्रसंग या तो स्वकल्पित है या उस पर कुछ कुछ ब्रह्मवैवर्त की छाया मानी जा सकती है । गुजराती के किसी भी दशमस्कंधकार ने ऐसा वर्णन नहीं किया । प्रेमानंद का दशमस्कंध तो अपूर्ण ही है ।

कृष्ण कथा के अतिरिक्त कृष्ण सम्बन्धी वस्तुओं यमुना, मुरली, ब्रज आदि पर भी स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना हुई है ।

सिद्धान्त विषयक काव्य—कृष्ण-लीलाओं पर आधारित काव्यों के अतिरिक्त भक्ति तथा सिद्धान्त विषयक काव्य भी रचे गये । इस विषय में गुजराती में केवल नरसी के 'भक्तिज्ञाननापदों' उपलब्ध होते हैं ।

ब्रजभाषा में वल्लभ-सम्प्रदाय में नंददास की 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' सूर आदि अष्टछाप के कवियों के पद, शोभाचंद का 'भक्ति विधान'; राधावल्लीय-सम्प्रदाय में हितहरिवंश, हरिराम व्यास आदि के सिद्धान्त विषयक पद और ध्रुवदास कृत 'भजनसत', भजन शिक्षा, 'वैदकलीला', 'भजनकुडली', 'ख्यालहुलास', 'जीवदिसा', निम्बार्क सम्प्रदाय में हरिव्यास तथा परशुराम देव की रचनाएँ तथा हरिदासी सम्प्रदाय के स्वामी हरिदास तथा विहारिन देव के सिद्धान्त के पद पीतांबर देव की सिद्धान्त की साखी, रसिक देव की "भक्तसिद्धान्तमणि" उल्लेखनीय हैं ।

पादटिप्पणियाँ

१ क मूरदाम डॉ० ब्रजेरवर वर्मा पृ० २६३, प्रथम संस्करण

ख. गोकुले मथुरायां च द्वारावत्यां ततः क्रमात् ।

कृष्ण लीला त्रिधा प्रोक्ता तत्तद्भेदैरनेकधा ॥

—श्रीकृष्ण लीला संग्रह, श्रीधर कारिका

२ गुजराती—मीम. हरि० षो०, पृ० १३८, नरसी. न० कृ० का०, पृ० ४३६, लक्ष्मीदास :

दशमस्कंध, कड़वा ७, प्रेमामन्द श्रीम० भा०, पृ० २४०

ब्रजभाषा—मूरदास, सू० सा० पृ० १२६, १२७, नन्ददास : नन्द० पृ० २०५.

३. भाज्या—दशमस्कंध, पृ० १७, १८

४. गुजराती—भाज्या दशमस्कंध, पृ० १५, केशवदास श्रीकृष्ण ली० का०, पृ० १६ प्रेमामन्द :

श्रीम० भा०, पृ० २४२,

* ब्रजभाषा—नन्ददास, नन्द० पृ० २१३

५. भा० १०. ६. २

६ क० ब्र० वै०, अ० १०

ख. हरिवंश : अ० ६३

७ “सा खेचयेकदापेक्ष... ” भा० १० ६. ४

गुजराती—मीम. हरि० षो०, पृ० १४३, १४२, नरसी. न० कृ० का०, पृ० ४३४, ४३७,

भाज्या द० स्क०, पृ० २६; केशवदास कृ० लीला० का०, पृ० २८, प्रेमामन्द :

श्रीम० भा०, पृ० २४४, २४७

ब्रजभाषा—मूरदास सू० भा०, पृ० १३४, २, नन्ददास, नन्द०, पृ० २२१, गदावरमहः

श्री० ग० वा०, पृ० २१

८. प्रेमामन्द श्रीम० भा०, पृ० २४५

९. सू० सा०, पृ० १३५

१०. पद्म पृ०, २७२, ८२, ८५; ब्रह्म० पृ० १८४, २२, २८; विष्णु० पृ०, ७, १, ७

११. का० समा० ह० प्र० न० ३६१

१२. का० समा० ह० प्र० न०, ३२५

१३. न० कृ० का०, पृ० ४२५

१४. न० कृ० का०, पृ० ४६७

१५. मीम. हरि० षो०, पृ० १४८, भाज्या दशमस्कंध पृ० २६; केशवदास श्रीकृ० ली० का०,

पृ० ३३, ३४

१६ गुजराती—नरसी. न० कृ० का०, पृ० ४३३, प्रेमामन्द : श्रीम० भा० पृ० २४६; शिवदास

का० समा० ह० प्र० न० ५३ घ., कड़वा ७

- ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १३६
 नन्ददास नद०, पृ० २२५, २२६; परमानन्द पृ० १२४, वर्ग ६
- १७ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १३८, नन्ददास, नद०, पृ० २२६,
 गुजराती—केशवदास : श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३४, भालण दशमस्कंध, पृ० ३१, प्रेमानन्द
 श्रीम० भा०, पृ० २४९
१८. गुजराती—भालण दशमस्कंध, पृ० ३१; प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २४६,
 ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १३८
१९. प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५०
२०. नन्ददास नद०, पृ० २२८
२१. सूरदास सू० भा०, पृ० १८४
२२. नन्ददास नद०, पृ० २२८
२३. केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३६, प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५०
२४. प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५०
२५. सूरदास : सू० सा० पृ० १६५
२६. सूरदास सू० भा० पृ० १६६
२७. नन्ददास नद० पृ० २३३, २३४
२८. नरसी न० कृ० का०, पृ० २६८; भीम . हरि० बो०, पृ० १४६
२९. भालण दशमस्कंध, पृ० ३०
३०. केशवदास . श्रीकृ० ली० का०, पृ० ४७
३१. केशवदास वर्ही० पृ० ४६
३२. सूरदास सू० सा०, पृ० १६४, १६५, पद २१—२५
३३. सूरदास सू० सा०, पृ० १६४, पद २१
३४. केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ४०, ४१; परमानन्द हरिरस, फा० सभा० ह० प्र०,
 पृ० ३२५
३५. ब्रह्मवैवर्त कृ० क० १४ २६, १४।४०, भागवत दशमस्कंध, १०.२३
३६. प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५७
३७. ब्रह्मवैवर्त कृ० ख० १४ २३ २४, प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५६, २५६
३८. प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५६, ०५८
३९. सूरदास : सू० सा०, पृ० १७६, १७६-७७
४०. सूरदास सू० सा०, पृ० १८१, १८२
४१. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० १८०
 गुजराती—प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५४; भीम . हरि० बो०, पृ० १५०; भालण . दश०
 स्क०, पृ० ४०
४२. भागवत : १० १० : २७
४३. सूरदास सू० सा०, पृ० १८१, १८३ १८५
 कृ० का०—११

- ४४ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १८४, नन्ददास : नंद०, पृ० २३७, तुलसीदास : कृ० गी०, पद, १७,
- गुजराती—केशवदाम श्रीकृ० ली० का०, पृ० २०, प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५६
- ४५ भा० १० . ८ . १
- ४६ प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५१
- ४७ प्रेमानन्द वही
- ४८ भागवत : १० . ८ : १२, ब्रह्मवैवर्त कृ० खं० १३ ८१, ८२, ८३, ८५
- ४९ प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५१
- ५० प्रेमानन्द वही
- ५१ ब्रह्मवैवर्त कृ० खं० १३ ४६, प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५२
- ५२ प्रेमानन्द : वही
- ५३ सूरदास : सू० सा०, पृ० १३६, १४०
- ५४ सूरदाम सू० सा०, पृ० १४०
- ५५ भागवत १० ७ : ४ १० ११ : १६
- ५६ सूरदाम सू० सा०, पृ० १४१, बल्लभरसिक श्रीव० र० वा०, पृ० ७
- ५७ सूरदास सू० सा०, पृ० १४२
- ५८ नन्ददास नंद०, पृ० ३८६, बल्लभरसिक : श्रीव० र० वा०, पृ० ७
- ५९ भागवत : १० ८ २१, २६
- ६० ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १३७, १४३-४६, नन्ददास : नंद०, पृ० २३०,
गुजराती—भालण : दश० स्क०, पृ० ३० केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३८, ३९,
प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५२
- ६१ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १४२, पृ० १४३, १४४, नन्ददाम नंद०, पृ० २३०,
गुजराती—भालण पृ० ३५, केशवदास : श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३८
- ६२ नरसी न० कृ० का०, पृ० ४६०, भालण दश० स्क०, पृ० ३६, केशवदास : श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३८, प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५२
- ६३ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १४४, १४८, नन्ददास नंद०, पृ० २३१
गुजराती—नरसी : न० कृ० का०, पृ० २६६, भालण अ० कृ० द० स्क०, पृ० ३०; प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५२
- ६४ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १४७
गुजराती—नरसी : न० कृ०, पृ० ४५८, ४५९, केशवदास : श्रीकृ० ली० का०, पृ० ४०
- ६५ सूरदास : सू० सा०, पृ० १३६, भालण : द० स्क०, पृ० ३३
- ६६ भागवत : १० ८ . ३१, भालण : द० स्क०, पृ० ३८, प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५३
- ६७ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १४६,
गुजराती—नरसी : न० कृ०, पृ० ५०२ ५०३, भालण द० स्क०, पृ० ३८, प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५५

- ६८ सूरदास : सू० सा०, पृ० १५३
- ६९ भालण द० स्क०, पृ० १५३
- ७० नरसी : न० कृ० का०, पृ० ४६१, ४६६, ४६७
- ७१ हिम्स ऑफ द आलवार्स—जे० एस० एम हूपर
- ७२ वही
- ७३ ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० १५५ ५६,
गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० ४५८, ४६०
- ७४ सूरदास : सू० सा०, पृ० १५७, १३३, १३७
- ७५ नरसी न० कृ० का० पृ० ४६२, ४६५, भालण, दश० स्क०, पृ० ३५
- ७६ सूरदास : सू० सा०, पृ० १६२, १८८
- ७७ सूरदास वही० पृ० १६३
- ७८ ब्रजभाषा—सूरदास : वही०, पृ० १६०,
गुजराती—भालण : दश० स्क०, पृ० ३०, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० २६
- ७९ ब्रह्मवैवर्त : अ० १४ श्लोक २ ४, बालचरितः तृतीय अंक
- ८० भागवत १० ८ २५, ३०; १० . १० ८
- ८१ सूरदास (अ) सू० सा०, पृ० १६६, १६७, (आ) वही० पृ० १६७, १७० (इ) वही०, पृ० १६८, (ई) वही०, पृ० १६९ (उ) वही०, पृ० १७२, (ऊ) वही०, पृ० १७३, (ए) वही०, पृ० १७६
- ८२ ब्रजभाषा—नन्ददास : मद०, पृ० २३१ २३३, तुलसीदास : कृ० गी०, पद ६ ४,
गुजराती—नरसी : न० कृ० का०, पृ० ४६१ ५८१ ८२, भालण द० स्क०, पृ० ३७,
केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ५४ प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५३, २५४
- ८३ ब्रजभाषा—तुलसीदास कृ० गी० पद १३,
गुजराती—भालण द० स्क०, पृ० ५०
- ८४ सूरदास : सू० सा० पृ० १८८
- ८५ नरसी न० कृ० का०, पृ० ५८२-८३
- ८६ ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा० पृ० १८८, नन्ददास नंद०, पृ० २४५
गुजराती—भालण द० स्क०, पृ० ५४, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ५४,
प्रेमानन्द : न० कृ० का०, पृ० २५६, २६०
- ८७ कृष्ण प्रोब्लेम ८. दि न्यू सैटलमेन्ट हगिवशपुराण अध्याय ६५, ६६
- ८८ देखिए उद्धरण ८६, सूरदास तथा प्रेमानन्द
- ८९ प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २६०
- ९० नरसी : न० कृ० का०, पृ० ४३४
- ९१ सूरदास सू० सा०, पृ० १९०
- ९२ गुजराती—प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २६१, २६२, भालण : द० स्क०, पृ० ५५
ब्रजभाषा—नन्ददास नंद, पृ० २४७

६३. भागवत : १० १२ १४
६४. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० १६२. नन्ददास : नद० पृ० २५०, २५१
गुजराती—नरसी : न० कृ० का० पृ० ४३३, भालण : द० स्क०, पृ० ५९, प्रेमानन्द : श्रीम०
सा० पृ० २६२, २६३
६५. सूरदास : सू० सा०, पृ० १९२, १९३ १९७ १९९, २००
६६. सूरदास वही० पृ० २९५
६७. भालण द० स्क०, पृ० ५८
६८. प्रेमानन्द : श्रीम० भा० पृ० २६४
६९. नरसी : न० कृ० का० पृ० ४१४, ५८०-८१
१००. कृष्ण प्रबल्लेन ८, क ६, भागवत १० १५ ३१, ३२, ब्रह्मवैवर्त ४ २०-२६, ३०
१०१. भालण द० स्क०, पृ० ६८
१०२. गुजराती—केशवदास : शृङ्ग० ली० का०, पृ० ७५,
ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० २१२, नन्ददास नद० पृ० २७२
१०३. सूरदास सू० सा०, पृ० २१५-२१६
१०४. सूरदास : वही०, पृ० २१७, २१८
१०५. प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २६६-२७०
१०६. ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० २२०
गुजराती—प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २७० ७१; नरसी न० कृ० का०, पृ० ४६२, ४६४
१०७. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा० पृ० २००
गुजराती—प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २७६
१०८. सूरदास : सू० सा०, पृ० २२४-२०५
१०९. भागवत : १० १८ ३०, ब्रह्मवैवर्त : कृ० ख० ४-१४, १५, १६
११०. सूरदास : सू० सा०, पृ० २३३
१११. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० २३४
गुजराती—प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २७५
११२. नरसी न० कृ० का० पृ० ४३४
११३. कीकुवसही बालचरित्र. फा० सभा० ह० प्र० न० २५५
११४. भागवत : १० १७ २५, १० १६ : १२, ब्रह्मवैवर्त : कृ० ख० ४ : १२ १७६
११५. सूरदास सू० सा०, पृ० २३१, नन्ददास नद० पृ० २५०, २५१
११६. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० २६२
गुजराती—प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २७४, नरसी : न० कृ० का०, पृ० ४३४
११७. प्रेमानन्द श्रीम० भा०, २७५, २७६
११८. सूरदास सू० सा०, पृ० २६६-२६८, २६०, २६५, २७२, २७७
भागवत १०. २४ : २५, १० : २५ २, १० २७. १, २

१९. प्रेमानन्द श्रीम भा पृ ८२ ८४

१२०. प्रेमानन्द वही, पृ० २८४

१२१. भागवत : १० २५ १९, ब्रह्मवैवर्त ४ २१ ६४

ब्रजभाषा—सूरदास मू० सा०, पृ० २७५, नन्ददाम : नन्द० पृ० ३१०

गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० ४६३, भालण दश० स्क०, पृ० ८६, केशवदास :

श्रीकृ० का०, पृ० ९१, प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २८४

१२२. नरसी : न० कृ० का०, पृ० ३६५

१२३. नन्ददास नन्द०, पृ० ३१८, सूरदास : मू० सा०, पृ० २६६

१२४. भागवत : १० ३७ १

१२५. सूरदाम . मू० सा०, पृ० ५२६, ५३४, ५४३, ५४४, ५४५

१२६. प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २९८, २९९, ३००

१२७. सूरदाम मू० सा०, पृ० २३४

१२८. गुजराती—भालण दशम० स्क० पृ० ५६, ५९ ६०, प्रेमानन्द . श्रीम० भा० पृ० २७५;

प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २६८

ब्रजभाषा—सूरदास : मू० सा०, पृ० २३४

१२९. ब्रजभाषा—सूरदाम मू० सा०, पृ० २५२

गुजराती—भालण : दश० स्क० पृ० ८०

१३०. भागवत : १० : २२ : ९

ब्रह्मवैवर्त ४ : २७ ६३

सूरदास : मू० सा० पृ० २५४

१३१. भालण दश० स्क० पृ० ७६, फागु : फा० ह० प्र० नं० २६१, प्रेमानन्द : श्रीम० भा०

पृ० २७८

१३२. फागु : फा० ह० प्र०, नं० ३६१

१३३. सूरदाम मू० सा०, पृ० २६५

१३४. प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २२१

१३५. ब्रह्मवैवर्त पुराण ४ : ६ : २२४, २२५, २२८, वही, ४ : ३ १०४

१३६. उज्ज्वलनीलमणि : रागप्रकरणा, श्लो० ४५

१३७. सूरदास मू० सा०, पृ० २४२, नन्ददाम नन्द०, पृ० ३३०, माधवदाम : माधुरी बाणी

पृ० ९४, हरिराम व्यास : व्यासबाणी, उक्त० पृ० ५४३ ४५३

१३८. ब्रह्मवैवर्त पुराण ४ २ : ६१

१३९. सूरदास : मू० सा०, पृ० २०४ २०७, २०८, २०९

१४०. सूरदास : वही, पृ० २०६

१४१. नरसी : न० कृ० का०, पृ० २७०, २१७, २१७, ५०४, ५८२

१४२. ब्रजदास : ब्रजलीला, पृ० १०, १२, ३४, ३८, ४२

१४३. भ्रुवदास वह पृ १५२ १ १६ १७०
 १४४. सूरदास सू० सा०, पृ० ५१८
 १४५. नददास नद०, पृ० ४२०
 १४६. नरसी न० कृ० का०, पृ० २२९, २३८, २४३
 १४७. ब्रह्मवैवर्त पुराण ४ : ६९, ४७, ५४
 १४८. नददास : श्याम मगई, पृ० ११७, ११८, १२१
 १४९. सूरदास सू० सा०, पृ० २४५, ४६, २४८
 १५०. केशवदाम श्रीकृ० ली० का०, पृ० १०६, १०८
 १५१. जयदेव गीतगोविन्द, चतुर्थ सर्ग
 १५२. सूरदास : सू० सा०, पृ० २४२, २४३, २४२
 १५३. सूरदास वही, पृ० ३७२ ३७४
 १५४. सूरदास वही, पृ० ३५९, हितहरिवर हिनचोरासी पद सख्या १३
 १५५. सूरदास : सू० सा०, पृ० ४०३, ४०४, ४०५, सूरदास वही, पृ० २५७, २५८, २६० २६१
 १५६. नददास नंद, पृ० ४०५, हरिराम व्यामवाणी उक्त०, पृ० ५०९-५१०
 १५७. मीरा मी० प०, पृ० ५६, ६०, नरसी : न० कृ० का०, पृ० ३५२, २७२ ३३६
 १५८. गाथा मत्तशती १ ८९

गौडवहोः श्लो० २२

ब्रह्मवैवर्त पुराण : कृ० ख० १५ १४९. ५८ ७१ : २८ ७५

गीतगोविन्द द्वादश सर्ग

१५९. भ्रुवदास : हितसिंगार लीला पद ११, हरिदास नि० सा०, पृ० २१६
 १६०. श्रीभट्ट नि० सा० पृ० १८ माधवदास वशीवट माधुरी, पृ० ३४
 १६१. सूरदास सू० सा०, पृ० ५६७ ५७०
 १६२. गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० ५०, २२१
 ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ५४८
 १६३. गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० ४५३
 ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ५३४
 १६४. ब्रजभाषा—सूरदास वही, पृ० ५२४-२५
 गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० ४५४
 १६५. सूरदास सू० सा०, पृ० ५२५, ५२८-२६
 १६६. ब्रजभाषा—सूरदास वही, पृ० ५२६
 गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० ४४२
 १६७. गुजराती—नरसी वही, पृ० १४१, ५३७, ११८; वासणदास : सुभाचरा, ६
 ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ५४८; नददास नंद, पृ० १५७
 १६८. हरिराम : व्यास, पृ० ११, भ्रुवदास : बृन्दावन सत, छंद ११, १४

१६६. माधवदास . माधुरीवाणी, पृ० ६३, ६४, ६०
१७०. केशवदास वैष्णव . मथुरालीला, पृ० २३
१७१. नंददाम . नंद, पृ० १६, १९
१७२. ध्रुवदास . रसहीरावली, छंद ७६
१७३. गुजराती—नरसी . न० कृ० का०, पृ० ५२४, प्रेमानंद 'मास' पद १०, रत्नेश्वर : वृ० का० दो०, भाग ६, पृ० ८०२—३
- ब्रजभाषा—नंददास . नंद, पृ० २८
१७४. नरसी . न० कृ० का०, पृ० ५२५, प्रेमानंद प्रेमानंद कृत 'मास,' पद ६५, रत्नेश्वर : वृ० का० दो०, भाग ६, पृ० ८०७
१७५. नरसी . न० कृ० का०, पृ० १५५, १५६
१७६. नरसी . न० कृ० का०, पृ० १४०, १४२, २६१
१७७. भालसा . दशमस्कंध पृ० १०६
१७८. सूरदास . सू० सा०, पृ० ४६३, ४६४, ध्रुवदास . मानलीला, २, ३; माधवदास : मान माधुरी, छंद, ३१, ^{१३५}हरिवंश हि० चौ० पद, ७
१७९. सूरदास . सू० सा०, पृ० ४६४, ४६६, ४८४, ४९१, ५१५, ध्रुवदाम : मानलीला, छंद ६
१८०. माधवदाम . मान माधुरी, छंद ३३, ३४
१८१. सूरदाम . सू० सा०, पृ० ४७२, ४७३, ४७५, ४९६
१८२. नरसी . न० कृ० का०, पृ० २९०; भालसा . द० स्क०, पृ० १०९
१८३. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० ४०५
- गुजराती—नरसी . न० कृ० का०, पृ० १४६
१८४. सूरदास . सू० सा०, पद ६८ ७३
१८५. सूरदास : वही, पद ६० ६९, पृ० ५१८ ५२०
१८६. 'मास, ५ श्लो० : ५० श्लो० पुमालकर, बालचरित अंक तृतीय
- ✓ हरिवंश : ' . . . हरिवंशे विष्णुपर्वशि हृल्लीषक्रीडने सप्तमप्तमो व्यायः'
१८७. इन्डियन कल्चर, ग्रन्थ ४, पृ० २६८ ६९
१८८. हेमचन्द्र अभिधान . मङ्गलैत तु यन्मृत्यु स्त्रीणां हृल्लीषस्तुतत्
- श्रीधर . 'स्त्रीषु सां गायतां मङ्गलीरूपेण भ्रमता नृत्य विनोदो रासो नाम'
- इन्डियन कल्चर, ग्रन्थ ४, पृ० २६९
१८९. मास बालचरित, अं ३
१९०. बालचरित, अंक ३
- ✓ हरिवंश . विष्णु पर्व, अ० १० श्लो० १८
- ✓ ब्रह्मपुराण . अ० ११८, श्लो० १५
- ✓ विष्णुपुराण . पंचमोऽंश, अ० १३ श्लो० १७
१९१. भागवत . दश० स्क०, अ० ३३ श्लो० ३
- बालचरित : अ० ३

१९२. अज्ञपुराण. अ० ११८

१९३. राससहस्रपदी. पद १ क. ७६, ७७, १०६ त० क० का०. पृ० १८५, ४५३

१९४. सूरदास. सू० सा०. पृ० ४३६

१९५. गीतगोविन्द प्रथम मार्ग, अन्तिम श्लोक

१९६. भालाणा. दश० स्क०, पृ० १२२, १२५ २६

१९७. परमानन्द हरिरस भाव० ह० प्र० न० ३२५

अज्ञवैवर्त पुराणः कृष्णजन्मखण्ड, अ० २८, श्लोक ६०

१९८. गुजराती—नरसी. न० क० का०, पृ० १८८, ४०५, ४०८; वामनादास. श्री कृ० दा० रा० रास०, ११६-११८

अज्ञभाषा—सूरदास. सू० सा०, पृ० ४३६ ४४७; नददास. नंद० प्र०, पृ० १०६; हित-
हरिवंश हितचौरासी, पद ७१ हि० सै० पृ० ३६, गदाधरभट्ट श्री गदा० वा०
पृ० ३८; श्रीभट्ट नि० भा०, पृ० १०, हरिव्यास. वही, पृ० ५२; माधव
दास सा० वा०, पृ० ४

१९९. अज्ञवैवर्त पुराण. कृष्ण जन्म खण्ड अ० १५ पृ० ५०२-३

२००. सूरदास सू० सा० पृ० ४४१-४२, ४४४, गदाधरभट्ट. गदाधर वाणी, पृ० ३६ ४०, ४६

२०१. भुवदास मङ्गल सभा सिंगार, पृ० १०६, ११०, १५०

२०२. नरसी. न० क० का० पृ० ४०८

२०३. नरसी न० क० का०, पृ० २५३; न० क० का०, पृ० ४१७, २५७

२०४. नरसी रम० सी० जी० एल० अन्ध १, पृ० २०८, वामनादास : श्रीकृ० रास० छंद १०३

२०५. संशोधन मार्ग, पृ० १३०

२०६. नरसी. न० क० का०, पृ० ६००; वामनादास. श्री कृ० वृ० दा० रास० ५५, ५३

२०७. सूरदास सू० सा०, ४४६; हितहरिवंश. हि० चौ० पद ६२, हरिव्यास. नि० भा०
पृ० ५२; गदाधर. गदा० वा० पृ० ३४

२०८. गुजराती—नरसी. न० क० का०, पृ० १६५, ४०४, ५०९, भालाणा दश० स्क०, पृ० ११६,
११७, प्रेमानंद. श्रीम० सा०, पृ० २०८, २६४; वामनादास : श्रीकृ० रास० ५३

अज्ञभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० ४३०, ४५४, हरिराम व्यास : व्या० वा०, पृ० ४५७,
४६०; नददास : नद०, पृ० १०६, हितहरिवंश : हि० चौ०, पद ७१, हरि
व्यास : नि० भा०, पृ० ५२. भुवदास म० स० सि०; माधवदास. सा० वा०
२६२

२०९. अज्ञवैवर्त कृ० वा०. अ० ५२

२१०. विद्यापति विद्यापति पठावली, पृ० २४३

२११. नरसी फागु, छंद १६ १० २८

२१२. केशवदास. श्रीकृ० तो० का०, पृ० ११२, ११४

२१३. सूरदास. सू० सा०, पृ० ४६०

२१४. सूरदास : सू० सा०, पृ० ४५९

२१५ क नयवि फागुं काव्य, २, ११, ६१

ख. नरसी न० कृ० का०, पृ० ७६

२१६ ब्रह्मपुराण अ० ११८, विष्णुपुराण पञ्चमांश, अ० १३

२१७ भागवत स्क० १०, अ० २८, श्लो० १८, वही, स्क० १०, अ० २६, श्लो० ४०

२१८ अथर्वदेवः गीतगोविन्द, ५/११ २ 'नाम समेत', विद्यापति पदावली १

२१९ सूरदास सू० सा०, पृ० ४३०, ४५७, नन्ददास नद० प्र०, पृ० १६०; हितहरिवंश :

हि० चौ०, पद ३३; गुदाधर भट्ट श्रीगदा० वा०, पृ० ३५; श्रीभट्ट नि० मा०, पृ० ६;

मीरा मी० पदावली, पृ० ५८

२२० नरसी न० कृ०, पृ० १६३, १६५, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ९३, ९४; भालसा :

दश० स्क०, पृ० ११६, प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २८८

२२१ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ४३३, ४३५, नन्ददास नद० प्र०, पृ० १६३

गुजराती—नरसी न०, पृ० २१४, पद १७०, १७१, भालसा दश० स्क०, पृ० ११६, ११७

केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ९४, ९५

२२२ भागवत १० २२ : ४८ १० ३० ३८

२२३ अष्टवैवर्त कृ० ख० २२ १२ ५० ४

२२४ सूरदास सू० सा०, पृ० ४४८

२२५ नयवि फा० मभा० ह० प्र०, न० ५२, नरसी न० कृ० का०, पृ० १६५, वासनादास :

श्री वृ० रा० उद १०८, प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २९०, २९१

२२६ भागवत १० ३० १४, २३

२२७ नन्ददास नद०, पृ० १६६

२२८ नरसी न० कृ० का०, पृ० १९९, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ६७; प्रेमानन्द :

श्रीम० भा०, पृ० २९०

२२९ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ४४९; नन्ददास नद० प्र०, पृ० १६६

गुजराती—केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ६८, नरसी न० कृ० पृ० १७८, प्रेमानन्द

श्रीम० भा०, पृ० २९१

२३० नन्ददास नद० प्र०, पृ० १७१

२३१ हरिदास : नि० मा०, पृ० २१७, २१६, हरिव्यास देव वही, पृ० ४४, ५१, ५२, सूरदास

सू० सा०, पृ० ४४६

२३२ नरसी न० कृ० का०, पृ० १९८

२३३ सूरदास सू० सा०, पृ० ४५६, ४५७, ४३७

२३४ भीम हरि० षो०, पृ० १५४, नरसी न० कृ० का० पृ० १८४; केशवदास श्रीकृ० ली०

का०, पृ० १०१

२३५ प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २९४

२३६ नरसी न० कृ० का०, पृ० १८५, हितहरिवंश हि० चौ० पद, ७१

૧૩૭. ભાગવત . કૃં સં ૨૮ ૮૦

૧૩૮. સૂરદાસ . સૂં સાં, પૂં ૪૫૪, ૪૫૫, નંદાસ . નંદં, પૂં ૧૮૦; શ્રીમદ્ધ્રુ . નિં માં, પૂં

૧૮, ધ્રુવદાસ મં સં સિં હદ ૧૮૧

૧૩૯. માધવદાસ માં વાં, પૂં ૨૫, ૪૦

૧૪૦. નરસિં ફાગુ, પદ ૬૦; નરસિં નં કૃં કાં, પૂં ૧૬૪

૧૪૧. ગુજરાતી—વામણદાસ : શ્રીમં રામ, પદ ૧૧૭; પ્રેમાનંદ . શ્રીમં માં, પૂં ૨૬૪, નરસિં :

નં કૃં કાં, પૂં ૨૦૫

જ

બ્રજભાષા—સૂરદાસ . સૂં સાં, પૂં ૪૪૫, ૪૪૬ ૪૫૬; નંદાસ . નંદ, પૂં ૧૭૫; માધવ

દાસ : માં વાં, પૂં ૪૫

૧૪૨. નરસિં . નં કૃં કાં, પૂં ૧૮૨, ૨૦૨, ૨૧૫, ૩૬૮, ૪૧૮, ૪૧૭

૧૪૩. નરસિં વહી, પૂં ૪૨૭

૧૪૪. ઇસં સિં જીં ઇલં પૂં ૧, પૂં ૨૦૭ નારાયણવાલા

૧૪૫. નં કૃં કાં, પૂં ૨૧૮, ૧૯, ૨૬૧, ૬૦૫

૧૪૬. વહી, પૂં ૫૬૦

૧૪૭. બ્રહ્મવૈવર્ત અં ૨૮ ચૈવં ૧૦૪

૧૪૮. નં કૃં કાં, પૂં ૭૨

૧૪૯. ધ્રુવદાસ . મં સં સિં, હદ ૧૦૮, ૧૮૨, ૧૮૪; નૃત્ય વિલાસ, હદ ૧૮, ૧૯, ૨૦, ૨૩

૧૫૦. નરસિં : નં કૃં કાં, પૂં ૬૨, ૬૩, ૬૫, ૬૬, ૭૨, ૮૧, ૮૩, ૮૪

૧૫૧. બ્રજભાષા—સૂરદાસ . સૂં સાં, પૂં ૫૦૩, ૫૦૪, ૫૦૬

ગુજરાતી—પ્રેમાનંદ . શ્રીમં માં, પૂં ૩૦૨

૧૫૨. મૂરદાસ . સૂં સાં, પૂં ૫૮૭

૧૫૩. પ્રેમાનંદ : શ્રીમં માં દશં સ્કં, પૂં ૩૦૫

૧૫૪. બ્રજભાષા—મૂરદાસ . સૂં સાં, પૂં ૫૬૦

ગુજરાતી—પ્રેમાનંદ : શ્રીમં માં, દશં સ્કં, પૂં ૩૦૮

૧૫૫. ભાગવત : ૧૦ . ૪૧ : ૪૨

૧૫૬. ભાગવત ૧૦ ૪૧ . ૪૩

બ્રજભાષા—સૂરદાસ . સૂં સાં, પૂં ૨૬૨

ગુજરાતી—પ્રેમાનંદ . શ્રીમં માં ૮૦ સ્કં, પૂં ૩૦૮; માલણી ૮૦ સ્કં ૧૫૬

૧૫૭. બ્રહ્મવૈવર્ત પુરાણ : કૃં સં, ૭૬, ૭૬, ૩૦, ૩૧

ગુજરાતી—પ્રેમાનંદ . શ્રીમં માં ૮૦ સ્કં, પૂં ૩૦૮, ૩૦૯

બ્રજભાષા—સૂરદાસ . સૂં સાં, પૂં ૬૦૨

૧૫૮. સૂરદાસ : સૂં સાં, પૂં ૫૬૨

૧૫૯. બ્રજભાષા—સૂરદાસ . વહી, પૂં ૫૬૩ ૬૪

ગુજરાતી—પ્રેમાનંદ . શ્રીમં માં ૮૦ સ્કં પૂં ૩૧૨

२६०. भागवत १० . ४८ . २८, २७

केशवदास . श्रीकृ० ली० का०, पृ० १३७; प्रेमानन्द . श्रीम० भा०, द० स्क०, पृ० ३१३

२६१ सूरदास . सू० सा०, पृ० ६१२, ६१४

२६० प्रेमानन्द श्रीम० भा० द० स्क०, पृ० ३१६, ३२०

२६३. ब्रजभाषा—सूरदास . सू० सा०, पृ० ६३० ६४०

गुजराती—ब्रह्मदेव बृ० का० दो० भाग १ प्रति नवीन, पृ० ६६२

२६४ मालख दश० स्क०, पृ० २१०-२११, नाकर बहौदा, ह० प्र०, न ६००

२६५. भागवत १० . ४७ ११

२६६ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ६५०, नन्ददास नद०, पृ० १३४

गुजराती—प्रेमानन्द . बृ० का० दो०, भाग १, पृ० १७६, ब्रह्मदेव बृ० का० दो०, भाग १,

पृ० ६६६

२६७ भागवत १० ४७, ३६, २५, ५९, ५८

२६८. ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ६७५, ६५६, ६६६

गुजराती—ब्रह्मदेव ब्र० का० प्र० पृ० ६७३, प्रेमानन्द : बृ० का० दो० तृतीय, पृ० १७७

भीम बृ० का० सप्तम, पृ० ६९८

२६९. भागवत १० . ४७ १२, ४२, ४३, १५, २०

२७०. गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० २८२, ३१५, मालख . श्रीम० भा० द० स्क०, पृ० २१५

प्रेमानन्द भ्रमर पञ्चवीशी, पद १५

ब्रजभाषा—सूरदास . सू० सा०, पृ० ६६५, नन्ददास नद० पृ० १३७

२७१. प्रेमानन्द : श्रीकृ० ली० का० द० स्क० पृ० ३३४

२७२ सूरदास सू० सा०, पृ० ७२७ ७२८

२७३ शेष रुक्मिणी हरण, पद, १३, १४; प्रेमानन्द . रुक्मिणी हरण

२७४. भागवत १० ५३ ७

हरिवंश भाषा ६० १

गुजराती—प्रेमानन्द . रुक्मिणी हरण, पृ० ३४६, मालख द० स्क०, पृ० २५८

ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ७२७, ७३०, ७३१, नन्ददास . रुक्मिणी मंगल, नद०,

पृ० १४८

२७५ प्रेमानन्द . रुक्मिणी हरण, २ ६, १३ १८

२७६ भागवत १० ५२ : २६, ४४

२७७ हरिवंश भाषा ५९ . ४३

२७८ ब्रह्मवैवत पुराण १०५ ६५, ६७

२७९ मालख . द० स्क०, पृ० २७९, शेषजी . रुक्मिणी हरण

२८० केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० १६०

२८१. प्रेमानन्द बृ० का० दो० भाग १, पृ० २४५, २४६, २४७, २५५, २५७

૨૬૦ માલગા : રૂ૦ ૨૫૦, પૃ૦ ૨૮૪-૨૮૫

૨૬૨ સુરદાસ : રૂ૦ સા૦, પૃ૦ ૭૩૭

૨૬૩, માગવત : ૧૦ : ૬૬ : ૧૬

ગ્રજમાયા—સુરદાસ : રૂ૦ સા૦, પૃ૦ ૬૭૧

ગુજરાતી—માલગા રૂ૦ રૂ૦, પૃ૦ ૩૫૬

सिद्धान्त पक्ष

आलोच्य काल का प्रौढः समस्त ब्रजभाषा-काव्य विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों की छाया में पल्लवित हुआ किन्तु गुजराती-काव्य का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ । उस पर स्पष्टतया किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रभुत्व प्रतीत नहीं होता । सम्प्रदाय और उसके अनुयायी कवियों में अगाधि भाव रहता है, सर्वथा अभेद नहीं । अतएव सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओं में तथा कवियों द्वारा व्यक्त सिद्धान्तों में समानता के साथ कहीं कहीं असमानता भी प्राप्त होती है । काव्य सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से अनुप्राणित अवश्य रहा है, परन्तु सर्वत्र सर्वथा अनुयायी नहीं, जो आचार्य और कवि के व्यक्तित्व की भिन्नता का परिणाम है । बहुत से कवि ऐसे हैं जिन्होंने मान्यताओं के आग्रह को दृढ़ता के साथ ग्रहण किया है और अनेक ऐसे भी हैं जो या तो सिद्धान्त पक्ष से उदासीन हैं या अंशतः स्वतंत्र । उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में काव्य में व्यक्त सिद्धान्तों को प्रधानता दी गयी है और साम्प्रदायिक दार्शनिक मान्यताओं को काव्य गत सैद्धान्तिक विचारों की व्याख्या अथवा विश्लेषण में सहायक माना गया है ।

ब्रजभाषा की अपक्षा गुजराती में दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष की ओर बहुत कम कवियों का ध्यान आकर्षित हुआ है । एक मात्र नरसी ने इस विषय में विशेष पद-रचना की है । अन्य कवियों ने प्रायः प्रसंगवश सिद्धान्तों का निर्देश यत्र तत्र कर दिया है । ब्रज भाषा में वल्लभीय, राधावल्लभीय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के अनेक कवि इस विषय में सचेत रहे हैं । गोडीय सम्प्रदाय के कवियों में अवश्य विशेष सामग्री प्राप्त नहीं होती । सिद्धान्त सम्बन्धी काव्य ग्रन्थों का परिचय वस्तु विश्लेषण के प्रसंग में दिया जा चुका है ।

सिद्धान्त पक्ष के समस्त विस्तार को निम्नलिखित विषयों में विभाजित कर लेने से विवेचन में सुगमता रहेगी—

- | | |
|-----------|----------|
| १. ब्रह्म | २. जीव |
| ३. जगत् | ४. माया |
| ५. मोक्ष | ६. भक्ति |

ब्रह्म

कृष्ण का ब्रह्मरूप में ग्रहण गीता, गोपालपूर्वतापनीय, उपनिषद्, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तदि पुराणों में सर्वत्र किया गया है । गीता में कृष्ण तथा ब्रह्म में नितात अभेद है । कृष्ण ने जो भी ज्ञान अर्जुन को दिया वह सब ब्रह्म रूप में स्थित होकर दिया है । अर्जुन भी कृष्ण को परब्रह्म कह कर सम्बोधित करते हैं—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ॥

—गीता, अ० १०, श्लो० १२

गोपालपूर्वतापनीय उपनिषद् का भी प्रतिपाद्य कृष्ण का ब्रह्मत्व ही है—

तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ।

—कन्याण, उप० अ० १, पृ० ५५१

भागवत ने कृष्ण को स्वयं भगवान् के रूप में 'एते चाशकला पुंस कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' (१३२८) लिखकर स्वीकार किया और भगवान्, परमान्मा तथा ब्रह्म को एक ही अर्थ का बोधक बताते हुए उससे पूर्व ही लिख दिया है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दते ।

—१२.११

इस प्रकार भगवान् कृष्ण ही ब्रह्म स्वीकृत हुए । ब्रह्मवैवर्तकार ने भी भागवत को इस मान्यता को ज्यों का त्यों ग्रहण करते हुए कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म माना—

१. एते चांशाः कलाश्चान्ये संत्येव कतिधा श्रुते ।

—कृष्ण जन्म खंड, अ० ९, श्लो० १२

२. भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ।

—वही, अ० १३३, श्लो० ७२

निम्बार्क, चैतन्य तथा वल्लभ द्वारा दार्शनिकतया कृष्ण के इस ब्रह्मत्व का पूर्ण समर्थन हुआ और साम्प्रदायिक ग्रंथों में इस विषय का पर्याप्त विस्तार किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि आलोच्य काल में दोनों भाषाओं के प्रायः समस्त कवियों ने कृष्ण को परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है । ब्रजभाषा के कवियों ने सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओं के अनुसार कृष्ण के ब्रह्मत्व का निरूपण किया है और गुजराती कवियों ने भागवतादि उपर्युक्त मूल ग्रंथों के अनुसार । केवल कुछ

अपवादों को छोड़कर स्थिति प्रायः ऐसी ही है । जिन कवियों ने स्पष्ट रूप से कृष्ण को ब्रह्म घोषित किया है उनके काव्य से कतिपय उद्धरण प्रमाण स्वरूप नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

(ब्रजभाषा)

सूर—ब्रह्म वार्यो कृष्ण अवतार ।

—सू० सा०, पृ० २१०

नददास—कृष्ण अनावृत्त परम ब्रह्म परमात्म स्वामी ।

—नददास, पृ० १८६

रसखान—ब्रह्म जो गायो पुरानन वेदन

. ब्रैठो पलोदत राविका पायन ।

हरिव्यास—परमात्म परब्रह्म करि विस्तारन जगजाल ।

जनपालन जय जय सदा रासविहारी लाल ।

—निम्बार्क माधुरी, पृ० ६३

(गुजराती)

नरसी—ते ब्रह्म द्वार आवी ने ऊभा रह्या गोपिका मुख जीवाने दूके ।

—न० कृ० का० सं० भक्तिज्ञाननां पदो, पद १९

प्रेमानन्द—हु पूर्ण ब्रह्म भगवंत ।

—श्री० भा०, पृ० २४०

कृष्ण ब्रह्म हैं, इस मान्यता के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या का प्रश्न उठता है । इस विषय में ब्रजभाषा में वल्लभ तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों के तथा गुजराती में नरसी के काव्य से विशेष सामग्री उपलब्ध होती है ।

वल्लभ-सम्प्रदायी सूर, परमानन्द तथा नददास आदि कवियों द्वारा जो ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण हुआ है वह बहुत कुछ शुद्धाद्वैत के सिद्धान्तों के अनुकूल है । वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के सच्चिदानन्द, पूर्ण पुरुषोत्तम अक्षर, सर्वशक्तिमान, स्वतन्त्र व्यापक, अनन्त, षड्गुणोपेत, विहङ्गधर्माश्रयी तथा अविकृतपरिणामी माना है ।^१ प्रथम और अन्त के कुछ विशेषण शुद्धाद्वैतवाद के अंतर्गत मान्य ब्रह्म की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं को व्यक्त करते हैं । नरसी मेहता के काव्य में भी ब्रह्म की यह विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं । वस्तुतः ब्रह्म के विषय में शुद्धाद्वैत और नरसी मेहता के दार्शनिक मत की समानता दर्शनीय है ।

विरुद्ध धर्माश्रयता—वल्लभाचार्य ने 'तत्त्वदीप निबन्ध' के शास्त्रार्थ प्रकरण में वेदान्त ग्रन्थों के आधार पर ब्रह्म को 'विरुद्ध सर्ववर्णशान्तिमाश्रयम्' माना है। इसी के अनुकूल सूरदास, परमानन्द दास आदि ने कृष्ण के निर्गुन सगुण दोनों स्वरूपों का एक साथ आलेखन किया है—

सूर—वेद उपनिषद यश कहें निर्गुनहि बतावैं ।
सोइ सगुन होय नन्द की दावरी बंधावैं ॥

—सू० सा०, पृ० २

परमानन्ददास आदि अन्य अष्टछापी कवियों ने भी कृष्ण की इस विरुद्धधर्माश्रयता को स्वीकार किया है।

नरसी मेहता भी कृष्ण को सगुण तथा निर्गुण दोनों ही मानते हैं—

सगुण स्वरूप निर्गुण अणु

—पद ४९

सूर तथा नरसी की सगुण निर्गुण विषयक विचारधाराओं में अन्तर इतना है कि सूर ने 'सूर सगुन लीलापद गावैं' लिख कर अपनी रुचि सगुण की ओर अधिक व्यक्त की है और नरसी ने 'जो निराकारमा जेहनु मन गमे भिन्न ससारनी भ्रांति भागे' पद ३९ लिखकर निर्गुण की ओर।

अविकृतपरिणामवाद—शुद्धाद्वैत में स्वीकृत ब्रह्म सम्बन्धी अविकृतपरिणामवाद के सिद्धान्त को सूर ने 'जल और बुदबुद' के तथा नन्ददास ने 'कनक कुंडल' के न्याय से व्यक्त किया है। नरसी ने भी ब्रह्म की अनेक नाम रूप औपाधिक परिणति को व्यक्त करने के लिए कनक कुंडल का उदाहरण अपने कई पदों में दिया है—

सूर—ज्यो पानी में होत बुदबुदा पुनि ता माहि समाही ।

त्यो ही सब जग कुटुम्ब तुनहि ते पुनि तुम माहि विलाही ।

—सू० सा०, पृ० ५९५

नन्ददास—एकहि वस्तु अनेक है जगमगात जगधाम ।

ज्यां कचन ते किकनी कंकन कुंडल नाम ।

—नन्ददास, पृ० ९८

नरसी—वेद तो अम वेदे, श्रुति स्मृति शाख दे,

कनक कुंडल विषे भेद नोये ।

घाट घडिया पछी नाम रूप जूजवा,
अत तो हेमनु' हेम होये ।

किंतु संभवतः नरसी का यह सिद्धान्त शुद्धाद्वैत मत के ग्रंथों से न लिया जाकर वेद स्मृति आदि उन प्राचीनतर ग्रंथों पर आधारित है जिनका आधार स्वयं बल्लभाचार्य ने ग्रहण किया । यहाँ यह बात नरसी के उद्धरण से प्रकट है ।

ब्रह्म का आनन्द एवं रस स्वरूप—यद्यपि नंददास ने भी कृष्ण को सच्चिदानन्द कहा है और नरसी ने भी, यथा—

नंददास—सधन सच्चिदानन्द नदनदन हरिवर जस ।

—नंददास, पृ० १८४

नरसी—सच्चिदानन्द आनन्द क्रीडा करे सोनाता पारणा माहि झूले ।

—पद ३९

तथापि अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण के आनन्द स्वरूप को ही अधिक महत्ता दी है जो शुद्धाद्वैत की मान्यताओं के अनुकूल है । बल्लभाचार्य ने कृष्ण को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' तथा 'पुष्टि पुरुषोत्तम' दोनों का अवतार माना है ।^१ दूसरे रूप को पहले से अधिक श्रेष्ठ माना गया है, फलतः अष्टछाप के कवियों में भी ऐसी ही धारणा प्राप्त होती है—

परमानंददास—आनन्द की निधि नंदकुमार ।

—अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ४११

नंददास— नित्य आत्मानन्द अखंड स्वरूप

—नंददास, पृ० १९१

अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने तो कृष्ण के आनन्दमय अथवा रसिक स्वरूप को ही सर्वत्र ग्रहण किया है । कृष्ण का यह रसिक रूप छान्दोग्य के 'रसोवै सः' (३ : १४ : २) पर आधारित है । शुद्धाद्वैत में भी इसे स्वीकार किया गया है परन्तु तात्त्विक दृष्टि से राधाकृष्ण के युगल स्वरूप को ग्रहण नहीं किया गया । पुष्टिमार्ग की उपासना पद्धति में भले ही युगल रूप को मान्यता हुई, वह भी विठ्ठलनाथ जी के द्वारा, परन्तु बल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में राधा का कोई स्थान नहीं है और न उन्हीं ग्रंथों में है जिनको उन्होंने 'प्रमाण चतुष्टय' की कोटि में रखा । द्वैताद्वैत तथा अचिन्त्यभेदाभेदवादी निम्बार्क और गौडीय सम्प्रदाय में द्वैत तथा 'भेद' को 'अद्वैत' और 'अभेद' के साथ दार्शनिक दृष्टि से स्वीकृति मिली । अतएव राधाकृष्ण का युगल स्वरूप

नत्वतः स्वीकार किया गया जिसमें 'द्वैताद्वैत' और 'भेदाभेद' चरितार्थ हो सके। राधा-वल्लभीय तथा हरिदासी सम्प्रदाय में राधाकृष्ण के युगल रूप को ही स्वीकार किया गया है। यह दोनों सम्प्रदाय निम्बार्क सम्प्रदाय से अत्यधिक साम्य रखते हैं। दार्शनिकतया हरिदासी सम्प्रदाय निम्बार्क के द्वैताद्वैत को ही मानता है। हितहरिवंश ने अवश्य कुछ अन्तर करके सिद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। केवल कृष्ण को ब्रह्म मानकर इन दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति असम्भव थी। शुद्धाद्वैत की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। वहाँ कृष्ण के स्थान पर राधाकृष्ण को नित्य मानना अद्वैत की शुद्धता का विरोधी सिद्ध होता है। अष्टछाप के कवियों द्वारा राधाकृष्ण के युगल रूप सम्बन्धी जो पद लिखे गए हैं उनपर अन्य सम्प्रदायों का निश्चय ही प्रभाव है, जो कवियों की उदारता तथा कवि और सम्प्रदाय विशेष के बीच के अन्तर को व्यक्त करता है।

दार्शनिकतया राधाकृष्ण के युगल रूप को सर्वप्रथम निम्बार्क द्वारा स्वीकृत किया गया जिनका सम्प्रदाय कृष्णभक्ति के इतर सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। पुराणों में ब्रह्मवैवर्त ने राधाकृष्ण को संयुक्त रूप से उपास्य माना।

निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी कवि हरिव्यासदेव ने कृष्ण को आनन्द स्वरूप माना है और राधा को आह्लादिनी शक्ति। यह दोनों सदैव अभिन्न रहते हैं—

१—प्रिया शक्ति आह्लादिनी प्रिय आनन्द स्वरूप।

—नि० मा०, पृ० ६३

२—सदा सर्वदा जुगल इक एक जुगल तन धाम।

आनन्द अरु अह्लाद मिलि विलसत हैं द्वै नाम।

—वही, पृ० ६५

शाक्त मत की तरह कुछ सम्प्रदायों के कवियों ने आह्लादिनी शक्ति राधा को ब्रह्म कृष्ण की अपेक्षा अधिक महत्ता प्रदान की और उन्हें 'स्वामिनी' नाम से विभूषित किया।

सूरदास ने जहाँ राधाकृष्ण के युगल रूप का वर्णन किया है वहाँ राधा को आह्लादिनी शक्ति न कह कर आदि प्रकृति कहा है जो ब्रह्म कृष्ण के आदि पुरुष रूप की पूरक है—

प्रकृति पुरुष एकै करि जानो बातनि भेद करायो।

द्वै तनु जीव एक हम तुम दोऊ मुख कारन उपजायो।

—सू० सा०, पृ० ३३३

यह सभवतः ब्रह्मवैवर्त के अनुसार है क्योंकि उसमें ही राधा को मूलप्रकृति की उपाधि दी गयी है—

ममाधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि साम्प्रतन्
त्वं च शक्तिस्तमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ।

—खंड ४, अ० ६, श्लो० २१२

इस प्रकार रसस्वरूप ब्रह्म कृष्ण की रसमयी लीलाओं का अभिन्न अंग होने के कारण राधा को इतनी महत्ता प्राप्त हुई । दार्शनिक दृष्टि में राधा का यह महत्व ब्रजभाषा काव्य में ही उपलब्ध होता है । गुजराती में युगल रूप में राधाकृष्ण का वर्णन अवश्य मिलता है परन्तु राधा को सर्वत्र भक्ति का प्रतीक माना गया है । न वह ब्रह्म कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है और न आदि प्रकृति ।

ब्रजभाषा के कवियों ने कृष्ण के रसिक रूप को विशेष प्रस्फुटित किया है और उनकी रस लीलाओं तथा वृन्दावन की नित्यता पर सर्वत्र बल दिया है दूसरे शब्दों में ब्रह्म को विशेषतया रस स्वरूप और नित्य माना—

नंददास—नमो नमो आनन्द धन सुन्दर नंदकुमार ।

रसमय रस कारण रसिक जग जाके आधार ।

—नंददास, पृ० ३९

हरिव्यास—नित्य विहरत जहाँ नित्य कैसोर दोउ

नित्य सहचरित मग नित्य नवरंग ।

नित्य रस रास उल्लास आनन्द उर

नित्य प्रतिकास परभास अंग अग ।

—नि० मा०, पृ० ६०

ध्रुवदास—नित विहार विवाह नित दुलहिन दूलह लाल ।

नित सखी मुख नित ही लेत रहन सब काल ॥१६१॥

—मंडल सभा सिंगार ।

माधवदास—कृष्ण रूप चैतन्य की सदा सनातन केलि ।

गिरि वन पुलिन निकुञ्ज गृह द्रुम द्रोणी वनवेलि ॥१॥

—वृन्दावन माधुरी, श्री माधुरीवाणी, पृ० ६०

गुजराती कृष्ण-काव्य में नरसी मेहता ने परब्रह्म के इस नित्य आनन्दमय रस रूप को विशेष अभिव्यक्ति प्रदान की है—

क—अखिल शिव आद्य आनन्दमय कृष्णजी सुन्दरी राधिका भक्ति तेनी ।

—पद ४९

ख—श्याम शोभा घणी, बुद्धि ना शके कली, अनन्त ओच्छव मा पंथ भूली ।

जड़ ने चैनन रस करी जाणजो पकड़ी प्रेमे सजीवन मूली ।

—पद ३९

नरसी ने ऐसे रसिक ब्रह्म को पूर्ण पुरुषोत्तम कहा है जो शुद्धाद्वैत की परिभाषा के बिल्कुल समीप है—

ते पूर्ण पुरुषोत्तम प्रेमदाशु रमे भावेशु भामनी अक लीधो ।

जे रस ब्रज तणी नार विलसे सदा सखीरूपे ते नरसैयो पीधो ।

—पद ४९

फिर इस पुरुषोत्तम को क्षर-अक्षर से ऊपर बताया है—

पूर्णानन्द पोते पुरुषोत्तम परम गत छे अनी रे ।

ओ पद क्षर अक्षर नी ऊपर तमे जो जो चित्तमा चेती रे ।

—पद ५७

एक अन्य स्थल पर उन्होंने ब्रह्म को अगणित कहा है

अगणित ब्रह्मनु गणित लेवु करे, दुष्ट भावे करी माल झाले ।

—पद ३९

ब्रह्म के अक्षर तथा अगणित स्वरूप का निरूपण बल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद के अन्तर्गत किया है ।*

अवतार—कृष्ण ने ब्रह्म होकर भी भक्तों का उद्धार करने के निमित्त देह धारण की, अतएव वे अवतारी और अवतार दोनों ही रूपों में ग्रहण किये गये हैं । 'संभवामि युगे युगे' लिखकर गीताकार ने तथा चौबीस अवतारों में परिगणित करके भागवतकार ने भी इसका प्रतिपादन किया है । बल्लभ सम्प्रदाय में ब्रह्म के गुणावनार, लीला-वनार, मर्यादावनार, आदि अनेक प्रकार से अवतरित होने तथा अवतार के बाद भी मायिक जगत से निर्लिप्त रहने का प्रतिपादन किया गया है ।^५ कृष्ण को अवतारी समझने के साथ साथ उनके सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी अलौकिक शक्ति का प्रतीक माना गया है । कृष्ण की प्रिया राधा को ब्रजभाषा के कवियों द्वारा आह्लादिनी शक्ति या प्रकृति तथा गुजराती कवियों द्वारा भक्ति का प्रतीक मानने का उल्लेख पीछे किया जा चुका है । उसी प्रकार कवियों ने अन्य कृष्ण सम्बन्धी वस्तुओं का दार्शनिक अभिप्राय एवं प्रतीकार्थ ग्रहण किया है ।

नरसी मेहता न लिखा है—

अमर आहीर अरधांग गोपागना, वृक्ष वेली सर्व ऋषिराणी ।
भक्ति ते राधिका, मुक्ति जशोमती, ब्रज बैकुण्ठ ते वेद वाणी ।
निगम वसुदेव जी, गाय गोपी ऋचा, देवकी ब्रह्म विवाद कहावै ।
ब्रह्मा कर लाकड़ी, वेणु महादेव जी पंचवदन करी गान गावै ।
इन्द्र अर्जुन, अहकार दुर्योधन, देवता सर्वे अवतार लीधो ।
धर्म ते राय युधिष्ठिर जाणजो, दासनोदास नरसैने कीवो ।

इसी प्रकार गुजराती कवि प्रेमानन्द स्पष्ट लिखते हैं—

गोपी छे वेदनी ऋचा, श्री कृष्ण वेद स्वरूप ।
वृन्दावन बैकुण्ठ जाणवु, रखे भेद अभागे भूप ।
खटराग ते खटशास्त्र छे, वेणु शब्द ते ओंकार ।
चन्द्रावली ते ब्रह्मविद्या, राधा भक्ति नो अवतार ।

—श्री०, पृ० २९५

ब्रजभाषा के किसी भी कवि ने इतने विस्तार में ऐसा तुलनात्मक प्रतीक-विधान तो नहीं प्रस्तुत किया है, परन्तु वेणु तथा गोपी आदि कतिपय प्रधान तत्वों की प्रतीकात्मकता की ओर उन्होंने स्पष्ट इंगित किया है । नददास ने वेणु को ओंकार अथवा महादेव नहीं माना परन्तु शब्द-ब्रह्म के रूप में अवश्य स्वीकार किया है—

शब्द ब्रह्म मै बेनु बजाइ सबै जन मोहै ।

—नददास, पृ० १८५

गोपियों को वेद की ऋचाओं का प्रतीक गुजराती कवियों की तरह ही ब्रजभाषा में सूर तथा ध्रुवदास ने भी माना है, कारण यह है कि सबने इस विषय में बृहद्वामन पुराण की कथा का अनुसरण किया है—

सूर— वेद ऋचा होइ गोपिका हरि सों कियो विहार ।

—सू० सा०, पृ० ४६२

ध्रुवदास—और तियनि में गिनहु जनि ए श्रुति कन्या आहि ।

—बृहद्वामन पुराण की भाषा

सूरदास तथा नददास ने कृष्ण को अवतारी तथा अवतार दोनों ही रूपों में चित्रित किया है परन्तु अवतारों के इतने भेद प्रदर्शित नहीं किये हैं—

सूर— ब्रह्म अगोचर मन बानी ते अगम अनत प्रभाव ।
मक्तन हित अवतार धारि जो करि लीला संसार ।

—सू० सा०, पृ० ४८

नंददास—षट्गुन जो अवतार धरन नारायन जोई ।
सबको आश्रय अवधिभूत नंदनदन सोई ।

—नद०, पृ० १८३

राधाकृष्ण वृन्दावन और रास आदि प्रेम लीलाओं को निम्न मानने वाले अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने कृष्ण के अवतार धारण करने का स्वभावतः वर्णन किया है । यदि कहीं प्राप्त होता है तो अपवाद रूप में सूर सारावली में दोनों का समावेश है—

अश कला अवतार बहुत बिधि रामकृष्ण अवतारी ।
सदा विहार करत ब्रजमंडल नंदसदन सुखकारी ॥३६०॥

साथ ही राम और कृष्ण के अवतार चतुर्व्यूहात्मक माने गये हैं ।

गुजराती कवियों में से प्रायः सभी ने पौराणिक आधार पर कृष्ण का अवतरित होना वर्णित किया है । ब्रह्म तो माना ही है—

नरसी—धन्य रे धन्य महापुण्य जगोदानण पुत्रभावे परब्रह्म राजे ।
नदनी नंद आनंद थइ अवतार्यो, शेष बलिभद्र मंगे विराजे ।

भालण—आठमो जे अवतार लीधो ते साधु ने उद्धारवा ।

—दशा, पृ० ९

प्रेमानंद—पूर्व लीधा से अवतार ।

अमुर हणी उत्तार्यो भू भार ।

—श्री० भा०, पृ० २४०

विराट रूप—ब्रह्म शब्द के धात्वर्थ में ही उसके बृहत् एवं विराट होने की धारणा निहित है । ब्रह्म के इस विराट रूप का वर्णन ऋग्वेद के पुरुष सूक्त, अनेक उपनिषदों तथा गीतादि ग्रंथों में किया गया है । कृष्ण को ब्रह्म स्वीकार करने वाले कवियों ने कृष्ण के विराट रूप का वर्णन किया है जो दोनों भाषाओं के काव्य में प्राप्त होता है । सूरदास ने सूरसागर के अंतर्गत द्वितीय स्कंध में इसका आलेखन किया है और साथ ही विराट आरती की भी योजना की है—

१. नैवनि निरखि श्याम स्वरूप ।

रह्यो घट घट व्यापि सोई ज्योति रूप अनूप ।

चरण सप्त पताल जाके शीश है आकाश ।

सूर चन्द्र नक्षत्र पावक सर्व तासु प्रकाश ।

—सू० सा०, पृ० ४७

२. हरि जू की आरती बनी ।

मही सराव मप्त सागर धून वाती शैल घनी ।

रवि शीश ज्योति जगत परिपूरण हरत तिमिर रजनी ।

उडल फूल उडगत नभ अन्तर अजन घटा घनी ।

—सू० सा०, पृ० ४७

अविनश्वर दीपक की धारणा एक स्थान पर नरसी में भी मिलती है—

वलि विण तेल विण सूत विण जो वली ।

अचल जलके सदा अनल दोत्री ।

—पद ३९

सूरसारावली में सृष्टिव्यासी विराट होली का वर्णन है जो समस्त कृष्ण-काव्य में अद्वितीय है ।

कृष्ण के मृत्तिका-भक्षण तथा जमुहाई लेने के समय भागवत के अनुसार सूरदास तथा अन्य अनेक कवियों ने समस्त सृष्टि को उनके मुख के अतर्गत प्रदर्शित किया है जो ब्रह्म कृष्ण के विराट रूप का ही प्रतिपादक है । इसका निर्देश वर्ण्य वस्तु के प्रसंग में किया जा चुका है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के तत्त्ववेत्ता के काव्य का विषय ही यह है तथा राधावल्लभी सम्प्रदाय के व्यास ने भी इसका चित्रण एक स्थान पर किया है—

तत्त्ववेत्ता—कोटि कोटि मेखला कृष्ण वसुदेव कुमारा ।

—नि० मा०, पृ० १३२

व्यास—श्याम मुखन को ताही अत ।

जाके कोटि रमा सी दाम्नी पद सेवत रतिकत ।

शिव विरंचि मधवा कुबेर जाके सेमनि के तत ।

—व्यासवाणी पूर्वार्ध, पृ० ३५

गुजराती कवि नरसी तथा प्रेमानन्द ने कृष्ण के विराट रूप का जो वर्णन किया है वह भी उपर्युक्त कवियों के वर्णन के समान ही है—

नरसी. १—रवि शशि कोटि नख चन्द्रिका मा वसे दृष्टि

पहोंचे नहि खोज खोले ।

अर्क उद्योत ज्यम तिमिर भासे नही नेति नेति
 कहि निगम डोले ।
 कोटि ब्रह्मांड ना ईश धरणीधरा, कोटि
 ब्रह्मांड एक रोम जेनु' ।

—पद ४९

२—तारी केम करी पूजा कर श्रीकृष्ण करुणानिधि
 सकल आनन्द कथ्यो न जाए ।
 स्थावर जगम विश्वव्यापी रह्यो
 केशवा कडीये केम समाए ।

—पद ६६

प्रेमानन्द—रमे नारायण नट रूपे रे रमे नारायण नट रूपे रे ।
 कोटि ब्रह्मांड धरे परमेस्वर अक लोक रोम कूपे रे ।
 चौसठ सहस कर पद लोचन श्रवण चौसठ हजारो ।
 मस्तक वत्तीस सहस नासिका सोळ सहस्रे निशा भरथारो ।
 —श्री० भा०, पृ० २२८

यह वर्णन पुरुष सूक्त के 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' के नितान्त समीप है । चौसठ हजार की मख्या रास के प्रसंग के अनुकूल है ।

अन्य उपाधियाँ— कुछ कवियों ने ब्रह्म कृष्ण की अनेकानेक उपाधियों का मुक्त हृदय से वर्णन किया है जिनमें तात्त्विक दृष्टि के साथ भावात्मकता का भी पर्याप्त योग है । सूरदास ने कृष्ण को परमहंस, सर्वेश, जगदीश, अच्युत, अविगत, अविनाशी आदि उपाधियों से विभूषित किया है—

परमहंस तुम सबके ईस, वचन तुम्हारे श्रुति जगदीश ।
 तुम अच्युत अविगत अविनासी, परमानन्द सदानुखारासी ।

—सू० सा०, दशमस्कंध, उत्तरार्ध

नंददास आदि कवियों ने भी इस प्रकार से कृष्ण का वर्णन किया है (अष्टछाप व. पृ० ४०९) । इस प्रवृत्ति की सीमा हरिव्यासदेव जैसे कवियों में मिलती है जो उपाधियों की शृंखला की शृंखला रचते चले जाते हैं—

निरवधि नित्य अखंडल जोरी गोरी स्यामल सहज उदार ।
 आदि अनादि एकरस अद्भुत मुक्ति परे पर सुख दातार ।
 अनंत, अनीह, अनावृत, अव्यय अखिल अड अधीश अपार ।

—नि० मा०, पृ० ५८

गुजराती कवि नरसी मेहता में भी कही-कही यह प्रवृत्ति पाई जाती है—

अकल अविनाशी ओ नवज जाओ कलयो अरध ऊरधनी महि महाले ।

नरसैया चो स्वामी सकल व्यापी रह्यौ प्रेम ना संत मा सत झाले ।

—पद ३९

इसके अतिरिक्त नरसी ने ब्रह्म की अन्य विशेषताओं का भी अंकन किया है । श्वेता-श्वेतर उपनिषद् के 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यक्षुः स शृणोत्यकर्णः' (३.१९) का अनुसरण निम्नलिखित पंक्ति में मिलता है—

नेत्र विण निरखतो, रूप विण परखतो, वण जिह्वाओ रस सरस पीवो ।

—पद ३९

इसी प्रकार छान्दोग्य के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (३:५:१) की छाया इन पंक्तियों में स्पष्ट परिलक्षित होती है—

अखिल ब्रह्मांड मा ओक तु श्री हरी जूजवे रूपे असत मासे ।

देह मा देव तु तेज मा तत्त्व तु शून्य मा शब्द थइ वेद वासे ।

पवन तु पाणिं तु, भूमि तु भूधरा वृक्ष थई फूली रह्यो आकाशे ।

—पद ४०

इन विशेषताओं का वर्णन प्रच्छन्न रूप में अन्य कवियों में भी मिल जाता है किन्तु इस विषय में नरसी उपनिषदों के जितने समीप है उतना ब्रजभाषा का कोई भी कवि दिखाई नहीं देता ।

जीव

सभी अद्वैतवादी दर्शन अन्ततः जीव और ब्रह्म के तात्त्विक अभेद को स्वीकार करते हैं । 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' तथा 'ममैवाशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' आदि कथनों से यही प्रतिपादित किया गया है । 'अविकृत परिणामवाद' के सिद्धान्त में जीव जगत के ऐक्य के साथ जीव ब्रह्म का ऐक्य भी स्वीकृत है । मुडक और बृहदारण्यक आदि उपनिषदों में ब्रह्म को अग्नि और जीवों को स्फुलिंगों का रूपक दिया गया है—

१. यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिगाः

सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपा,

तथा क्षराद् विविधाः सौम्य भावा

प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ।

—मुडक, २:१:१

२ यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिगा व्यच्चरन्त्वमवास्मादात्मनः
सर्वे प्राणा.....

—बृहदारण्यक, २. १ : २०

शंकराचार्य ने भी इस औपनिषदिक रूपक को स्वीकार किया है—

परस्यैव तावद् आत्मनो ह्यंशो जीवः अग्निरिव विस्फुलिगाः

शुद्धाद्वैत के प्रतिपादक बल्लभाचार्य ने इस रूपक को अपनी सैद्धान्तिक व्याख्या में विशेष स्थान दिया है । अपने तत्त्वदीप निबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण में उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में इसे व्यक्त किया है—

विस्फुलिगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि ।

आनन्दांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः ॥३२॥

पुष्टि मार्ग के अनुयायी कवि नददास ने इसी का अनुसरण करते हुए एक स्तुति के अन्तर्गत लिखा है—

तुमहैं हम सब उपजत ऐसे ।

अग्नि ते विस्फुलिग गन जैसे ।

—नददास, पृ० २०८

सूरदास ने 'करत इन्द्रियनि चेतन जोई, मम स्वरूप जानो तुम सोई' तथा 'रह्यो घट घट व्यापि मोई ज्योति रूप अनूप' आदि लिखकर जीव के ब्रह्म होने का सिद्धान्त तो स्वीकार किया है किन्तु उन्होंने अग्नि और स्फुलिग का उदाहरण संभवतः कही नहीं दिया है । उनके कुछ पदों में प्रतिबिम्बवाद की अभिव्यक्ति मिलती है । उदाहरणार्थ—

चेतन घट घट है या भाई, ज्यों घट घट रवि प्रभा समाई ।

घट उपज्यो बहुरो नशि जाई, रवि नित रहे एक ही भाई ।

—सू० सा०, पृ० ५३

अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने भी जीव विषयक इसी प्रकार के सिद्धान्त को स्वीकार किया है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति कुछ कवियों में ही उपलब्ध होती है जैसे निम्बार्क सम्प्रदाय के परशुरामदेव ने निम्नोक्त दोहे में स्पष्टतया जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की है—

सब जीवन में हरि बसैं हरि ही में सब जीव

सर्व जीव को जीव हरि परमराम सो सीव ॥७३॥

—नि० मा०, पृ० ७९

गुजराती कवि नरसी मेहता न भी जीव और ब्रह्म के भेद को असत्य और अभेद को सत्य स्वीकार किया है। नरसी का 'ते ज हुं, ते ज हुं', पद ३९ तथा 'ते ज तुं ते ज तु' (पद ४२), वास्तव में 'सोहमस्मि' तथा 'तत्त्वमसि' का रूपान्तर मात्र है—

जीव ईश्वर अने ब्रह्मना भेद मा सत्य वस्तु नाहि सद्य जडशे ।

—पद ४६

उन्होंने शिव स्वरूप ब्रह्म से ही जीव की उत्पत्ति मानी है साथ ही ब्रह्म की रस लेने की इच्छा को जीव सृष्टि का कारण माना है ।

विविध रचना करी अनेक रस लेवा ने
शिव थकी जीव थयो ओ ज आशे ।

—पद ४०

तैत्तिरीय उपनिषद् के 'एकोऽहं बहुस्याम्' के अनुसार वल्लभाचार्य ने भी ब्रह्म की इच्छा से ही जीवों की उत्पत्ति मानी है—

तदिच्छा मात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांश्चेतनाः

सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारास्तदिच्छया ॥३१॥

—त० दी० निबन्ध

किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने इस तथ्य को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं किया है । उनका ध्यान जीव के अविद्याग्रस्त स्वरूप के चित्रण तथा भगवद् कृपा द्वारा उसके उद्धार के ऊपर विशेष केन्द्रित हुआ ।

जीव की ब्रह्म से विमुखता—ब्रजभाषा तथा गुजराती दोनों के कवियों ने इसे स्वीकार किया है कि ईश्वर से विमुख होकर ही जीव अनेकानेक कण्ठों और क्लेशों का भागी बनता है तथा उसका कल्याण इसी में है कि वह निरन्तर परब्रह्म परमात्मा के स्मरण तथा उपासन में रत रहे । सूरदास कमल लोचन कृष्ण की प्रीति से हीन तथा विषय विलिप्त जीव का जन्म निरर्थक मानते हैं—

आछो गात अकारथ गार्यो ।

करी न प्रीति कमल लोचन सों जन्म जुवा ज्यो हार्यो ।

निशि दिन विषय विलासनि विलसत फूटि गई तब चार्यो ।

—सू० सा०, पृ० ९

नन्ददास भी जीव को काल, कर्म तथा माया के आधीन एवं पाप-पुण्य आदि में लिप्त कहते हैं—

काल करम माया अधीन ते जीउ बखाने ।
विधि निषेध अरु पाप पुन्य तिनमे सब साने ।

—नंददास, पृ० १८४

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास स्पष्टतः मानते हैं कि जीवन ने ईश्वर का अमृत स्वरूप स्मरण व्याप्त छोड़कर विषय रूपी विष को अपना लिया है—

जीव दिसा कछु इक सुनि भाई ।
हरि जस अमृत तजि विष पाई ॥१॥
कृष्ण भक्ति सौ कवहु न राच्यौ ।
महामुद बड मुख ते बाच्यौ ॥२॥

—जीवदिसा

नरसी मेहता का भी यही मत है कि जीव ईश्वर से विमुख होने के कारण ही विषयगामी हो रहा है—

हरि तणु हेत तने काम गयु बीसरी, पशु रे फेडी नै नर रूप कीधु ।

—पद २७

सूरदास तथा नरसी की जीव विषयक मूल स्थापनाएँ प्रायः समान हैं किन्तु ब्रह्म से जीव की विमुखता के कारण में कुछ साम्य भी है और वैषम्य भी । सूरदास ने एक नहीं अनेक स्थानों पर बलपूर्वक प्रतिपादित किया है कि जीव अपने ही भ्रम तथा अज्ञान के कारण बन्धन में पड़ा है । बार बार इसी तथ्य को प्रकट करने के लिए उन्होंने 'मरकट' तथा 'सुआ' के उदाहरण दिये हैं—

अपुनवौ आपुन ही विसर्यौ ।
जैसे स्वान कांच मंदिर में भ्रमि भ्रमि भूसि मर्यौ ।
मरकट मूठि छाडि नहि दीनी घर घर द्वार फिर्यो ।
सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौनै जकर्यो ।

—सु० सा०, पृ० ४६

कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ इस बन्धन का कारण माया को माना गया है—

१. करौ यतन न भजौ तुमको कछुक मन उपजाइ ।
सूर हरि की प्रबल माया देत मोहि लुभाई ।

—सु० सा०, पृ० ८

२. माधव जू मन माया बश कीन्हो ।

—वही

जहाँ तक बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत का सम्बन्ध है अणुभाष्य में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि जीव में अज्ञान आदि का आविर्भाव तथा गुणों का अभाव 'ईश्वरेच्छया' होता है । उसका कारण न जीव का अज्ञान है और न उसकी इच्छा—

तस्माद् ईश्वरेच्छया जीवस्य भगवद्धर्म तिरोभावः ।

येन जीवभावः अतएव काममयः ।

—अध्याय ३, पाद २, सूत्र ५

इस प्रकार सूरदास के 'अपुनयौ आपुन ही बिसर्यो' आदि उपर्युक्त कथन शुद्धाद्वैत-वाद से सैद्धान्तिक भिन्नता उत्पन्न करते हैं । इन कथनों का साम्य बल्लभाचार्य के मत में तो नहीं मिलता, परन्तु नरसी मेहता के कुछ पद ऐसे अवश्य हैं जिनमें ब्रह्म से विमुख होने का दायित्व जीव को ही दिया गया है—

प्रौड पापे करी बुद्धि पाछी फरी परहगी थड सुँ डाले बळग्यो ।

ईश ने ईर्षा छे नही जीव पर आपणे अवगुणे रह्यो छे अलग्यो ।

—पद २०

आगे कुछ पदों में नरसी ने यह भी निरूपित किया है कि जीवन के इस बन्धन का कारण कर्नूत्वाभिमान है जैसा कि गीता में मिलता है—

अहंकार विमूढात्मा कर्तृहिमिति मन्यते ॥३:२७॥

इसी प्रकार नरसी ने भी लिखा है—

१. हुं कसं हु कसं ओ ज अज्ञानता शकट नो भार जेम खान ताणे ।

—पद २१

२. अनेक जुग बीत्या रे पंथ चलता रे तोये अंतर रह्यो रे लगार ।

प्रभु जी छे पास रे, हरी न थी वेगलारे आडडोरे पड्यो छे अहंकार ।

यह मत सूरदास के मत से स्पष्टतया भिन्नता रखता है यद्यपि जीव की अज्ञानता इसमें भी है और उसमें भी । यह भिन्नता शुक, मर्कट तथा खान-शकट के न्याय से पूर्णतया प्रकट हो जाती है । जिस अज्ञान के कारण शुक अथवा मर्कट बद्ध रहता है उससे वह अज्ञान जिससे खान यह अनुभव करता है कि शकट उसी के बल से चल रहा है, अभिन्न नहीं है । एक स्थिति भय और राग से आच्छादित बुद्धि की निष्क्रियता से उत्पन्न होती है तथा दूसरी अहं की अतिशयता से युक्त बुद्धि की विकृति से । अविवेक तथा भ्रम दोनों ही स्थितियों में रहता है । पहली दशा में मुक्ति की इच्छा निरन्तर रहती है

केवल उपाय ज्ञात नहीं होता दूसरी दशा में मुक्ति की इच्छा का अस्तित्व ही नहीं रहता । अहंकार प्रतिफल उसका निषेध करता रहता है ।

इसका परिणाम यह होता है कि सूर जब जीव के उद्बोधन के लिए कुछ कहते हैं तो भ्रम निवारण करने अथवा समझने पर विशेष बल देते हैं और नरसी बार-बार जीव को यही चेतावनी देते रहते हैं कि अहंकार उत्पन्न करने वाली समस्त वस्तुएँ नाशवान् हैं । उदाहरणार्थ सूर लिखते हैं—

१. जब लौं सत स्वरूप नहि सूझत ।

२. सूरदास समुझे की यह गति मन ही मन मुसुकायो ।

—सू. सा., पृ० ४६

और नरसी अहंकारी जीव की उपमा लम्बी गरदन वाले ऊँट से अथवा वंभव सम्पन्न हाथी से देते हैं—

लाबी यी डोल ने काकोल चावतो ऊँट जाणी वणो भार लादे ।

आज अमृत जगे, हरखे हलवो भगे, वैकुण्ठाथ ने नव आराधे ।

पीठ अबाड़ी ने अंकुश मार सही रेणु उडाडतो धरणी हेठो ।

आज चुवा चदन आभ्रण अग धरी वेगे जाय छे तुं बंले बैठो ।

—पद २७

यही कारण है कि सूर सदैव जीव के हृदय को स्पर्श करके भक्ति की प्रेरणा देते हैं पर नरसी कभी-कभी शंकराचार्य के 'कोऽहं कस्त्व को आयातः' आदि की तरह निम्न-लिखित पंक्तियाँ लिखकर उसकी बुद्धि को भी उद्बुद्ध करने का प्रयास करते हैं—

नरसी—अेक तु अेक तु अेम सौ को स्तवे कोण हु ते नहि को विचारे ।

कोण छुं क्यां थकी आवीयो जग विषे जइश क्यां छूटशे देह त्यारे ।

—पद ४६

यह विभेद यद्यपि दोनों की रचनाओं में बहुत दूर तक प्राप्त होता है तथापि इसे आन्त्यात्मिक नहीं कहा जा सकता । सूरदास के ऐसे भी अनेक पद हैं जिनमें जीव को अहंकार त्याग देने का उपदेश दिया गया है । उसके विचार को जगाकर कर्तृत्वाभिमान को निरर्थक सिद्ध किया गया है—

१. अहंकार किये लागत पाप ।

सूर श्याम भचि मिटे संताप ।

२. करी गोपाल की सब होई ।

जो अपनो पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोई ।

साधन मत्र तत्र उद्यम बल सुख यह सब डारहु धोई ।

जो कछु लिखि राखी नदनंदन मेटि सकै नहि कोई ।

—सू० सा०, पृ० २६

जीव के अहकार का निषेध करते-करते नरसी भी ऐसे ही परिणाम पर पहुँचते हैं जहाँ जीव के कर्तृत्व का पूर्णतया निषेध हो जाता है—

जेहना भाग्य मा जे सने जे लख्युं तेहने ते समे ते ज पहोंचे ।

—पद २९

जीव के भव-वन्धन से निस्तार पानेके उपाय के विषय ने सभी कृष्ण-भक्त कवि एक मत है । सभी ने कृष्ण भक्ति को जीव में उत्पन्न होने वाले मोह, अविवेक अज्ञान, अहकार आदि का उपचार माना है । साधन अथवा भक्ति के स्वरूप पर आगे पृथक् रूप से विचार किया जायगा ।

जगत

जगत् का मिथ्यात्व गुरुआचार्य के उद्घोष 'जगन्मिथ्या' के पश्चात् विकसित होने वाले विभिन्न दार्शनिक मतवादों के लिए एक अत्यन्त महत्व पूर्ण विषय बना रामानुज ने उसे अचित् के रूप में ग्रहण करके ब्रह्म की उपाधि मात्र माना । अन्य आचार्यों ने भी अपना-अपना मत व्यक्त किया किन्तु वल्लभाचार्य से पूर्व जगत् की सत्यता की पूर्ण प्रतिष्ठा किसी ने भी नहीं की । शुद्धाद्वैत में जगत् को शुद्ध ब्रह्म का अवि-कृत परिणाम माना गया, जिसकी ओर ब्रह्म के प्रसंग में पहले संकेत भी किया जा चुका है । यही नहीं जगत् और संसार में स्पष्टतया सत्यासत्य का भेद स्थापित किया गया है । जगत् को विद्या माया से तथा संसार को अविद्या माया से उत्पन्न माना गया है ।

फलतः वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में जगत् और संसार के सम्बन्ध में इस प्रकार भेद परिलक्षित किया जाता है किन्तु अन्य सम्प्रदायों के कवियों में इस भेद का कहीं भी दर्शन नहीं होता । साधारणतया सभी ने जगत् और संसार को एक ही समझा है और उसकी निस्तारा, नाशवत्ता तथा मायामयता का अनेकानेक बार वर्णन किया है । राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास सिद्धान्त के रस फुटकर पदों में लिखते हैं—

एक पकरे सब जग छूट्यो ।

माया रचित प्रपञ्च कुटुम्ब की मोह जाल सब छूट्यो ।

—व्यास वाणी, उत्तरार्ध पृ० ५३१

हरिदास ने भी लिखा है—

हरि को ऐसो ही मव खेल ।
मृग तृष्णा जग व्यापि रह्यो है कहूँ विजौरो न बेल ।
धनमद जोवनमद राजमद ज्यो पछिन मे डेल ।
कह हरिदास यहै जिय जानौ तीरथ को सौ मेल ।

—नि० मा०, पृ० २०४

इसी प्रकार के विचार अन्य अनेक कवियों ने व्यक्त किये हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में सूरदास नंददास आदि कवियों ने संसार के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह सब ऐसे ही विचारों से परिपूर्ण है—

सूर—मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया ।
मिथ्या है यह देह कहौ क्यों हरि बिसराया ।

—सू० सा०, दशम स्कंध

नंददास—वहे जात संसार धार जिय फंदे फंदन ।

—नंद०, पृ० १८४

इस प्रकार जगत् के सम्बन्ध में लोक प्रचलित जो मिथ्यात्व की धारणा थी वही संसार के प्रति इन उद्धरणों में है। अनेक स्थलों पर जगत् को उपर्युक्त कवियों ने शुद्धाद्वैत मत के अनुकूल सत्य एवं वास्तविक रूप में चित्रित किया है—

सूर—ज्यों पानी ते होते बुदबुदा पुनि ता माहि समाही ।
त्यों ही सब जग कुटुम्ब तुमहि ते पुनि तुम माहि विलाही ।

—अष्टछाप और वल्लभ सं०, पृ० ४४१

नंददास—१. ब्रह्म निरीह ज्योति अविकार ।
सत्ता मात्र जगत आधार ।

—नंद०, पृ० २११

२. जै जै जै श्रीकृष्ण रूप गुण काज पियारा ।
परमधाम जगधाम परम अभिराम उदारा ।

—नंद०, पृ० १८३

गुजराती कवि नरसी मेहता ने जगत् के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनसे ज्ञात होता है कि वे संभवतः जगत् को इसी प्रकार सत्य एवं नित्य मानते थे जैसे वल्लभाचार्य के अनुयायी कवियों ने माना है, यद्यपि निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका विरोध उपस्थित करती हैं

जागी ने जोऊं तो जगत दीसे नहीं,
ऊंध मां अटपटा भोग भासे ।

—पद ४२

यहाँ 'जगत दीसे नहीं' और 'ऊंध मा अटपटा भोग भासे' यह दोनों अंश जगत् के मिथ्यात्व को सिद्ध करते हैं परन्तु इसी पद में आगे 'पंच महाभूत विषे ऊग्या' कह कर और कनक कुंडल का उदाहरण देकर सिद्ध कर दिया गया है कि कवि वस्तुतः अविकृत परिणामवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करता है और जगत् को ब्रह्म की तरह नित्य एवं सत्य मानता है । इस भूमिका में 'जगत दीसे नहीं' का तात्पर्य यह होता है कि वह तत्त्वतः ब्रह्म से भिन्न नहीं दिखायी देता है ।

परन्तु जगत् तथा ससार का भेद कदाचित् उन्होंने नहीं किया क्योंकि जगत् का प्रयोग उन्होंने उस ससार के पर्याप्त के रूप में भी किया है जिसे स्पष्टतया माया-मोहमय तथा मिथ्या माना है—

१. खांड्या ससारना थोथा ठाला ।

—पद २१

२. सूख ससारि मिथ्या करी मानजो ।

—पद २९

३. हुं ने महारु जकृत तेमां बूडो ।

—पद ४७

अंतिम पंक्ति में जगत् को 'मेरा तेरा' की माया में डूबा हुआ कहा गया है जो बल्लभ के मतानुसार संसार की परिभाषा है । यहाँ अगर 'ससार तेमा बूडो' होता तो वह परिभाषा धटित होती ।

प्रेमानन्द ने कृष्ण जन्म के समय वसुदेव से जो कृष्ण की स्तुति करायी है उसमें भी पंचमहाभूत का आधार उन्हीं को माना है—

पंचमहाभूत तारे आधारे, नयी तुज बिना जोता विचारे ।

—श्री०, पृ० २४०

किन्तु यह कथन भागवत से प्रभावित है अतएव कवि की स्वतंत्र धारणा का पूर्ण परिचायक नहीं माना जा सकता । ऐसे कथनों में दार्शनिक विचार को व्यक्त करने की वह शक्ति नहीं होती जिसके आधार पर उसे कवि का ही विचारमान लिया जाय ।

गुजराती के अन्य कवियों में जगत् के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण विचार प्राप्त नहीं होते ।

माया

जगत् और संसार के भेद के साथ ही वल्लभाचार्य ने माया के भी दो भेद किये—एक विद्या तथा दूसरा अविद्या । विद्यामाया वह जो ब्रह्म की वशवर्तिनी एवं शक्ति है तथा जिसके द्वारा ब्रह्म समस्त जगत् का निर्माण करता है और अविद्या-माया वह जो जीव को काम क्रोध लोभ मोह आदि के द्वारा वशीभूत करके उसे पथ-भ्रष्ट करती रहती है—

१. विद्याविद्ये हरेः शक्ती माययैव विनिर्मिते ।

ते जीवस्यैव नान्यस्य दुःखित्वं चाप्यनीशता । ३४

—त० दी० निबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण

वल्लभ सम्प्रदाय के सूरदास, नंददास ने भी माया को दोनों ही रूपों में चित्रित किया है । निम्नलिखित उद्धरण माया के उस स्वरूप को व्यक्त करते हैं जिसे विद्या माया कहा गया है—

सूरदास—बहुरि जब हरि की इच्छा होय ।

देखै माया के दिसि जोय ।

माया सब तबही उपजावै ।

ब्रह्मा सो पुनि सृष्टि उपावै ।

—सू० सा० पृ० ७६७

नंददास—सो माया जिनके अधीन नित रहत मृगी जस ।

विश्व प्रभाव प्रतिपाल प्रलयकारक आयुस बस ।

—नंद०, पृ० १८३

गुजराती कवियों में नरसी मेहता ने भी एक पक्ति द्वारा माया के उक्त रूपों का संकेत किया है—

मोहन जीनी माया पासे अवर मायाजम फासडीयां ।

यह 'मोहन जीनी माया' पद स्पष्टतः संकेत करता है कि नरसी माया के एक ऐसे स्वरूप पर भी विश्वास करते हैं जो कृष्ण के वशीभूत है । इसके अतिरिक्त नरसी के काव्य में अन्यत्र कहीं इसकी व्याख्या प्राप्त नहीं होती अतएव यह ज्ञात नहीं होता कि वस्तुतः इस माया के द्वारा नरसी का क्या अभिप्राय था । अविकृत परिणामवाद और जगत् सम्बन्धी उनके विचारों से अनुमानतः इसका कार्य सृष्टि का सृजन प्रलयादि हो सकता



हैं। 'अवर माया' अर्थात् दूसरी अथवा निम्नकोटि की माया जीव के कालपाश में बद्ध करने वाली कही गयी है।

प्रेमानन्द ने अपने दशमस्कंध में कृष्णकी गोवत्स हरण तथा रास आदि लीलाओं में माया को जो स्थान दिया है वह उस शक्ति विशेष के रूप में है जिसके द्वारा कृष्ण अनेक अलौकिक घटनाएँ घटित करते थे। सूरदास ने भी कृष्ण की बाल लीलाओं में उनकी इस शक्ति का परिचय दिया है।

यही नहीं त्रिगुणात्मिका प्रकृति वाली इस माया का वर्णन सूर ने पृथक् रूप से उस गाय का रूपक देकर किया है जिसके सम्हालने की सामर्थ्य केवल गोपाल कृष्ण में ही है—

माधव जू नेकु हटकौ गाइ ।

ढीठ निठुर न डरति काहू त्रिगुण ह्वे समुहाइ ।

नारदादि शुकादि मुनिजन थके करत उपाइ ।

ताहि कहु कैसे कृपानिधि सकत मूर चराइ ।

—सू० सा०, पृ० ८

माया का जो दूसरा स्वरूप है जिसे अविद्या कह गया है उसका भक्त कवियों ने विशेष रूप से चित्रण किया है। भक्ति ने कल्याण पथ में बाधक होने का प्रधान कारण उसे ही कहा गया है अतः प्रायः एक स्वर से सभी ने उसकी निन्दा की है। कभी स्वप्न से, कभी नर्तकी से, कभी मृगमरीचिका से कभी तमिला रात्रि में उसकी तुलना की गयी है। उसका बाह्य स्वरूप आकर्षक तथा आन्तरिक रूप असत्य प्रतिपादित किया गया है उसकी सबसे बड़ी शक्ति यही है कि वह जीव को बलात् अपने पाश में जकड़ लेती है जिससे निस्तार पाना अन्यंत कठिन हो जाता है। केवल कृष्णाश्रय ही एक मात्र उपाय है। सूरदास के निम्नलिखित पद में इसी माया का वर्णन प्राप्त होता है—

बिनती सुनो दीन की चित्त दै कैसे तब गुण गावै ।

माया नटिनि लकुट कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै ।

दर दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वांग करावै ।

तुमसो कपट करावति प्रभु जू मेरी बुद्धि भ्रमावै ।

मन अभिलाष तरंगनि करि करि मिथ्या निशा जमावै ।

सोवत सपने में ज्यों सम्पत्ति त्यों दिखाय बौरावै ।

महा मोहनी मोह आत्मा मन करि अधहि लगावै ।
ज्यो दूती परबधू भोरि कै ले परपुरुष दिखावै ।

—सू० सा० पृ० ६

सुर ने इस माया को भी कृष्ण की वशवर्तिनी तथा जगत्की वशकतृ माना है—

तुम्हारी माया महाबली जिन जग वश कीनो ।
कछु कुलधर्म न जानइ वाके रूप सकल जग राख्यो ।

—सू० सा०, पृ० ७

हरिव्यास देव, हरीराम व्यास, तथा हरिदास आदि अन्य सम्प्रदाय के कवियों ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं—

हरिव्यास—माया त्रिगुन प्रपञ्च पवन की अच न आवै तास ।

—नि० मा०, पृ० ६५

व्यास—१. माया रचित प्रपञ्च कुटुम्बी मोह जाल सब छूट्यो ।

२ जीवत मरै न माया छूटै काल कर्म मुँह कूटै ।
पुत्र कलत्र सजन सुख देता पितर भूत सब लूटै ।
कबहु रक्त राजा कबहु है विपै विकार न छूटै ।
साधु न सूझै गुन नहि बूझै हरि जस रस तहि घूटै ।
व्यास आस घर घाले जग को दुख सागर नहि फूटै ।

श्री व्यास वाणी, पृ० ५३१

हरिदास—तुमरी माया बाजी पसारी विचित्र मोहै मुनि सुनि करके भूलै कोइ ।

—नि० १०, पृ० २०२

बिहारीदास—माया मोह प्रगह पर्यो मन बहै जात बुधि फेरी ।

—वही, पृ० २४४

गुजराती कवियों में नरसी मेहता द्वारा वर्णित 'अवरमाया' का उल्लेख पीछे किया जा चुका है । उन्होंने अन्यत्र कई स्थलों पर माया को, जीव को बद्ध करने वाली विचित्र शक्ति के रूप में चित्रित किया है—

१. माया नी जाल मां मोह पामी रह्यो ।

—पद ३७

२ अवनरी पाश बधायो मायातणे लपटी लालची लीघो फेरी ।
दिवसे चौदश भग्नो, रात निद्राविषे, स्वप्न मा सामरे मोहटी माया ।

—पद ४४

माया के आकर्षक रूप को देखकर प्रसन्न होने वाले जीव को उद्बोधन देते हुए नरसी मेहता उसकी तुलना स्वप्न से करते हैं—

कारभी माया जोई का रे हरखो ।
स्वप्न नी वार्ता मे शुँ रे राची रह्यो ।

—पद ३७

माया को त्याग कर जानो होने का उपदेश भी नरसी ने दिया जिससे ज्ञात होता है वे माया को अज्ञान का पर्याप्त अथवा आवरण समझते थे—

माटे तमो माया तर्जा थाओ ने ज्ञानी ।

—पद ६४

अन्य गुजराती कवियों ने माया के विषय में इस प्रकार स्पष्ट रूप से तो कुछ नहीं लिखा है परन्तु अन्य आधारों को देखते हुए उनका मत माया के इस द्वितीय रूप को ही स्वीकार करता प्रतीत होता है ।

मोक्ष

जीव की जन्म मृत्यु जरा व्याधि से छूटकर अखंड आनन्द प्राप्त करने की दशा को मोक्ष कहा गया है । इस स्थिति विशेष की सत्ता को प्रायः सभी प्रमुख कवियों ने स्वीकार किया है । साम्प्रदायिक दर्शनों ने मोक्ष की स्थिति के अनेकानेक विभेद किये परन्तु सामान्यतः ब्रजभाषा तथा गुजराती दोनों भाषाओं के कवियों ने चार प्रकार की मुक्ति का निर्देश किया है—

सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य ।

सूर—सेवन सगुण स्याम सुन्दर को मुक्ति लही हम चारी ।

—सू० सा० वे० प्रे०, पृ० ५४४

हरिराम व्यास—लोक वेद कर्म धर्म छाडि मुकुनि चारि ।

व्यासवाणी, पृ० २९९

नरसी—१. चतुरधा मुक्ति छै ।

—पद २२

२ चतुरधा मुक्ति तेओ न मागे ।

—पद २४

मोक्ष अथवा मुक्ति के सम्बन्ध में कवियों के दो वर्ग हैं जिनके विचार एक दूसरे से विरुद्ध हैं। एक वर्ग के मत से मोक्ष की स्थिति भक्ति से श्रेष्ठ नहीं है अतएव उस वर्ग के कवियों ने अपने काव्य में विभिन्न स्थलों पर अनेक प्रकार से मुक्ति की उपेक्षा एवं तिरस्कार किया है। उदाहरणार्थ, गुजराती कवि नरसी की निम्नलिखित पक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

१. चतुरधा मुक्ति छे जूजवी जूक्तिनी ताहरा ते तेहनं नव राचे ।
बेहु करजोड़ी ने नरसैयो वीनवे जन्मोजनम तारी भक्ति जांचे ।

—पद २२

२ धन वृदावन धन अ लीला धन अ बज ना वासी रे ।
अष्टमहासिद्धि आगणिया ऊपी, मुक्ति छे प्रेम नी दासी रे ।

—पद १

३. हरिना जन तो मुक्ति न मागे
मागे जन्मो जन्म अवतार ।

—पद १

परन्तु इस प्रकार मोक्ष की उपेक्षा करते हुए भी नरसी ने अपने आराध्य कृष्ण को मोक्ष का दाता माना है तथा यशोदा को मुक्ति का प्रतीक भी घोषित किया है —

१ नरसैया चा खामी नर मोक्षदाता सदा
श्रीकृष्ण जी समो देवनोयं ।

—पद ४८

२ मुक्ति जशोमती ।

—पद ३५

ब्रजभाषा के भी कई कवियों ने मोक्ष की भक्ति के समक्ष उपेक्षा की है—

ध्रुवदाम—१. धर्म मोक्ष कोउ पूछत नाहीं सिद्धै कौन विचारी ।

—जीवदिमा ३३

२. रसिक गनत नहि मुकुति कौ और लोक केहि मांहि ।

—भजनसत

हरिराम व्यास—ताके बल गर्व भरे रसिक व्यास से न डरे
लोक वेद कर्म धर्म छोडि मुकुति चारि ।

पृ० २४९

सूरदास ने भी कही कहीं चार पदार्थों—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को कृष्ण के भजन की तुलना में हीन कहा है—

जो सुख होत गोपालहिं गाये ।

दिये लेन नहिं चार पदार्थ चरण कमल चित लाये ।

—सू० सा०, पृ० ४३

सूरसागर के तृतीय स्कंध में एक स्थल पर भक्ति के प्रकार-विशेष को जिसे सुधाभक्ति कहा गया है, मोक्ष का इच्छुक बताया गया है साथ ही मुक्ति से अलिप्त भी—

सुधाभक्ति मोक्ष को चाहै

मुक्तिहु को नाहीं अवगाहै ।

—सू० सा०, पृ० ५२

यहाँ मुक्ति और मोक्ष में अंतर किया गया प्रतीत होता है । मोक्ष मुक्ति से श्रेष्ठ माना गया है ।

सूरदास वस्तुतः दूसरे वर्ग के कवियों में आते हैं जिन्होंने मोक्ष प्राप्ति की बराबर कामना की । उनके अनेक पदों में जन्म मरण के चक्र से अथवा भव व्याधि से विस्तार पाने की प्रार्थना की गयी है—

१. निघरक रहौं सूर के स्वामी जन्म न जाऊँ फेरि ।

—सू० सा०, पृ० ८

२. तुम मोसे अपराधी माधव कितेक मुक्ति पठाये हो ।

—वही, पृ० ३

३. सूरदास भगवंत भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै ।

—वही, पृ० ५

गुजराती के कवियों ने भी भागवत का तथा उसमें वर्णित कृष्ण कथा के श्रवण मनन का ध्येय मुक्ति ही माना है ।

प्रेमानन्द—अथी श्री भागवत, गंगा प्रकट्या जेमा काम मोक्ष ते अर्थ ॥७॥

भालण—लीला ते श्रीकृष्ण जी प्रेमे बोली अहे,

भाव कमावे साभले गर्भदास नावे तेह ।

—दशम०, पृ० ४३७

जिसे सुनकर परीक्षित मुक्त हो गए ऐसी भागवत का चरम लक्ष्य मोक्ष ही है यह धारणा इन्हीं कवियों में नहीं वरन् एक स्थल पर नरसी मेहता में भी प्राप्त होती है—

प्रेम नी बात परीक्षित प्रीछ्यो नहीं शुक जीअे समजी रस सताड्यो ।
ज्ञान वै राग्य करि ग्रंथ पुरो कर्यो मुक्ति नो मार्ग सूधो देखाड्यो ।

—पद २४

यही वे अपन पदों में स्पष्टतया मुक्त होने तथा पुनः जन्म न ग्रहण करने की याचना करते हैं जो उनके पूर्वोक्त मुक्ति की उपेक्षा व्यक्त करने वाले पदों के ठीक विरुद्ध पड़ता है—

१. रे भणे नरसैयो अटलुं मागुं पुनरपि नहि अवतार रे ।

—पद २

२. भणे नरसैयो तमे प्रभु भजीलो आवागमन नो फेरो टले ।

—पद १२

३. भणे नरसैयो जेने कृष्ण रस चाखियो, पुनरपि मात ने गर्भ नावे ।

—पद ६६

कृष्ण भक्त कवियों ने सायुज्य तथा सारूप्य की अपेक्षा सामीप्य तथा सालोक्य मुक्ति की लालसा विशेष रूप से प्रकट की है। मूरदास ने अपने अनेक पदों में एक चिरन्तन आनन्दमय अतीन्द्रिय लोक में चलने की कामना व्यक्त की है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियों से प्रारम्भ होने वाले पद लिये जा सकते हैं—

१. भृगी री भज चरण कमल पद जह नहि निशिको त्रास ।

—सू० सा०, पृ० ३६

२. चकई री चलि चरण सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग ।

—वही०, पृ० ३५

गुजराती कवि भालण को भी ऐसी ही मुक्ति अभीष्ट है। अपने दशमस्कंध की समाप्ति करते हुए वे लिखते हैं—

वैकुंठ पद तो तेह पाये, हरिचरणे थयो वास ।

बेहू कर जोडी ने कहे भालण हरि नो दास ।

व्यक्त उद्धरणों में चरण शब्द से आराध्य की समीपता की भी व्यञ्जना होती है अतः आलोक्य और सामीप्य दोनों प्रकार की मुक्तियाँ एक साथ ही इन कवियों को अभि-
त जान पड़ती है । निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों का दृढ़ विश्वास है कि श्रीकृष्ण
अपने प्रिय भक्तों पर जब अनुग्रह करते हैं तो उन्हें अपने समीप गोलोक में ही स्थान
देते हैं जहाँ से उन भक्तों को रास दर्शन का सुख निरंतर प्राप्त होता रहता है—

१. जिनके यह अनन्य उपास ।

तिनको प्रिया लाल निन हित करि राखै अपने पास ।

माया त्रिगुण प्रपञ्च पवन की अच न आवै तास ।

श्री हरिप्रिया निपट अनुवर्तित है निरखै सुख राम ।

—नि० मा०, पृ० ६५०

२ यह अनुक्रम करि जे अनुसरही, शनै शनै जगते निरवरही ।

परमधाम परिकर मधि बसही. श्री हरिप्रिया हितू सग लसही ।

—वही, पृ० ६७०

गुजराती कवि नरसी मेहता ने रासवर्णन के प्रसंग में अपने गोलोक में होने का वर्णन
किया है जो इसी प्रकार की धारणा को व्यक्त करता है । वल्लभाचार्य ने 'शनै शनै
जगते निरवरही' वाली मुक्ति को 'क्रम मुक्ति' का नाम दिया है और गोलोक में स्थान
पाने वाली मुक्ति को प्रवेशात्मक मुक्ति माना है, । 'क्रम मुक्ति' के विरुद्ध उन्होंने
'सद्यः मुक्ति' को स्वीकार किया जो जीव को भगवत्कृपा से तत्काल विना प्रारब्ध कर्म
भोगे ही प्राप्त होती है, और प्रवेशात्मक मुक्ति के साथ लयात्मक मुक्ति का निरूपण
किया जो केवल ज्ञानियों को ही प्राप्त होती है और जिसमें जीव ब्रह्म में पूर्णतया
विलीन हो जाता है । अष्टछाप के कवियों को प्रवेशात्मक मुक्ति ही अभीष्ट रही
उसी को अनेक रूपों से व्यक्त किया है । कुछ कवियों ने कृष्ण के लीलाधाम ब्रज में
जड़ रूप से प्रवेश पाने तक की कामना की है । सूर का 'करहु मोहि ब्रज रेणु'
रसखान का 'पाहन हौं तो वही गिरि को. . . ' तथा व्यास का 'ब्रज के लता पता
मोहि कीजै' ये सब इसी भाव को प्रकट करते हैं ।

भक्ति

साधना एवं उपासना के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता
तथा महत्ता का प्रतिपादन वैष्णव चिन्ताधारा का मूल स्वर रहा है । गीता,
भागवत, नारद भक्ति सूत्र, नारद पंचरात्र तथा शाङ्ख्य भक्ति सूत्र आदि ग्रंथों द्वारा
भक्ति को कर्म तथा योग से भी श्रेष्ठतर स्थान दिया गया है जिसके परिणाम स्वरूप

समस्त वैष्णव काव्य भक्ति की व्यापक आधार भूमि पर विकसित हुआ। गुजराती, ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य भी इसी सत्य का समर्थन करता है। प्रायः सभी प्रधान कवियों ने भक्ति के महत्व को स्वीकार ही नहीं किया अपितु स्पष्ट और सशक्त शब्दों में उसका व्याख्यान एवं गुणगान भी किया है। ब्रजभाषा के कवि अधिकतर किसी न किसी भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षित मिलते हैं अतएव उनके लिए स्वाभाविक है कि वे भक्ति के यशगान में काव्य रचे परन्तु गुजराती के कवियों ने भी, जिनका सम्बन्ध किसी भक्ति सम्प्रदाय से स्पष्टतया परिलक्षित नहीं होता, भागवत आदि के आधार पर भक्ति की प्रशंसा में तथा उसके महत्व को व्यक्त करते हुए पर्याप्त परिमाण में काव्य रचना की है जिसकी ओर वस्तु विश्लेषण के प्रसंग में निर्देश किया जा चुका है।

भक्ति की महिमा—नरसी मेहता ने भक्ति को ऐसा श्रेष्ठ पदार्थ माना है जो केवल भूतल पर ही उपलब्ध नहीं होती वरन् ब्रह्म लोक में भी उसकी प्राप्ति नहीं होती—

भूतल भक्ति पदार्थ मोटुं, ब्रह्मलोक मां नाही रे।

—पद १

उनके मत में भक्ति के अभाव में सब कुछ निस्सार है अतएव भक्त को सब परंपंच तज कर केवल भक्ति न भूलना ही अभीष्ट है—

परंपंच परिहरो सार हृदिअे धरो उचरो हरि मुखे अचल वाणी।
नरसैया हरितणी भक्ति भूलीश मा भक्ति बिना बीजुं धूल धाणी।

—पद २०

भक्ति के बिना जो प्राणी जीवित रहते हैं वे मानव कहलाने के भी अधिकारी नहीं हैं—

भक्ति बिना जे जन जीवे ते केम कहिये मानव देह रे।

—पद ५५

इसी बात को नरसी फिर भिन्न प्रकार से कहते हैं कि वह जीव जीव नहीं है जिसने हरि की भक्ति नहीं की। वह अपराधी है, शववत् पृथ्वी का भार है तथा जीवित ही नरक भोगी है—

जे कृष्ण हरिनी भक्ति न साधी ते अपराधी जीव कशा रे।
भूतल भार भरे शव सरखा जीवतडां नर नरक वस्या रे।

पद ६३

नरसी के अनुसार भक्ति में इतनी सामर्थ्य है कि वह भगवान् को भी अपने वश में कर लेती है तथा भगवान् को भक्ति के ही कारण देह तक धारण करनी पड़ती है—

भक्ति कारण जो ने भूधरे देह धरी ।

....

नरसैया चा स्वामि सबल वश भक्ति ने अवर उपाय नहीं देह त्यागे ।

—पद ३७

प्रेमानन्द ने भी भजन बिना मनुष्य जन्म को निरर्थक स्वीकार किया है—

मनुष्य देह देवने दुर्लभ, को पुण्ये प्राप्ति थाय ।

जे थी परमपद ने पाये प्राणी ते, भजन बिना अले जाय ॥ ९ ॥

—श्रीमद्० भा० २३३

मथुरा लीला के रचयिता केशवदास वैष्णव भक्ति रस को साक्षात् भगवान् का स्वरूप समझते हैं—

योग शृ गार अध्यात्म ज्ञान । केवल भक्ति रस भगवा ।

भक्ति के महत्व को व्यक्त करने के लिए गुजराती कवियों ने उसका तादात्म्य राधा से कर दिया । उनके अनुसार राधा ही भक्ति का स्वरूप है जिससे प्रकारान्तर से यह प्रतिपादित होता है कि कृष्ण के लिए जिस प्रकार राधा अभिन्न एवं प्रिय है उसी प्रकार भक्ति भी । भक्ति के महत्व का प्रतिपादन करने वाले उक्त तीनों कवियों ने भक्ति को राधा रूप में मूर्त घोषित किया है—

नरसी—भक्ति ते राधिका

—पद २५

प्रेमानन्द—गोपी ऋचा राधा भक्ति

श्रीभा० पृ० २३४

केशवदास—भक्ति स्वरूप ते राधिका साक्षात् ओ अवतार ।

—मथुरालीला, कडवा ८

ब्रजभाषा के कवियों ने राधा को भक्ति तो नहीं कहा परन्तु उसकी महत्ता को अपने काव्य में बराबर व्यक्त किया है । किसी भी वस्तु की श्रेष्ठता का निरूपण दो रूपों में होता है । एक तो उसके महत्व एवं शक्ति का वर्णन करके और उसमें निरत प्राणियों की प्रशंसा करके, दूसरे अन्य वस्तुओं की निस्तारता दिखाकर तथा उससे विरत प्राणियों की निन्दा करके । गुजराती कवियों ने दूसरे प्रकार से भक्ति

की महत्ता कम प्रदर्शित की है। केवल नरसी में ही वैसे कथन मिलते हैं परन्तु ब्रजभाषा के कवियों ने दोनों ही प्रकार से भक्ति की महिमा का गायन किया है।

सूरदास मानते हैं कि जीव के अन्य धर्म अणिक हैं, मात्र भक्ति ही ऐसी है जो युग युग तक यशस्विनी बनी रहती है तथा भक्ति से ही भगवत् की प्राप्ति होती है—

१. हरि की भक्ति विरद है युग युग आन धर्म दिन चारि ।

—सू० सा०, पृ० ४४

२. भक्ति बिन भगवत् दुर्लभ कहन निगम पुकारि ।

—सू० सा०, पृ० ३७

साथ ही वे भक्तिहीनो को शूकर कूकर की तरह विषयी ठहराते हैं—

१. भजन बिनु कूकर सूकर जैसो ।

—सू० सा०, पृ० ४५

उनकी दृष्टि में अभक्त प्रेत तथा नारकी हैं—

१. भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत ।

—सू० सा०, पृ० ४५

२. बिनु हरि भक्ति नरक में परै ।

—सू० सा०, पृ० ५५

हितहरिवंश मनुष्य शरीर की सार्थकता भक्ति से ही मानते हैं—

मानुष कौ तन पाई भजौ रघुनाथ को ।

—श्री हित० स्फुट वाणी जी. पृ० १

उनके मत से कृष्ण की भक्ति के आगे ग्रहों की गति अर्थात् भाग्य रेखा का भी कोई महत्व नहीं है—

जो पैं कृष्ण चरण मन अर्पित तो करिहैं कहा नव ग्रह रक ।

—वही, पृ० १

हितहरिवंश के शिष्य दामोदरदास ने अपनी वाणी में अन्य सभी साधनों की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ स्वीकार किया है—

साधन सकल कहै अविश्व । वेद पुरान सु आगम शुद्ध ।

बुद्धि विवेक जे जानही दास । समुझौ सबनि सुभक्ति उजास ।

—श्रीहित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ४९

ध्रुवदास के मत से महासुख स्वरूपा कृष्ण भक्ति से वचित जीव की दशा महामूढ़ जैसी है—

कृष्ण भक्ति सौ कबहूँ न राख्यौ ।

महामूढ़ बड़ सुख ते बांछ्यौ ।

—जीवदसा

हरिराम व्यास ने भक्ति को भवसागर से पार जाने का एकमात्र उपाय कहा है तथा भक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं को असत्य माना है—

१ भव तरिबे को एक उपाड ।

—व्यास बाणी. पृ० ९६

२ साची भक्ति और सब झूठी ।

—वही, पृ० ९७

व्यास जी का दृढ़ विश्वास था कि यदि भक्ति की व्यापक लोकप्रियता न होती तो धर्म विद्या आदि सभी कुछ नष्ट हो जाता—

जो पै सकहि न भक्ति सुहाती ।

तौ विद्या विधि वरन धर्म की जाति रसातल जाती ।

—वही, पृ० १२७

गौडीय सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट अपने एक पद में भक्ति को कलिकाल तारिनी, मंगल विधायिनी जैसे अनेकानेक विशेषणों से विभूषित करते हैं—

अधमहारिनि अधम उधारिनि, कलिकाल तारिनी मधुमथन गुनकथा ।

मंगल विधायिनी प्रेम रम दायिनी, भक्ति अनपायनी होइ जिय सर्वथा ।

—बाणी ग० भट्ट, पृ० १३ १४

निम्बार्क मतानुवर्ती श्रीभट्ट जीव के जन्म जन्मान्तर के दुखों का मूल कारण उसका गोविंद से विमुख होना अर्थात् भक्तिहीन होना स्वीकार करते हैं तथा भक्ति से अमयपद प्राप्त होना एवं यम त्रास से मुक्ति पाना संभव समझते हैं—

जे नर विमुख भये गोविंद सो जनम अनेक महादुख पायो ।

श्रीभट्ट के प्रभु दिगो अभय पद जम डरप्यो जब दास कहायो ।

—नि० मा० पृ० ११ ।

इसी प्रकार स्वामी हरिदास भी भयानक ससार-समुद्र का सतरण करने हेतु जीव के लिए श्रीकृष्ण के चरणों का आश्रय ही समर्थ आधार मानते हैं—

कहि श्री हरिदास तेई जीव पार भये जे गहि रहे चरन आनद नंदसि ।

—नि० मा०, पृ० २०३

इस प्रकार सभी कवियों ने अपने अपने ढंग से भक्ति के माहात्म्य का निरूपण किया है। मुक्ति की अपेक्षा बहुतों ने भक्ति को ही श्रेष्ठ माना है जिसका परिचय मोक्ष के प्रसंग में दिया गया है। उससे स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि गुजराती तथा ब्रज दोनों के ही कवियों ने भक्ति के आगे मुक्ति का निरस्कार करने की भावना व्यक्त की है जो भक्ति की महिमा का चरम बिन्दु है। बहुत से कवियों ने भक्ति की प्रशंसा श्रेष्ठतम साधन के रूप में की है पर कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने उसे भगवन्त का स्वरूप बता कर माध्य की कोटि में स्थापित करने का प्रयास किया है।

भक्ति के प्रकार—भागवत के सप्तम स्कंध में नवधा अथवा नवलक्षणा भक्ति का निरूपण किया गया है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वंदनं दारयं सख्यमात्मनिवेदनम् ।

—अ० ५ श्लो० २३

इन नव लक्षणों में से प्रथम तीन का—नाम से, दूसरे तीन का—रूप से तथा अन्तिम तीन का—भाव से सम्बन्ध है। वल्लभाचार्य ने इन सभी लक्षणों को साधन का प्रकार माना है जिसके द्वारा दशवी प्रेम रूपा भक्ति उत्पन्न होती है^१। श्री हरिभक्तिरसामृत-सिन्धु के रचयिता रूप गोस्वामी ने भी भक्ति के 'वैधी' तथा 'रागानुगा' दो भेद स्वीकार किये हैं^२। भक्ति के प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों में जो लक्षण मिलते हैं उन सभी में प्रेम अथवा अनुरक्ति के शुद्ध तथा परम रूप पर बल दिया गया है। यथा—

१. सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा ॥ २ ॥

—नारद भक्तिसूत्र

२. माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु मुदृढः सर्वतोऽधिक. स्नेहो भक्तिरिति ।

—नारद पंचरात्र

३. सा परानुरक्तिरीश्वरे ॥ २ ॥

—शाङ्गिल्य भक्ति सूत्र

इस प्रकार भक्ति के एक ऐसे रूप की स्थिति बराबर मानी गयी जो नवधा भक्ति के से इतर थी और श्रेष्ठतर भी।

गुजराती और ब्रजभाषा के प्रायः सभी प्रमुख भक्त कवियों ने भक्ति के इसी प्रकार को मान्यता दी है। विभिन्न कवियों ने इसे विभिन्न नामों से भूषित किया है।



नरसी मेहता ने नवधा के अनुकरण पर इस रागानुगा भक्ति को 'दशधा' नाम दिया है। साथ ही उन्होंने अपने आराध्य की प्राप्ति के लिए नवधा भक्ति को अशक्त भी बताया है। उनका आराध्य जो सत्य है—अनंत है, दृष्टि में नहीं आता है और वाणी से परे है, केवल दशधा के ही माध्यम से प्रकट होता है—

दृष्टे न आवे निगम जगावे वाणी रहित विचारो रे ।
साथ अनंत ज जेहने कहीअे ते नवधा थी न्यारो रे ।
नवधा मां तो नही नरवेडो दशधा मा देखाओ रे ।
अचवो रस छे अहेनी पासे, ते प्रेमी जन ने पाओ रे ।

—पद ५७

अष्टछापी कवि परमानन्ददास ने भी एक पद में नवधा से दशधा भक्ति को श्रेष्ठतर प्रतिपादित किया है—

ताते दसधा भक्ति भली ।
जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेकु न अनंत चली ।
श्रवण परीक्षत तरे राजरिषि कीर्तन करि शुकदेव ।
सुमिरन करि प्रह्लाद निर्मय भयो कमला करी पदसेव ।
प्रथु अरचन, सुफलक सुत बंदन दासभाव हनुमंत ।
सखाभाव अर्जुन बस कीन्हे श्री हरि श्री भगवत ।
बलि आत्मसमर्पण करि हरि राखै अपने पास ।
अखिल प्रेम भयो गोपित को बलि परमानन्ददास ।

सूरसागरसारावली में इसे प्रेम लक्षणा कहा गया है—

श्रवण कीर्तन स्मरण पाद रत अरचन बंदन दास ।
सख्य और आत्मनिवेदन प्रेम लक्षणा जास ॥ ११६ ॥

सूरसागर में इसी रागानुगा भक्ति को 'सुधाभक्ति' तथा 'प्रेमभक्ति' की संज्ञा दी गयी है। सुधाभक्ति का स्थान तामसी, राजसी तथा सात्विकी भक्ति के ऊपर माना गया है और इस प्रकार भक्ति के प्रकारों का एक नवीन वर्गीकरण प्राप्त होता है—

भक्ति एक पुनि बहु विधि होई, ज्यों जल रंग मिलि रंग सुहोई ।
भाता भक्ति चारि परकार, सत रज तम गुण सुधा सार ।
भक्ति सात्विकी चाहति मुक्त, रजोगुणी घन कुटुब अनुरक्त ।
तमोगुणी चाहे या भाई, सम बैरी क्यों ही मर जाई ।

सुधा भक्ति मोक्ष को चाहे, मुक्ति हू को नहीं अवगाहे ।

—सू० सा० तृतीय स्कंध, पृ० ५२

यह वर्गीकरण भी नवधा की तरह भागवत पर आधारित है परन्तु भागवत में उसे निर्गुण भक्ति कहा गया है जिसे सूर ने सुधा भक्ति कहा है—

लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुणस्यह्युदाहृतम् ।

अहंनुक्थ व्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥१२

—भागवत, तृतीय स्कंध, अध्याय २९

प्रेमभक्ति नाम सूर ने और नंददास दोनों दिया है साथ ही गुजराती कवि नरसी और भालण ने भी इसका प्रयोग किया है—

सूर—१. प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई, नाथ कृपा करि दीजै सोई ।

—सू० सा० पृ० ७५८

२. प्रेमभक्ति बिनु कृपा न होइ। सर्वशास्त्र में देखे जोइ ।

—सू० सा०

नंददास—जो यह लीला गावै चित दैसुनै सुनावै ।

प्रेमाभक्ति सो पावै अरु सबके जिय भावै ।

—नंद० पृ० १८२

नरसी—प्रेमभक्ति मां भग पडावै अज्ञान आगल लावे रे ।

—नंद ५४

भालण—१. प्रेमभक्ति ते कही न जाये ।

जीहवा अेक मुह माय जी ।

२. सनकादिक जाणे नहिं प्रेमभक्ति निरधार जी ।

—दशम स्कंध, पृ० २२७

सूरदास द्वारा दी हुई पूर्व परिभाषा से यदि इस प्रेमभक्ति की तुलना की जाय तो मुक्ति की प्राप्ति का लक्ष्य रखने के कारण यह सात्विकी भक्ति ठहरती है परन्तु नंददास का मन्तव्य कदाचित् इससे भिन्न है । उनकी प्रेमभक्ति का अर्थ विशुद्ध रागानुगा भक्ति से ही है । नंददास ने सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार भक्ति का एक रूप 'पुष्टि भक्ति' भी माना है जो उनके एक पद से प्रकट होता है—

धर्मादिक द्वारे प्रतिहार, पुष्टि भक्ति को अंगीकार ।

—नद. पृ० ३४२

किन्तु यहाँ उनका मन्तव्य पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाया है । 'प्रेमभक्ति' तथा 'पुष्टि भक्ति' को उन्होंने पर्याप्त माना अथवा वे इन दोनों में कोई भेद समझते थे, यह उनके काव्य से स्पष्ट नहीं होता ।

'प्रेमभक्ति' का सकेत सूर और नददास में ही नहीं मिलता गौडीय सम्प्रदाय के कवि माधवदास ने भी मानमाधुरी की फलश्रुति में इसका उल्लेख किया है—

मानमाधुरी जो मुने, होय सुबुद्धि प्रकास ।

प्रेमभक्ति पावै विमल, अरु वृन्दावन वास ॥४०॥

—श्री मानमाधुरी, पृ० ८३

अगले दोहे में कवि ने इसी अर्थ में 'रागमार्ग' का व्यवहार किया है जिससे ज्ञात होता है कि माधवदास की प्रेमभक्ति वस्तुतः रागात्मिका भक्ति का ही दूसरा नाम है—

मानमाधुरी जो पढ़ै सुनै सरम चितलाय ।

राग मार्ग मार्ग में चित रहै राधाकृष्ण सहाय ॥४१॥

—वही

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने भी प्रेम की श्रेष्ठता का निरूपण अनेक प्रकार से किया है । वे भजन के समस्त रूपों से प्रेम भजन को श्रेष्ठ कहते हैं—

औरौ भजन आहि बहुतेरे ।

ते सब प्रेम भजन के चरे ॥१५१॥

—नेह मंजरी

एक दूसरे स्थल पर वे नरसी तथा परमानन्ददास की तरह ही नवधा भक्ति की तुलना में प्रेम को ही उच्च स्थान देते हैं—

महा माधुरी प्रेम निज आवै जिहि उर माहि ।

नवधा हूँ तिहि रुचति नहि नेम सबै मिटि जाहि ॥१५॥

—भजन कुंडलिया

'सिद्धान्त विचार' नामक रचना में इसी विचार को गद्य में ध्रुवदास ने स्पष्ट किया है—

'पहले स्थूल प्रेम समुझे तब आगे चलै जैसे भागवत की वानी ।

पहिले नवधा भक्ति करै तब प्रेमलछिना आवै ।"

यहाँ स्पष्टतया 'प्रेम लक्षणा' शब्द का प्रयोग किया गया है । सारावलीकार न भी इसी को प्रयुक्त किया है जिसका उल्लेख हो चुका है । ध्रुवदास के सहसम्प्रदायी कवि हरिराम व्यास ने पूर्वोक्त सूर आदि की तरह प्रेमभक्ति का ही व्यवहार किया है—

घर घर प्रेमभक्ति की महिमा व्यास सब पहिचानी ।

—व्यास वाणी, पृ० २८

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि हरिव्यास ने भक्ति के इस विशिष्ट प्रकार को 'पराभक्ति' कहा है और राधा को 'पराभक्ति प्रदायिनी' की उपाधि दी है—

१. जयति जय राधा रसिकमनि मुकुट मनहरनी त्रिये ।

पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करना निधि प्रिये ।

—नि० मा०, पृ० ३५

२. कर्म अह ज्ञान करि के सदा दुर्लभ सुलभा परा भक्तिहि प्रकासी ।

—वही, पृ० ५९

उन्होंने इस पराभक्ति के परम पथ को 'नेम प्रेम' दोनों से श्रेष्ठतर माना है—

रहि गयो मारग उरै नेम अह प्रेम को पर चलयो परा को परम पर पथ ।

—वही, पृ० ६०

इस पराभक्ति की उपलब्धि के लिए हरिव्यास देव द्वादश लक्षण तथा दस पैड़ी का विधान किया है । द्वादश लक्षणों में तो सामान्य नैतिक बातों का ही समावेश किया गया है परन्तु दस पैड़ी में भक्ति के विकास का अनुक्रम निर्धारित करने का प्रयास किया गया है, जो बहुत कुछ अस्पष्ट है । दस पैड़ी वाला अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

ये द्वादश लक्षण अवगाहै । ते जन परा परम पद चाहै ।

जाके दश पैड़ी अति दृढ है । विन अधिकार कौन तंह चढ़िहै ।

पहले रसिक जनन को सेवै । दूजी दया हृदय धरि लेवै ।

तीजी धर्म मुनिष्ठा गुनि है । चौथी कथा अमृत है सुनि है ।

पंचमि पद पंकज अनुरागै । षष्ठी रूप अधिकता पागै ।

सप्तमि प्रेम हिये विरधावै । अष्टमि रूप ध्यान गुन गावै ।

नौमी दृढ़ता निश्चय गहिबै । दशमी रस की सरिता बहिबै ।

या अनुक्रम करि जै अनुसरही । शनै शनै जग ते निरवरही ।

—नि० मा० पृ० ६७

इसी सम्प्रदाय के कवि रूबरसिक का झुकाव वैधी भक्ति की ओर है जो उनके द्वारा वर्णित उन्चास बातों से प्रकट है—

ये उन्चास बात छिटकावै ।

सो हरिव्यासी जन मन भावै ।

—नि० मा०, पृ० १२०

परिभाषा की दृष्टि से पराभक्ति तथा रागानुगा भक्ति में मौलिक अंतर है । भक्ति के मूलतः दो भेद माने गये हैं परा तथा गौणी । परा भक्ति निम्न दशा की मानी गयी है और गौणी भक्ति साधन दशा की । रागानुगा गौणी भक्ति का ही उपभेद है । इस प्रकार शब्द के आधार पर कहा जा सकता है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में साध्य दशा की भक्ति मान्य है तथा अन्य सम्प्रदायों में साधन दशा की । परन्तु वस्तुतः ऐसा कोई भेद परिलक्षित नहीं होता । नरसी से लेकर हरिव्यास देव तक उक्त सभी कवियों का अभिप्राय भक्ति के एक ऐसे स्वरूप से है जो वैधी के विरुद्ध समस्त बन्धनों से मुक्त विशुद्ध प्रेम का द्योतक है । उसीके लिए सबने अपनी अपनी रुचि एवं परम्परा के अनुसार नामों का प्रयोग किया है । भेद वस्तुगत न होकर नामगत ही प्रतीत होता है । नरसी के अतिरिक्त अन्य गुजराती कवियों का झुकाव वैधी भक्ति की ओर अधिक लगता है यद्यपि उनके काव्य में भक्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा गया है ।

भक्ति के मुख्य भाव—भक्ति का मूल आधार भाव तत्त्व माना गया है । भावों की कोई सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती अनएव भक्त और भजनीय के बीच के सम्बन्धों को भी सीमित नहीं किया जा सकता । फिर भी जिस प्रकार संसार में मानव प्रेम के चार मुख्य रूप, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य मिलते हैं उसी प्रकार भक्ति में भी इन्हीं को मुख्य भावों के रूप में स्वीकार किया गया है । दास्य सख्य का समावेश नवधा भक्ति में 'दास्यं सख्यमामनिवेदनं' कह कर सातवें तथा आठवें प्रकार के रूप में प्राप्त होता है । नारदभक्तिसूत्र में दी हुई एकादश आसक्तियों में उन चारों भावों को सख्यासक्ति, वात्मल्यासक्ति, दास्यासक्ति तथा कान्तासक्ति के रूप में ग्रहण किया है । शेष सात आसक्तियाँ इन मूल भावासक्तियों की सहगामिनी ही हैं विरोधिनी नहीं । श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु में रागानुगा भक्ति के कामरूपा तथा सम्बन्धरूपा को भेद करके और पुनः सम्बन्धरूपा के अन्यान्य उपभेद करके उक्त सभी मुख्य भावों को भक्ति के अतर्गत स्थापित किया गया है ।

इन चारों भावों में अतर्भाव का एक क्रम निर्धारित किया जाता है जिसके अनुसार प्रत्येक भाव में उसके पूर्ववर्ती भाव या भावों का अन्तर्भाव हो जाता है जैसे सख्य

में दास्य का, वात्सल्य में दास्य, सख्य दोनों का और माधुर्य में दास्य, सख्य, वात्सल्य तीनों का ।

किसी कवि के सम्बन्ध में आराध्य के प्रति उसके मुख्य भाव का निर्णय आत्म-निवेदनात्मक पदों के आधार पर सरलता से हो जाता किन्तु बहुत से ऐसे कवि हैं जिन्होंने इस प्रकार की पद रचना न करके वर्णनात्मक काव्य रचे हैं । उनके मुख्य भाव का निर्णय काव्य के उन भावनात्मक स्थलों के आधार पर किया जा सकता है जिनमें कवि की वृत्ति अधिक केन्द्रित मिलती हो । गुजराती के अनेक कवियों के विषय में इस प्रकार की कठिनाई उपस्थित होती है । नरसी मेहता ने भक्ति विषयक बहुत से पद लिखे हैं अतएव उनके द्वारा स्वीकृत मुख्य भाव सरलता से ज्ञात हो जाता है । उन्होंने माधुर्य भाव को सर्वोपरि स्थान दिया है किन्तु उसके साथ दास्य भाव का भी सम्मिश्रण है । वे कृष्ण को स्वामी मान कर जन्म जन्म उनकी दासी बनने की कामना करते हैं । यथा—

जनम जनमती हरी दासी थाशुं, नरसैया चा स्वामी ती लीला गाशु ।

—पद ५६

उनका आदर्श गोपी-भाव है जिसका आस्वादन वे सखी रूप में करते हैं—

१. प्रेम ने जोश तो ब्रजलणी गोपीका अवर विरला कोई भक्त भोगी ।

—पद २८

२. जे रस ब्रजलणी नार बिलसे मदा सखी रूपे ते नरसैये पीधो ।

—पद ४९

इसे सखी-भाव की मंजा भी दी जा सकती है । नरसी ने सेवक-भाव अथवा दास्य भाव को माधुर्य से पृथक् स्वतंत्र रूप से भी स्वीकार किया है जिस से उनके मत के सम्बन्ध में सदेह नहीं रह जाता । उनका कहना है कि पुरुष अर्थात् कृष्ण की प्राप्ति मुक्ति पर्यन्त सत्य रूप में सेवक भाव रखने से होती है—

मुक्ति पर्यन्त तो प्राप्ति छे पुरुष ने, सत्य जो सेवक भाव राखे ।

—पद २३

पदान्त में छाप के साथ नरसी ने कृष्ण के लिए 'स्वामी' शब्द का बहुधा प्रयोग किया है जो सम्भवतः इसी भाव का द्योतक है । यों इस शब्द का प्रयोग पति के अर्थ में भी होता है । नरसी का दासत्व उनके माधुर्य भाव का सहायक ही था जैसा कहा जा चुका है क्योंकि रास आदि अनेक लीलाओं में यहाँ तक कि सभोग की स्थिति में भी



नरसी अपने को लीलादर्शक तथा सेवक अथवा दूत के रूप में प्रस्तुत बताते हैं। जहाँ दास्य भाव को ही प्रधान माना गया है वहाँ शृंगारिक लीलाओं का वर्णन वर्जित भी समझा गया है, पर नरसी में ऐसा नहीं है। ब्रजभाषा के कवियों में भी लगभग ऐसी ही स्थिति मिलती है।

सखी-भाव की प्रधानता के साथ दास्य भाव का संयोग निम्बार्क राधावल्लभीय तथा गौडोय सभी सम्प्रदायों के काव्य में प्राप्त होता है। इन सम्प्रदायों के कवियों ने राधा-कृष्ण के युगल रूप तथा उनकी कुज-लीलाओं का ही वर्णन किया है जिन्हें देखने का अधिकार केवल राधा की सखियों अथवा सहचरियों को ही है। अतः भक्त इन लीलाओं का दर्शन मात्र सखी-भाव से कर सकता है। सखी-भाव का विकास इन कवियों ने इस प्रकार किया है कि वात्सल्य को छोड़कर शेष सभी भावों, दास्य, सख्य तथा माधुर्य का समावेश उसमें हो जाता है किन्तु अन्ततः प्रधानता माधुर्य को ही प्रदान की गयी है।

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने भजनाष्टक में श्रेष्ठता का एक क्रम निर्धारित किया है जिसमें मधुररस को सर्वोपरि स्थान दिया है और शान्तरस को निम्नतर—

ज्ञान सांत रस ते अधिक अद्भुत पदई दास ।
सखा भाव ताते अधिक जिनमें प्रीति प्रकास ॥१॥
अद्भुत बाल चरित्र को जो जसुदा सुख लेत ।
ताते अधिक किसोर रस ब्रज वनितन कौ हेत ॥२॥
सर्वोपरि है मधुर रस जुगल किसोर विलास ।
ललितादिक सेवत तिनहि मिठत न कबहुं हुलास ॥३॥

मधुर रस के आस्वादन के लिए ध्रुवदास के मत से सखियों की शरण ग्रहण करना अनिवार्य है—

सखियन सरन भाव धरि आवै ।
सो या रस के स्वादहि पावै ॥७॥

—रतिमंजरी

सखी-भाव और सेवा-भाव का संयोग निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि श्रीभट्ट की निम्न पक्तियों में देखा जा सकता है—

टारौ निजकर भंवर लैं चारों नैननि नेह ।
सोवत जुगलकिसोर जहँ सेऊँ चरन सुदेह ॥

—नि० मा०, पृ० १३

श्रीभट्ट के काव्य में इसी सेवा भाव ने उन्हें कृष्ण के चाकर तथा दास बनने की भावना दी—

१—चरनकमल की सेवा दीजे चैरो करि राखी घर जायो ।

श्रीभट्ट के प्रभु दियो अभय पद जम डरप्यो जब दास कहायो ॥

—नि० मा०, पृ० ११

२—जनम जनम जिनके सदा हम चाकर निशि भोर ।

त्रिभुवन पोषण सुधाकर ठाकुर जुगल किशोर ।

—नि० मा०, पृ० १२

इसी प्रकार हरिव्यास देव भी अपनी मनोकामना पूर्ति के लिए राधाकृष्ण के महल की सेवा-टहल करने की इच्छा रखते हैं—

मुख दुख अवधि स्यामा स्याम ।

नित्य धाम निवास अद्भुत अहनिशा अभिराम ।

महलनी निज टहल में तत्पर सदा सब जाम ।

‘श्री हरिप्रिया’ अग अग सेवा पुजवही मनकाम ॥८२॥

—नि० मा०, पृ० ६८

अष्टछाप के कवियों ने सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार कृष्ण के बाल रूप की आराधना करते हुए वात्सल्य रस को पर्याप्त महत्व दिया है विशेषतः मूर तथा परमानन्द दास ने । परन्तु वात्सल्य रस का काव्य लिखना और वात्सल्य भाव से भक्ति करना दो भिन्न वस्तुएँ हैं । जहाँ तक भक्ति के भाव का सम्बन्ध है अष्टछाप के कवियों ने सख्य तथा दास्य को सर्वाधिक महत्व दिया है । उनके लिए प्रयुक्त अष्टसखा शब्द उनके सख्य भाव पर विशेष बल देता है । माधुर्य रस के पद भी सूरदास आदि कवियों ने पर्याप्त संख्या में लिखे हैं परन्तु वात्सल्य भाव की तरह माधुर्य भाव की भक्ति भी इन कवियों में प्राप्त नहीं होती । कृष्ण को पुत्र अथवा पति मानने के स्थान पर कवियों ने सखा तथा स्वामी ही माना है । यह अवश्य है कि आसक्तियों के सिद्धान्त से कभी यशोदा में कभी राधा में अपने भाव की स्थापना करके वात्सल्य अथवा माधुर्य भाव की अनुभूति इन कवियों ने प्राप्त की है । माधुर्य और वात्सल्य एक प्रकार से इस सम्प्रदाय में मान्य गोपी-भाव में ही समाविष्ट हो जाते हैं । गोपियों के तीन भेद किये गये हैं, गोपी, गोपागना और ब्रजांगना । उन्हें क्रमशः अनन्यपूर्वा, अन्यपूर्वा तथा सामान्या कहा गया है । पहली दो प्रकार की गोपियों में माधुर्य भाव तथा तीसरे प्रकार की गोपियों में वात्सल्य भाव की स्थापना की गयी है । सख्य तथा दास्य अष्टछाप के

कवियों के अपने भाव हैं और माधुर्य तथा वात्सल्य इन गोपियों के आश्रित भाव । यों कृष्ण के प्रति सख्य भाव में भी आदर्श रूप में मुबल, सुदामा, उद्धव आदि को ग्रहण किया जा सकता है परन्तु अष्ट सखाओं में यह भावना रूढ़ हो गयी थी ।

वात्सल्य भाव का काव्य ब्रजभाषा के अन्य सम्प्रदाय के कवियों में उपलब्ध नहीं होता । गुजराती के भालण तथा प्रेमानन्द में अवश्य इसकी उपलब्धि होती है । उक्त गुजराती कवियों ने वात्सल्य भाव के स्थलों को पर्याप्त तन्मयता से लिखा है जिससे पता लगता है कि उनकी वृत्ति इस ओर अधिक उन्मुख थी । यों माधुर्य रस का काव्य गुजराती कवियों ने भी बहुत रचा है किन्तु माधुर्य भाव केवल नरसी में प्राप्त होता है ।

जहाँ तक दास्य भाव का सम्बन्ध है उसका सबसे अधिक प्रस्फुटित रूप सूर में मिलता है । अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी इस प्रकार के पद पर्याप्त सख्या में लिखे हैं । सूर के दास्य भाव में दैन्य का अंग इतना अधिक है कि उनका स्थान अन्य कवियों से स्वतः पृथक् हो जाता है । गुजराती कवि नरसी प्रेमानन्द तथा भालण आदि में दास्य भाव तो प्राप्त हो जाता है परन्तु उममें दैन्य का इतना पुट नहीं मिलता । केशवदास कायस्थ ने भी अपनी कृति 'श्रीकृष्ण कीड़ा काव्य' की समाप्ति दैन्य-युक्त दास्य भाव की अभिव्यक्ति के साथ की है—

हरि सेवक ना सेवक होय, तेना दास दास जे कोय ।
तेहना दास तणो हु दास, अहनिशे वाछू अह ज आश ।
कृष्ण भक्ति जेति वारेकरे, जाणी दीन सदा सभरे ।

—पृ० ३१०

भक्ति और कर्मकांड—भक्ति में प्रेम भाव को ही सब कुछ मानने वाले भक्त कवियों ने कर्मकांड की उपेक्षा ही नहीं की अपितु निन्दा और तिरस्कार भी किया है । गुजराती कवि नरसी ने अपने काव्य में अत्यन्त सशक्त स्वर में कर्मकांड का विरोध किया है—

१—कर्म धर्मनी बात छे जेटली ते मुज ने नव भावे रे ।

—पद ५

२—जो ने रीजाय ते कर्मकांड ।

—पद ४५

यही नहीं नरसी पूजा स्नान, दान, जटा धारण, भस्म लेपन, जप, तप, तीर्थ, वेद, व्याकरण दर्शन के अध्ययन तथा वर्ण व्यवस्था आदि को पेट भरने का प्रपच मात्र

समझते हैं। उनके मत से तत्त्व-दर्शन तथा आत्माराम परब्रह्म के साक्षात्कार के अभाव में यह सभी निस्तार है—

शु थयु स्नान सेवा ने पूजा थकी, गुं थयुं घेर रहि दान दीधे ।
 शु थयु धरि जटा भस्म लेपन करे, शुं थयुं बाळलोचन कीधे ।
 शु थयु तप ने तिर्यं कीधा थकी, शु थयु माळ ग्रही नाम लीधे ।
 शु थयु तिलक ने तुलसी धार्या थकी, शु थयु गगजल पान कीधे ।
 शु थयु वेद व्याकरण वाणी बदे, शु थयु रागने रंग जाणे ।
 शु थयुं खट दर्शन सेवा थकी, गु थयु वरणना भेद आणे ।
 ओ छे परपच सहु पेट भरवा तणा, आत्माराम परिव्रह्म जोयो ।
 भणे नरसैयो के तत्व दर्शन बिना, रत्न चिंता मणि जन्म खोयो ।

—पद ४३

सूरदास ने भी लगभग इतनी ही तीव्रता से कर्मकांड के उक्त स्वरूपों की निस्तारता प्रदर्शित की है यद्यपि उन्हें पेट भरने का साधन कहने का विद्रोहात्मक स्वर वे नहीं अपना सके—

जौ लौ मनकामना न छूटे ।
 तो कहा योग यज्ञ व्रत कीन्हें विनु कन तुम को कूटे ।
 कहा सनान किये तीरथ के अग भसम जट जूटे ।
 कहा पुराणन पढ़ जु अठारह ऊर्ध्व धूम के घूटे ।
 जग सोनाकी सकल बडाई इहि ते कछू न खूटे ।
 करनी और कहै कछु औरै मन दसहू दिसि लूटे ।
 काम क्रोध मद लोभ शत्रु है जो इतनो सुनि छूटे ।
 सूरदास तबही तम नाशै ज्ञान अग्नि झर फूटे ।

—सू० सा०, पृ० ४५

सूरदास की यह 'ज्ञान अग्नि झर' ज्ञानमार्गीय अर्थ न देकर तत्त्व-दर्शन तथा उससे उपलब्ध आत्मप्रकाश का ही बोध कराती है। सूरसागर में ऐसे भी कथन एक आध स्थल पर मिल जाते हैं जिनमें भक्ति के लिए यम-नियमादि अष्टांग योग की स्पष्ट आवश्यकता बतायी गयी है—

१—भक्ति पथ को जो अनुसरै, सो अष्टांग योग को कर ।
 यम नियमासन प्राणायाम, करि अभ्यास होइ निष्काम ।
 प्रत्याहार धारणा ध्यान, करै जु छाड़ि वासना आन ।

क्रम क्रम करिक कर समाधि, सूर श्याम भजि मिटे उपाधि ।

—सू० सा०, पृ० ४६

२—योग न युक्ति ध्यान नहि पूजा बृद्ध भये अकुलात ।

—वही

ऐसे स्थल सूर की मौलिक प्रौढ़ भक्ति भावना के विरोधी लगते हैं अतएव इनके प्रक्षिप्त होने अथवा प्रारम्भिक अवस्था के द्योतक होने की सम्भावना लगती है । कृष्ण-भक्ति के आगे साधनों की निस्सारता एक अन्य गुजराती कवि नरहरि ने भी प्रदर्शित की है—

सकल साधन भाई तीणे तहों कीधला ।

सकल दांन वीधो गते दीधला ।

जेणे लीधला चरण रुदे हरी तणा ॥८॥

—आनंदरास

केशवदास कायस्थ ने तीर्थाटन, दान, स्नान आदि का तिरस्कार तो नहीं किया परन्तु उन्हें कृष्ण कीर्तन तथा कृष्ण भजन की तुलना में नगण्य अवश्य स्वीकार किया है—

काशी महि कोटि गौ परागे रे दान ।

तुला न आवे कोटिये कीर्तन कृष्ण समान्य ।

अयुत कल्प लगे प्रयाग मा वास त्रिवेणी स्नान ।

तेथी साचू जाणजो अधिक भजन भगवान ।

—श्री कृष्णलीलाकाव्य, पृ० ३११

इसी प्रकार ब्रजभाषा के भी अनेक कवियों ने कर्मकांड का विरोध किया है । हरिवंशी कवि हरिराम व्यास कृष्ण की भक्ति के बिना सभी कुछ व्यर्थ मानते हैं । उनके मत से योग यज्ञ आदि कर्म धर्म सब ऊपरी वस्तुएँ ही हैं इनका प्रवेश अभ्यंतर तक नहीं है—

साचौई गोपाल गोपाल रद्विबौ ।

रूपशील गुन कौन काम को हरि की भक्ति बिनु पद्विबौ ।

जोग जज्ञ जप तप सजम व्रत कलई कौ सौ मद्विबौ ।

जैसे अन्न बिना तुष कूटल, वारु मे तेल न कद्विबौ ।

औसैंहि कर्म धर्म सब हरि बिनु, बिनु वैसंदर दद्विबौ ।

—व्यास वाणी, पृ० १२९

इसी प्रकार का भाव निम्बार्क मतानुयायी श्रीभट्ट भी व्यक्त करते हैं—

मन ब्रह्म राधा लाल जपे जिन ।

अनायास सहजहि या जग में सकल सुकृत फल लाभ लह्यो तिन ।

जप तप तीरथ नेम पुण्य व्रत सुभ साधन आराधन ही बिन ।

जय 'श्रीभट्ट' अति उत्कट जाकी महिमा अपरम्पार अगम गिन ।

—नि० मा०, पृ० १२

भक्ति-पथ में सत्संग और नाम-कीर्तन की विशेष महत्ता—यो तो भक्त कवियों ने भक्ति से सम्बन्धित सभी वस्तुओं के महत्त्व को स्वीकार किया है परन्तु सत्संग तथा नाम-कीर्तन को विशेष महत्ता दी गयी है । सत्संग—भक्ति की उत्पत्ति एवं विकास के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करने वाला अद्वितीय साधन माना गया और बहुधा संतसंग और साधुसंग को उसके पर्याय रूप में ग्रहण किया गया है । नाम-कीर्तन अथवा नाम-स्मरण को भक्ति के अन्य साधनों में इसलिए सर्वाधिक महत्त्व दिया गया क्योंकि भक्त को भगवान का परिचय नाम के ही आधार पर प्राप्त हो पाता है । वही दोनों का मध्यस्थ है । नाम के अभाव में नामी का परिज्ञान मभव नहीं । भक्ति के प्रायः सभी मान्य ग्रंथों में इन दोनों साधनों का साहाय्य वर्णित किया गया है किन्तु गुजराती और व्रजभाषा दोनों के भक्त कवियों ने उनका विशेष रूप से वर्णन किया है । नरसी मेहता के मत से कृष्ण नाम में सभी साधन समाहित हैं । उसका पार कोई विरला संत ही पा सकता है । सब कुछ छोड़ कर मुख से नामोच्चारण ही करना श्रेयस्कर है—

१—सकल साधन नुं श्री हरी नाम छे पार पाम्या कोई संत पूरा ।

—पद ३६

२—अवर बेपार तुं मेहेल्य मिथ्याकरी कृष्ण नुं नाम तु राख म्हीये ।

—पद ३१

कृष्ण कीर्तन के बिना प्राणी अशुद्ध है क्योंकि सारे तीर्थों का फल इसी में है—

कृष्ण कीर्तन बिना नर सदा सूतकी विमल कीचे वपू शुद्ध न धाये ।

सकल तीरथ श्रीकृष्ण कीर्तन कथा हरितणा पास जे ते हेते गाये ।

—पद १९

इसीलिए उनका आश्रय एकमात्र हरिनाम ही रहा । उसी की मूर्ति में वे अतन्त्र भाव से लीन रहे—

मारे तो आशरे अंक हरिताम नो छेक आव्यो हवे क्यांरे जइअे ।
भणे नरसैयो अं नाम ने आशरे नाम ने मूर्तिमा लीन रहीअे ।

—पद ३६

भगवन्नाम का स्मरण जगत् में नाम अमर कर देता है—

हरि हरि कृष्णने तु भज नामे, जग मा तारु नाम रहे ।

—पद १२

नाम की तरह सत भी नाव के ही सदृश है । साधु-सगति पापों का नाश कर देती है
आदि भाव व्यक्त करके नरसी ने सत्सग को भी वैसा ही महत्व दिया है—

भक्त ने भेटता किल्विष नव रहे ज्ञान दीपक थकी तिमिर नासे ।
धन्य धन्य भाग्य जे साधु सगत करे कृष्ण कीर्तन थकी कृष्ण भासे ।
अेक क्षण वार जे मत सगत करे धन्य घडी जन्तु नी तेज जाणो ।
भणे नरसैयो भवसागर बूडता हरिजन नाद निश्चे प्रमाणो ।

साधु-संत अथवा भगवद् भक्त के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग गुजराती कवियों ने
बराबर किया । आनन्दरास के रचयिता नरहरि भी हरिजनो की सगति तथा हरि
रस पान का महत्व प्रदर्शित करते हैं—

१—हरषी हरषी हरिजन पूजीये ।

सत सगत तत्व ज्ञान ते वूझीये, गुझीये नही रे ससार मा ॥७॥

२—अहरनिसि वली वली कृष्ण कृष्ण भणो ।

माहे थकारे मोटा रीपु हणो वसेक मारग रे साधु तणो ॥१७॥

३—आपणो जनम सुफल येम कीजीये ।

साधु समागम हरी रस पीजीये ।

ना कीजीये संगत पल तणी ॥२१॥

केशवदास की कृति 'श्रीकृष्ण क्रीड़ा काव्य' के अंत में भी कृष्ण नाम के श्रवण गायन
आदि की तथा साधु समागम की महिमा का बखान किया गया है—

कृष्ण नी भक्ति ने कृष्ण ने गाय अहनिशे कृष्ण नी बात कहेवाय ।

कृष्ण गुण श्रवणे मूण्या पछी संत ने रग भर्ये हृदय ने का न रिझाय ।

कृष्ण ना भक्त शू स्नेह करवी सदा साधु समागम में सुख थाय ।

—पृ० ३१०:११.

प्रेमानन्द ने भी नरसी की तरह कृष्ण-नाम को संसार-सागर से सतरण के लिए नौका सदृश माना है—

अभग नौका श्रीकृष्ण नाम नी भवसागर ने तरवा ।

—श्री० भा०, पृ० २३४

व्रजभाषा के भी ऐसे अनेक कवि हैं जिन्होंने नाम की महत्ता का वर्णन किया है और सत्संग पर भी विशेष बल दिया है ।

भूरदास कलियुग में नाम को ही एक मात्र आधार समझते हैं । वे नाम और साधु संगति को भव बंधन से मुक्ति का प्रधान साधन मानते हैं—

१—है हरि नाम को आधार ।

और इहि कलिकाल मांही रह्यो विधि व्यवहार ।

सूर हरि को सुयश गावत जाहि मिटि भवभार ।

—सू० सा०, पृ० ४४

२—जा दिन सत पाहुने आवत

.. .. .

संगति रहै साधु की अनुदिन भव दुख हरी नसावत ।

—सू० सा०, पृ० ४५

हितहरिवश ने भी एक स्थल पर सत्संग की महिमा स्वीकार की है—

तनहि राख सतसंग में मनहि प्रेम रस भेव ।

सुख चाहत हरिवश हित कृष्ण कल्पतरु सेव ।

—श्रीहित स्फुट वाणी जी, पृ० ३३

हरिराम व्यास नाम और सत्संग दोनों को ही विशेष महत्व देते हैं—

१—कलियुग श्याम नाम आधार ।

—व्यास वाणी, पृ० १७२

२—कलियुग मन दीजै हरि नाम ।

—वही, पृ० १७३

३—करौ भैया साधुनि ही सो संग ।

पति गति जाय असाधु संग ते काम करत चित्त भग ।

हरि ते हरिदासनि की सेवा परम भक्ति को अंग ।

—वही, पृ० ९४

४—साधु सरसीरुह को सो फूल ।

जिनकी संगति भक्ति देति, हरि हरत सकल भ्रममूल ।

—वही, पृ० ९५

निम्बाक मतानुयायी परशुराम देव तथा रूपरसिक न भी नाम और सत्संग को पर्याप्त महत्व दिया है—

परशुराम देव. १—ज्यो दर्पन पावक पडे परसत ही रवि धूप ।

परसुराम हरि नाम ते प्रगटे हरि निज रूप ।

—नि० मा०, पृ० ७८

२—सत सगति बिनु जो भजन सो न लहै सुखसीर ।

परमा मिलै न सिधु सो नदी विहीना नीर ।

—वही, पृ० ७७

रूपरसिक. १—नाम महात्म्य ऐसो सोई, याते अधिक और नहि कोई ।

नामहि सो नित बाधौ नातौ, जगत मोह सो डोरा डातौ ।

—नि० मा०, पृ० १२१

२—पहले श्रद्धा लक्षण जानो, ता पीछे सतमग बखानो ।

सतसग न करि हरि को भजो, आनदेव को आश्रय तजो ।

—नि० मा०, पृ० १२०

गौडीय कवि गदाधर भट्ट नाम को नामी से भी अधिक महत्व देते हैं—

है हरि ते हरिनाम बडेरो, ताकों मूढ करत कत झेरो ।

—वाणी, पृ० १४

कलियुग को कराल व्याल का रूपक देकर वे नाम को महामंत्र के सदृश शक्तिवान सिद्ध करते हैं और निरंतर भगवन्नाम स्मरण पर विश्वास रखते हैं क्योंकि उसके द्वारा सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं—

हरि हरि हरि हरि रट रसना मम ।

हेमहरन द्विजद्रोह मान मद अरु पर गुरु दारागम ।

नाम प्रताप प्रबल पावक के होत जात मलभा सम ।

इहि कलिकाल कराल व्याल विष, ज्वाल विषय मोये हम ।

बिनु इहि मंत्र गदाधर के क्यों मिटि है मोह महातम ।

—वही, पृ० १५

इस प्रकार सत्संग और नाम के विशेष महत्व को दोनों भाषाओं के भक्त कवियों ने व्यापक रूप से स्वीकार किया है ।

भक्ति और बैराग्य—ज्ञानमार्गी संतो की तरह ही दोनों भाषाओं के भक्त कवियों ने संसार के प्रति विरक्ति का भाव प्रदर्शित किया। भक्ति के पथ में एक प्रकार निवृत्ति तथा प्रवृत्ति दोनों का समन्वय हो गया। प्रवृत्ति का अभाव भक्ति का लक्ष्य न होकर संसार विषयक प्रवृत्ति के स्थान पर भगवद् विषयक प्रवृत्ति का स्थापन उसका लक्ष्य रहा। इस पुनर्संस्थापन के लिए संसार से निवृत्ति की अनिवार्य आवश्यकता हुई। भक्त कवियों द्वारा लिखित सभी विरागपूर्ण पदों की मूल आधार-भूमि प्रायः यही है। माधुर्य भाव की भक्ति को अपनाने वाले हित हरिवंश, नरसी मेहता आदि कवियों में यह स्थिति एक विरोधाभास उत्पन्न कर देती है। विरक्ति का अनुरक्ति से विरोध है और ऐसे कवियों में एक ओर अनुरक्ति इस सीमा तक पहुँच जाती है कि उनके काव्य में पग पग पर स्थूल विलासात्मक श्रृंगारिक चित्रण उपलब्ध होते हैं और दूसरी ओर विरक्ति की तीव्रता में वे सांसारिक विषय वासना तथा स्नेह सम्बन्धों की उतनी ही तीव्रता से निंदा करते भी पाये जाते हैं। यह एक समस्या है जिस पर अन्यत्र विचार करना उचित होगा। यहाँ भक्त कवियों की विरक्ति पूर्ण काव्य रचने की प्रवृत्ति का निर्देश मात्र अभीष्ट है। डॉ० दीनदयाल गुप्त के अनुसार इस प्रकार के पद भक्ति के एक प्रकार विशेष 'शान्ता भक्ति' के अन्तर्गत आते हैं।^१

गुजराती कवि नरसी मेहता के काव्य में विरक्ति की भावना और तत्सम्बन्धी विचार अनन्त स्थलों पर प्राप्त होते हैं। एक स्थल पर वे 'तात मात सुत भ्रात' के स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों को दुख के समय व्यर्थ बताकर कृष्ण का आश्रय ग्रहण करने की सम्मति देते हैं—

शा सुखे सूतो सभार श्रीनाथने, हाथ ते हरि बिना को न स्हाये ।

तात ने मात सुत भ्रात टोले मळ्यो, दोहली बेला ते सौ दूर जाये ।

—पद ४४

दूसरे स्थल पर वे विषय तृष्णा तथा मन के मोह को त्याग देने की सीख देते हैं—

विषय तृष्णा परो मोह मन ना धरो, हु ने महारं जक्त ते मा बूडो ।

—पद ४७

भक्ति के निमित्त वे थोथे संसार और असत्य देह तथा उसके द्वारा होने वाले कामों को भी त्याज्य बताते हैं—

भक्ति भूतल विषे नव करी ताहरी खांड्या संसारना थोथा ठाला ।

देह छे जूठडी करम छे जूठडा... ..

—पद २१

नरसी विरक्ति पर यहाँ तक बल देते हैं कि वे संसार का माया मोह छोड़ कर ज्ञानी हो जाने का उपदेश दे डालते हैं—

माटे तमो माय तजी थाओ ने ज्ञानी ।

—पद ६४

नरहरि स्पष्ट शब्दों में विवेक तथा विराग अपनाने को कहते हैं—

विवेक विचार वैराग ने मन धरो, मोह माया मद मत्सर परहरो ।

अहनिस उचरो हरी हरी ॥१०॥

—आनन्दरास

भालण ने अने दशम स्कन्ध की समाप्ति पर संसार के प्रति ऐसी ही भावना व्यक्त की है—

संसार नां सुख भोगवे, पुत्र कलत्र कहेवाय ।

अते तारे चरणे पामे, जे मुने कृष्ण कथाय ।

—पृ० ४३७

ब्रजभाषा में प्रायः हर सम्प्रदाय के कवियों ने संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने वाले विचार व्यक्त किये हैं जो उपर्युक्त विचारों से बहुत कुछ साम्य रखते हैं क्योंकि दोनों की आधार भूमि एक है ।

मूर ने बहुमुखक पदों में सासारिक सबधों की निस्सारता प्रदर्शित की है । उनके ऐसे सभी पद आत्मनिवेदनात्मक हैं—

१ हरि हौ महा पतित द्रोही अभिमानी ।

परमारथ सों पीठि विषयरस भावभगति नहि जानी ।

निशि दिन दुखित मनोरथ करि, करि पीवत हू तृष्णा न बुझानी ।

—सू० सा०, पृ० १८

२. इन्द्री स्वाद विवस निसिवासर आप अपुनपौ हार्यो ।

—वही, पृ० १९

सासारिक विषयरस का प्रपच छोड़ने का आग्रह हित हरिवंश में भी मिलता है क्योंकि वे मनुष्य जीवन का लक्ष्य विषयासक्ति न मानकर कृष्णासक्ति मानते थे—

१. सकहि तौ सब परपच तजि कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि ।

—श्री हित स्फुटवाणीजी, पृ० ९

२. मानुष को तन पाय भजौ बृजनाथ को ।
 दर्वी लेवे मूढ जरावत हाथ को ।
 जय श्री हित हरिवंश प्रपन्न विषय रस मोह के ।
 हरि हा बिन कंचन क्यो चले पचीसा लोह के ।

—श्री हित स्फुटवाणी जी, पृ० ११-१२

स्वामी हरिदास ने अपने अनुभव के आधार पर माया मद, गुन मद तथा यौवन मद सभी को मिथ्या बताया है और संसार की क्षण भंगुरता का दिग्दर्शन कराया है तथा आजीवन हरि भजन का उपदेश दिया है—

१. जगत प्रीति करि देखी नाही गटी को कोऊ ।
 २. जौलो जीवै तौलौ हरि भजि रे मन और बात सब बादि ।
 दिवस चारि के हलाभला मे तू कहा लेइगो लादि ।
 माया मद, गुन मद, जोवनमद भूल्यो नगर विदादि ।
 कहि 'श्री हरिदास' लोभ चरपट भयो काहे की लगै फिरादि ।

—नि० मा०, पृ० २०४

निम्बार्क-मतानुयायी हरिव्यास देव चाहते हैं कि मनुष्य संसार के भ्रमों को छोड़कर 'श्री हरि प्रिया' का भजन अनन्यभाव से करे,—

- भर्म तजौ श्री हरिप्रिया भजौ सजौ अनन्यव्रत एक ।
 यही यही निश्चय कही सही गही उर टेक ।
 यही है, यही है, भूलि भर्मों न कोउ, भूलि भर्मों ते भव भटक मरिहै ।
 लाडिली लाल के नित्य मुखसार बिन कौन विधि बार ते पार परिहै ।

सासारिक सम्बन्धों से जो मोह उत्पन्न हो जाता है उसे बेड़ी समझते हुए गौडीय सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट श्री कृष्ण से उसके काट देने की प्रार्थना करते हैं और काम लोभ आदि उन सभी विकारों को, जो विषयासक्ति उत्पन्न करते हैं, अहेरी की संज्ञा देते हैं जो भक्त की मति रूपी मृगी को घेरे हुए है—

- कबै हरि कृपा करि हौ सुरति मेरी ।
 और न कोई काटन को मोह बेरी ।
 काम लोभ आदि जे निर्दय अहेरी ।
 मिलि के मन मति मृगी चहंधा घेरी ।

—ग० वाणी पृ० ७

इस प्रकार के सभी कथनों का उद्देश्य वस्तुनः निदा करके अथवा निस्सारता प्रदर्शित करके ससार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करना ही है और वह भी कृष्ण के प्रति वास्तविक अनुराग एवं भक्ति उत्पन्न करने के निमित्त ।

भक्ति मार्ग में गुरु का स्थान—भारतीय परम्परा के अनुसार साधना के समस्त रूपों एवं मार्गों में गुरु की अनिवार्य आवश्यकता मानी गयी है । भक्ति में भी गुरु को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । गुजराती और ब्रजभाषा दोनों में कवियों ने गुरु की महिमा को अपने काव्य में पूर्ण रूप से स्वीकार किया है । नरसी मेहता गुरु को हरिनाम के व्यापार में दलाल का स्थान देते हैं । और भवसागर से सरलतापूर्वक पार होने के लिए नाव की तरह अनिवार्य समझते हैं—

वेपार तो कीवो रे हरि नामनो रे, कीवो गुरु रूपी दलाल ।

भवसागर मा रे नावे हु चढ्यो रे सहज मां आव्या मागर पार ।

—पद ५३

अन्य गुजराती कवियों ने गुरु को परम्परागत रूप में स्वीकार अवश्य किया है परन्तु काव्य में भक्ति की दृष्टि से गुरु के विषय में कुछ भी नहीं लिखा ।

ब्रजभाषा में अष्टछाप के कवियों ने गुरु के महत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार किया । उनके द्वारा बल्लभाचार्य तथा विठ्ठलनाथ के विषय में गुरु भाव से लिखे प्रशंसा के अनेक पद उपलब्ध होते हैं । सूरदास, जिन्होंने प्रकट रूप से गुरु के सम्बन्ध में बहुत कम लिखा है, वे भी गुरु की महिमा मुक्त हृदय से स्वीकार करते हैं—

गुरु बिनु ऐसी कौन करौ ।

माला तिलक मनोहर बाना लै सिर छत्र धरै ।

भवसागर ते बूडत राखै दीपक हाथ धरै ।

सूरस्याम गुरु ऐसो समरथ छिन मे लै उधरै ।

—सू० सा०, पृ० ७१

हितहरिवंश मनुष्य के कल्याण के लिए जहाँ प्रपञ्च-त्याग और कृष्णनाम स्मरण को आवश्यक समझते हैं वहाँ गुरुचरणों का आश्रय ग्रहण करना भी अनिवार्य समझते हैं—

जय श्री हित हरिवंश विचारि के मनुज देह गुरु चरण गहि ।

—श्री हित स्फुट वाणी जी, पृ० ९

निम्बाके-मत के परशुराम देव ने अपन परशुराम मागर में गुरु के सम्बन्ध में अनेक दोहे लिखे हैं। उनके 'अनुराग भक्त' के लिए गुरु के शब्दों पर ही विश्वास करना अभीष्ट है। संसार की बातों की उसे उपेक्षा करनी चाहिए क्योंकि गुरु ही भवमागर से पार कर सकता है—

श्री गुरु समझ सनेह करि बारम्बार सम्हार ।
परशुराम भवसिन्धु को नाव उतारै पार ॥३॥
श्री गुरु कहे सो मानिये सत्य शब्द बलि जाव ।
और झूठ सब जगत के सुमिरि साच हरि नाव ॥७॥

—नि० मा० पृ० ७४-७५

वल्लभ तथा गौडीय सम्प्रदाय के भक्तों ने गुरु में ही कृष्ण की भावना करके हरि गुरु की एकता को चरितार्थ किया। वल्लभाचार्य और चैतन्य के अनुयायियों ने प्रकट रूप से इस धारणा को व्यक्त किया। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में गुरु-यश वर्णन के में सूरदास का कथन 'कछु न्यारो देखू तो न्यारो कहूँ' तथा माधवदास आदि का 'कृष्ण सम्बन्ध रूप चैतन्य' कहना इसका प्रमाण है।

भक्ति की सार्वजनीनता—भक्ति का विकास प्रारम्भ से ही सार्वजनीनता की भावना को लेकर हुआ जो भागवतादि ग्रंथों से प्रकट है। कवि नरसी ने इस सम्बन्ध में अपनी स्पष्ट धारणा व्यक्त की है

नात न जाणो ने जात न जाणो, न जाणो काई विवेक विचार ।
कर जोड़ी ने कहे नरसैयो, वैष्णव तणो मने छे आधार ।

—पद ४

भक्ति में 'नात जात' के भेद को अस्वीकार करने के साथ ही उन्होंने स्त्री पुरुष के भेद को भी नहीं माना है—

पुरुष रूप पुरुषोत्तम पाये धन ते नर ते नारी रे ।

—पद ६३

ब्रजभाषा में सूर ने इतनी ही स्पष्टता से इस सत्य को व्यक्त किया है—

१. कह्यो शुक श्री भागवत विचार ।

जाति पाति कोउ पूछत नाही श्रीपति के दरबार ।

—पू० सा०, पृ० २३

२. बैठत सभा सबै हरि जू की कौन बड़ो को छोट ।

—वही

३. हरि हरि हरि भुमिरौ सब कोई ।
ऊँच नीच हरि गिनत न दोई ।

—सू० सा०, पृ० २४

अष्टछाप के कवियों से इतर अन्य कवियों ने भी इस प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं ।
हितहरिवंश भी विप्र-शूद्र का भेद तथा कुल की श्रेष्ठता-हीनता को भक्ति के
प्रेमोन्माद के आगे निरर्थक मानते हैं—

जहां श्री हरिवंश प्रेम उन्माद ।
कुल बिन कहौ कौन सौ चाक ।
सहज प्रेम रस साचे पाक ।
रंक ईश समुझत नाही ।
विप्र शूद्र न कौन कुल कास ।
सुनहु रसिक हरिवंश विलास ।

—श्री हित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ५२

हरिराम व्यास के अनुसार भक्ति और जाति में वैर है—

व्यास जाति तजि भक्ति कर, कहत भागवत टेरि ।
जातिहिं भक्तिहि ना बने, ज्यों केरा ढिग बेरि ।

—व्यास वाणी, पृ० १८६

वे निश्चित रूप से जाति और जनेऊ से व्यक्त होने वाली ऊँच-नीच तथा जाति-भेद
की भावना को भक्ति मार्ग में स्थान नहीं देते थे—

भक्ति में कहा जनेऊ जाति,

—व्यास वाणी, पृ० ९९

गोपियों का आदर्श मानना तथा अन्य मान्य भक्तों के साथ गणिका का भी
स्मरण करना जो कवियों ने बराबर किया है, इनसे प्रकारान्तर से स्त्रियों का भक्ति
मार्ग में समानाधिकार स्वीकृत होता है ।

भक्तों की प्रशंसा तथा उनके लक्षण—भक्त के लिए नरसी मेहता ने सामान्यतः
वैष्णव शब्द का प्रयोग किया है । उनके अनुसार वैष्णव का जीवन धन्य है
क्योंकि वह अपना ही नहीं, अपने परिवार तथा पड़ोसी सभी का उद्धार करता है ।
वह भालादि बाह्य लक्षणों से युक्त होता ही है । साथ ही आन्तरिक श्रेष्ठता भी उसमें
अनिवार्य रूप से होती है जिसके कारण उसकी संगति सदैव कल्याणकारी होती है ।
ऐसी ही अनेक बातें वैष्णव जन के विषय में नरसी ने अपने पदों में कही हैं—

धन्य जीवीत वैष्णव केरु जे जन हरि गुण गाये रे,
 सकल सभामा पहेली पूजा, नर नारी ते वैकुण्ठ जाये रे ।
 हा रे वैष्णव जनना कीयां रे लक्षण, छापा तीलक तुलसीनी माल रे ।
 हा रे वैष्णव जनना भेख देखी ने, जम किकर त्रासे तत्काल रे ।
 हा रे जन्म मरण नो फेरो छूटे ते जनम जोव थी राखे अंग रे ।
 हां रे ते नर छूट्या ससार माहे, जेने होय वैष्णव नो संग रे ।
 हां रे माता पिता कुल तारे वैष्णव, तारे पाडोशी परिवार रे ।
 हा रे भणे नरसैयो अटलु मागु, पुनरपि नहि अवतार रे ।

—पद २

भक्त को यहाँ तक महत्व दिया गया है कि भगवान को भी उसके अधीन कह दिया गया—

भक्त आधीन छे श्याम सुन्दर सदा....

—पद २०

इसीलिए नरसी का मत था कि निवास वही करना चाहिए जहाँ वैष्णव बसते हों—

वास नहि ज्या वैष्णव केरो त्यां नव वसीये वासडीया ।

भक्तों के सुयश का वर्णन ब्रजभाषा के कवियों ने भी किया है । सूर सागर के प्रथम स्कंध में सूर के इस सम्बन्ध के अनेक पद मिलने हैं । लक्षण न देकर सूर ने भक्त के महत्व को ही प्रकट किया है । वे भक्त को इसलिए श्रेष्ठ मानते हैं कि वह भगवान से सम्बन्धित है । भगवान से भक्त अधिक है ऐसी धारणा उनमें नहीं मिलती—

१. हरि के जन सब ते अधिकारी ।

—सू० सा०, पृ० ५

२ हरि जू के जन की अति ठकुराई ।

महाराज ऋषिवर सुरनर मुनि देखत रहे लजाई ।

—सू० सा०, पृ० ६

भक्त-प्रशंसा में राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास के भी अनेक पद मिलते हैं जिनमें परम्परागत रूप में मान्य अजामिल, ध्रुव आदि भक्तों के उल्लेख के साथ भक्तों के श्रेष्ठ गुणों का अनुकथन है । व्यास के अनुसार भक्त कभी दुखी नहीं होते और उनको कभी माया व्याप्त नहीं होती ।

१. सुनियत कबहुं न भक्त दुखारो ।

—व्यास वाणी, पृ० १०१

२. माया भक्त न लगतै जाई ।

—वही, १०५

भक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को भक्त का पथ पहले ग्रहण करना चाहिए और उसकी जूठन भी खाना चाहिए जो ऐसा नहीं करते वे नारकी जीव हैं क्योंकि भक्त के पीछे भगवान तथा गंगा चलती हैं । वस्तुतः साधु भक्त की चरण रज के द्वारा ही करोड़ों पतितों का उद्धार हो जाता है—

जूठन जो न भक्त की खात ।

तिनके मुख सूकर कूकर के भक्षि अभक्षि पोषत गात ।

... ..

हरि भक्तनि पाछै आछै डोलत हरि गंगा अकुलात ।

साधु चरनरज माझ व्यास से कोटिनि पतित समात ।

—वही, पृ० १०३ - १०४

भक्ति रस—शास्त्रीय रूप में भक्ति के लिए 'रस' शब्द का प्रयोग कदाचित् ही किसी कवि ने किया हो परन्तु भावात्मक दृष्टि से 'भक्ति रस' शब्द का प्रयोग दोनों भाषाओं के कवियों द्वारा अनेक बार किया गया है । गुजराती में नरसी तथा केशवदास ने इसका प्रयोग किया है—

नरसी—भूतल भक्ति पदारथ मोटु

... ..

ओ रस नो स्वाद शकर जाने के जाणे शुक जोगी रे ।

कोई ओक जाणे ब्रज नी गोपी भणे नरसैयो भोगी रे ।

—पद १

केशवदास—योग शृंगार अध्यात्मक ज्ञान ।

केवल भक्ति रस भगवान ।

—मथुरालीला

नरसी ने 'भक्ति रस' के ही नहीं उसी भाव के अन्य शब्द 'प्रेम रस' तथा 'लीला रस' का भी व्यवहार किया है

१. प्रेम रस पाने तुं मोरना पीछधर तत्व नु टुंण तुच्छ लागे ।

... ..

जन्मो जन्म लीला रस गावता

—पद २४

ब्रजभाषा में हरिराम व्यास ने भक्ति रस की उत्पत्ति के लिए भाव अनिवार्य माना है—

भाव बिना न भक्ति रस उपजै यह सब सन्त बतावत ।

—व्यास वाणी, पृ० १५९

हितहरिवंश सहज प्रेम रस को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं—

१. सहज प्रेम रस साचे पाक ।

—श्री हित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ५२

२. जे हरिवंश प्रेम रस झिले ।

क्यों सोहै लोगनि से मिले ।

—वही, पृ० ५३

पादटिप्पणियाँ

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ३८८ ३८९
२. अष्टछाप, पृ० ४०५
३. अष्टछाप, पृ० ४०१ ४०२
४. वही,
५. वही, पृ० ४०३ ४०४
६. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५२१

साधनादि प्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः ।

प्रेम पूर्या स्फुरद्धर्माः स्पन्दमानाः प्रकीर्तिताः ॥१०॥

—जलमेद

७. वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनविध ।

हरिभक्तिरसामृतसिन्दु, पृ० २५

पूर्व विभाग, लहरी २, श्लोक ३

८. डॉ० दीनदयालु गुप्त के निजी परमानन्ददास पद संग्रह से, पद न० ३१४

९. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६४६

भाव पक्ष

काव्य में अभिव्यक्त सभी भाव वास्तव में कवि द्वारा ही अनुभूत होते हैं परन्तु अभिव्यक्तीकरण में किसी बाह्य माध्यम की स्वीकार करने, न करने के कारण सामान्यतः अभिव्यक्ति के दो रूप हो जाते हैं । एक दशा में कवि अपने द्वारा अनुभूत भावों को वैयक्तिकता के आग्रह के साथ उत्तम पुरुष में ही अभिव्यक्त करता है और दूसरी दशा में अपने से इतर कल्पित अथवा यथार्थ वस्तुओं तथा व्यक्तियों के माध्यम से । शास्त्रीय शब्दावली में पहली दशा में आश्रय का स्थान वह स्वयं ही ले लेता है और कभी कभी अपने को ही आलम्बन भी बना लेता है, दूसरी दशा में आलम्बन और आश्रय दोनों उसमें पृथक् रहते हैं । पहली अवस्था में उसकी अभिव्यक्ति अन्तर्मुखी होती है, दूसरी अवस्था में वहिर्मुखी । अभिव्यक्ति के इसी द्विधा स्वरूप के आधार पर पहले प्रकार का काव्य आत्मविषयात्मक (Subjective Poetry) कहलाता है और दूसरे प्रकार का काव्य बाह्यविषयात्मक (Objective Poetry) ।

आत्मविषयात्मक भावाभिव्यक्ति

उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार आत्मविषयात्मक काव्य की कोटि में कृष्ण कवियों द्वारा लिखित वे ही पद, वे ही अंश आते हैं जिनमें उन्होंने—

- (क) आत्मनिवेदन, दैन्य, दास्य, सख्यादि भावों की अभिव्यक्ति की है ।
- (ख) विविध कृष्ण लीलाओं में स्वयं को दर्शक या पात्र के रूप में भाग लेते हुए चित्रित किया है अथवा अपने ही किसी अनुभव को कृष्णलीला से सम्बद्ध कर दिया है ।

आत्मनिष्ठ काव्य में कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी दोहरे ढंग से होती है । कुछ बातों को तो वह अपनी कहकर व्यक्त करता है और कुछ को अपनी भावना में रंग कर । आत्मीयता के विस्तार की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती । अतएव आत्म-भावाभिव्यक्ति का अत्यन्त व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए एक मत ऐसा भी है जो समस्त कृष्ण-काव्य को आत्मविषयात्मक काव्य की कोटि में रखना है । लेकिन सीमित अर्थ लेने पर पूर्वोक्त अंश ही वास्तव में इस कोटि में आते हैं । यहाँ इसे सीमित अर्थ में ही ग्रहण किया गया है ।

आत्मविषयात्मक कथनों को काव्य की मार्मिकता प्रदान करने में विशेष कठिनाई होती है क्योंकि भावों के साधारणीकृत होने में 'अहं' की सीमाएँ बाधा बन कर आ खड़ी होती हैं । यदि अनुभूति इतनी गहरी, इतनी तीव्र न हुई कि उन्हें पार कर जाय तो इस प्रकार का सारा काव्य व्यक्ति का संकुचित प्रभावहीन परिचय मात्र बनकर रह जाता है । किन्तु सूर, नरसी, मीरा आदि जिन भक्त कवियों ने इस प्रकार के पदों का स्रजन किया है उनकी स्थिति इससे भिन्न है । उनके लिए भक्ति का आवेग ही अहं की सारी सीमाओं का पर्यवसान करता हुआ हृदय को निर्मल बना कर आराध्य के चरणों में अर्पित करने का एक मात्र उपाय था । प्रायः कहीं भी उनका आत्मनिवेदन अहं की संकुचित अभिव्यक्ति नहीं बना । उनके वैयक्तिक अनुभव से संयुक्त कथन भी किसी न किसी रूप में इतने भाव संचालित हैं कि कोई भी उन्हें परिचय मात्र नहीं कह सकता । कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा लिखे गये आत्मविषयात्मक पद श्रेष्ठतम काव्य की कोटि तक पहुँच जाते हैं ।

सूरसागर के प्रथम स्कंध में संकलित सूरदास के अनेक पद उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं । ब्रजभाषा में सूर के अतिरिक्त अन्य कई अष्टछापी कवियों ने आत्मनिवेदन के पद रचे हैं, अन्य सम्प्रदायों के हरिराम व्यास, गदाधर भट्ट, श्री भट्ट तथा हरिदास आदि के पदों में ऐसे उद्गार मिलते हैं किन्तु सूर का भाव-जगत इतना विस्तृत है कि वे अकेले ही सबका प्रतिनिधित्व करते हैं । साथ ही उनकी जैसी मार्मिकता एवं विविधता भी अन्यत्र दुर्लभ है । गुजराती में मुख्यतः नरसी मेहता के काव्य में दैन्य और आत्मनिवेदन के भाव मिलते हैं । अन्य कवियों में इन भावों की स्थिति का आभास तो मिलता है परन्तु इनसे प्रेरित काव्य नाम मात्र को ही उपलब्ध होता है । मीरा की स्थिति इस विषय में सूर और नरसी से भी अधिक महत्वपूर्ण है । कारण यह कि उनका लगभग समस्त काव्य आत्मविषयात्मक है । मीरा ने प्रायः सब कुछ लीलागान के रूप में न लिखकर आत्मानुभूत संवेदन के रूप में लिखा है । वैयक्तिकता का स्वर उनके पदों में, मणियों में सूत्र की तरह व्याप्त है ।

जिस प्रकार आराध्य एवं आराधक के बीच सम्बन्धों के कई रूप हैं उसी प्रकार उनके अनेक स्तर भी होते हैं । दास्य, दैन्य आदि भावों के एक स्तर पर एक प्रकार के उद्गार तथा दूसरे स्तर पर दूसरे प्रकार के उद्गार मिलते हैं जिनका आधार स्नेह और तन्मयता का अतिरेक है । आराध्य की ओर जिसके प्रेम में जितनी उत्कटता होगी वह कवि उतने ही उच्च स्तर से, उतनी ही मार्मिकता से आपूर्ण उद्गार व्यक्त करेगा । इन उद्गारों के और भी सूक्ष्मतर भेद होते हैं जो कवि की वैयक्तिक संवेदनशीलता, अभिव्यंजनाशक्ति तथा स्वभाव विशेष पर आधारित रहते हैं ।

आत्मनिवेदन—आत्मनिवेदन की भावना सूर, मीरा और नरसी तीनों में प्राप्न होती है किन्तु तीनों की अपनी अपनी विशेषता स्पष्ट रूप से पृथक् बलकती है, तीनों का आत्मनिवेदन न्यूनाधिक अंशों में दैन्य से संयुक्त और दास्य की ओर उन्मुख है। फिर भी किसी में दास्य भाव अप्रधान है किसी में प्रधान। किसी में प्रेम की कानरता है, किसी में दैन्य की विह्वलता और किसी में प्रगल्भता, हठ, खोज तथा उसके बाद भी अडिग विश्वास।

यह आत्मनिवेदन की वृत्ति वस्तुतः विशुद्ध प्रेम से उत्पन्न होती है और उसी से पुष्ट भी होती है। प्रेम के मूल में जो भाव होगा वही आत्मनिवेदनात्मक काव्य में प्रतिबिम्बित होगा।

नरसी तथा मूर दोनों ने प्रधानतः अपने को दास या सेवक और कृष्ण को अपना स्वामी स्वीकार किया है। नाथ, प्रभु, स्वामी आदि शब्दों से आराध्य को संबोधित अथवा विशेषित करना तथा चरण-धारण प्राप्ति की कामना करना इसी का द्योतक है। नरसी ने कृष्ण का दास होकर ही अपने जीवन को कृतार्थ नहीं माना चरन् भावतिरेक में उन्होंने कृष्ण के दास की चरणरज तक को मस्तक पर धारण करने की इच्छा प्रकट कर डाली और उसी में अपना कल्याण माना—

तारा दामनां चरणनी रेण मस्तक धरं जेयकी कोटि कल्याण पामु ।

—पद० ३२

कृष्ण के प्रति उनका निवेदन है कि तुम्हारे दास के दास की सगति के बिना मेरा मन भ्रष्ट हो रहा है। जो तुम्हारे दास नहीं है वे दुष्ट हैं उनके साथ से मेरी मति भी सदोष हुई जा रही है और तुम्हारा कीर्तन, नामश्रवण आदि कुछ भी नहीं हो पाता—

तारा दासना दामनी नित्य सगत बिना भ्रष्ट थाय भूधरा मन मारुं ।

दुष्टनी संगते, दुष्ट मति ऊपजे, श्रवण कीर्तन नव थाय तारु ।

—पद० २२

एक स्थल पर वे 'दासनोदास नरसैने कीधो' कहकर स्वयं को कृष्ण का दामानुदास मान लेते हैं। जिस प्रकार एक सेवक अपने स्वामी की कृपा के अभाव में स्थिरचित्त नहीं रह सकता उसी प्रकार उनका मन भी कृष्ण कृपा के बिना विकल रहता है—

पूरु ना पडे नाथ जी तमारी कृपा बिना अक आपु त्वारे अनेक खूटे,

नरसैयाना स्वामी तमारी कृपा बिना रंक मनावु त्वारे राय रुठे ।

—पद ५०

ठीक ऐसी मनस्थिति मूर की भी है। वे भी कृष्ण को अपना पति अर्थात् स्वामी कहते हुए उनसे कृपा याचना करते हैं—

मेरे तो तुमही पति तुम गति तुम समान को पावें।

मूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु को मों दुख विसगवें।

—मू० सा०, पृ० ६

वस्तुतः कृष्ण का स्वामित्व लाभ करके ही मूरदास का दासत्व सार्थक सिद्ध होता है। वे भले बुरे जैसे भी हैं कृष्ण के ही हैं। उन्हें छोड़कर किसी और के द्वार पर नहीं जा सकते। वे कृष्ण के खरीदे हुए गुलाम हैं और जब कोई ऐसा कहता है तो उसे सुन कर उनका हृदय तृप्त हो जाता है। कृष्ण रुष्ट भी हो जाय तो भी वे द्वार छोड़ने वाले नहीं। वस्तुतः भाव की दृष्टि से उनका दासत्व ही इतना समृद्ध है कि उन्हें नरसी की तरह अपने को कृष्ण का दासानुदास कहकर अपनी अधिकाधिक लघुता व्यक्त करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

आगे चलकर दासत्व का यह भाव नरसी और मूर से भिन्न-भिन्न दिशाएँ ग्रहण कर लेता है। नरसी में माधुर्य के संयोग से दास होने की कामना दासी होने की कामना में परिणत हो जाती है और वे सखी रूप से प्रिय के साक्षिव्य-सुख का रसास्वादन करने लगते हैं। जो स्वामी है वही प्रियतम बन जाता है और जो सेवाभाव है वही प्रणयनिवेदन का रूप धारण कर लेता है। स्वामी और सेवक के बीच की स्वाभाविक मर्यादा तथा व्यावहारिक व्यवधान दूर हो जाता है। कुछ अंशों में दास्य और माधुर्य का यह भाव-सांकर्य दोनों की शुद्धता को सीमित कर देता है। नरसी 'हरीदासी' होने की अपनी तीव्र मनोकामना को निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं—

जपतप तीरथ देहडो न दमीअे, जो महारा बहालाशु रग भेर ग्मीअे।

जनम-जनम हरीदामी थागु नरसैया चा स्वामीती लीला गाशुं।

—पद ५६

नरसी का यह दामी रूप सखी रूप से अभिन्न है क्योंकि वे स्वयं सखी बन कर कृष्ण की गोपियों के साथ की गयी शृंगारक्रीड़ाओं का रसास्वादन करने की साक्षी देते हैं—

ते पूर्ण पुरुषोत्तम प्रेमदाशु रमे, भावेशुं भामनी अक लीधो।

जे रस व्रजतणी नार बिलसे सदा, सखी रूपे ते नरसैये पीधो।

—पद ४९

मूर में ऐसे भाव-सांकर्य की स्थिति कहीं भी नहीं मिलती। यद्यपि उन्होंने कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का वर्णन नरसी की अपेक्षा कम नहीं किया है तथापि उनमें दास्य

और माधुर्य भाव का पार्थक्य बना रहा । कारण यह है कि उन्होंने, जहाँ तक वैयक्तिक भावाभिव्यक्ति का प्रश्न है, दास्य और माधुर्य को सर्वदा पृथक् रक्खा है । एक दास को स्वामी के शृंगारिक अथवा दाम्पत्य जीवन में प्रवेश पाने का कोई अधिकार नहीं होता, वह उसकी मर्यादा के विरुद्ध है अतएव कृष्ण की शृंगारिक क्रीडाओं का वर्णन सूर ने सखियों के माध्यम से किया है । स्वयं सखी बनने अथवा सखी-भाव अपनाने का प्रमाण उनके काव्य में नहीं मिलता । उन्होंने नरनी की तरह भक्ति में अपने पुरुषत्व का पर्यवसान नहीं किया । उनका दास्यभाव अगर उन्मुख हो सका तो सखी-भाव की ही ओर हो सका, सखी-भाव की ओर नहीं । 'खंजन नैन प्रेम रस माते' जैसे उनके पदों के पीछे आसक्ति का सिद्धान्त है । सखी-भाव उनका कारण नहीं है ।

सूर का सेवक सेव्य भाव दूसरी दिशा में विकसित हुआ । उसका संयोग दैन्य से हुआ और दैन्य एवं विनय का जितना गभीर, विविध एवं विस्तृत रूप मूर में उपलब्ध होता है उतना कृष्ण-काव्य के अन्य किसी कवि में नहीं मिलता । नरसी में भी नहीं । भावातिरेक में विनय का भाव लुप्त हो जाता है और उसका स्थान प्रगल्भता, अोज तथा हठ ग्रहण कर लेते हैं । दास्यभाव के अन्तर्गत इस प्रकार की भाव-परिणति भी सारे कृष्ण-काव्य में दुर्लभ है । मूर के इस प्रकार के आत्मनिवेदन में भावना का स्तर क्रमशः उच्च से उच्चतर होता हुआ भाव-विकास की चरमसीमा को स्पर्श कर लेता है ।

जैसा सकेत किया गया है, सूर का आत्मनिवेदन विनय से प्रारम्भ होता है किन्तु वह विनय भी साधारण कोटि के विनय भाव से भिन्न है । अपने पापों के प्रति अतिशय जागरूक होने के कारण सूर को विनती करते भी लाज लगती है । अपने को वे सब पतितों का सरताज समझते हैं और उन्हें विश्वास है कि कृष्ण जैसे उद्धारकर्ता के लिए भी उनका उद्धार सरल कार्य नहीं है—

विनती करत मरत ही लाज ।

• नख सिख लौ मेरी यह देही है पाप की जहाज ।

.....

पाछे भयो न आगे ह्वै है सब पतितन सरताज ।

नरकौ भज्यो नाम सुनि मेरो पीठि दई यमराज ।

अबलौ नान्हे रुन्हे तार्यो ते सब वृथा अकाज ।

साचे विरद सूर के तारत लोकन लोक अवाज ।

—सू० सा०, पृ० ७

सब पतिनों के 'सरताज' अथवा 'नायक' होने का भाव उनके हृदय में गर्व का संचार करके उन्हें अत्यन्त प्रगल्भ बना देता है । यह प्रगल्भता लाक्षणिक है और इसमें अत्यधिक दीन एवं पापी होने की ध्वनि छिपी हुई है । वस्तुतः उसी को मार्मिक व्यंजना के लिये कवि की भावना ने अभिव्यक्ति का यह रूप ग्रहण किया है । इसके पहले अनेक पदों में उन्होंने असमर्थता, दोषमयता निरीहता तथा शरण-याचना के भाव व्यक्त किये हैं । जब भावुक हृदय उनसे परितुष्ट न हो सका तो भावना ने यह रूप ग्रहण किया और मूर कह उठे—

हरि हौ सब पतितन पतितेश ।

—वही, पृ० १७

अथवा

हरि हौ सब पतितन को नायक ।

—वही, पृ० १८

पर इस प्रकार के लाक्षणिक गर्व से भी कृष्ण को जब वे उन्मुख होता हुआ नहीं देखने तो उन्हें आराध्य के मनोभाव पर शका होती है और वे स्पष्ट पूछने लगते हैं ।

मोसों बात सकुच तजि कहिये ।

कत ब्रीड़त, कोउ और बनावहु बाही के ह्वै रहिये ।

कैधौ प्रभु पावन तुम नाही के कछु मोमै भोलो ।

तौ हौ अपनी फेरि मुधारौ बचन एक जो बोलो ।

—वही, पृ० १६

सूर द्वार पर बड़ी देर प्रतीक्षा करते हैं पर जब इस आरोप का भी कोई उत्तर नहीं पाते तो कृष्ण के पतितपावन नाम की निस्सारता उन्हें प्रतिभासित होने लगती है—

पतितपावन हरि विरद तुम्हारो कौने नाम धर्यो ।

—वही

और अन्त में वे हठ पूर्वक अपने उद्धार किये जाने के अधिकार के लिये लड़ने को तैयार हो जाते हैं—

आजु हौ एक एक करि टरिहौ ।

कै हम ही कै तुम ही माधव अपुन भरोसे लरिहौ ।

हौ तौ पतिल सात पीढिन को पतितै ह्वै निस्तरिहौ ।

अब हौ उघरि नचन चाहत हौ तुम्है विरद बिनु करिहौ ।

—वही

ऐसा हठ, ऐसा आग्रह, ऐसी प्रगल्भता उमी में हो सकती है जिसे एक तो अपने आराध्य पर चरम विश्वास हो दूसरे अपनी भक्ति पर अनन्त आस्था। सूर में दोनों ही वस्तुएँ उलब्ध होती हैं इन्हींलिए उनकी वाणी में इस प्रकार का भाव-सौन्दर्य आ सका।

सूर को कृष्ण की कृपा प्राप्त करने की इतनी उत्कट अभिधापा क्यों है इसका रहस्य भी उनके एक पद से ज्ञात हो जाता है। वास्तव में सूर को कृष्ण का विरह असह्य है। उनके हृदय की जलन बिना कृष्ण के जल से सिंचे शान्त नहीं होना चाहती इसीलिए वे हर प्रकार से अपने 'गोपाल' की कृपा प्राप्त करना चाहते हैं—

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी।

बिनु गोपाल बिधा या तनु की कैसे जात कटी।

.....

सूर जलधि सिंचे करुणानिधि निज जन जरनि सिटी।

—वही, पृ० ९

इस प्रकार सूर के काव्य में अपने आराध्य के प्रति एक ऐसी तीव्र विश्वास भावना, तथा अपनी भक्ति के प्रति एक ऐसी प्रगाढ़ आस्था मिलती है जो अन्य कृष्ण भक्त कवियों में दुर्लभ है।

नरसी और सूर की आत्म भावाभिव्यक्ति से भिन्न मीरा की भाव-धारा में एक विचित्र प्रकार की स्त्री मुलभ सुकुमारता एवं वायव्य आत्मीयता मिलती है जो समस्त कृष्ण-काव्य का शृंगार है।

पुरुष होकर स्त्री भाव की उपलब्धि के प्रयास में जो अस्वाभाविकता नरसी के काव्य में दिखाई देती है वह मीरा के पदों में सर्वथा अप्राप्य है। नरसी की 'प्रणय घेरुछा' की अपेक्षा कृष्ण के प्रति मीरा का मधुर प्रणय-भाव पूर्णतया स्वाभाविक प्रतीत होता है। इस दिशा में मीरा नरसी से कहीं आगे प्रतीत होती है। नरसी गोपी अथवा सखी-भाव की ही प्राप्ति कर पाते हैं परन्तु मीरा कृष्ण का चितन विह्वल प्रणयिनी बनकर करती है और उन्हें प्रियतम एवं पति के रूप में स्वीकार करती है। साथ ही उनकी भावना में नरसी की ऐन्द्रिकतामूलक दिलास-वृत्ति के स्थान पर सुकुमार स्निग्ध प्रेम-वृत्ति के दर्शन होते हैं। मीरा की सुप्रसिद्ध पंक्तियों से यह भाव स्पष्टतया प्रकट होता है—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई।

.....

असुवन जल नीचि सीचि प्रेम बेलि बोई ।

अब तो बेल फैंड गयी आगद फाड हाई ॥१५॥

—पीरावाई की पदावली, पृ० ६

‘गिरधर के प्रति मीरा का यह वैयक्तिक प्रेम-भाव उन्हें आत्म-समर्पण की उम स्थिति तक पहुँचा देता है जहाँ वे अपने सारे जीवन व्यापार को प्रिय के ही आश्रित छोड़कर अनन्त सुख का अनुभव करती है—

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ।

मेरी उनकी प्रीत पुराणी उण बिनि पल न रहाऊँ ।

जहाँ बैठावे निनही बैठूँ, बेचे तौ बिक जाऊँ ।

—वही, पृ० ७

इन पंक्तियों में वह प्रेमातिरेक झटकता है जिसके आवेग में व्यक्ति का मारा अहं एक तिन्के की तरह बह जाना है । अपने प्रिय का असीम प्रेम ही मीरा को ऐसी ‘दरद दिवाणी’ बना डालता जिसका दर्द संसार से कोई नहीं जान सकता । जितनी तीव्रता मीरा की पूर्वरागजन्य प्रेम की अनुभूति में है उससे भी अधिक तीव्रता उनकी विरह की अनुभूति में लक्षित होती है । विरह की नागिन ने उनकी सारी काया को विषाक्त कर दिया है और रह रह की वेदना की लहरें उठती हैं—

रमेया बिन नीद न आवै ।

कहा कर कित जाऊ मोरी सजनी वेदन कूण बुठावै ।

विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै ।

—वही, पृ० २९

वियोग की यह चरम विह्वलता एक ओर तो उनको सूर की तरह प्रगल्भ बना देती है और वे उपालम्भ में कृष्ण के लिये ‘निरमोहिया’ अथवा ‘धूनारा जोगी’ जैसे शब्दों तक का प्रयोग कर डालती हैं दूसरी ओर उनमें निरीहता एवं असहायता का भाव उत्पन्न होता है जिसके कारण वे नरमी की तरह कृष्ण की दामी बनने की कामना करने लगती हैं ।

डारि गयो मन मोहन पासी ।

आंवा की डाल कोथल इक बोले मेरो मरण अरु जग केरी हांसी ।

विरह की मारी मैं बन बन डोलूँ, प्रान तजूँ करवत ल्यू कासी ।

मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ।

—वही, पृ० २६

मीरा के पदों में अधिकतर इसी प्रकार के वैयक्तिक प्रणय एवं विरह की अनुभूति व्यक्त हुई है और इस प्रकार उनके काव्य में आत्मभावाभिव्यक्ति की मात्रा सबसे अधिक मिलती है। इसीलिए सूर तथा नरसी की तुलना में मीरा में लीलागान की प्रवृत्ति का प्रायः अभाव मिलता है। यत्रतत्र ब्रज की कुछ लीलाओं के वर्णनों के अपवादों को छोड़कर मीरा के समस्त पद आत्मनिष्ठ काव्य की ही कोटि में आते हैं और उनमें भी मधुर भाव की ही प्रधानता है।

मीरा ने कृष्ण को प्रणयी के ही रूप तक सीमित न रखकर पतितोद्धारक एवं भक्तवत्सल भगवान् के रूप में भी स्मरण किया है और यहाँ वे सूर, नरसी आदि भक्त कवियों के साथ समान धरातल पर स्थित दिखायी देती है—

हरि तुम हरो जन की पीर ।

.....

बूड़तो गजराज राख्यो कियौ बाहर नीर ।

दासी मीरा लाल गिरधर चरण कबल पै सीर ।

—वही, पृ० २५

परन्तु इस प्रकार के पद मीरा ने अधिक नहीं रचे। उनकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति कृष्ण के प्रति अपने प्रेम निवेदन के रूप में ही हुई है।

कृष्ण लीलाओं से आत्म सम्बन्ध—अनेक कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में अपने को कृष्ण लीलाओं से सम्बद्ध कर देने की एक विचित्र प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह भी कवि के व्यक्तित्व का ही एक रूप है, अथवा इसे उसकी आत्माभिव्यक्ति का प्रकार विशेष कहा जा सकता है। भाव की तीव्रता में कवि की आन्तरिक इच्छा कल्पना द्वारा वास्तव का रूप धारण करके उसकी वाणी के माध्यम से प्रत्यक्ष होकर उसे एक अलौकिक सतोष प्रदान करती है कदाचित् इसी कारण भाव प्रवणकवियों ने इस प्रकार के वर्णन किये हैं। उनको यथार्थ रूप में ग्रहण करना वस्तुतः उन्हीं की भावना के साथ अन्याय करना है। नरसी मेहता में यह प्रवृत्ति सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाधिक रूप में व्यक्त हुई है। विपत्तियों और विरोधों से घिरे हुए जीवन में उन्हें जब कभी अप्रत्याशित सहायता प्राप्त हुई तो उन्होंने उसे भावातिरेक में भगवत्प्रेरित ही नहीं वरन् स्वयं भगवद्दत्त भी माना है। हुडी, झारी तथा हार आदि के प्रसंग सभ्यतः इसी मनोवृत्ति को व्यक्त करते हैं। नरसी की यही मनोवृत्ति तीव्रतर होकर उनकी उन कई रचनाओं में प्रकट हुई है जहाँ वे को स्वयं कृष्ण लीलाओं में भाग लेते हुए चित्रित करते हैं। गोपेश्वर महादेव की कृपा से उन्हें रास

दर्शन होता है और शिव गोलोक में कृष्ण से अपने भूतलवासी दीन भक्त को मिलाते हैं। कृष्ण उनके मस्तक पर अपना वरद कर कमल रख कर उन्हें कृतार्थ कर देते हैं—

हाथ झाल्यो मारो पारवती पते. मुक्ति दर्शन मुने सखली देखाडी ।

.....

भक्त हमारो भूतल लोक थी आवीयो करो तेने कृपा दीन जाणी ।

.....

तेज बेला श्री हरी मुजने कसणाकरी हस्तकमल मारे शीश चाप्यो ।

—न० कृ० का०, पृ० ७५-७६

इतना ही नहीं कृष्ण शारदीय पूर्णिमा की रात्रि में जब वेणुनाद करते हैं तो गोपियों के बीच नरसी का पुरुषत्व लीन हो जाता है। वे सखी रूप से गीत गाने लगते हैं और मानिनी को मनाने के लिए दूती बन जाते हैं। कृष्ण उनपर पुनः प्रसन्न होते हैं और उन्हें अपना पीतपट प्रदान कर देते हैं। नरसी यह सब वर्णन करते हुए यह भी कहते हैं कि यह सब उनका अनुभव है, यह वह रस है जिसका उन्होंने आस्वादन किया है।^१

सुरनसग्राम में इसी प्रकार नरसी ने अपने को राधा की दूती के रूप में प्रस्तुत किया है। राधा उन्हें देखकर सहसा दूतत्व का कार्य सौंप देती है और तत्काल उन्हें कृष्ण के पास जाना पड़ता है।^२ फिर यह प्रासंगिक उल्लेख मात्र नहीं है। इसका कथा विस्तार १२ वे पद से लेकर २२ वे पद तक फैला हुआ है।

चातुरी छत्रीमी में भी नरसी उपस्थित मिलते हैं, कर्ता के रूप में न सही भोक्ता के रूप में ही सही।^३

इस प्रकार की कल्पनाएँ नरसी की आत्माभिव्यक्ति का एक विशिष्ट प्रकार ही मानी जा सकती हैं अन्यथा कथा की दृष्टि से इनकी अस्वाभाविकता स्पष्ट ही है। भावातिरेक अस्वाभाविक वस्तु को भी गरिमामय बना देता है, कदाचित् यह इसका उदाहरण है।

सूरदास में भी यह प्रवृत्ति उपलब्ध होती है किन्तु इतने विकसित रूप में नहीं। उन्होंने अन्य लीलाओं का दर्शन तो राधा अथवा गोपियों की वृत्ति को आत्मसात् कर के किया परन्तु कृष्ण-जन्म के अवसर पर अपने को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करने का लोभ वे भी सवरण न कर सके। उनके ढाढी के पद वस्तुतः इसी मनोवृत्ति के परिचायक हैं।^४

नरसी तथा सूर के उद्धृत अंशों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर दोनों कवियों के स्वभाव का अन्तर प्रकट हो जाता है। नरसी की वृत्ति रास और विलास के प्रसंगों में

विशेष रमी अतः उन्होंने वैसे अवसरों पर अपनी अवतारणा की है और सूर ने, जिनकी वृत्ति कृष्ण के बालरूप में विशेष लिप्त रहती थी, कृष्ण जन्म के अवसर पर उनकी बाल क्रीडाओं के दर्शन के लोभ से ढाढी के रूप में अपनी भावनाओं को मूर्त किया। आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति होने के कारण ही इन कल्पनाजन्य प्रसंगों में कवि हृदय के सहज सत्य इतने सजीव होकर उतर सके हैं।

मीरा के कतिपय पदों में यही भावातिरेक वास्तव का रूप लिए बिना अपने मूल रूप में ही व्यक्त हुआ है। इसीलिए मीरा जो स्वप्न देखती हैं उसे स्वप्न ही कहती हैं परन्तु उस स्वप्न पर उन्हें किसी भी मत्त से अधिक आस्था है—

माई म्हाने सुपने में परण गया जगदीस ।

सोती को सुपना आविया जी सुपना विस्वा वीस ।

मीरा को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनम के भाग ।

सुपने में म्हाने परण गया जी, होगया अचल सोहाग ।

—मीरा की पदावली, पृ० १२, पद २७

स्वप्न नहीं यह उनके जीवन का चरम सत्य था—भाव सत्य, जिसके आधार पर उन्होंने 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति मोई' निरान्त निर्भीकता से कह डाला और आजन्म उसी भाव का निर्वाह किया। उनका सारा काव्य इसी से ओतप्रोत है। यहाँ भी मीरा की जो अत्यन्त आन्तरिक भावना थी वही इस प्रकार व्यक्त हो सकी। यद्यपि कृष्ण-काव्य की सर्जना अनेक कवियों के द्वारा हुई परन्तु भाव की इतनी उच्च भूमि तक कदाचित् यही कवि पहुँच सके। अन्य कवियों में से किसी ने कृष्ण की लीलास्थली के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करके सतोष पाया, किसी ने अभक्तों की निंदा और भक्तों की प्रशंसा करके तथा किसी ने कृष्ण के स्वरूप विशेष अथवा भाव विशेष पर अपनी वैयक्तिक आसक्ति प्रकट करके। व्यक्तिगत रुचि कुरुचि व्यक्त करने से उच्चतर धरातल व्यक्ति के हृदय के निर्वैयक्तिक आनन्द में लीन हो जाने में है। इस उच्चतर स्थिति को व्यक्त करने वाले कवियों के कथन भी वैयक्तिकता से आवृत रहते हैं परन्तु तत्त्वतः वे सामान्य कवियों की वैसी ही बातों से बहुत भिन्न होते हैं। सूर, मीरा तथा नरसी की भावभूमि तक अन्य कवियों की गति नहीं दिखायी देती।

वाह्यविषयात्मक भावाभिव्यक्ति

किसी भी कवि की वास्तविक महत्ता भावानुभूति की गहराई एवं व्यापकता से आँकी जाती है और उसके काव्य की सफलता भावों के सूक्ष्म, सशक्त तथा संवेदनीय निरूपण में निहित रहती है। कवि का हृदय किस वस्तु से प्रेरणा पाकर कब, कहाँ,

कितना भावुक हो उठे इसके लिए कोई विधान नहीं बनाया जा सकता। यह तो कवि विशेष की संवेदनशीलता, मनोवृत्ति और स्वभाव के आवृत्त रहता है। फिर भी कुछ स्थितियाँ, कुछ स्थल ऐसे अवश्य होते हैं जहाँ भावुक कवियों का हृदय विशेष रूप से रम जाता है। ऐसे स्थलों को 'भावमय स्थल' कहा जा सकता है। बाह्यविषयात्मक काव्य में ऐसे स्थलों का विशेष महत्त्व होता है।

कृष्ण-काव्य में भावमय स्थल—कृष्ण-काव्य भावों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध काव्य है। जीवन का एक विस्तृत खंड उसकी आधार भूमि रहा है। गैरव, कैशोर्य और तारुण्य की अगणित सूक्ष्म एवं गहन अनुभूतियों का विशाल संचय उसमें अत्यन्त सहज रूप में उपलब्ध हो जाता है। वात्सल्य और शृंगार की जिन सीमाओं का स्पर्श कृष्ण-भक्त कवियों ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसी दशा में थोड़े से भावमय स्थलों को चुन कर अलग निकालना सरल नहीं है। परन्तु तुलनात्मक विवेचन की सुविधा के लिए जो भावमय स्थल प्रधान हैं उन्हें पृथक् करना आवश्यक है। गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के काव्यों को दृष्टि में रखते हुए निम्नलिखित भावमय स्थल प्रधान रूप में चुने जा सकते हैं—

- | | |
|---|-----------------------------------|
| १. कृष्ण की बाल लीलाएँ ① | २. पनघटलीला ② |
| ३. नद, वसुदेव, यशोदा और देवकी के उद्गार ③ | ४. सयोगावस्था की विविध मनोदशाएँ ④ |
| ५. रासलीला ⑤ | ६. कृष्ण का मथुरागमन ⑥ |
| ७. दानलीला ⑦ | ८. भ्रमरगीत ⑧ |
| ९. मानलीला ⑨ | १०. पुनर्मिलन ⑩ |

आगे इनमें से क्रमशः प्रत्येक स्थल की भावानुभूति तथा भावनिरूपण की दृष्टि से तुलनात्मक काव्य-समीक्षा की गयी है।

१. **कृष्ण की बाल लीलाएँ**—कृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित भावों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। कारण यह है कि कृष्ण का व्यक्तित्व नद यशोदा के पारिवारिक जीवन तक ही सीमित न रहकर एक व्यापक सामाजिक रूप धारण कर लेता है। कृष्ण समस्त ब्रजमंडल की भावनाओं के केन्द्र बन जाते हैं। ब्रज के सब ग्वालबाल, गायें और गोपियाँ कृष्ण से सम्बद्ध हैं। नद महर के घर होने वाली कृष्ण विषयक प्रत्येक बात, प्रत्येक घटना सारे ब्रज में व्याप्त हो जाती है और परस्पर भाव-सम्बन्धों और भाव-प्रतिक्रियाओं को गहनतर बनाती चलती है। कृष्ण के अपने बाल स्वभाव और बाल चेष्टाओं के अतिरिक्त, यदि बलराम और ग्वालबालों के साथ उनकी क्रीड़ाओं में भावों का एक रूप मिलता है तो गोपियों के साथ दूसरा और नद

यशोदा के साथ तीसरा । भावों की इस विविधता की समाप्ति यही नहीं हो जाती । कृष्ण को लेकर यशोदा और गोपियों के बीच एक नये ही प्रकार का भाव-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । जिसमें कभी वे कृष्ण का पक्ष लेकर यशोदा से लड़ने आती हैं और कभी खीझ कर उलाहना देने । इस सारे भाव-विस्तार का केन्द्र एकमात्र कृष्ण की बाल लीलाएँ ही हैं जिनके आश्रय से मानवीय भावों के विविध रूपों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति कवियों ने की है ।

मानवीय भावों के साथ कृष्ण के लोकोत्तर रूप का मिश्रण—कवियों द्वारा कृष्ण की बाललीलाओं के चित्रण में एक विशेषता और परिलक्षित होती है और वह है सामान्य मानवीय भावों के साथ लोकोत्तर एवं अलौकिक रूप का सम्मिश्रण रस की दृष्टि से देखने पर इस प्रकार के वर्णन रसास्वादन में बाधक सिद्ध होते हैं परन्तु इसके साथ ही लौकिकता को सम्बद्ध कर देने से एक ऐसी रहस्यमयता उत्पन्न हो जाती है जो आश्चर्य, विस्मय तथा कुतूहल की सृष्टि करके आलबन के प्रति एक बिचित्र आकर्षण जगा देती है जिससे उक्त दोष आवृत हो जाता है । इसीलिए कृष्ण भक्त के हृदय में ऐसे वर्णनों से जो अनुभूति जागृत होती है वह रस संचार में बाधक न होकर एक प्रकार से सहायक ही होती है । माहात्म्यज्ञान के साथ उसे कृष्ण की लीलाएँ और भी अधिक आकर्षक प्रतीत होने लगती हैं । यह सत्य 'नारदभक्तिसूत्र' के रचयिता को ज्ञात था—

तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ॥२२॥

गुजराती और ब्रज दोनों के कवियों ने कृष्ण की बाललीलाओं के वर्णन में मानवीय भावों के चित्रण के साथ रहस्यात्मकता का पग पग पर मिश्रण किया है । यही नहीं इस प्रकार की रहस्यानुभूति उनके वर्णन का एक प्रधान अंग रही है जिसकी ओर इंगित करना वे कभी नहीं भूलते ।

अनेक असुरों के वध की अलौकिक घटनाएँ इस भाव के साथ एक सामंजस्य उत्पन्न कर देती हैं क्योंकि उनकी पृष्ठभूमि में इस प्रकार के वर्णन और भी कम अस्वाभाविक प्रतीत होते जाते हैं । प्रत्येक असुर को पराजित करने के साथ ब्रजवासियों का विश्वास कृष्ण की अलौकिक शक्ति पर दृढतर होता चलता है । जिस वातावरण और जिन परिस्थितियों में ब्रजवासियों का चित्रण किया गया है उसका लक्ष्य कृष्ण के लोकोत्तर रूप की स्थापना ही रही है । समस्त कृष्ण-काव्य का प्रधान उद्देश्य भी मानवीय अनुभूतियों का स्पर्श करते हुए उन्हें लोकोत्तर चेतना की उपासना में केन्द्रित कर देना ही रहा है । कृष्ण के अलौकिक चरित उनकी अपार शक्ति के स्वयं

परिचायक है अतएव उनके लौकिक चरित के चित्रण में अलौकिकता की व्यञ्जना का अपेक्षाकृत विशेष ध्यान रक्खा गया है । कृष्ण के लिए सर्वत्र प्रभु, स्वामी, पुरुषोत्तम, 'परिब्रह्म' आदि ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है जो उनके माहात्म्य के द्योतक हैं ।

मृत्तिका-भक्षण तथा यमालार्जुन-मोक्ष के प्रसंग में कृष्ण के विराट रूप का भागवत के अनुसार जो वर्णन दोनों भाषाओं के कवियों ने किया है उसका निर्देश वस्तु विश्लेषण के साथ किया जा चुका है । यहाँ वे प्रसंग उल्लेखनीय हैं जहाँ माखनचोरी, दधिमंथन आदि सामान्य मानवीय चेष्टाओं के साथ कवियों ने अपनी इच्छा द्वारा अलौकिकता का मिश्रण किया है । दधिमंथन के वर्णन में सूर लिखते हैं—

जब मोहन कर गही मथानी ।

परसत कर दधि माट नेति चित उदधि सैल वसुधा भय मानी ।

कबहुक अहुठ परग करि वसुधा कबहु देहरी उलधि न जानी ।

कबहुक मुरमुनि ध्यान न पावत कबहु खिलावत नद की रानी ।

कबहुक अमर खीर नहि भावत कबहुं मेखला उदर समानी ।

कबहुक आर करत माखन को कबहुक भेष दिखाइ बिनानी ।

कबहुक अखिल उदर नहि तर्पित कबहुंक दल माखन रुचि मानी ।

सूरदास प्रभु की यह लीला परत न (निग) महि शेष बखानी ।

—सू० सा०, पृ० १४९

नरसी मेहता ने दधिमंथन के प्रसंग में इसी प्रकार अलौकिकता का आरोप किया है । दोनों का सादृश्य दर्शनीय है—

महीडु मथवा ने उठी जगोदा राणी ।

विसामो खवडाववा उठ्या सारगपाणी ।

रत्नागर जाणे रे मुजमां रत्न न थी ।

ठालोमालो कालो घेलो शुं करशे मथी ।

मेरु जाणे रे हु तो चोदश गाठ्यो ।

हावे नव रवैयो करशो जाउ रे नाठो ।

—न० कृ० का०, पृ० ५०२

परमानंददास भी इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हैं ।

स्निव विरंचि मुनि देवता जाको अत न पावैं ।

सो परमानन्द ग्वाल को हँसि भलो मनावैं ।

रसखान के प्रसिद्ध छंद 'ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै' में कृष्ण के लौकिक तथा अलौकिक चरित के विचित्र संयोग की ही ओर संकेत है। गुजराती कवियों में नरसी, भालण, तथा प्रेमानंद आदि ने बार बार इस प्रकार का वर्णन किया है—

नरसी— जे मुख निगमअगम करी गाये, ते मुख जशोदाअ पान करी पाये ।
योगीया ध्यान धरे नहि पावे, ते अहिरडा घेर मलवे आवे ।

—न० कृ० का०, पृ० ५०१

भालण— ब्रह्मादिक जेने धायें, तेवो सुन्दर श्यामजी ।
वृद्धपणे हु पुत्र ज पाम्यो, भालणप्रभु श्रीराम ।

दशमस्कंध, पृ० ३५

प्रेमानन्द— ब्रह्मा ने स्वप्न नव आवे, ते गोविंद ने गोपी नचावे ।

—श्रीम० भा०, पृ० २६०

रसखान से प्रेमानन्द की उक्ति का कितना साम्य है यह स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त प्रेमानन्द ने हिंडोला झुलाने के सामान्य प्रसंग में भी आध्यात्मिकता और अलौकिकता का आरोप किया है। हिंडोला को संसार का प्रतीक बना दिया है—

संसार हिंडोलो वाध्योरे ब्रह्मे,
काई कर्म हीचे कोटी जीवडा रे ।
शकर ब्रह्मा जागी रे झूल्या,
भूल्या भ्रमे मोहोटा मुनि रे ।
आवागमन हीडोलेरे हीचे,
न प्रीछे प्राणी माया मल्या रे ।
जगत झुलाव्यु सोपी कर्मने,
ते ब्रह्म ने झूलावे ब्रज मुन्दरी रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४८

प्रेमानन्द अन्यत्र लिखते हैं—

पालव ग्रही परब्रह्म माता कने अन मांगे रे ।
पेट देखाडी ने रोय, नीचा थई पाये लागे रे ।

—वही, पृ० २५२

कृष्ण की बाललीलाओं के प्रसंग में इस प्रकार के कथन इसलिए भी विशेष रूप से मिलते हैं कि वस्तुतः सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, पूर्णकाम ब्रह्म का अज्ञ, अशक्त, क्षुधातुर बालक के सदृश आचरण करना सबसे अधिक विरोधपूर्ण प्रतीत होता है । वैसे कृष्ण की मानवीय शृंगार लीलाओं के प्रसंग में भी इस प्रकार का मिश्रण मिलता है परन्तु बाललीलाओं में अधिक उपलब्ध होता है ।

कृष्ण-जन्म—कृष्ण को परब्रह्म स्वीकार कर लेने पर उनका जन्म अथवा प्राकट्य साधारण घटना न रह कर एक महान् भूतपूर्व आनन्दोल्लास का पर्व बन जाता है । कृष्ण काव्य में इस अपार असीम आनन्द को शब्दों में बांधने का अद्भुत प्रयास किया गया है । अन्य कवियों की अपेक्षा अष्टछाप के कवियों ने इस विषय को विशेष भावुकता एवं कौशल से चित्रित किया है क्योंकि कृष्ण का बाल रूप ही उनकी उपासना का प्रमुख केन्द्र था । सूर के लीलागान की प्रेरणा पहले पहल इसी स्थल पर मूर्तिमती हो उठी थी ।

आनन्द की पहली लहर यशोदा के हृदय में आती है जब जागने पर वह अचानक 'नवनिधि' को अपने अक में पाती है । उस समय की उसकी दशा के वर्णन में सूर द्वारा अनुभावों की योजना दर्शनीय है—

जागी महारि पुत्र मुख देखत पुलक अंग उर में न समाई ।

गद्गद कठ बोल नहि आवे हर्षवन्त ह्वै नद बुलाई ।

—सू० सा०, पृ० १२७

उल्लास के अतिरेक में उसे किसी के सामने व्यक्त करके सह-अनुभव की भावना मानव मनोविज्ञान का सुपरिचित सत्य है । नद से अधिक यशोदा का और कौन हो सकता था जिसे वह अपने हृदय से फूटते हुए आनन्द स्त्रोत को दिखाती । लज्जा हर्षातिरेक में बह जाती है और वह स्वयं नंद से दौड़ आने के लिए व्यग्रता से कह उठती है ।

आनन्द की दूसरी लहर नद के हृदय को सराबोर कर जाती है—

दौरि नंद गये सुतमुख देख्यो सो शोभा सुख वरनि न जाई ।

—वही

नंद अपनी वृद्धावस्था और पद को भूल कर ग्वालों के साथ नाच उठते हैं—

नाचत महार मुदित मन कीनो ग्वाल बजावत तारी ।

—वही

अक्षत, चदन, दूब, बंदनवार, आदि से पर्व ग्विल उठता है । बधाई दही और हल्दी छिड़क कर दी जाती है ।

आनन्द की तीमरी लहर ब्रजवासियों के हृदय में उमड़ती है । काव्य की दृष्टि से यह स्थल अत्यन्त मनोरम है । ब्रजवासी प्रसन्नता से एक दूसरे से पुकार पुकार कर कहने लगते हैं—

आजु वन कोऊ जिनि जाइ ।
सबै गाइ और वछरा समेत सब आनहु चित्र बनाइ ।
ढोटा है रे भयो महरि के कहत सुनाइ मुनाइ ।
सबहि घोष मे भयो कोलाहल आनन्द उर न समाइ ।
कत हौ गहर करत रे भैया बेगी चलै उठि धाइ ।
अपने अपने मन को चीत्थौ नैनानि देखो आइ ।
एक फिरत दधि दूब बँधावत एक रहत गहि पाइ ।
एक परस्पर करत बधाई एक उठत हँसि गाइ ।
तरुण किशोर वृद्ध अरु बालक बैठ चौगुने चाइ ।
सूरदास सब प्रेम मगन भये गनत न राजाराइ ।

—वही

व्यक्ति के मनोभावों के चित्रण में सूर की गहरी पैठ है ही साथ साथ समूह की भावनाओं को अंकित करने में भी उनकी क्षमता अपरिसीम है ।

आनन्द की चौथी लहर का वर्णन सूर ने गोपियों के भावातिरेक को अंकित करके अपने प्रसिद्ध पद 'ब्रजभयो महरि के पूत जब यह बात सुनी' में किया है । जन्म के अवसर पर होने वाले लोकाचारों और उनके पीछे उमड़ने वाले भाव-समुद्र दोनों को सूर ने अत्यन्त सूक्ष्मता से अभिव्यक्ति प्रदान की है । इतना ही नहीं ढाढी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करने का लोभ वे सवरण न कर सके और इस प्रकार अपने व्यक्तित्व को वर्ण्यवस्तु के साथ उन्होंने घुला मिला दिया । इसे आनन्द की पाँचवी लहर कह सकते हैं—

नंद जू मेरे मन आनंद भयो हौं गोवर्धन ते आयो ।
तुमरे पुत्र भयो मै सुनिकै अति आतुर उठि धायो ।

.....

जब तुम मदन मोहन करि टेरो इहि सुनिकै घर जाऊं ।
हों तो तेरो घरको ढाढी सूरदास मेरो नाऊं ।

—सू० सा०, पृ० १३१

कृष्ण जन्म पर वधाई के पद परमानन्ददास, नन्ददास आदि अन्य अनेक ब्रजभाषा के कवियों ने रचे परन्तु सूर की अनुभूति तीव्रतम लगती है।

गुजराती में नरमी मेहता ने आनन्द की इन लहरों में से कुछ का उल्लेखनीय स्पर्श किया है। सूर द्वारा परिलक्षित यशोदा और नन्द की हर्षाप्लावित मनोदशा की मनोवैज्ञानिक तह तक वे भी पहुँच गये —

प्रथम नयणें निरखुं कुवर ने, पछे जगाडु नदराय रे।

जागो प्यारा सबल साहं, जाग्युं भाग्य तमारु वरणाय रे।

जग्या नद जी आनद पाम्या, जोया जगदाधार रे।

कोटि रवि शशी प्रगट्या, कोटी कोटी दीवडानी हार रे।

—न० कृ० का०, पृ० ४३५

आपस में कृष्ण के दर्शन को उत्सुक गोपियों के मनोभाव को भी उन्होंने शब्द बद्ध कर लिया है—

चालो सखी आपण जइओ, नंदकुवर ने जोवा रे।

कचन थाल भरी मुकताफलनी, मगल गान करेवा रे।

—वही, पृ० ४३७

यशोदा और नन्द के मनोभाव को प्रेमानन्द ने भी परखा परन्तु इसके आगे वे सूर के से भावातिरेक में अपने को लीन नहीं कर सके।^१ उनका वर्णन कथा की वर्णन की सामान्य भावुकता भर पा सका है। कोई विशेष अनुभूति कवि को इस स्थल पर हुई हो ऐसा नहीं लगता। किसी भी गुजराती कवि ने सूर की तरह ढाढी बनकर अपने व्यक्तित्व को जन्म समय के हर्षोल्लास में तल्लीन नहीं किया।

बाल स्वभाव—शिशु सुलभ चेष्टाओं एवं क्रीडाओं के स्वाभाविक अकन की ओर अनेक कवि प्रवृत्त हुए। कुछ आधार भागवत ही में मिल गया किन्तु कवियों ने अपनी कल्पना और भावना से उसका कई गुना अधिक विस्तार कर लिया। शिशु स्वभाव की सरलता, भोलापन, चंचलता, हठ तथा सहज प्रसन्नता सभी कुछ इतनी कुशलता से अंकित किया गया है कि उसे देख कर आश्चर्य होता है। कृष्ण-काव्य की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यही है कि कवियों ने लोक सामान्य मानव स्वभाव के विविध रूपों को अत्यन्त सूक्ष्मता से आत्मसात् और मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। सूर इस क्षेत्र के सरताज हैं किन्तु ब्रजभाषा में परमानन्ददास और गुजराती में भालण ने पर्याप्त भावमयता से कृष्ण के बाल स्वभाव का अकन किया है। प्रेमानन्द और केशव-दास ने भी प्रबन्धात्मकता के बीच किंचित् अवकाश निकाल कर बालभाव के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त किया है।

सूर के कृष्ण इतने भोले हैं कि मणिलिखित आंगन में अपने प्रतिबिम्ब को दूसरा बालक समझ कर पकड़ने दौड़ते हैं और उसे 'लवनी' लेकर विलाते हैं ।

यशोदा यह कह कर कि दूध पीने से चोटी बढ़ेगी, कृष्ण को दूध पिलाती हैं । कृष्ण एक ओर दूध पीते जाते हैं दूसरी ओर बालों को टटोलते जाते हैं कि चोटी बढ़ी या नहीं—

कजरी को पय पियहु लाल तेरी चोटी बढ़ै ।

.....

पुनि पीवत ही कच टकटोवै झूठै जननि रहै ।

—वही, पृ० १५३

और कुछ समय बीत जाने पर भी जब चोटी बढ़ती नहीं दिखायी देती तो खीझ कर पूछ उठते हैं—

यशोदा कबहि बढ़ैगी चोटी ।

किती बार मोहि दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी ।

तू जु कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी ।

—वही

सोचने पर उनकी समझ में यह आता है कि चोटी इसलिए नहीं बढ़ रही क्योंकि यशोदा 'काचो दूध पियावत पचि पचि देन न माखन' रोटी । भालण, नरसी और प्रेमानंद ने इस प्रसंग को उठाया तो है परन्तु सूर की तरह उन्होंने कृष्ण के भावों को सूक्ष्म रूप से प्रस्फुटित नहीं किया—

भालण— क्षणु अंक बैसो मोहन जी ओलु तारी चोटी रे ।

केवडेल घाली गुथु ज्यम त्यम थाये मोटी रे ।

.....

मारा सम छे हो मन मोहन माखण रोटी खाओ रे ।

ऊपर दूध कूर शीरावो ज्यम त्यम मोटा थाओ रे ।

—दशम स्कंध, पृ० ५०

नरसी— कढ्या दूध साकर संगाये अंक अंक घूटडे पीजे रे ।

वेण वागे बहाला जी तमारी, बलभद्र पे मोटी थाय रे ।

—१० कृ० का०, पृ० ४६२

प्रेमानंद— जो कृष्ण गु थावे चोटली, घणु माखण आपु रोटली ।

—श्रीम० भा०, पृ० १६०



छाया देख कर कृष्ण के मुग्ध होने का वर्णन भालण ने भी किया है परन्तु उसमें उतनी पूर्णता एवं सजीवता नहीं है जितनी सूर के वर्णन में मिलती है ।^{१६}

प्रेमानन्द ने कृष्ण के भोलेपन का जो चित्रण किया है वह भालण से अधिक सजीव है परन्तु सूर के समकक्ष फिर भी नहीं पहुँचता । प्रेमानन्द के कृष्ण यह भी नहीं जानते कि दूध में शकर पड़ती है या नमक (मीठु) —

अबलु चाले अविनाश, नथी सामल्यु दीठु रे ।

छासमा मागे खाड, दूधमा मीठु रे ॥१४॥

—श्रीम० भा०, पृ० २५२

उन्होंने कृष्ण की चंचलता, हठ और शरारत का वर्णन भोलेपन की अपेक्षा अधिक सजीव किया है । नहलाने धुलाने का काम पूरा भी नहीं हो पाया कि कृष्ण भाग जाते हैं, एक आँख में काजल लग पाया एक वैसी ही छूट गयी । वे यशोदा के पेट में लात मारते हैं और नद की दाढ़ी मूँछ तोच डालते हैं । नद के सूँह का चढ़ाया पान निकलवा कर छोड़ते हैं । अन्न पकने में देर होते देख कर कच्चा ही परमवाने पर अड़ जाते हैं । बछड़ों की पूँछ मरोड़ कर उन्हें पृदका देते हैं और अपने हाथ कीचड़ में सान लेते हैं । बंदरों को बुलाकर खिला देते हैं और कहीं लघुशंका कर जाते हैं कहीं किसी बालक को ठोकर मार कर गिरा देते हैं । माखन चुराने में तो और भी उद्दडता दिखाते हैं ।^{१७}

सूर के कृष्ण में चंचलता और बाल सुलभ हठ का पूर्ण समावेश हुआ है । जहाँ यशोदा कृष्ण को नहलाने के लिए कहती है वे लोट जाने हैं । बहुत भताने पर भी नहीं मानते —

यशुमति जबहि कह्यो अन्हवावन रोइ गये हरि लोटत री ।

लेत उवटनो लै आगे दधि कहि लालहि चोटत पोटत री ।

—सू० सा०, पृ० १५५

चंद खिलौने का वर्णन दोनों भाषाओं के कई कवियों ने किया है पर सूर ने कृष्ण की जिस भोली चतुरता का परिचय दिया है वह अन्यत्र नहीं मिलता । वस्तुतः सूर के बाल कृष्ण का व्यक्तित्व अनूठा है । वे इतने भोले हैं कि चन्द्रमा को पास ही समझते हैं और इतने चतुर भी कि जलपात्र के चन्द्रमा से बहलते नहीं ।^{१८}

सूर ने कृष्ण के बाल सुलभ सारल्य को अन्य समवयस्क बालकों के बीच रखकर उनके खीझने खिझाने, हारने जीतने और चिढ़ाने के स्वभाव के साथ जिस मनो-वैज्ञानिक एवं कलात्मक रूप से चित्रित किया है वह अद्वितीय है ।

खेलते खेलते बलराम और ग्वाल बाल मिलकर कृष्ण को खिझाते हैं । कृष्ण रोते हुए माता के पास जाकर बलदाऊ की शिकायत कर देते हैं । सूरदास ने इस स्थल को भाव की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक बनाकर पूर्ण सफलता से अंकित किया है ।^{११}

सखाओ की बातें तो कृष्ण को याद नहीं रहती पर सबसे अधिक चोट उनके हृदय पर बलराम की बात से लगती है इसीलिए वे उन्हीं की शिकायत करते हैं और सारे सखाओ को बिगाड़ने का आरोप भी उन्हीं पर लगाते हैं । यही नहीं उस खीझ को माता पर उतारते हुए उसे ही पक्षपाती कह डालते हैं । उनके हृदय को वास्तविक शान्ति तब मिलती है जब माता उन्हें अपना पुत्र मान लेती है और बलराम को धूर्त कह देती है—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसों कहत मोल को लीन्हो तोहि जसुमति कब जायो ।
कहा कहौ यहि रिमि के मारे हौ खेलन नहि जातु ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो नातु ।
गोरे नद यशोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर ।
चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर ।
तू मोही को मारत सीखी दाउहि कबहुँ न खीझै ।
मोहन को मुख रिसि समेत लखि यशुमति मुनि सुनि रीझै ।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूर्त ।
सूर श्याम मो गोधन की सौं हौ माता तू पूत ।

—सू० सा०, पृ० १५९

कुछ ही पंक्तियों में कृष्ण, बलराम, सखा और यशोदा, सबके हृदयों के भावों को अकृत्रिम संश्लिष्टता और सजीवता के साथ मूर्तिमान कर दिया गया है । बालस्वभाव का ऐसा मनोग्राही वर्णन समस्त कृष्ण-काव्य में अलभ्य है ।

बालस्वभाव में सूर की ही नहीं परमानंददास की भी काफी गहरी पैठ है । एक बेर बेचने वाली की आवाज़ सुनते ही कृष्ण अपनी नन्हीं सी अजलि में आँगन में सुखते हुए धान भर कर उतावली से उसे बेरो के बदले देने ठुमक ठुमक चल पड़ते हैं । एक ही चित्र बाल स्वभाव की सूक्ष्म अनुभूति का प्रमाण है । एक बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति तीव्रतम होती है । वह बड़ों के व्यवहार की नकल करता है जो उसके शिशु रूप के साथ और भी मनोरम लगने लगता है—

कोउ मैया बेर बेचन आई ।
सुनत ही टेर नद रावरि मे लई भीतर बुलाई ।

सूकत धान परे आँगन में कर अँजुलि बनाई ।
ठुमुक ही ठुमुक चलन अपने रँग गोपी जन बलि जाई ।
लीए उठाय रिझाय करि मुख चुम्बत न अघाई ।
परमानन्द स्वामी आनन्दे बहुत बेरि जब पाई ।

—डॉ. दी. गुप्त के निजी पद संग्रह से, पद सं० २७

बालक की अनुकरण-वृत्ति का इससे भी अधिक मनोरम चित्र सूर ने अंकित किया है । नद और कृष्ण एक साथ भोजन करने बैठे । जो कुछ नद खाते हैं वही कृष्ण भी खाना चाहते हैं पर खाना आता नहीं । नद की देखा देखी मिर्च खा लेने पर कृष्ण के आँसू भर आते हैं और वे रोते हुए बाहर उठ भागते हैं । तब रोहिणी माता मीठा कौर देकर चुपा लेती है ।^{१२}

यही नहीं बड़े ग्वालों की देखादेखी कृष्ण अपने नन्हें हाथों से काली सफेद गायों को नाम ले ले कर बुलाने की चेष्टा भी करते हैं—

वाँह उँचाइ काजरी धौरी,
गैयन टेरि बुलावत ।

—सू० सा०, पृ० १५४

इस प्रकार के वर्णन नितान्त मौलिक हैं । कवि की अनुभूति लोक जीवन में डूब कर प्रतिदिन घटित होने वाली सामान्य से सामान्य वस्तु को चुन लाती है और कृष्ण से उसे सम्बद्ध करके एक ओर तो कृष्ण के प्रति अपने घनीभूत आकर्षण को व्यक्त करती है दूसरी ओर काव्य में लोक हृदय को रसमग्न करने की अद्भुत क्षमता उत्पन्न कर देती है । यह विशेषता न्यूनाधिक गुजराती और व्रजभाषा दोनों के कृष्ण-काव्य में उपलब्ध होती है । एक अन्य उदाहरण में यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी ।

बालक को 'हौआ' या 'हाऊ' कहने से डर लगता है । माताएँ इस प्रकार बालक को डरा कर उनको अनुचित काम करने से वर्जित करती हैं । यह लोक जीवन में प्राप्त होने वाला सामान्य सत्य है । अनेक कवियों ने कृष्ण के साथ इसे सम्बद्ध करके बाल-स्वभाव के चित्रण में स्वाभाविकता एवं सजीवता उत्पन्न की है ।

केशवदास ने लिखा है कि जब कोई एक बालक 'हाऊ आ रहा है' कह कर कृष्ण को डरा देता है तो वे माता की गोद में मारे भय के छिप जाना चाहते हैं ।

अंक कहे: 'हरि ! हाऊ आवे' धूजतो माता तणां स्तन धावे ।

—श्रीकृष्ण लीला काव्य, पृ० ३९

प्रेमानंद के, हाथ से दीपक छू लेने वाले, भोले कृष्ण 'हाऊ' का नाम सुन कर रोने से चुप हो जाते हैं—

प्रगट करे अज्ञान हाथ दीप ग्रहे रे ।

ओर करडवा आव्यो हाउ, रोतो टप रहे रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० २५२

सूर ने दोनों प्रकार की मनस्थितियों का वर्णन किया है । एक ओर यशोदा 'हाऊ' का नाम लेकर कृष्ण को बग्न में डूब जाने से वर्जित करती है दूसरी ओर बलराम कृष्ण को तमाशा दिखाने का बहाना करके बग्न में ले जाते हैं और वहाँ 'हाऊ काट खायगा' कह कर उन्हें डरा देते हैं—

१. दूरि खेलन जनि जाहु लला बग्न मेरे हाऊ आयो हैं ।

—मृ० सा०, पृ० १६०

२. मैया बहुत बुरी बलदाऊ ।

कहत लगें बग्न बडो तमामो सब मौडा मिलि आऊ ।

भोहू को चुचुकारि गये लै जहाँ मघन बग्न झाऊ ।

भागि चले कहि गयो वहाँ ने काटि खाइ हैं हाऊ ।

—वही, पृ०, २०१

दोनों भाषाओं में बाल कृष्ण के स्वभाव एवं मनोभावों को काव्य में कितनी कुशलता और भावमयता के साथ चित्रित किया गया है यह उपर्युक्त थोड़े से उदाहरणों से ही स्पष्ट हो जाता है ।

वय-विकास—नव यशोदा आदि की पूर्ण आसक्ति के केन्द्र-बिन्दु होने के कारण कृष्ण की लीलाओं की तरह उनके वय-विकास को व्यक्त करने वाली प्रत्येक स्थिति भाव की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना के रूप में चित्रित मिलती है । हर चेष्टा हृदय को हिलोर देती है, हर सस्कार एक उत्सव, एवं पर्व समझ कर आभोद-प्रमोद से आपूरित कर दिया जाता है । जरा भी प्रतिकूल परिस्थिति महान चिन्ता का कारण बन जाती है और निवारित हो जाने पर तत्काल द्विगुणित आनन्दोल्लास के रूप में परिणत हो उठती है । इस तरह की भाव-अभिव्यक्ति कवियों की अनुभूति की गभीरता और अभिव्यक्ति की कुशलता दोनों को व्यक्त करती है । वस्तु विडम्बण से विदित हो जाता है कि भालण आदि गुजराती कवियों ने भी कृष्ण के बाल जीवन तथा वय-विकास को अपने काव्य में व्यक्त किया है । अष्टछाप के कवियों विशेषतः सूर में इस सम्बन्ध में विशेष सूक्ष्म दृष्टि परिलक्षित होनी है जिसका बहुत कुछ श्रेय



पुष्टिमार्गीय उपासना के स्वरूप को दिया जा सकता है क्योंकि उसकी सारी रूपरेखा कृष्ण की दिनचर्या और वय-विकास पर आधारित है ।

कृष्ण का उलट जाना, घुटनो चलना, देहली पार कर जाना, यशोदा द्वारा चलना सीखना, उगमगाकर चलना फिर दौड़ने लगना, दूध के दाँत निकलना, तुलना कर बोलना, गायो को बुलाना, 'बाबा' 'भैया' कहने लगना, आदि उनके वय-विकास के साथ घटित होने वाली अनेकानेक बातों को कवियों ने अत्यन्त स्वाभाविक एवं भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है और इस प्रकार कृष्ण के बाल-जीवन के चित्रण को सर्वांगीणता एवं सम्पूर्णता प्रदान करने की प्रवृत्ति प्रकट की है ।

कृष्ण अभी बहुत छोटे हैं । यशोदा बहुत दुलार प्यार से यत्न पूर्वक जब लोरी गाकर सुलाती हैं तो सोते हैं । जब शिशु कुछ महीनों का हो जाता है तो सोते-सोते उसके होठ फड़फड़ाने लगते हैं या उसे हँसी आने लगती है । सूर और भालण दोनों की दृष्टि वय-विकास के इस प्रथम सोमान के सौन्दर्य पर टिक जाती है—

सूर—यशोदा हरि पालने सुलावै ।

हलरावै दुलाराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै ।

मेरे लाल की आउ निदरिया काहे न आन सुवावै ।

तू काहे न वेगि सो आवै तोको कान्ह बुलावै ।

कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत है कबहुँ अधर फरकावै ।

सोबति जानि मौन ह्वै रहि रहि करि करि सैन बतावै ।

इहि अतर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरे गावै ।

जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंदभासिनि पावै ।

—सू० सा०, पृ० १३३

भालण—सूनो सूतो अति हसे, हुं हरखे हालरु गाऊ रे ।

निद्रा करो मारा नानडिया, हु बलिहारी जाऊ रे ।

—दशमस्कंध, पृ० ३४

'मेरे लाल की आउ निदरिया' और 'मारा नानडिया' कहने में मातृहृदय की जो कोमल स्निग्धता व्यक्त होती है वह लक्षित करने योग्य है । सूर के उक्त पद में शिशु को सुलाती हुई माता की मनस्थिति, भावों एवं अनुभावों का जो शृंखलाबद्ध चित्रण है वह उनको काव्य-शक्ति की प्रौढ़ता को व्यक्त करता है । शिशु के हँसने से उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता कितनी व्यापक भावभूमि के साथ व्यक्त की गयी है । भालण ने भी उस प्रसन्नता को भली भाँति पहचाना है ।

विकास की अगली स्थिति का प्रत्यक्षीकरण मूर की सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि ही कर सकी शिशु कुछ विकसित होने पर अपनी चेष्टा से उलट जाने में सक्षम होने लगता है। पहल बार जब उसकी यह क्षमता व्यक्त होती है तो माता पिता का हर्षमग्न होना स्वाभाविक है। एक तो मूर का यह चित्रण पूर्णतया मौलिक है दूसरे वे उसके साथ उत्पन्न होने वाले भावों को चित्रित करने में भी पूर्ण सफल हुए हैं।

यशोदा कृष्ण को पालने में 'पौठा' कर इही मथने चली गयी। नंद आये और उन्होंने ज्योंही कृष्ण को उलटा देखा, हर्षित हो उठे। लगे यशोदा को बुलाने। यशोदा ने कृष्ण को उलटे देखा तो वह भी झून उठी। चूम चाट कर बलायें लेने लगी। सारे ब्रज में यह समाचार फैल गया और घर-घर से ब्रजनारियाँ कृष्ण को देखने आने लगी। घर-घर आनंद वधाई होने लगी। कृष्ण साढ़े तीन महीने के हो गये—

हरखं नद टेरत मह्रि ।

आइ सुत मुख देखि आतुर डारिदै दधि टहरि ।

मथति दधि यशुमति मथानी ध्वनि रही घर गहरि ।

श्रवण सुनति न मह्रि बातें जहाँ तहाँ गयीं चहरि ।

यह सुनति तब मातु धाई गिरे जाने जहरि ।

हँसत नद मुख देखि धीरज तब कह्यो ज्यों ठहरि ।

ज्याम उलटे परे देखे बड़ी गोभा लहरि ।

मूर प्रभु कर मेज टेकत कबहुँ टेकत ठहरि ।

—सू० ना०, पृ० १३७

दूध के दाँत निकलने, देहरो में देह अटकाने आदि का वर्णन भी मूर ने इसी प्रकार अद्वितीय रूप में किया है। बालचरित वर्णन में मूर की भावाभिव्यक्ति की सश्लिष्ट सरलता को गुजराती कविधों में एकमात्र भालण ने ही स्पर्श कर पाया है। उदाहरण रूप में कृष्ण को यशोदा द्वारा चलना सिखाने का वर्णन लिया जा सकता है। भालण ने इसके वर्णन में मूर की तरह ही यशोदा के सुग्ध हृदय की भी अभिव्यक्ति की है और उससे उत्पन्न होने वाले गोपीमात्र के मुख को भी व्यक्त कर दिया है—

पावळो पारे हरि गोपाल, जशोमती हूलरावे बाल ।

पग ऊपर पग धरती सही, डगमग त्यां पग माडे श्रीपति ।

साहडु दई हरिने दृढपणे, क्षण क्षण प्रत्ये जाये भामणे ।

मुख चुंबे अति स्नेह करी, अम रमाडे जननी हरि ।

—दशमस्कंध, पृ० २९-३०

बली बली पग ऊपर हरि चढ़े गोपी सह जाये दुखड़े ।
भालण प्रभुनी कीड़ा घरनी, बालक रूपे विश्वनो धरणी ।

—दशमस्कंध, पृ० २९-३०

सूरदास ने जो वर्णन किया है उसका भालण के उपर्युक्त वर्णन से अद्भुत सादृश्य है—

सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरवराइ कर पाणि गहावत डगमगाइ धरणी धरै पैया ।
कबहुँक सुन्दर बदन विलोकति उर आनँदभरि लेत बलैया ।
कबहुँक बल कौटेरि बुलावति इहि आँगन खेलो बुहु मैया ।
कबहुँक कुल देवता मनावति चिरजीवै मेरो बाल कन्हैया ।
सूरदास प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नँदरैया ।

—सू० सा०, पृ० १४५

सूर की सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन को स्वाभाविकता देने वाले अन्य अंश भी नहीं छूटे । नंद भी कृष्ण को चलना सिखाते हैं । कृष्ण पहले दो दो पग चलते हैं फिर डगमगाकर रह जाते हैं, फिर चलने लगते हैं । इन बातों के चित्रण से उनका वर्णन भालण की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं सूक्ष्म हो गया है जो उनकी अनुभूति की गंभीरता का परिचायक है ।

जिस प्रकार यशोदा कृष्ण को चलना सिखाती है उसी प्रकार भालण ने बोलना सिखाने का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है—

तोतलुं बोलवुं सिखवे मात । वारणे जाउ मारा जात ।
अटपटी बोली ते बोले अधूरी । यत्न करी करे यशोदा पूरी ।

—द० स्क०, पृ० ३०

सूर ने भी कृष्ण की तोतली बोली पर यशोदा की मुग्धता चित्रित की है, ऐसी मुग्धता जिसमें अधूरी बोली को पूरा करने का प्रश्न ही नहीं उठता—

अल्प दशन तोतरावत बोलत छवि चित हू न जात विचारी ।

—सू० सा०, पृ० १४१

बालछवि—कवियों ने बाल कृष्ण से अलौकिक शक्ति के साथ अलौकिक एवं अपरिसीम सौन्दर्य की भी भावना की है अतएव कृष्ण की बालक्रीड़ाओं के साथ ही साथ उनकी मनोहारिणी और प्रतिक्षण नवीन आकर्षण उत्पन्न करने वाली छवि का

भी पग पग पर अंकन किया है। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होने की वृत्ति प्रायः समस्त कृष्ण कवियों में पायी जाती है। कुछ में तो वह इतनी आवेगमयी एवं प्रगाढ़ है कि कृष्ण के किसी भी चरित, किसी भी लीला का वर्णन बिना उनकी अनिन्द्य छवि के वर्णन के संभव ही नहीं हो सका है। कवि की दृष्टि रह रह कर बाह्य व्यापारों से हट कर कृष्ण के मुख और शरीर-शृंगार पर जा टिकती है। कथावस्तु की गति रूपाकर्षण के आगे शिथिल पड़ जाती है। कवि रूप-वर्णन करके कभी तो स्वयं ही मुग्ध हो लेता है, कभी वह गोपियों के माध्यम से उन्हें रूपासक्त चित्रित करके सुखानुभूति प्राप्त करता है। कवियों द्वारा रचे गये कृष्ण के ये रूप-चित्र दो प्रकार के होते हैं, स्थिर और गतिशील। स्थिर रूप-चित्रों में शरीर के किसी अंग अथवा किसी मुद्रा का, जीवन की गतिशीलता से, एक प्रकार से पृथक् करके वर्णन किया जाता है और गतिशील रूप चित्रों में जीवन की गतिशीलता के साथ। फलतः पहले प्रकार के रूप-चित्रों में उपमा, उत्प्रेक्षादि के द्वारा मीधे ढंग से रूपालेखन और उसके प्रभाव को व्यक्त कर दिया जाता है। दूसरे प्रकार के चित्रों में गतिशीलता के साथ विविधता और अनेकरूपता भी आ जाती है जिसके कारण उनका आलेखन सरिलिष्ट एवं सगुफित रूप से ही हो पाता है। सूरसागर बाल-छवि के विविध प्रकार के वर्णनों से आपूरित है। ब्रज तथा गुजराती के अन्य अनेक काव्यों में कृष्ण की बाल-छवि का सुन्दर वर्णन मिलता है।

हाथ में मक्खन लिये आगन में घुटनो चलते कृष्ण की रूप-माधुरी का पान करके भालण और सूर ने प्रायः समान रूप चित्रों की सृष्टि की है। वही लट की लटकन, वही वेश।^{१३}

रूप-चित्रण में भी दोनों कवियों ने समान शैली का अनुसरण किया है। सादृश्य-मूलक अलंकारों के आश्रय से वस्तुगत सौन्दर्य को व्यक्त किया गया है। साथ ही उसके दर्शन से दर्शक में होने वाली विस्मृति, आह्लाद एवं आत्मतल्लीनता की ओर भी इंगित कर दिया गया है। जिन वस्तुओं में रूपात्मकता भी है जैसे मुख, दाँत आदि उनके सौन्दर्य के साथ अरूपात्मक वस्तुओं—जैसे तोतली बाणी और किलकन आदि—का भी सौन्दर्याकिन मिलता है। यह रूप-चित्र स्थिर है और अभिव्यक्ति ऋजु।

गतिशील रूप-चित्रण उस स्थल पर मिलता है जहाँ कवियों ने बाल-कृष्ण के नृत्य आदि का वर्णन किया है। भालण, नरसी और सूर की तरह अनेक कवियों ने इस प्रकार के रूप-चित्र प्रस्तुत किये हैं। नर्तित कृष्ण के रूपाकन में उक्त कवियों की कुशलता दर्शनीय है।^{१४}

इन रूप-चित्रों में भालण और केशवदास का ध्यान नर्तित कृष्ण की आंगिक चेष्टाओं पर विशेषतया केन्द्रित हुआ है और नरसी का वेगु-वाद्य आदि की सम्मिलित ध्वनि तथा अलकरण पर। सूर ने इन विशेषताओं के साथ बालक की अनुकरणवृत्ति तथा यशोदा की मुग्ध, शिक्षण में लीन मनोदशा का समावेश करके चित्र को और भी सजीवता एवं गतिशीलता प्रदान कर दी है। रूप-वर्णन में उनकी दृष्टि अपेक्षाकृत सूक्ष्मतर है अतएव वे कृष्ण की नन्ही नन्ही एड़ियों में नाचने के कारण आई हुई अत्यधिक अरुणता को स्पष्ट देख लेते हैं। भालण और नरसी का ध्यान इस ओर नहीं गया।

माखनचोरी—भाव की दृष्टि से देखा जाय तो माखनचोरी शैशव से लेकर किशोरावस्था तक की समस्त कृष्णलीलाओं में प्रमुख रही है। कवियों को कृष्ण के इस रूप ने विशेष आकर्षित किया है और परिणामस्वरूप उनकी उर्वर कल्पना ने अनेकानेक नवीन परिस्थितियों एवं भावस्थितियों की उद्भावना कर डाली। मूलतः भागवत पर आधारित होकर भी यह प्रसंग बहुत सी मौलिक एवं नवीन अनुभूतियों से समृद्ध हो गया। माखनचोर कृष्ण के चोरी करने के बहाने, चतुरता, भोली मुखमुद्रा, यशोदा के प्रति गोपियों के उपालंभ, उत्तर-प्रत्युत्तर, चोरी के निमित्त दंडित किये जाने पर गोपियों में सहानुभूति का उद्रेक और दंडित करने वाली माता की खीझ एवं पश्चात्ताप इत्यादि के आलेखन और तत्सम्बन्धी भावों के सूक्ष्म एवं स्वाभाविक चित्रण के द्वारा गुजराती तथा ब्रज दोनों के कवियों ने अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है।

माखनचोरी की इतनी सरसता का कारण यह है कि कवियों द्वारा वह सामान्य चोरी से नितान्त भिन्न प्रेम और आकर्षण के भावों से संयुक्त कर दी गयी है। साधारण चोरी में चोर के प्रति न तो आकर्षण होता है, न स्वयं अपनी वस्तु के चुरा लिये जाने की लालसा होती है और न चोर को दंडित होते देख कर दया और प्रेम ही उमड़ता है। पर माखनचोर कृष्ण के प्रति गोपियों के हृदय में यह सभी भावनाएं उत्पन्न होती हैं। सूर ने तारुण्यावस्था की चेष्टाओं का भी समावेश इस किशोरलीला में ही करके सरसता को और भी परिर्वर्धित कर दिया है। उपालंभों में भी उन्होंने अनेकानेक मनस्थितियों का आलेखन किया है। एक ही बात के भाव-भेद से अनेक रूप प्रदर्शित किये हैं।

कृष्ण की चोरी करने की वृत्ति से खीझने वाली गोपियों के हृदय में उनके प्रति गहरी रीझ भी छिपी हुई है, इसको सूर और प्रेमानंद दोनों ने परिलक्षित किया है—

सूर—ग्वालिनि उरहन के मिस आइ ।

नंदनंदन तनु मनु हरि लीनो बिनु देखे क्षण रह्यो न जाइ ।

—सू० सा०, पृ० १७२

प्रेमानंद—गोपी आवी यशोदा पासे, करवा हरिनी राव जी ।

वचन बोले बढवा सरखा हरि साथे हुदे भाव जी ।

—श्रीम० भा०, पृ० २५३

उपालंभों में गोपियो द्वारा जिन भावनाओं की अभिव्यक्ति की गयी है वह भी बहुत समानान्तर है । जो कुछ कहती हैं और जैसे कहती हैं, दोनों में ही पर्याप्त समानता है यद्यपि ब्रजभाषा के कवियों ने उपालंभ के अन्तर्गत आने वाली भावनाओं में अधिक तीव्रता ही नहीं प्रदर्शित की है वरन् भावभूमि को भी और अधिक विस्तृत कर दिया है । वस्तुतः उपालंभ की कई स्थितियाँ हैं । पहले तो गोपियाँ कृष्ण के विविध प्रकार से माखन चुराने की शिकायत करती हैं और उनकी आदत को बिगाड़ने का दोष यशोदा पर आरोपित करती हैं । इस स्थल पर गोपियों की भावना इस सीमा तक पहुँच जाती है कि वे ब्रज ग्राम को छोड़ देने की बात भी कह डालती हैं । सूर और प्रेमानंद दोनों, के उपालंभ भाव की इस सीमा को स्पर्श कर लेते हैं—

सूर—अपनी गाँउ लेहु नँदरानी ।

बड़े बाप की बेटी ताते पूनहिं भले पढावति बानी ।

सखा भीर लै पैठत घर में आपु खाइ तौ सहिए ।

मैं जब चली सामुहे पकरन तबके गुण कह कहिए ।

—सू० सा०, पृ० १७४

प्रेमानंद—गोकुल केम रहीअ, मागो गोरम नो वेपार कहोजी क्यां जइअे ।

.....

अकलो होय तो आदर दीजे अमने हरि बहालो छे हाडजी ।

सह परिवारे आवे सामलियो लावे गोप मर्कटनी घाड ।

—श्रीम० भा०, पृ० २५३

भालण और नरसी के उपालंभ, भाव की दृष्टि से, इस सीमा तक नहीं पहुँचते ।

उपालंभ की दूसरी स्थिति वह है जहाँ गोपियों की शिकायत सुनकर यशोदा कृष्ण को दंड देती है । कृष्ण को रस्सी में बँधा, और यशोदा को हाथ में छड़ी लिये देखकर गोपियाँ दूसरे प्रकार से उलाहने देने लगती हैं । वे यशोदा को क्रूर और निर्दय तक कह डालती हैं क्योंकि एकलौते बेटे को वृद्धावस्था में पाने वाली कौन ऐसी

माँ होगी जो उसे खाने-पीने की बात पर मारे-डॉटे । यह भी तब जब कि घर में दूध, दही और मक्खन की खान हो । इस प्रकार की उपालम्भ-भावना भालण और सूर में तीव्रतम रूप में मिलती हैं । यशोदा द्वारा जो उत्तर दिलाये गये हैं उनमें भी पर्याप्त भाव-साम्य है ।^{१५}

इसके बाद जब एक गोपी कृष्ण के खाये हुए मक्खन को अपने घर से लाकर पूरा कर देने को कहती है तो यशोदा की सहनशक्ति अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाती है । उक्त दोनों कवियों ने इस भावस्थिति का भी चित्रण किया है । यशोदा के हृदय की मार्मिक दशा को दोनों कवियों ने अपने अपने ढंग से परखा और व्यक्त किया है —

भालण—(क) यशोदा छोडो कहान ते, हुं आपु गोरस गोळी रे ।

अवडी रीमे घटे नहि तमने, हु जाणुं छुं भोली रे ।

—दशमस्कंध, पृ० ४०

(ख) मारो कुदर वणसेरे तमारु आवे ने जाये ।

ढोल्यानुं दुख नयी लागतु अं ओलभा नव खगाय ।

—वही

सूर—(क) कहाँ तौ माखन ल्याऊँ घर ते ।

जा कारण तू छोरति नाही लकुट न डारति कर ते ।

—सू० सा०, पृ० १७९

(ख) कहन लगी अब बढि बढि बात ।]

ढोटा मेरो तुमहिँ बँधायो तनकहिँ माखन खात ।

अब मोहिँ माखन देत मँगाये मेरे घर कछु नाही ।]

—वही

विषयगत भावनाओं के पूर्ण विस्तार को देखते हुए सूर का भाव-चित्रण अद्वितीय लगता है । कृष्ण का जो रूप उन्होंने माखनचोरी के प्रसंग में व्यक्त किया है वह एक ओर तो नितान्त भोला है और उसमें विशुद्धता की झलक मिलती है, दूसरी ओर उसमें तारुण्य की चतुरता और रसग्राहिता भी प्रदर्शित की गयी है । किशोरावस्था के दोनों छोर सूर ने छूने की चेष्टा की है यद्यपि कहीं-कहीं असंगति भी आगयी है उसके परिहार के लिए उन्हें अलौकिकता का आश्रय लेना पड़ा है । कृष्ण सहसा आयु में बढ़कर गोपियों के प्रेमभाव को तृप्त करते हैं और फिर चमत्कार से पाँच वर्ष के बन जाते हैं । कृष्ण के दोनों रूप सूर ने अत्यन्त आकर्षक ढंग से व्यक्त किये हैं—

मैया मै नाही दधि खायो ।
 ख्याल परे ये सखा सबै मिली मेरे मुख लपटायो ।
 देखि तुही सीके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो ।
 तुही निरखि नान्हे कर अपने मै कैसे करि पायो ।
 मुख दधि पोछि कहत नँदनदन दोना पीठि दुरायो ।

—सू० सा०, पृ० १७६

इस पद में भोले कृष्ण चतुर बनने के प्रयास में और भी भोले लगते हैं । परन्तु एक ग्वालिनी को आलिंगनादि के द्वारा तृप्त करने के बाद चतुर कृष्ण जब भोले बनने का प्रयास करते हैं तो और भी चतुर ज्ञान होते हैं—

झूठहि मोहि लगावति ग्वारि ।
 खेलत मै मोहि बोलि लियो हूँ दोउ भुज भरि दीनी अँकवारि ।
 मेरे कर अपने कुच धारति आपुहि चोली फारि ।
 माखन आपुहि मोहि खवायो मै कब दीन्हों ढारि ।
 कहा जानै मेरो बारो भोरो शुकी महरि दै दै मुख गारि ।
 सूर श्याम ग्वालनि मन मोह्यो चितै रही इकटकहि निहारि ।

—सू० सा०, पृ० १७२

यशोदा द्वारा कृष्ण को माखनचोरी न करने की सीख देने में माता की जिन भावनाओं का अंकन ब्रजभाषा में सूर और तुलसी ने किया है, वह गुजराती के काव्य में प्राप्त नहीं होता—

सूर—कन्हैया तू नहि मोहि डेरात ।
 षटरस धरे छाँड़ि कत पर घर, चोरी करि करि खात ।
 बकति बकति तोसों पचि हारी नेकहुँ लाज न आई ।
 ब्रज परगन सरदार महर तू ताकी करत नन्हाई ।
 पूत सपूत भयो कुल मेरो अब मै जानी बात ।
 मूरश्याम अबलौं तोहि बकस्यो तेरी जानी घात ।

—सू० सा०, पृ० १७५

तुलसी ने इस स्थिति में सूर से अधिक सूक्ष्म भावग्रहणशीलता का परिचय दिया है जो निम्नोद्धृत पंक्तियों से स्पष्ट है—

छाड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई ।

ऐहै सुत देखु बार कालि तेरे , बबै ब्याह की बात चलाई ।

डरिहै सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहै नई दुलहिया सुहाई ।

उबटौं, न्हाहु, गुहौ चोटिया, बलि, देखि भलो वर करहि बडाई ।

—कृष्णगीतावली, पद १३

यशोदा के इन शब्दों के पीछे कवि के मानव मनोविज्ञान की सूक्ष्म परख व्यक्त होती है ।

गोचारण—कृष्ण के गोचारी रूप के प्रति भी कवियों ने अत्यधिक आसक्ति का परिचय दिया है । वास्तव में राजसी वेश की अपेक्षा कृष्ण का सरल वन्य वेश ही कवियों को अधिक आकर्षक लगा । भागवत के 'बर्हापीड नटवरवपुः कर्णयो. कर्णि-कारम्' के अनुरूप कृष्ण को मोर के पंखों का मुकुट धारण किये हुए नटवर वेश में निरूपित करके भूर, मीरां, भालण और नरसी आदि अनेक कवियों ने उनके इस रूप के प्रति अपनी विशेष आसक्ति व्यक्त की है ।^{१६}

गोचारण के प्रसंग में खालवालो के बीच , छाक जीमते हुए, गायों को बुलाते, खेलते और सायंकाल धूल भरे ब्रज को लौटते कृष्ण के विविध मनोभावों एवं रूप-चित्रणों का सरस आलेखन ब्रजभाषा काव्य में उपलब्ध होता है । गुजराती में प्रेमानंद ने पहले पहल गोचारण के लिए बन जाते हुए कृष्ण के प्रति नंद-यशोदा की ममतामयी चिंता और उसी से मिलीजुली प्रसन्नता का अत्यन्त मोहक अंकन किया है । नंद उन्हें पगड़ी पहनाते हैं और यशोदा काजल लगाती है । सज जाने पर कृष्ण दर्पण में अपनी शोभा देखना नहीं भूलते । एक सिरे पर सीके में भोजन बांधकर, लाल लाठी कंधे पर रखकर जब वे वन को चलने लगते हैं तो यशोदा बिना चुम्बन लिये जाने नहीं देती, नंद की आँखों में आँसू आ जाते हैं ।^{१७}

भालण ने कृष्ण के वनचारी रूप के प्रति आसक्त गोपियों की मनोदशा का अतुलनीय भावुकता से वर्णन किया है । एक गोपी को स्त्री होने का ही दुख है क्योंकि इस कारण वह दिन भर कृष्ण के साथ वन में रह नहीं सकती । इसलिए वह सोचती है कि किसी विद्या से यदि वे दिन में पुरुष बन जाती और रात में नारी बनी रहती तो कितना अच्छा होता—

क जो विद्या अवी आवडे रे, थाउं दिवसे नर ने राते नार ।

पगले पगले परवरुं रे, पधारे ज्या प्राणाधार ।

—दशमस्कंध, पृ० ५८

ख. नारीदेह कां सरजियां नही तो रहना जी सग ।

—वही, पृ० ६८

कृष्ण से उसका मन 'साकर दूध' की तरह मिल गया है । वह कभी नंद-यशोदा के भाग्य को सराहती है जिनके ऐसा पुत्र है और कभी वन में थके हुए कृष्ण का पसीना सुखाने के लिए वायु करने की कामना करती है—

‘हूँ वनमाल हिये लगिये अरु हूँ मुरली अधरा रस पीजै’

जैसी लालसा रखने वाली मतिराम की गोपी की तरह वह भी कृष्ण की वाँसुरी बन कर उनके साथ रहने और अधरामृत पाने की अभिलाषा करती है—

धन्य ते नंद जशोमती, जेने अँवो रे तन ।

ब्रह्मा हर रे जाणे नहि, ओ बेहु माहे रे पुन्य ।

आपण सरज्या अभागिया, पूरी प्रीत न थाय ।

स्वेद बले छं रे श्याम ते, जइने कीजे रे वाय ।

जे नव सरज्या रे वाँसली, रहेता प्रभुजी ने पाण ।

अधर अमृत रस चाखतां जे रस वेद पुराण ।

—दशमस्कंध, पृ० ६९

सूरदास ने एक नवीन प्रसंग का सनावेश करके छाक देने के लिए कृष्ण को खोजने में लीन यशोदा द्वारा भेजी हुई ग्वालिन की आतुरता का जो अंकन किया है वह भी कम सराहनीय नहीं है—

छाक लिये शिर श्याम बुलावति ।

ढूढनि फिरति ग्वारि नीके करि कहूँ भेद नहि पावति ।

टेर सुनति काहू की श्रवणनि, तही तुरत उडि घावति ।

पावति नहीं श्याम बलरामोह व्याकुल हूँ पछितावति ।

वृंदावन फिरि फिरि देखति है बोलि उठे तंह ग्वाल ।

सूर श्याम बलराम इहाँ है, छाक लेहु किन लाल ।

—सू० सा०, पृ० १९५

इसके अतिरिक्त कृष्ण के द्वार पर जाकर उन्हें गोचारण के लिए ग्वाल-बाल जो कुछ कहकर बुलाते हैं और जिस आतुरता से कृष्ण बिना मुँह धोये खाते से उठ भागते हैं उन सबका चित्रण जितनी कुशलता से सूर ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है—



द्वारे टेरत है सब ग्वाल कन्हैया आवहु बार भई ।
आवहु वगि विलम जनि लावहु गैया दूरि गई ।
इह सुनतहि दोऊ उठि धाये कछु अँचयो कछु नाही ।
कितिक दूरि सुरभी तुम छाँडी बनतो पहुँची औही ।
ग्वाल कह्यो कछु पहुँची ह्वै हैं कछु मिलिहै मगमाँहीं ।
सूर श्याम बल मोहन भैया भयन पूछत जाँही ।

—सू० सा०, पृ० १२४

इस प्रकार के पारस्परिक सवादों से युक्त लोक-सामान्य जीवन के सहज, सरस और पूर्णतया मौलिक प्रसंगों की उद्भावना तथा उनका भावपूर्ण अकनसूर की ऐसी विशेषता है जो गुजराती कवियों में तो नहीं ही मिलती, साथ ही ब्रजभाषा के कवियों में भी दुष्प्राप्य है । सूरसागर में ऐसे एक नहीं अनेक प्रसंग उपलब्ध होते जिनका परिचय देना भी यहाँ संभव नहीं है ।

२. नंद, वसुदेव, यशोदा और देवकी के उद्गार—कृष्ण काव्य में पुत्र-प्रेम का चरम उत्कर्ष नंद, वसुदेव, यशोदा और देवकी की मनोभावनाओं में मिलता है । नंद और यशोदा की वात्सल्यमयी भाव-वृत्ति का निरूपण तो बालकृष्ण के उपासक कवियों द्वारा प्रायः किया गया है परन्तु वसुदेव और देवकी के हृदय की भावनाओं का भर्त्सपूर्ण आलेखन गुजराती कृष्ण-काव्य की एक विशेषता कहा जा सकता है । ब्रजभाषा के कवियों की तरह नंद-यशोदा के हृदय की अभिव्यक्ति तक ही अपने को सीमित रखकर गुजराती कवियों ने वसुदेव और देवकी के मनोभावों की उपेक्षा नहीं की है । ब्रजभाषा में सूरदास तक ने कृष्ण के ऐश्वर्य-ज्ञान से देवकी के हृदय के सहज मातृत्व को अभिभूत करके उसके प्रति एक प्रकार का उपेक्षा-भाव ही प्रदर्शित किया है । 'दीनदयालु भक्तभयहारी' कृष्ण के कहने मात्र से पुत्र से बरसों के लिए बिछुड़ती माता का विलाप रुक जाता है—

कहि जाको ऐसो सुत बिछुरै सो कैसे जीवै महतारी ।
करि न विलाप देवकी सो कहि दीनदयालु भक्तभयहारी ।

—सू० सा०, पृ० १२६

कंसवध के अनन्तर जब कृष्ण-बलराम उनसे मिलते हैं उस समय भी सूर ने उनके हर्षातिरेक की अभिव्यक्ति के साथ न्याय नहीं किया है । उनको प्रसन्नता होती है और वे उस आवेग में कंस का भंडार भी लुटा देते हैं परन्तु कृष्ण द्वारा प्रबोध पाने पर शीघ्र ही शांत भी हो जाते हैं—

क. तब वसुदेव हरषित गात ।

श्याम रामहि कंठ लाये हरषि देवे मात ।

॥ —सू० सा०, पृ० ६०१

ख. फूले मात पिता दोउ आँनद बढाय कै ।

कस को भँडार सब देत है लुटाइ कै ।

—वही

गुजराती कवियों में भालण, नरसी और प्रेमानन्द ने प्रमुख रूप से देवकी की मर्मव्यथा को पहचाना है और उसे पर्याप्त भावावेग के साथ अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। देवकी को सबसे बड़ा दुःख यह है कि पुत्र तो उसने जाया है परन्तु उत्सव और बधाई यशोदा के द्वार पर होगी। माता होकर भी उसे मातृत्व के अधिकारों एवं सुखों से वंचित रहना पड़ेगा। उसके भाग्य में कृष्ण को जन्म देना भर लिखा था। उनके पालन-पोषण करने और पास रखने के लिए उसे तरसना होगा और दूसरे यह सुख, उसके जीते जी ही, पायेंगे। यही उसकी मर्मव्यथा है और यही उसकी करुण कथा। भालण की देवकी यह सब सोचकर कृष्ण को हृदय से लगा लेती है और वसुदेव के हाथों में पुत्र को सौंपते हुए उसका कलेजा भय से काँप उठता है। कृष्ण के शिशु-जीवन के भाति-भाति के चित्र उसकी आँखों के आगे आ आकर उसे और भी कातर बना जाते हैं—

नानडियो साद देतो आवणे, अधरण अधर ते हसणे रे ।
मारा भाग्य माहे नवल खियु, तेने अतर वसणे रे ।
विषम चरित्र अे विधाता ना, मारे घर थी ओसरियु रे ।
पुत्रजन्म नो आनन्द ओच्छव तेने घर जइ करिये रे ।
तेने घेर तोरण बधाणे, थाणे अति दीवाली रे ।
वेरण विधाताअे शु सरज्यु जे हं [दुखे बाली रे ।
पागे पागे घुघरडी ने, पगलां भरणे लटके रे ।
उतावली आवी ने मलशे अेने हरि त्या मटके रे ।
ते जाण्था बिना जननी थइ, मारो खोलो ठालो रे ।
रूप देखाडी अभिनवु मने मूकी किम चालो रे ।
पुनरपि कहेवारे देखिशु, सुदर मुख रढियालु रे ।
मै राके काइ नव चाले, पछे आंसुडा ढालू रे ।
अेणी पेरे देवकी टलवल्या, हरि ने हैये चांपे रे ।
पीयु तणे कर बालक आपे, मे थी हैडुं कांपे रे ।

—दशमस्कंध, पृ० १८

नन्द ने इसी के समानान्तर देवकी की भावनाओं का चित्रण किया है—

पुत्र धन कमाई जसोदा केरी, माता ते कहेवाशे रे ।
मिथ्या माता हूँ पुत्र तु मारो, पर घेर तोरण बधाशे रे ।
पुत्र ने आपी माता आसुडा ढाले पुत्र छेली अरज हमारी रे ।
क्रोड वरस आयुष्य हजो पुत्र ने, माता लूण नांखे उतारी रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ४३२

—धन्य जसोदा, धन्य जसोदा, वण प्रसवे थई माता ।
कोनुं साच्यु कोण भोगवे, लख्या लेख विधाता ।
कीडी सचे ने तेतर खाअे, तेम थयुं आज माहरे ।
अेक रातनी हु नही माता, पर घेर पुत्र पधारे ।
नदनंदिनी नाथ झुलावशे, ते थी शुं सुख थाशे ।
दीठी रे भाई देवनी लीला, जसोदा घेर गीत गवाशे ।
धमक धुधरी ठमक ठेकडे, सुत गोपी घेर रमशे ।
हु अपराधण हरखे ह णाई, विजोग पुत्रनो दमशे ।
कालां काला वचन बहालाना, जसोदा मात साभलशे ।
बारे मास चोमासुं मारे विजोगे नयणा गलशे ।
मारे वारणे बैठा रखेवाल, राक्षस जेवा मदमाता ।
गोपी ने घेर गुणीजन गाशे, वारणे तारण हाथा ।
मलवा आवशे भाई भोजाई जसोदा नो धन सुख दहाडो ।
मारे कस भाई धाइनो आवशे करमा खड्ग उघाडो ।
सगी मा ते नद नी नारी, हुं आसरे म्हो बोली ।
सामुल्युं कही पोपटी प्रसवे, सुतने हुलावे होली ।
पधारो तात महियारी माता., जीवजो तमे गौचारी ।
आ मनोहर मुखडे क्यारे कहेशे, मुजने माता मारी ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४१

के उक्त पद में कारावासिनी देवकी और गोकुल की रानी पुत्रवती गरिस्थितियों की भिन्नता को अत्यन्त कलात्मक रूप से व्यक्त है। भावातिरेक का भी अधिक स्वाभाविक चित्रण उपलब्ध होता है। हृदय में कृष्ण को अपने मुँह से माता कहने-सुनने की जो अभिलाषा है वह अत्यन्त मानवीय है और माता की सहज मानसिक दशा को न कर देती है।

कृष्ण के मथुरा पहुँच जाने के पश्चात् देवकी के हृदय की दशा का चित्रण करने में भालुण ने अतुलनीय भावुकता एवं कुशलता का परिचय दिया है। देवकी को जब यह समाचार मिलता है कि कंस के चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लों से कृष्ण को युद्ध करता है तो उसे घनी चिंता हो जाती है। वह दासी को समाचार लेने भेजती है और उसके मन में नाना प्रकार के सकल्प उठने लगते हैं।

कृष्ण का मन मथुरा में न लगता देखकर वह बार-बार उन्हें जो कुछ जैसे यशोदा करती थी वह सब वैसे ही करने का आश्वासन देती है। जब कृष्ण चित्र में गाय देखकर विश्वास भरने लगते हैं तो वह कहती है—

सुरभि देखी चित्रनी, सुत का मेलो निश्वास।
कहो तो अही आणविधो रे गोकुलनी सर्व वास हो।
जसोदा करती ते करुं जे कहो मुजने वीर।
संभारी नदनारी ने का नयणे ढालो नीर हो।

परन्तु कृष्ण मनार्थ से नहीं मानते। वे बार बार यशोदा के प्रेम का बखान उसी के आगे करते हैं जिससे उसका दुख और भी बढ़ जाता है। पुत्र तो उसे मिल जाता है पर उसमें जिस भाव के पाने के लिए वह आतुर थी वह नहीं मिलता। जब कृष्ण अन्त तक यही कहते रहते हैं कि मेरे बिना यशोदा जी नहीं सकेंगी तो लाचार होकर समुदेव देवकी को यशोदा के बुलाने की सलाह देते हैं जिससे परिस्थिति और भी अधिक मार्मिक हो जाती है।^{१६}

यह सुनकर देवकी को यशोदा से ईर्ष्या होती है और उस भाव के आवेग में वह यशोदा के किये हुए सारे कार्यों में दोष खोजने लगती है। वह सोचती है कि गायें चरवा-चरवा कर तथा तनिक से माखन के लिए नन्हें से कृष्ण को मार बांध कर सबमुच यशोदा ने बहुत ही क्रूरता की है उसके सुत्र के साथ और तिसपर भी उसे उसके रुपरस का पान करने को मिला। न जाने कैसे वह माता कहलाई—

आपणपे अधिकेरा साधन नद जसोदाजे कीधां रे।
गाय चारवा सरखा कारज, कोटि कर्म ने दीधां।
मही माखण काजे लीजडे बाध्यो, मांड मारवा लीधां रे।
भालण जाणे जननी थइ, अमृत आंखडी पीधा।

—वही, पृ० १७०

भालण ने जितनी मार्मिकता से देवकी की मानसिक अवस्था का चित्रण किया है उतनी ही मार्मिकता से यशोदा और नंद के मनोभावों को भी व्यक्त किया है और इस स्थल पर वे सूर के समकक्ष पहुँच जाते हैं। सूर ने कृष्ण से वियुक्त नंद और यशोदा की दशा का जितना भावपूर्ण अंकन किया है उतना अन्य किसी भी कवि ने नहीं किया। इस क्षेत्र में एकमात्र भालण ही कुछ अशों में उनसे प्रतिस्पर्धा करते हैं। दोनों के भाव निरूपण में बहुत कुछ समानता उपलब्ध होती है परन्तु भावानुभूति के क्षेत्र में सूर से उनकी किसी प्रकार समता नहीं की जा सकती। सूर के भाव-वर्णन में उमड़ते हुए समुद्र की लहरों का आवेग है। सूरसागर में सागर शब्द की यथार्थता ऐसे ही स्थलों से सिद्ध होती है।

सूर की यशोदा किसी दशा में कृष्ण-बलराम को अकूर के साथ भेजने को उद्यत नहीं होती। अत्यन्त भोले भाव से वह अकूर से राजअंश का धन लेकर वयस्क महर के साथ मथुरा लौट जाने को कहती है। उसकी समझ ही में नहीं आता कि नगर में बालकों को क्यों ले जाया जा रहा है—

अपनो लाग लेहु लेखो करि जे कछु राजअंश के दाम ।
और महर ले संग सिधारे नगर कहा लरिकन को काम ।

—सू० सा०, पृ० ५८१

पर जब कृष्ण स्वयं अपने मुँह से मथुरा जाने की बात कहते हैं तो यशोदा को वियोग प्रत्यक्ष और असह्य हो उठता है, वह तत्काल मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं। इस दशा का वर्णन सूर ने जित शब्दों में किया है वे अत्यधिक भावोत्पादक हैं—

जिहि मुख तान कहत ब्रजपति सों, मोहि कहत है माइ ।
तिहि मुख चलन सुनत जीवति हौ विधि सों काह बसाइ ।
को कर कमल मथानी धरिहै को माखन अरि खैहै ।
वर्षत मेघ बहुरि ब्रज ऊपर को गिरिवर कर लैहै ।
हौ बलि बलि इन चरन कमल की इहई रही कन्हाई ।
सूरदास अवलोकि यशोदा धरणि परी मुरझाई ।

—वही, पृ० ५०२

कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं का जिस रूप में यशोदा ने स्मरण किया उससे उनके प्रति उसकी गहन आसक्ति की व्यजना होती है। कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् यशोदा की दशा और भी अधिक चिन्त्य हो जाती है। उसके प्राण कृष्ण से

पुनर्मिलन की आशा में ही शरीर नहीं त्यागते । वह रह रह कर सोचती है कि यदि कृष्ण सचमुच न लौटे तो वह यमुना में डूबकर अवश्य अपने प्राण त्याग देगी—

मनो ही ऐसे ही मरि जँहौं ।

जो न सूर कान्हा अइहँ तौ जाइ यमुन धँसि लैहौं ।

—वही, पृ० ५८७

भालण ने नंद के वापस लौटने में पहले की यशोदा की मन-स्थिति के अन्तर्गत न तो इतनी गहराई से प्रवेश ही किया है और न इतना भावसकुल चित्रण ही । कृष्ण के द्वारा नंद के प्रति कहे गये शब्दों से यशोदा के इस दुःख की ओर उन्होंने संकेत अवश्य कर दिया है ।^{११}

इसी प्रकार नरसी मेहता ने कृष्ण से विछुड़ती हुई यशोदा की मनोभावनाओं का व्यापक चित्रण तो नहीं किया है परन्तु उसकी दुःखानुभूति की तीव्रता को एक पद में अवश्य दिया है । यशोदा कृष्ण को मथुरा में जाकर उच्छृङ्खल न होने की सीख देती हुई अपने अवर्णनीय दुःख को प्रकट करने की चेष्टा करती है । वह एक ओर आसू भर कर बलराम को उनकी रक्षा करने के लिए कहती है, दूसरी ओर कृष्ण के मुख से ही लौट आने की बात भी मुन लेना चाहती है—

लाडकडा वेहेला पधारजो रे, उछंकल नव धाशों रे दयाल ।

नहि राज तही आपणुं रे, बहाला नव मणिये कोने गाल ।

मुख मयंक निरख्या विना रे, हु तो घेली अईश मोरार ।

हरि वेहेला आवजो रे, मारा प्राण जीवन आधार ।

शुभ कामे जाओ हरि रे, तोय हु ने थाय अपशकुन ।

मुज निर्धन ने एक दिकरो रे, मारुं जीवन जगजीवन ।

.....

जगोमती केहे बलराम ने रे, करजो कृष्ण तणुं तुं जतन ।

अम कही आखडली भरे रे, जाणजो रक्तणुं रतन ।

श्यामला तुं मुखे कहे रे, क्या रे आवीश मारा प्राण ।

समय गये निश्चे मरु रे, तुज ने बरकी बरकी जाण ।

—न० कृ० का०, पृ० ६६-६७

केशवदास कायस्थ ने भी अपने 'कृष्णक्रीडाकाव्य' में यशोदा को इसी प्रकार भाव-विह्वल चित्रित किया है । कृष्ण को बुलाने आने वाले अकूर के प्रति तिरस्कार से

‘जा जा’ कहती हुई वह कृष्ण के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है । उनका सारा गोधन चला जाय पर कृष्ण को वह जाने न देगी क्योंकि कृष्ण उसकी आत्मा के आधार हैं—

जा-जा भणती यशोमति महारो धरणीधर नहि धरी ।

प्राणपात्रे अति बाहलो रे आत्मनो आधार ।

.....

गोधन धन लीये सह परग हरि न आपू हंस ।

—श्री कृष्णलीला, पृ० १२२

नंद के वात्सल्यपूर्ण हृदय की कोमलता और राज्यप्राप्त कृष्ण की कठोरता की भालण ने दोनों के सवाद में भली भाँति प्रकट किया है । नंद समझ नहीं पाते कि क्यों कृष्ण ब्रज लौट नहीं चलते । उनके आगे वे अपनी सफाई देते हुए हृदय खोल कर रख देते हैं और अन्त में यह भी कह देते हैं कि यदि कृष्ण नहीं ही लौटे तो वह काशी जा कर सन्यास ग्रहण कर लेंगे क्योंकि उनके लिए कृष्ण अबे की लाठी जैसे हैं—

मैं तमने क्या रे कह्युं छे जे चारवा जाओ गाय जी ।

रमवानी खाते जाता, घर गुंने वारती साय ।

.....

प्राणजीवन तु छे माहरो, गुं कहू बारबार जी ।

अधाने ज्यम लाकड़ी त्यम, तु मुज प्राणआधार ।

.....

जो तमो आवो नहि तो, अमो जाशुं काशी जी ।

गौ गूह सर्व परहरी, थइ रहेशु सन्यासी ।

—द० स्कं०, पृ० १७२

दुखी नंद की भावबारा एक नया मोड़ लेती हैं जब उनकी वृत्ति कृष्ण के क्रूर उत्तरों से प्रताड़ित होकर अपनी पुत्री के अभाव का अनुभव करने लगती है । वसुदेव जिन कृष्ण के बदले उनकी पुत्री मथुरा ले आये थे वे भी उनके पुत्र न निकले और पुत्री भी हाथ से गई । कृष्ण गये तो गये यदि वह पुत्री होती तो घर तो बसता—

अम न जाण्यु रे पुत्र पीयारो आशे ।

घनरावीने हँडे चाप्यो ते छेह दइने जाशे ।

.....

कुंवरी मारी राये गई, अ नव आव्यो हाथ रे ।

शुं कीजे जो झुटी लीधी , दुबलनी ज्यम बाथ ।
 वसुदेवने तो घणाजे छे, अक आपे शु जातु रे ।
 कहानजी ने मोकलता तो, मारु घर मडातुं ।
 अथवा मारी कुवरी रहेती, तोअे त्यां घर वसतु रे ।
 क्या जाउ ने क्या पोकारु दैव दुबल ने मारे रे ।
 तेनु लइ माता ने आपे, बलियाने कोण चारे ।
 बीजो आपसे तो नहि लेउ कदाच साटे बोल रे ।
 चौद लोकमां अेवो नहि भालण प्रभु ने तोल ।

—वही, पृ० १७५

नंद में इस प्रकार का भाव प्रेमानंद ने भी प्रदर्शित किया है—

में उछायों आदर करीरे साचो जाणी पुत्र ।
 तुज माटे गइ दीकरी रे मार्ह उजाड्यु घरसूत्र ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३१७

भाव के क्षेत्र में अथवाका स्थान नहीं होता । नंद की जो भावना भालण तथा प्रेमानंद ने उक्त पंक्तियों में व्यक्त की है वह कृष्ण के प्रति उनके प्रेम की अनन्यता में बाधक सिद्ध होती है । ब्रजभाषा काव्य में कृष्ण के प्रति अनन्य भाव की रक्षा बराबर की गयी है । यह ठीक है कि भालण ने अन्तिम पंक्तियों में दूसरे किसी बालक के स्वीकार न करने की बात कही है जिससे इस भाव-दोष का बहुत कुछ परिहार हो जाता है परन्तु तो भी नंद की ऐसी भावना कृष्ण के प्रति उनके प्रेम की द्वितीय कोटि में ला रखती है । दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो ऐसे कथन में एक विचित्र स्वाभाविकता मिलती है जिसको सूर तक ने परख नहीं पाया । पुत्री देकर पुत्र पाये और जब वह पुत्र भी परसया सिद्ध हो तो एक सामान्य पिता को अपनी पुत्री का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही कहा जायेगा ।

नंद के प्रति कृष्ण अत्यन्त क्रूर होकर उनसे सीधे-सीधे गोकुल लौट जाने की बात कह डालते हैं । देवकी-वसुदेव को अपना माता पिता कह कर वे नंद से सारा नाना तोड़ लेते हैं—

नंद जी गोकुल सांचरो, सुधी कहुं अक बात रे ।
 देवकी माता माहरी, वसुदेव मारो तात रे ।

—दशमस्कंध, पृ० १७५

इस क्रूर उत्तर का एक ही परिणाम होता है कि नंद कृष्ण की निर्दयता से निराश होकर, दशरथ की तरह, मर जाने की बात सोचने लगते हैं—

दया दामोदर तागी क्यां गयी रे, टलबल्यानो नहि वाक रे ।
वापनु सगपण ते टल्युं आवो आवो जाणी मने राक रे ।
धन्य ते जीव्यु दशरथ तणु रामजी जानां गया प्राण रे ।
हैडुं कठिण फाटे नहि जाणे घडियु पापाण रे ।

—वही, पृ० १७६

नंद और दशरथ की भावस्थिति के साम्य और वैषम्य की ओर सूर का भी ध्यान गया पर उन्होंने इसका प्रयोग यशोदा द्वारा नंद को दिये गये उपालभ में किया है । वहाँ वह इतने तीखे ढंग से प्रयुक्त हुआ है कि नंद उसे सुनते ही मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—

कहूँ कहनि सुनी नही दशरथ की करनी ।

यह सुनि नंद व्याकुल हूँ परे मुरछि वरनी ।

—मू० सा०, पृ० ६०६-७

कृष्ण से बिछुडने हुए नंद की मनोदशा का चित्रण सूर ने भी पर्याप्त मार्मिकता से किया है । सूर के कृष्ण भालण के कृष्ण में कम कठोर है । वे माता-पिता विषयक तथ्य को उतनी कटुता से नंद से नहीं कहने जितनी कटुता से भालण ने कहलाया है । एक ओर वे नंद के स्नेह को स्मरण रखने का आश्वासन देकर उसका तिरस्कार नहीं करते, दूसरी ओर मिलन-वियोग की अनिवार्यता और माया-मोह की निस्सारता का, ज्ञान द्वारा-प्रतिपादन करके समझाने की चेष्टा भी करते हैं । भावविभोर नंद के नेत्रों में यह कठोर कथन फिर भी आँसू भर लाता है ।^{१०}

ब्रज लौट जाने की बात सुनने पर नंद के हृदय की विह्वलता का चित्रण सूर ने भालण से कम भावमयता से नहीं किया है । कुछ पंक्तियाँ जो भाव के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करती हैं, निश्चित रूप से अद्वितीय हैं—

गोपालराइ हौ न चरण तजि जैहौ ।

तुमहि छाँड़ि मधुवन मेरे मोहन कहा जाइ ब्रज लँहौ ।

कत हम लागि महारिषु भारे कत आपदा विनासी ।

डारि न दियो कमल कर ते गिरि दवि मरते ब्रजवासी ।

ऊरध स्वास चरणगति थाक्यो नैन नीर न रहाइ ।

सूर नंद के बिछुरे की वेदन मो पै कही न जाइ ।

—सू० सा०, पृ० ६०५

इन पंक्तियों में भाव की तीव्रता, उक्ति वैचित्र्य और अनुभावों की सहज योजना सराहनीय है ।

कृ० का० १८

कृष्ण जब विदा देने लगते हैं तो उनके शब्दों को सुनकर नंद की जो दशा होती है उसके चित्रण में सूर ने और भी अधिक भावों-अनुभावों की संयोजना की है—

उठे कहि माधो इतनी बात ।
होहु विदा घर जाहु गुसाई माने रहियो नात ।
ठाढो थकयो उत्तर नहि आवैं लोचन जलन समात ।
भये बलहीन स्त्रीन तनु कंपित ज्यो बयारिवन पात ।
धकधकात मन बहुत सूर उठि चले नंद पछितात ।

—सू० सा०, पृ० ६०६

सूर की तरह प्रेमानंद ने कृष्ण को भालण के कृष्ण जैसा कूरन चित्रित करके कोमल-हृदय चित्रित किया है। देवकी जब उनसे गोपवेश त्याग कर राजसी वेश धारण करने तथा नंद और गोपों को विदा देने के लिए कहती हैं तो वे गहरी वेदना से भर जाते हैं। नंद को वे किस प्रकार उत्तर देंगे; प्रतिक्षण प्राण अर्पण करने वाली यशोदा का क्या होगा? यह सोच सोच कर उनका मन मसोसने लगता है और आँखें आँसुओं से भर जाती है—

क यशोदा केम जीवे मारु सगपण जाणी फोक ।
पिताने प्रकाशी कहेतां, नंदजी जाय जमलोक ।
.....
जागृत स्वप्न मांहे ध्यानज मारु पुत्रसुखमा बूडी ।
हु बिना टळवळी मरशे, जेम टळवळे टीटूडी ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३१५

ख. केम उत्तर आपु पिताने, केम उत्तर आपु ।
वचन वज्रना प्रहार करी केम कालजडुं कापु ।
.....
तु नही पिता हुं नही बालक कहेता थाय मुखश्याम ।
अेवुं कही ने आसु ढाल्यां, प्रेमानंद प्रभु राम ।

—वही

इन शब्दों से प्रेमानंद ने कृष्ण की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति तो की ही है, साथ ही नंद-यशोदा के प्रेम की व्यंजना भी कर दी है।

देवकी कृष्ण को पुनः नंद-यशोदा का 'सगपण' छोड़ देने की शिक्षा देती हैं परन्तु कृष्ण यशोदा की प्रीति पर सौ 'सगपण' निछावर करने को प्रस्तुत हो जाते हैं—

शु प्रीत जाणो मा मारी रे,

यगोशनी प्रीत उपर सो सगण नाखु वारी रे ।

—वही, पृ० ३१६

जब देवकी समझाकर हार जाती है तो वसुदेव समझाने लगते हैं । वे नंद को विदा देने की बात तो कहते हैं परन्तु उनकी भावना को देखते हुए नंद के प्रति विनयशील तथा कोमल रहने का आदेश भी दे देते हैं । प्रेमानंद ने वसुदेव का चित्रण एक समझदार पिता के रूप में किया है—

आपो नंदजी ने विदाय, आपो नंदजी ने विदाय ।

उत्तर देजो अवी रीते जेस डोशो नव दुखाय ।

—वही

नंद और कृष्ण के सवाद को प्रेमानंद के द्वारा अत्यन्त भावमयता प्राप्त हुई है और कवि ने उसमें दोनों के भावों को सफरतापूर्वक अंकित किया है । नंद कृष्ण की प्रत्येक बाल-क्रीड़ा का स्मरण कर उठने हैं और उन्हें यह सोच कर कि कृष्ण के बिना कौन उन्हें पिता कहेगा, गहरा दुख होता है और जब कृष्ण फिर अपना स्नेह प्रकट करने लगते हैं तो उन्हें मूर्छा आ जाती है—

क—कोण रूडी शिखामण देजो रे, हवे पिता मूने कोण कहेशे रे ।

—वही, पृ० ३१७

ख—धरणे ढलीया नंदजी रे थइ पड़्या अवेत ।

—वही, पृ०

यशोदा की भावस्थिति नंद की अपेक्षा और भी हृदयद्रावक रूप में चित्रित की गयी है । कृष्ण बलराम के बिना उसकी व्याकुलता प्रतिक्षण बढ़ती जाती है । नंद के वापस लौटने की प्रतीक्षा में अत्यन्त उत्कण्ठित होकर वह बार-बार मार्ग की ओर देखती रहती है । जब नंद को आते देखती है तो, कृष्ण के पाने की लालसा से, उन्हें सबसे आगे आकर आतुरता से भेटती है ।

और जब यशोदा को विश्वास हो जाता है कि नंद वास्तव में अकेले ही लौट आये हैं, कृष्ण-बलराम मथुरा में ही रह गये हैं तो उसकी सारी उत्कंठा, आतुरता, लालसा और व्याकुलता एक ही क्षण में तीव्रतम आक्रोश और आवेश में परिणत हो जाती है । नंद को वह एक के बाद एक उगलंभ देने लगती है जो कटु से कटुतर

हो जाते हैं। यशोदा का मातृत्व उसके अन्दर निहित पत्नीत्व से प्रधान हो उठता है और वह नद के जीवित लौट आने पर भी व्यग्न कर डालती है। मनोवैज्ञानिकतया सूर का यह भाव वर्णन मानव-हृदय में उनकी एक विशेष तीव्र अन्तर्दृष्टि एवं पैठ का परिचायक है—

क—उलटि पग कैसे दीन्हों नद ।

छाँडे कहाँ उभय सुत मोहन धिग जीवन मंतिमद ।

कै तुम धन-यौवन-मदमाने कै तुम छूटे बद ।

—वही, पृ० ६०७

ख—यशोदा कान्ह कान्ह कै बूझै ।

फूटि न गई तिहारी चारौ कैसे मारग सूझै ।

इक तनु जरो जात बिन देखे अब तुम दीने फूक ।

यह छतिया मेरे कुँवर कान्ह बिन फाटे न गये द्वै टूक ।

धिग तुम धिग वै चरण अहो पति अधबोलत उठि धाये ।

सूर स्याम बिछुरन की हम पै देन बधाई आये ।

—वही

कृष्ण के बिछुडने पर स्वयं नद यशोदा को बधाई देने आये हैं, यह कथन कितना व्यग्न-पूर्ण और कटु है। कृष्ण ने चलते समय क्या कहा इस उत्सुकतावश यशोदा नंद से प्रश्न करती है परन्तु भावावेग में प्रश्न तो भूल जाता है और मन का आक्रोश उपालंभ बन बन कर पुनः व्यक्त होने लगता है—

नद हरि तुमसों कहा कह्यो ।

सुनि सुनि निठुर वचन मोहन के क्योंकरि हृदय रह्यो ।

छाँडि सनेह चले मदिर कत दौरि न चरन गह्यो ।

फाटि न गयी बज्र की छाती कत यह शूल सह्यो ।

सुरति करत मोहन की बातें नैनन नीर बह्यो ।

सुधिन रही अति गलित गात भयो जनु डसि गयो अह्यो ।

कृष्ण छाँडि गोकुल कत आये चाखन दूध-दह्यो ।

तजे न प्राण सूर दशरथ लौं हुतो जन्म निबह्यो ।

—मू० सा०, पृ० ६०७

नंद की सहनशक्ति व्यंग्य पर व्यंग्य सुनते सुनते समाप्त हो जाती है और वे परिस्थिति को स्पष्ट करने अथवा अपनी सफाई देने का प्रयास न करके यशोदा को ही दोषी

ठहराते हैं । पति-पत्नी के बीच आवेश के क्षणों में परस्पर दोषारोपण की वृत्ति अत्यन्त स्वाभाविक होती है । सूर ने उसे भी परखा है । नद कहते हैं—

तब तू मारिबोई करति ।

रिसनि अगे कहि जो आवत अबलै भौंडे मरति ।

रोस कै कर दाँवरी लै फिरति घर-घर धरति ।

कठिन हिय करि तब जो बाँध्यो अब वृथा करि मरति ।

नृपति कंस बुलाइ पठयो बहुत कै जिय डरति ।

इह कछू विपरीत मो मन माँझ देखी परति ।

होनहारी होइहै सोइ अब यहाँ कत अरति ।

सूर तब किन फेरि राखे पाइ अब केहि परति ।

—वही

आवेश दूर हो जाने के बाद दम्पति उत्तरदायित्व को परस्पर मिलकर स्वीकार करते हैं ।

कोमल चरण कमल कंटक कुश हम उनपै वन गाय चराई ।

—वही, पृ० ६१०

नद के ब्रज लौटने के बाद की भावस्थिति का जो चित्रण भालण ने किया है उसमें भावों में सामान्य उद्दीप्ति ही प्रदर्शित की गई है । सूर की तरह भावना उपालम्भ, व्यग्य और कटूक्तियों तक नहीं पहुँच पाती । इससे कवि की भावानु-भूति की शिथिलता व्यक्त होती है । यशोदा की मातृत्वमयी हृदयवृत्ति के भाव-सघर्ष को भालण भी पूरी तरह परख नहीं सके । यशोदा के उद्गारों में उन्होंने माता की वास्तविक संवेदना को सम्यक् अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की । चिंता, विह्वलता कातरता और आवेश की अपेक्षा यशोदा के शब्दों में जिज्ञासा मिलती है और उनसे उसकी दशा की अपेक्षा उसके पति की दशा का ज्ञान अधिक होता है । नंद की दशा का जो वर्णन हुआ है उसमें अनुभावों का सौन्दर्य अवश्य दर्शनीय है—

नदजी गोकुल आव्या, हलधर श्याम न लाव्या ।

पूछे जशोदा राणी, कंथजी कहो मने वाणी ।

वाणी कहो मारा कंथजी मने, कहान कुंवर क्या रह्या ।

विरह अति वा ला तणो, मे दिवस अति दोहेला सह्या ।

वशीवट के वृन्दावन सुत कुंजमा क्रीडा करे ।

वेण शैं नथी बाजती, जे चित्त सहुअेना हरे ।

.....

चितातुर तमो काय दीसो, जुहारी ज्यम हारिया ।
 व्यापारी बहाण बूडे, रग अवे आविया ।
 स्वेद अगे गात्र भगे, नीर दो नयणे झरे ।
 ऋणे पीड्यो अति घणु निर्धन ज्यम चिता करे ।
 उत्तर वो नथी आपता, दिग्मूढ दीसो दामणा ।
 साथी सघला क्या गया, जे वा' ला विट्ठळजी तणा ।

—दशमस्कंध, पृ० १८६

यशोदा स्वतन्त्र रूप से अपने भावावेग से कुछ निश्चय नहीं कर पाती है । अपने दुख की अभिव्यक्ति के रूप में भी पति की मुखापेक्षिणी बनी रहती है; एक ओर सूर की यशोदा पति के जीवन तक पर कटाक्ष कर सकती है, दूसरी ओर भालण की यशोदा उनकी सम्मति तक का निषेध नहीं कर पाती—

जशोदा कहे हु जाउं, कहो तो निर्लज थाउ ।
 जइने झघडो माडु, कहानजी क्यम छाडु ।

—दशम०, पृ० १८७

कृष्ण के न छोड़ सकने का भाव पर्याप्त विकास नहीं पा सका है । भालण ने नंद की तरह यशोदा को भी कन्या की चिन्ता करते चित्रित किया है जिससे कृष्ण के प्रति उसके प्रेम की अनन्यता पूर्वत्व बाधित हो उठती है । यही, नहीं वह कृष्ण को धूर्त और पुत्री को सुन्दर भी बताती है—

मारी कुवरी लावो, पीयु हैडुं दाझे ताप शमावो ।
 ते अति रूपे रूडी नयणे जुग मोहे ।
 झुमी झघडो करिये ने, जेणे आंगणडे शोहे ।
 तेह पुत्र पर पुत्री वारु जेइ थकी ठरिये ।
 तेणे धूतारे शुं कीजे जेणे दाझी मरिये ।

—वही

यदि पुत्री-प्राप्ति की इच्छा को कृष्ण-प्राप्ति की निराशा से उद्भूत मान कर उसे कृष्ण के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति का रूप-विशेष कहा जाय तो कदाचित् यह भी उचित नहीं होगा; क्योंकि ऐसी दशा में पुत्री के प्रति व्यक्त ममता से आलम्बनत्व का अभाव होना चाहिए जो यशोदा के उक्त भावों में नहीं मिलता है । इन पंक्तियों के अतिरिक्त अन्यत्र भालण ने यशोदा के कृष्ण-प्रेम तथा तज्जन्य वेदना का भी चित्रण किया है । वह अपने प्राण तक त्यागना चाहती है पर विवश है—

प्राण काढ़्या नव निसरे, विण खूटे नव मरिये रे ।
श्यामसुन्दर दीसे नहिं तो, घरमां रही गु करिये ।

—वही, पृ० १९०

यशोदा का देवकी के प्रति ईर्ष्या करना अत्यन्त स्वाभाविक मनोभाव है जिसे भालण ने पकड़ लिया है । यशोदा सोचती है कि वह मथुरा चल कर ही रहे । कृष्ण तो देवने को मिलेगे परन्तु दूसरे ही क्षण कृष्ण के राजवेश और देवकी के प्रति उनके मातृभाव की याद करके उसे क्षोभ और ईर्ष्या हो आती है—

हा हु केम रहु रे अंके न दीसे पेर रे ।
त्यां गये तो सुख नहिं, रह्यु न जाये घेर ।
जाणु मथुरा जइ रहू, जाता वलता दीसे रे ।
अश्व चढी ने चालता जोइ हँडु मारु हीसे ।
दहाडी तो देखीन नहिं रे क्यां रे के तो मलगे रे ।
देवकी ने माता कहेशे त्यारे हँडु मारु वलशे ।

—वही, पृ० १९१

सूर की यशोदा भी मथुरा जाने की इच्छा व्यक्त करती है पर देवकी के प्रति ईर्ष्याभाव उनमें उदित नहीं होता वरन् उसके विरुद्ध दैन्य की प्रधानता हो जाती है—

हौं तौ माई मथुरा हो पै जैहौ ।
दासी ह्वै वसुदेवराइ की दरगन देखन रैहौ ।

—सू० सा०, पृ० ६११

परिस्थिति की मारी विषमता को आत्मसात् कर लेने के बाद दीनता और दुख की एक गहरी छाया यशोदा के मन को छा लेती है । देवकी से अब उसे ईर्ष्या नहीं होती और वह अपनी कष्टना को अपने भीतर ही सहेज समेट कर 'धाय' का पद स्वीकार कर लेती है । अब 'धाय' होने से ही उसे सतोष है, क्योंकि इसी नाते कृष्ण से अपना सम्बन्ध तो वह व्यक्त कर लेती है । इस भावस्थिति को सूर और भालण दोनों ने समान रूप से परख लिया है । सूर ने उसे देवकी के प्रति यशोदा के सदेश रूप में व्यक्त किया है, भालण ने कृष्ण के प्रति पुनरागमन की याचना के रूप में—

सूर— सँदेसो देवकी सो कहियो ।
हौ तौ धाइ तुम्हारे सुत की कृपा करत ही रहियो ।
यदपि टेव तुम जानत उनकी तदपि मोहि कहि आवै ।

प्रातहि उठत तुम्हारे कान्ह को माखन रोटी भावै ।
 तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते ।
 जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती कम-कम करि करि न्हाते ।
 सूर पधिक सुनि भोंहि रैन दिन बढ्यो रहत उर सोच ।
 मेरो अलक लडैतो मोहन ह्वै हँ करत मँकोच ।

—सू० सा०, पृ० ६१२

भालण—

अेकवार आवो आंगणे रे रमवाने यादवराय रे ।
 मुखडु जोवु माहरे रे नहि थाउ तारी माय रे ।
 धाव कही ने बोलावजो रे, मीठडां मुणिये वचन रे ।
 तारा सम छे त्रिकमा रे, नहि दुहवावु मन रे ।

—दशम०, पृ० १९२

ख— धवरावीने हैडे चापती त्यम देवकी नहि चापे रे ।
 रोमाचित मारी देहडी थाती, त्यम तेनी नव कापे ।
 माता नहि थाउ तमारी धाव कही ने जाणो रे ।
 मे बाध्यो जे माखण माटे तेणे रोष भराणो ।

—वही, पृ० १९३

यशोदा द्वारा अपने को 'धाय' मानने की बात देवकी के प्रति कहे जाने में जो मार्मिकता है वह उसके कृष्ण के प्रति कहे जाने की मार्मिकता से कहीं अधिक तीव्र है । अपने साहचर्य और प्रेम को सूर की यशोदा अत्यन्त दैन्य और दुख के साथ व्यक्त करती है । उसका शब्द शब्द व्यजना से पूर्ण है । भालण के भाव-निरूपण में कृष्ण-प्रेम की पर्याप्ति प्रधानता है, तज्जन्य दैन्य और दुख की व्यजना अपेक्षाकृत उतनी तीव्र नहीं है ।

उद्धव के ब्रज में आने पर नद-यशोदा का हृदय पुनः पुनः वियोग से अभिभूत हो उठता है । सूरदास, भालण तथा प्रेमानन्द आदि ने अमरगीत के प्रसंग में भी इनके वात्सल्यपूर्ण उद्गारों का इसी प्रकार निरूपण किया है । सूर ने नद-यशोदा दोनों की भावनाओं को अंकित किया है परन्तु भालण तथा प्रेमानन्द का ध्यान यशोदा के हृदय की दशा पर विशेष केन्द्रित हुआ और इस स्थल पर निश्चय ही वे सूर को पीछे छोड़ गये हैं ।

उद्धव के आने पर सूर ने नद और यशोदा की मानसिक स्थिति का जो चित्रण किया है वह अपूर्ण प्रतीत होता है यद्यपि सामान्यतः दोनों के मनोभावों की अभिव्यक्ति कर दी गई है । वृद्ध दम्पति की पहली जिज्ञासा यह होती है कि क्या कृष्ण कभी हमारा

स्मरण करते हैं । साथ ही उन्हें वासुदेव के वास्तविक रूप को न समझने पर पश्चा-
त्ताप भी होता है—

कबहिं सुधि करत गोपाल हमारी ।
पूछत नद पिता ऊधो सो अरु यशुदा महतारी ।
बहुतै चूक परी अनजानत कहा अबके पछिताने ।
वासुदेव घर भीतर आये मैं अहीर कै जाने ।

—सू० सा०, पृ० ६४७

उद्धव कृष्ण का भावमय संदेश यशोदा से कहते हैं परन्तु सूर ने उसकी कोई प्रति-
क्रिया यशोदा के मानस में प्रदर्शित नहीं की । संदेश में कृष्ण की कोमल भावना का
अत्यन्त मार्मिक अंकन है ।

कृष्ण के प्रेम और ऐश्वर्य-ज्ञान से अभिभूत नद अपनी असमर्थता, अज्ञान तथा
दोषमयता पर गभीर रूप से पछताने लगते हैं और उद्धव के आगे कृष्ण का एक बार
ही दर्शन पाने के लिए विलख उठते हैं—

हमते कछु सेवा न भई ।
धोखे धोखे रहे धोख ही जाने नाहि त्रिलोकमई ।
चरण पकरि करि विनती करिबो सब अपराध क्षमा कीबे ।
ऐसो भाग होइगो कबहूँ, श्याम गोद में लीबे ।
कहै नद आगे ऊधो के एक बेर दरशन दीबे ।
सूरदास स्वामी मिलि अबकै सबै दोष गत कीबे ।

—वही

यशोदा के हृदय में उद्धव से मिलने की उत्सुकता का जो चित्रण प्रेमानन्द ने
किया है वह सूरसागर में नहीं मिलता । कृष्ण के सदृश कोई आ रहा है, इतना
सुनते ही उतावली से बाहे पसारे उठ भागने वाली यशोदा की यह गतिशील भाव-
मुद्रा अनुपमेय है—

मात उठी वेणी छूटी, घणु हाफली हरखे भरी ।
लांबा कर करी भेटवा धाई, आव मलीअे श्रीहरी ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२२

इसी प्रकार प्रेमानन्द द्वारा यशोदा की मनस्थिति का भी अत्यन्त सूक्ष्म स्वाभाविक
एव हृदयद्रावक आलेखन हुआ है । वात्सल्य की अतिशयता में सारा ईर्ष्या-द्वेष खो

जाता हूँ और वह उद्धव से, सूर की यशोदा की तरह, पहले पहल कृष्ण की बात न हरके देवकी-वसुदेव के कल्याण की बात करती है, कृष्ण द्वारा अपने याद किये जाने के सम्बन्ध में उसकी जिज्ञासा इसके बाद प्रकट होती है—

कहो वीरा उद्धव चतुर सुजाण, छे वसुदेव देवकी ने कल्याण ।

कहीये सभारे छे गोकुल ग्राम, मुने सभारे छे सुन्दरश्याम ।

—वही, पृ० ३२३

कृष्ण सम्बन्धी जिज्ञासा ही उसकी वास्तविक जिज्ञासा है, इसका प्रमाण तब मिल जाता है जब वह बार-बार कृष्ण पुष्ट है या दुर्बल, आयेगे या नहीं, आदि प्रश्न पूछती ही चली जाती है—

छे पुष्ट वपु के थया दूबला, प्राणनाथ थया मुजयी वेगला ।

फरी फरी उद्धव ने पूछे माय, अहि आवशे के कहाबी नाय ।

—वही

इस जिज्ञासामयी भावाकुलता एवं विह्वलता के परिणामस्वरूप अनेक पूर्वकृत अथवा सभावित पापों की कल्पना करती हुई अंत में सबका प्रायश्चित्त करने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। उसे कृष्ण से इतना मोह है कि वह उस ककड को भी सहेज रखे है जिससे उन्होंने मटकी फोड़ डाली थी। चादी के जिस कटोरे से नंद दूध पिलाते थे वह भी उसके पास है। कृष्ण से सम्बन्धित खिलौनों और वस्त्रों को उद्धव के आगे दिखा-दिखा कर वह उनका स्मरण करने लगता है—

जेणे भांजी गोली पाषाण नाखी, ते कटका हुं रही छौ राखी ।

नदजी ने हाथे दूध पीता लाडको, उद्धव ते आ रूपानो बाडको ।

मोर पोपट पुतलीयो गेडी दडी, ओ पेली बजाडवानी वासली पडी ।

पाघडी टोपी ने आगला घणा, आ जुवो कामली पीछोडी हरितणां ।

—वही

प्रेमानंद की यशोदा भावनाशील होने के साथ ही कल्पनाशील भी है अतएव वह सोचने लगती है कि यदि उसकी बिनती विधाता सुनले और वह देवकी के साथ ही धर्मराज के आगे जाये तो वे निश्चय ही उसका दुःख देखकर कृष्ण को देवकी से वापस दिला देंगे। कृष्ण नया अवतार धारण करके गोकुल में उसकी कोख से प्रकट होंगे और तब वह उन्हें अपना पुत्र कह कर प्यार कर सकेगी। यशोदा का इस प्रकार का प्रलाप सुनकर जानी उद्धव के भी आँसू बह चलते हैं—

अमो विधाता ने अक विनती करीअ, हुं ने देवकी साथे मरीअ ।
धर्मराज आगलहु जवहुं जइ, ऊभी राखु हुं देवकी ने पालव ग्रही ।
यम राठ चूकावशे खरी, मारो पुत्र अपावशे पाछो करी ।
अवतार लइ गोकुल मा आवीश, अनाअ पुत्रने हु लडावीश ।
अमय शोदाजी रुअ टलवळे, उद्धव ने नयणे आँमु ढळे ।

—वही

काव्य की दृष्टि से कल्पना-मिश्रित यह भावचित्रण अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखता है क्योंकि समस्त कृष्णकाव्य में यह अतुलनीय है । यशोदा की कल्पना वस्तुतः उसकी गभीर अनुभूति की ही व्यञ्जना करती है । यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस वस्तु को व्यक्ति यथार्थ में नहीं प्राप्त कर पाता उसे कल्पना में पाने का प्रयास करता है और इस जन्म के अभावों की पूर्ति अगले जन्म में करना चाहता है ।

प्रेमानन्द की यशोदा उद्धव से कृष्ण को देने के लिए सदेश रूप में जो कुछ कहती है वह उसकी प्रारंभ में अभिव्यक्त भावनाओं के पूर्णतया अनुकूल है । इस प्रकार यशोदा का भावविकास अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुआ है । वह कृष्ण-वलराम के पास देवकी माता तथा वसुदेव पिता को सुखी रहने का सदेश भेजती है और अतः यह भी कहला देती है कि मुझ अनाथ से भी एक बार मिल जाना । अगर अकेले देवकी न आने दे तो उसे साथ लेते आना—

ओधवजी कहेजो वन्यो भ्रातने, सुखेणी करजो देवकी मात ने ॥
रखे छेह देता वसुदेव तातने, अकवार मलजो अमो अनाथ ने ।
दुर्लभ जाणी गोपने को समे गोकुल आवजो ।
धीरे नही जो देवकी तो साथे तेडी लावजो ।

—वही, पृ० ३३१

उद्धव को विदा करते समय यशोदा के अन्तस्तल में उठने वाली भावनाओं को भालण और सूर दोनों ने व्यक्त किया है परन्तु निश्चय ही प्रेमानन्द की सी मार्मिकता वे उत्पन्न नहीं कर सके ।

देवकी के प्रति संदेश कहलाते हुए भालण की यशोदा पुत्र-सुख के गत क्षणों की स्मृति में विभोर होकर कृष्ण की प्रत्येक मनोमोहक क्रीड़ा का ध्यान करने लगती है । उस सुख को पाने के लिए पुनर्जन्म धारण करने की लालसा उसके हृदय में भी उत्पन्न होती है—

उद्धव कहेजो, उद्धव कहेजो, देवकी ने अंक बात रे ।
 पुत्रतणा सुख अमो भोगव्या, हवे तमो थाओ मात रे ।
 पुनरपि द्वापर गोकुल माहे, कहानजी अवतरशे रे ।
 तयारे भालण प्रभु रघुनदन अमशुं अमज करशे रे ।

—दशम स्कंध, पृ० २२३

एक अन्य पद में वह कृष्ण के प्रिय व्यजन बनाती हुई दिखाई देती है वह चाहती है कि कृष्ण एक बार ही आकर उसे कृतार्थ कर जाय । जिसे उसने हृदय से चिपकाये रक्खा उसे कैसे विसार दे; जन्म-जन्म तक यदि वह कृष्ण की धाय ही बनती रहे तो भी उसे सुख होगा—

आज मे राध्यो ढूढण धोइ रे, वाटकी जोइ कृष्ण देवनी रे ।
 आज मे राध्यो कूर कातलीयो रे, कृष्ण ने पातलियो मारे प्रोहोणो रे ।
 हैडे चाप्यो क्यमकरी विसारु रे वायुं ने मन रहेशी पेर रे ।
 भव भव थाउं धाव हु ताहरी रे, मारीने आश तमो पूरजो रे ।

—वही, पृ० २२५

सूरदास की यशोदा नाना प्रकार से अपना दुख समझा कर अंत में कृष्ण को अपना आशीर्वाद कहला भेजती है । साथ ही वह घी-भरी दोहनी और मुरली आदि भी देती है जिससे उसके हृदय की गहरी वेदना की प्रीति का परिचय मिलता है ।

कहियौ यशुमति की आशीस ।
 जहाँ रहो तहाँ नंदलाडिलो जीवो कोटि बरीस ।
 मुरली दई दोहिनी घृत भरि ऊधो धरि लइ शीस ।
 यह घृत तौ उनही मुरभिन को जो प्यारी जगदीश ।

—सू० सा० पृ० ७१४

३. रासलीला—रास को सामान्यतः कवियों ने आनंद-उल्लास, नृत्य-संगीत तथा प्रेम-मिलन के महापर्व के रूप में वर्णित किया है । कुछ कवियों ने उसकी विराटता एवं आध्यात्मिकता पर विशेष बल दिया है । बहुत कम कवि ऐसे हैं जिन्होंने अलौकिक नृत्यगीतमय आनंद की सहज स्थिति के बीच उदासी, दुख, उत्सुकता, विरह-कातरता, उद्विग्नता तथा तन्मयता आदि मानवीय भावों के लिए भी स्थान खोज निकाला हो और स्वतन्त्रता के साथ उनका विस्तार किया हो । सूरदास, नंददास तथा प्रेमानंद ने ऐसा ही किया है । नरसी मेहता का रास-वर्णन कृष्ण गोपियों के संयुक्त

नृत्य के नाद-पूरित आनंदमय वातावरण को अनेक रूपों में अनेक प्रकार से प्रस्तुत करता है । उसमें मानवीय भावों के आलेखन का आग्रह नहीं है । रास के इस पक्ष ने नरसी को इतना मुग्ध किया कि वे उसके भाव पक्ष की ओर ठीक से दृष्टिपात न कर सके । जहाँ कहीं भी रास के प्रमग में भाव-चित्रण की ओर उनका झुकाव हुआ वहाँ वे अधिक से अधिक गोपियों की नृत्योत्सुकता, कृष्ण को रिझाने की लालसा, विलास-वासना, प्रिय की समीपता से उत्पन्न प्रसन्नता तथा मुग्धता का ही वर्णन कर सके हैं । शारदी पूर्णिमा की शुभ्र चादनी में यमुना-तट पर होने वाले रास के नादमय एव गति-शील दृश्य को प्रत्यक्ष करने की ओर उनका विशेष आग्रह रहा है । ब्रजभाषा के भी अनेक कवियों में रास-वर्णन में दृश्य-निरूपण की अपेक्षा भाव-निरूपण की ओर कम ध्यान दिया है । फिर थोड़ा-बहुत जो भाव-निरूपण इन कवियों ने किया है वह भागवत के आश्रित और अनुकरणमूलक होने के कारण विशेष महत्त्व नहीं रखता । जैसा निर्देश किया जा चुका है सूरदास, नंद दास तथा प्रेमानंद की स्थिति इनसे भिन्न है । भागवत का आधार लेते हुए भी भाव-चित्रण में इन कवियों ने पर्याप्त स्वतन्त्रता से काम लिया है और अनुकरण करते हुए भी अपनी अनुभूति से भावों का अधिकाधिक विस्तार किया है ।

रास का प्रारम्भ कृष्ण के वेणुवादन से होता है । उनकी वंशी में चराचर को विमुग्ध कर देने की शक्ति है, गोपियाँ तो योंही कृष्ण पर अनुरक्त रही । कात्यायनी-व्रत के द्वारा उन्होंने कृष्ण को प्राप्त करने का उपक्रम भी किया । अर्धरात्रि में ज्योत्स्ना के शत शत आवरणों को वेधती हुई जब अपार सम्मोहन लिये प्रिय की वंशी मधुर स्वर से उनका आवाहन करती है तो उन्हें एक विचित्र प्रकार का आह्लाद मिश्रित उन्माद होता है जिसमें सारा गृह-काज, सारी लोक-लाज तिरोहित हो जाती है कृष्ण के पास जा पहुँचने की उतावली वे सारे कार्य अधूरे छोड़ देती हैं अथवा उन्हें विपरीत ढंग से करने लग जाती हैं । भागवतकार ने गोपियों की इस मनःस्थिति को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है—

बुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।

पयोऽधिभित्त्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥५॥

परिवेषयन्त्यस्तद्वित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।

शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदशनन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥६॥

लिम्पन्त्यः प्रमूजन्त्योऽन्था अंजन्त्यः काश्च लोचने ।

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥७॥

—दशमस्कंध, अध्याय २९

सूरदास न परिस्थिति को आत्मसात् करके गोपियों की आतुरता एवं व्याकुलता को जो अभिव्यक्ति प्रदान की है वह भागवत की मुखापेक्षिणी मात्र नहीं है। आभूषणों की अस्तव्यस्तता का जो संकेत भागवत में है उसे अत्यन्त स्वाभाविकता एवं मौलिकता से उन्होंने स्पष्ट किया है।

सुनि मुरली-सबद ब्रजनारि ।
करति अंग शृंगार भूली काम गयी तनु मारि ।
चरण सों गहि हार बांध्यो नैन देखत नाहि ।
कचुकी कटि साजि लहँगा धरति हिरदय माहि ।
चतुरता हरि चोरि लीन्ही भई भोरी बाल ।
सूर प्रभु रति काम मोहन रासरुचि नंदलाल ।

—सू० सा०, पृ० ४३१

यही नहीं, कृष्ण के आकर्षण के समक्ष ससार के समस्त आकर्षणों एवं सम्बन्धों के प्रति जो उपेक्षा-भाव गोपियों के हृदय में उत्पन्न होता है उसका वर्णन सूर ने भी अत्यन्त कुशलता के साथ किया है।

चली बन वेणु सुनत जब धाइ ।
मात पिता बधन इक त्रासत जाति कहीं अकुलाइ ।
सकुच नहीं, शका हू नाही रँनि कहीं तुम जाति ।
जननी कहति दर्ई की घाली काहे को इतराति ।
मानति नहीं और रिस पावति निकसी नातो तोरि ।
जैसे जलप्रवाह भादों को सो को सकै बहोरि ।
ज्यों कैचुरी भुजंगम त्यागत मात पिता यों त्यागे ।
सूर श्याम के हाथ बिकानी अलि अबुज अनुरागे ।

—वही

जाती हुई गोपी की जननी के भावावेगमय शब्दों को अत्यन्त स्वाभाविक रूप में व्यक्त करके परिस्थिति को सजीवता प्रदान की गयी है तथा अनेक सटीक उपमाओं से भाव को विशेष बल मिला है।

प्रेमानंद ने प्रेमजन्य उत्सुकता के अतिरेक को व्यक्त करने वाले विभ्रम को अधिक विस्तार प्रदान किया है। आभूषणों की अस्तव्यस्तता के अभिनव उदाहरण तो दिये ही हैं, साथ ही अनेक नवीन परिस्थितियों का सृजन करके कल्पना-वैभव तथा भावाभिव्यक्ति की विशेष क्षमता का परिचय भी दिया गया है। साथ ही स्वाभाविकता की सर्वत्र रक्षा की गयी है—



कोइक नहाता नाद साभल्यो मन थयु हरिमा मग्न रे ।
 ते जळे निगलती उठी चाली वस्त्र बहोणी नग्न ।
 अबलां आभरण भूषण पेहेर्या मनडुं रह्यु जुगदीश रे ।
 ओढणी पेहेरी कटि सगाथे चरणां ओढ्या शीश ।
 ओक बाहे पेहेरी चोलीनी , माहे अबळो आण्यो हाथ रे ।
 ओक स्तन उघाडु दीसे जेम देहेरा विना उमयानाथ ।
 को काजले करी ने सेथो पूरे को नयणे आजे सीन्दुर रे ।
 को कोई ने प्रीछे नही बाला प्रेम उदधीनुं पूर ।
 करमुद्रिका पग अगुलिये, विछुवा कर अंगुली माये रे ।
 चरणना झांझर काने पेहेर्या कर ककण पेहेर्या पाये ।
 कटि मेखला कंठे पेहेरी कटि विठ्या मोती हार रे ।
 गलुबंध पावलीये बाध्यो पग घूघरी कठ घमकार ।
 गोफणे बाजुबध ने स्थानक पहोचे बाध्या शिशकूल रे ।
 आभूषण भारगमा पडता जेना मोघा मूल ।

—श्रीम० भा० पृ० २८८

यहाँ प्रेमानन्द ने इतने उदाहरण एक के बाद एक प्रस्तुत किये हैं कि उनमें एकरसता का आभास आने लगता है परन्तु उनकी कल्पनाशक्ति की स्वतन्त्रता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता । एकस्वरता से भावाभिव्यक्ति को जो आघात पहुँचता है उसका परिहार परिस्थितियों की नवीनता के द्वारा हो जाता है । अपूर्ण रूप से बद्ध आभूषणों के मार्ग में गिर जाने का उल्लेख कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है । इस प्रकार अस्तव्यस्त गोपिया जब कृष्ण के समीप पहुँचीं तो उन्होंने प्रेम की परीक्षा लेने के उद्देश्य से घर वापस लौट जाने के लिए कहा । जिसके लिए गोपियो ने माता, पिता, पति, पुत्र सभी को त्याग कर निशीथ में निर्जन वन के बीच आना स्वीकार किया उसी के मुख से इस प्रकार के कठोर शब्द सुनकर उनका सारा उल्लास शिथिल हो गया और वे दुःख से कातर हो उठी । कवियो ने गोपियों की इस मर्म वेदना को परखा । सूरदास ने उनके हृदय की अनन्य प्रीति को भावविह्वल उद्गारों के द्वारा व्यक्त किया । प्रेमानन्द ने दुःख की दशा को चित्रित करने वाली अनेक भावमुद्राओं की संयोजना की जिसकी प्रेरणा उन्हें भागवत के 'चरणेन भुवं लिखन्त्यः' से मिली । इस आकस्मिक प्रहार से आहत गोपियो के स्तम्भित एवं शिथिल शरीर की अवस्था को अभिव्यक्ति प्रदान करने में नन्ददास ने भी पर्याप्त तन्मयता प्रदर्शित की है । उनके वर्णन में भावमुद्राओं के साथ अनुभावों तथा उपमाओं का विचित्र संगुफन मिलता है—

सूर—क. श्याम उर प्रीति मुख कपट बना ।
 युवती व्याकुल भई धरणि सब गिरि गई
 आश गई टूटि नहि भेद जानी ।

—सू० सा०, पृ० ४३३

ख. तुम पावत हम घोष न जाहि ।
 कहा जाइ लैहै हम ब्रज में, हम यह दरशन त्रिभुवन मे नाहि ।
 तुमहू ते ब्रज हित कोऊ नहि कोटि कहौ नहि मानै ।
 काके पिता मात है काके काहू हम नहि जानै ।
 काके पति सुत मोह कौन को घर हैं कहा पठावत ।
 कैसो धर्म, पाप है कैसो, आश निराश करावत ।
 हम जानै केवल तुमही को और वृथा संसार ।
 सूर श्याम निठुराई तजिये तजिये वचन विसार ।

—सू० सा०, पृ० ४३४

ग. सुनहु श्याम अब करहु चतुरई क्यों तुम वेणु बजाइ बुलाई ।
 विधि-मरजाद लोक की लज्जा सबै त्यागि हम धाई आई ।

—वही

प्रेमानंद—उत्तर आप्यो अविनाश मर्मनी बात कही ।
 हतो उत्साह सह नार रूपे झांबी थई ।
 करें माहोमांही अवलोकन, कर्मनी बात कहे ।
 ऊडा मूके निश्वास ललाटे हाथ दीअे ।
 को मुख ऊपर दे हाथ, बढवा दोडती ।
 को नयणा चढावी जोय, नथी दृष्ट चोरती ।
 को करी हस्तनां चिन्ह हरि कने आवती ।
 को अधर डसी ने जोय, हरिने विह्वडावती ।
 को कर पर देइ कपोल, वेसे शिथिल थई ।
 कोइ अेक मागे मर्ण, विधि कने ऊभी रही ।
 को निंदे कात्यायनी व्रत, सुकृत वृथा थयु ।
 अेणे जोयां नग्न शरीर, आज ब्रह्मचर्य गयुं ।
 को झटके लांबा केश, अंबोडो फरी वाले ।
 को ले अगुली मुखमाहे नयणे जल ढाले ।

को नमी करे नमस्कार, हरिना गुण जणती ।

को अलवेली करे आल, अंगुठे धरा खणती ।

—श्रीम० भा०, पृ० २५९

उक्त पंक्तियों में प्रेमानंद ने भावमुद्राओं के साथ हृदय के उद्गारों का भी वर्णन किया है परन्तु उनमें सूर जैसी विह्वलता के दर्शन नहीं होते । प्रेमानंद की तरह सूर ने गोपियों को अपने किये का पश्चात्ताप करते नहीं दिखाया । उनकी गोपिया अन तक कृष्ण को अपने प्रेम का विश्वास दिलाना चाहती है । पश्चात्ताप की भावना प्रेम को चरमोत्कर्ष तक नहीं पहुँचने देती, यद्यपि वह भी एक मानवीय वृत्ति ही है और मनोहर भी । यों प्रेमानंद ने गोपियों के उद्गारों में अनन्यता तथा प्रेमातिरेक का भी वर्णन किया है —

अमो मेली पतिकुल लाज, बालक परहर्यां ।

अमो अमारां शीष तारे चरण धर्यां ।

तुने मलता धाशे अधर्म तो थावा द्यो सुखे ।

शुं अधिकु करशे यमराय, नाखशे नरक विखे ।

—वही

नंददास ने इस अवसर पर कृष्ण के शब्दों की गोपियों पर होने वाली प्रतिक्रिया का अनुभावों द्वारा चित्रण किया है—

नंददास—

जब पिय कह्यो घर जाहु, अधिक चित चिंता बाढी ।

पुतरिन की सी पाँति रहि गई इक-टक ठाढी ।

दुख के बोज छवि सीव ग्रीव, नै चली नाल सी ।

अलक अलिन के भार नमित मनु कमल माल सी ।

हिय भरि विरह हुतास, उसासनि सग आवत अर ।

चले कछू मुरझाई मधुभरे अवर बिब वर ।

तब बोली ब्रज-बाल, लाल मोहन अनुरागी ।

सुन्दर गदगद गिरा गिरिधरहि मधुरी लागी ।

—नंददास, पृ० १६३

गोपियों की उदासी एवं दुख का परिहार तब होता है जब कृष्ण उनके साथ रास करना स्वीकार कर लेते हैं । सूर ने इस अवसर पर गोपियों की प्रसन्नता का जैसा अंकन किया है वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं किया । कृष्ण और गोपियों के मन की मुख्य अभिलाषा मूर्त होने जा रही थी अतएत भाव के साथ अनुभाव और अनुभाव के साथ चेष्टाएँ स्वतः प्रकट हो उठी—

हरि मुख देखि भूले नैन ।
 हृदय हरषित प्रेम गदगद मुख न आवत बैन ।
 काम आतुर भजी गोपी हरि मिले तेहि भाइ ।
 प्रेमवश्य कृपालु केशव जानि लेत सुभाइ ।
 परस्पर मिलि हँसन रहसत हरषि करत विलास ।
 उमगि आनदसिधु उछल्यो श्याम के अभिलाष ।
 मिलति डक डक भुजनि भरि भरि रास रुचि जिय आनि ।
 तेहि समय सुख श्याम-श्यामा सूर क्यों कहै गानि ।

—सू० सा०, पृ० ४३६

जैसा निरूपित किया जा चुका है, उत्सुकता तथा आतुरता के भाव के कारण आभूषणों एवं वस्त्रों की विपर्यस्तता का वर्णन तो अनेक कवियों ने किया है, परन्तु विपर्यस्त वस्त्राभूषणों के कारण उत्पन्न एक नवीन भावस्थिति का वर्णन सूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया है—

रास रुचि जवाह श्याम मन आनी ।
 करहु शृंगार सँवारि सुन्दरी हँमत कहत हरि वानी ।
 जो देखे अँग उलटे भूषण तब तरुनिन मुसुकानी ।
 बारबार देखि पिय को मुख पुनि पुनि युवति लजानी ।

—सू०, सा० पृ० ४३६

वस्तुतः परिस्थिति के अनुकूल भावों की योजना तथा भावों के अनुकूल परिस्थिति की योजना अपनी मौलिक कल्पना एवं अन्तर्दृष्टि के आधार पर करते जाना सूर का स्वभाव है । जितनी पूर्णता से भाव और स्थिति को वे आत्मसात् कर पाते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है । गुजराती तथा ब्रजभाषा का कोई कवि इस दिशा में उनकी समानता नहीं कर पाता । उक्त प्रसंग इसका एक उदाहरण है । सारे सूरसागर में ऐसे अगणित उदाहरण मिलते हैं । रास के प्रसंग में ही कई कवियों ने राधाकृष्ण के व्याह का वर्णन किया है परन्तु सूर की तरह इस अवसर पर ककण खोलने के साथ व्यंग्य परिहास एवं आनंद के मनोभावों का संयोजन किसी ने नहीं किया है—

नहिं छूटे मोहन डोरना हो ।
 बड़े हो बहुत बछोरियो हो ये गोकुल के राइ ।
 की कर जोरि करौ विनती कै छुवौ श्री राधाजी के पाइ ।
 यह न होइ गिरि को धरिबो हो सुनहुँ कुँवर गोपीनाथ ।

आपन को तुम बड़े कहावत काँपन लागे हैं दोउ हाथ ।
बहुरि सिमिटि ब्रज सुन्दरी मिलि दीन्ही गाठि बनाइ ।
छोरहु वेगि कि आनहु अपनी यशुमति माइ बुलाइ ।

—सू० सा०, पृ० ४४२-४३

रास के बीच जब कृष्ण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं उस समय गोपियों पुनः विरह-वेदना तथा दुख से कातर हो उठती हैं । उनकी यह कातरता इस सीमा पर पहुँच जाती है कि वे लत, द्रुम, पशु-पक्षी आदि सभी चेतन, अचेतन पदार्थों से कृष्ण का पता पूछने लगती हैं । भागवत में दशम स्कंध के तीसवें अध्याय में इस प्रकार का वर्णन है जिसका निर्देश वर्ण्य वस्तु के प्रसंग में किया जा चुका है । अनेक कवियों ने भागवत का अनुकरण करते हुए गोपियों की इस मनःस्थिति का चित्रण किया है परन्तु इसमें नंददास की अद्वितीय सफलता मिली है । कृष्ण को खोजती हुई गोपियों के हृदय के साथ जितनी तन्मयता उनके हृदय की हो सकी है उतनी अन्य किसी कवि में नहीं मिलती । नंददास की रासपचाध्यायी का यह स्थल भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से श्रेष्ठतम काव्य की कोटि में रक्खा जा सकता है । उनका वर्णन किसी प्रकार अनुकरण मूलक प्रतीत नहीं होता —

हैं गई विरह विकल मन, बूझत द्रुम वेली बन ।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत विरही जन ।
हे मालति ! हे जाति ! जूथिके ! सुनि हित दै चित ।
मानहरन, मनहरन लाल गिरिधरन लहे इत ।
हे केतकि, इत तै चितये, कितहुं पिय रुसे ।
किधौं नंद नदन मद मुसकि तुम्हरे मन मूसे ।
हे मुक्ताफल बेलि धरे मुक्ताफल माला ।
देखे हैं नैन विसाल, मोहना नंद के लाला ।
हे मदार उदार, बीर करबीर महामति ।
देखे कहूँ बलबीर धीर, मनहरन, धीरगति ।
हे चंदन, दुखकंदन सब की जुरनि जुडावहु ।
नंदनदन, जगवंदन, चंदन हमहि बतावहु ।
पूछहु री इन लतनि फूलि रही फूलन जोई ।
सुन्दर पिय कर परस बिना अस फूल न होई ।
हे सखि, हे मृगबध्, इनहि किन पूछहु अनुसरि ।
डहडहे इनके नैन अबै कहूँ देखे हैं हरि ।

—नंददास, पृ० १६७-६८

उद्धरण की दूसरी पंक्ति कालिदास के मेघदूत की उक्ति 'कामर्ता हि प्रकृति कृपणा-
श्चेतनाचेतनेषु' से स्पर्धा करती है। फूलों से लदी हुई लता को देख कर कहना कि बिना
प्रिय के स्पर्श के ऐसी प्रफुल्लता हो ही नहीं सकती, प्रेमी के भावविभोर हृदय के भोले
विश्वास का परिचायक है। इसी तरह मृगवधू के डहडहे नेत्रों ने अवश्य प्रिय को
देखा होगा, इसी कारण उनमें डहडहापन है, जैसी भावनाएँ भी अत्यन्त सरल एवं
निश्छल प्रेम को ही व्यक्त करती हैं। गुजराती कवि नरसी मेहता ने अपने रास-
वर्णन के एक पद में इस स्थिति का जो वर्णन किया है वह नंददास के उक्त उद्धरण के
आगे बहुत फीका लगता है। नंददास की तरह इस स्थल पर वे तन्मय न हो सके—

पुछती हिंडे कल्पद्रुम वेली, तरुअर ताल तमाल रे ।

हरि हरि करती नयणे जल भरती, कोणे दीठडो नंदजी नो लाल ।

—न० कृ० का०, पृ० १९५

रासलीला के अन्तर्गत भावाभिव्यक्ति के प्रधान स्थल यही हैं।

४. **दानलीला**—दही बेचने मथुरा जाती हुई गोपियों से कर रूप में कृष्ण का
दधि-दान मागता दानलीला की मुख्य घटना है जिसका विस्तार करके कवियों ने
भावाभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त क्षेत्र खोज लिया। बाह्यतः दान के औचित्य को लेकर
वाद-विवाद का सूत्रपात होता है जो भावातिरेक की सीमा पर पहुँच कर मुक्त संघर्ष का
रूप धारण कर लेता है; परन्तु सारे वाद-विवाद, सारे संघर्ष के अन्तर्गत विशुद्ध एवं
प्रगाढ़ प्रेम की एक विचित्र अन्तस्सलिला प्रवाहित होती रहती है जिसको रसमय
अभिव्यक्ति कहना ही प्रायः कवियों का लक्ष्य रहा है। सूर ने अपनी दानलीलाओं में
शृंगारमयी भावभूमि को स्पष्ट आध्यात्मिक सकेतों से सयुक्त करके उच्चतर बनाने
का सफल प्रयास किया है और साथ ही भावनाओं की सूक्ष्मतम अनुभूतियों को अनेका-
नेक रूपों में प्रकट करते हुए उन्हें चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। गुजराती तथा
ब्रजभाषा के सभी कवि इस क्षेत्र में उनसे बहुत पीछे छूट गये हैं यद्यपि भावाभिव्यक्ति
की दृष्टि से सूर तथा अन्य कवियों में पर्याप्त समानता है और भाववस्तु भी प्रायः एक-
सी ही है।]

कृष्ण की ओर से दान मांगे जाने पर गोपियों को आश्चर्य होता है, क्योंकि उनके
ब्रज में ऐसा कभी हुआ ही नहीं। वे कृष्ण के अधिकार प्रदर्शन पर तीव्रतम व्यंग्य कर
उठती हैं। कृष्ण की पिछली सारी करतूतें उन्हें याद आती हैं। भावावेग में वे विविध
प्रकार से कृष्ण की आलोचना करने लगती हैं। उनके व्यंग्य वचनों तथा उपालभों

के पीछे से उनके हृदय का वास्तविक सत्य झलकता रहता है । कवियों ने गोपियों की इस मनोदशा को परखने और व्यक्त करने की पूरी चेष्टा की है । इन सम्बन्ध में जो वाद-विवाद कवियों ने कराया है उसकी वचन-वक्तता तथा भाव-भंगिमा दर्शनीय है ।

भूर की 'ग्वालि' ज्योंही यह जान पाती कि दान की याचना कृष्ण ने की त्योंही उसकी भावमुद्रा व्यंग्यात्मक हो जाती है—

तव हँसि बोली ग्वालि नाम जब कान्ह सुनायो ।
चोरी भरयो न पेट आनि अब दान लगायो ।
कालिहि घर घर डोलते खाते दही चुराइ ।
रानि कछू सपनो भयो प्रात भई ठकुराइ ।
हमहि कहत हौ चोरटी आपु भयो हौ साहु ।
चोरी करत बड़े भये मही छाक लै खाहु ।

—भू० सा०, पृ० २९७-९८

निषेध के पीछे स्वीकृति, 'नाहीं' के पीछे 'हाँ' छिपाये रखना स्त्री-स्वभाव की प्रसिद्ध विशेषता है । बाहर बाहर कृष्ण के दान माँगने से खीझने वाली ग्वालिन भीतर भीतर उन पर कितनी अनुरक्त है, इसे सूर ने निम्न पद में अत्यन्त कुशलता से व्यक्त किया है—

भोरहि ते कान्ह करत मोसो झगरो ।
औरत छाँड़ि परे हठ हमसों दिन प्रति कलह करत नहिं डगरो ।
अनबोहिनी तनक नहिं दैहौं ऐसेहि छीनि लेहु बरु सगरो ।
सब कोउ जात मधुपुरी बेचन कौने दियो दिखावहु कगरो ।
अंचल ऐचि ऐचि राखत हौ जान देहु अब होत है दगरो ।
मुख चूमति हंसि कंठ लगावति आपुहि कहति न लाल अचगरो ।
सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छाँड़हु दियो परत नहिं पगरो ।
परम मगन है रही चितै मुख सबते भाग याहि को अगरो ।

—सू० सा०, पृ० २९९

'ऐसेहि छीनि लेहु बरु सगरो' कहने से दही के छीने जाने से उत्पन्न होने वाली सुखानुभूति और तदर्थ स्वीकृति की पूर्ण व्यजना होती है जिसे कवि ने अन्तिम शक्तियों में बहुत स्पष्ट कर दिया है ।

इसी प्रकार भालण की भी एक गोपी उत्तर देते समय व्यंग्यात्मक शब्दों के साथ आत्मश्लाघा करती जाती है परन्तु वस्तुतः उसका हृदय कृष्ण पर आसक्त है—

गाय चारो नदनी तो दाणी तुं कोने कयों ।
चोरी ने दूध दहि खातो पीयारे तु उछयों ।
बीहावो ते बीजी ने भोली होये भामिनी ।
तम थकी हु अधिकुं छु रे कुटिल विद्या कामिनी ।
वीहे ते तो वले आपे, बीक मारे छे कशी ।
भालण प्रभु रघुनाथ ने कह प्रीति रीते मन वशी ।

—द० स्क० पृ० १००-१०१

एक अन्य परकीया गोपी कृष्ण से अपना हाथ छुड़ाती हुई जो कुछ कहती है उससे उसकी मधुर अनुरक्ति पूरी तरह व्यजित होती है । एक ओर तो वह कृष्ण को सीख देती जाती है, दूसरी ओर अपनी परवशता तथा स्नेहविभोरता को भी छिपाना नहीं चाहती । पहले कहती है कि हाथ छोड़ दो, मेरी कोमल उगली मत मरोड़ो, अब कभी नहीं आऊंगी । फिर कहती है कि कल नद तुम्हारा ब्याह कर देंगे, सुन्दर स्त्री आयेगी, कहीं परस्त्री से घर बसता है ।

बहुत कुछ उसके इतने कथन से ही प्रकट हो जाता है । इसके पश्चात् जब वह चतुराई की दुहाई देकर कृष्ण से घर जाने के लिए कहती है और वहाँ बातें करने योग्य एकान्त का अभाव तथा सखियों के आने का भय बताती है तो जो कुछ रहा सहा है वह भी स्पष्ट हो जाता है ।^{२१}

नरसी और प्रेमानंद ने भी अपनी-अपनी रीति से गोपी के हृदय की गुप्त प्रीति को प्रकट किया है । नरसी ने आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से भावमुद्रा को अत्यन्त मनोहारी रूप में चित्रित किया है—

‘मुख आडो, पालव ग्रही, ताण्यां भवाना बाण ।

नयन कटाक्षे तिहाली ने बोली, ‘प्रभु शानां मागो छो दाण’ ।

—न० कृ० का०, पृ० १५६

अपने सौन्दर्य को प्रदर्शित करके गोपी का यह पूछना कि किसका दान माँगते हो, एक गूढ़ अर्थ की प्रतीति कराता है ।

प्रेमानंद ने भी गोपी की रीझ-खीझ-भरी मनोदशा को सफलता से अंकित किया है ।^{२२}

पर राधा-कृष्ण का व्यंग्य-प्रेमयुक्त वाद-विवाद प्रेमानन्द के द्वारा जिस रूप में वर्णित किया गया है वह अधिक प्रशंसनीय है। राधा और कृष्ण दोनों के उत्तर एक दूसरे से अधिक सचोट सिद्ध होते हैं। दोनों एक दूसरे के द्वारा लगाये गये आरोपों का प्रत्युत्तर नये-नये आरोप लगाकर देते हैं तथा अधिकाधिक उत्तेजक शब्दों का प्रयोग करके अपनी-अपनी अप्रतिहत क्षमता का प्रदर्शन करते हैं। सवाद का एक ही अंश उदाहरण के लिए पर्याप्त है जिसमें दोनों एक दूसरे के बाप तक पहुँच जाते हैं—

राधिका—पाधरी बाटे ते लड़े रे, जेने होये बे बाप ।

दाणनी शु ते महोर करावी, कसे कीधी शु छाप ।

श्रीकृष्ण—छाप तो तारो बाप करावे, रांकडो वृषभान ।

अमो कुवर नदजीतणा, कोनी नव मानु आण ।

परस्पर अहंकार का प्रदर्शन एवं संघर्ष दान के प्रसंग की लीलात्मकता को निखार देता है ।

नरसी की पूर्वोद्धृत पंक्तियों में जिस गूढार्थ को केवल व्यजित करके छोड़ दिया गया है उसका आधार लेकर सूर ने अद्भुत भाव विस्तार किया है। दूध-दही का दान मागने के पीछे कृष्ण का जो वास्तविक भाव था वह प्रकट हो जाता है। वे दधिदान के स्थान पर यौवनदान लेने का संकल्प करते हैं और प्रगल्भ ग्वालिनो को पूरी तरह अपने वश में करना चाहते हैं—

जोवनदान लेउँगो तुमसों ।

जाके बल तुम बदति न काहुहि कहा दुरावति हमसो ।

ऐसो धन तुम लिये फिरति हौ दान देत सतराति ।

अतिहि गर्व ते कह्यो न मोसों नित प्रति आवत जात ।

कंचन कलश महारसभारे हमहूँ तनक चखावहु ।

सूर सुनहु करि भार मरति कत हमहि न मोल दिवावहु ।

—सू० सा०, पृ० २९९

यहाँ अभिवा के द्वारा सीधे-सीधे अभिप्राय प्रकट किये जाने से काव्य-सौन्दर्य में जो हानि हुई है, अन्यत्र इसी अभिप्राय को व्यजना द्वारा अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत करके सूर ने एक प्रकार से उसका परिहार कर दिया है ।

कृष्ण 'जोवनदान' अथवा 'अग अगनि को दान' स्पष्टतया न माँग कर कनक-कलश, हंस-केहरि आदि उपमानों के द्वारा अग-प्रत्यग के दान लेने की व्यंजना करते हैं, २१

गोपियाँ कृष्ण के इस पहेली जैसे कथन को समझ नहीं पाती । वे चकित हो उठती हैं, क्योंकि दूध-दही को छोड़कर इन वस्तुओं का न कभी उन्होंने व्यापार किया, न वे आसपास कहीं दिखाई ही दे रही हैं ।

जब वह पूरी तरह असमर्थ हो जाती है तब कृष्ण उन्हें प्रत्येक उपमान का उप-मेय बताकर वास्तविक अभिप्राय समझाते हैं । ज्यों ही गोपियों की समझ में कृष्ण का अभिप्राय आता है त्योंही वे पुनः खीझ कर व्यग्न करने लगती हैं —

मागत ऐसे दान कन्हारै ।

अब समझी हम बात तुम्हारो प्रगट भई कछु धौं तरुनारै ।

यहि लालच अँकवारि भरत हौ हार तोरि चोली झटकारै ।

अपनी ओर देखि धौं लीजें ता पाछे कीजें बरिआरै ।

सखा लिये तुम धेरत पुनि पुनि वन भीतर सब नारि परारै ।

सूर श्याम ऐसी न बूझिये इनि बातनि मर्यादा जाई ।

—सू० सा०, पृ० ३११

फिर तकरार बढ़ जाती है । गोपियाँ यशोदा के पास उलाहना देने जाती हैं और यशोदा 'मेरो हरि कहँ दसहि वरष को तुम यौवन मद उदमानी' कह कर सारा दोष गोपियों के ही सिर मढ़ देती है । इन उपालंभों में मूर ने भावों का अकन अत्यन्त कौशल से किया है । कल्पना द्वारा सारा प्रसंग रचकर विविध मानवीय भावों को उसमें ग्रथित कर देने की उनमें जो क्षमता है उसका पूरा परिचय उनकी दान-लीलाओं से मिल जाता है ।

उपालंभ देने वाली इन गोपियों के बीच सूर ने एक ऐसी भाव भरी गोपी को खोज लिया जो यौवनदान की बात सुनकर संकोच और लाज से मरी जा रही है । वैसे ही लोग उसका उपहास करते थे, जब यह सुनेंगे तो वे सचमुच कृष्ण से उसके प्रेम-संबंध को समझ जायेंगे । उसकी अनुनय पूर्ण मनोदशा दर्शनीय है —

श्यामहि बोलि लियो द्विग प्यारी ।

ऐसी बात प्रगट कहूँ कहिये मखनि मांझ कत लाजनि मारी ।

एक ऐसेहि उपहास करत सब तापर तुम यह बात पसारी ।

जानिपाँति के लोग हँसहिंगे प्रगट जानिहँ श्याम भूतारी ।

लाजनि मारत हौ कत हमको हाहा करति जाति बलिहारी ।

सूर श्याम सर्वज्ञ कहावत मात पिता सो दयावत गारी ।

—सू० सा०, पृ० ३१२

कुछ ऐसा ही भाव एक स्थल पर नरसी ने भी दिखाया है—

फजेत थवानी आ बातडी रे कान जी माडी ते आज ।

ब्रज मां ते जाणशे नद जी कहो केम रहशे लाज ।

—न० कृ० का०, पृ० ३१६

दान के प्रसंग में कृष्ण और गोपियों का झगड़ा बातों तक ही सीमित नहीं रहता । उसमें आलिंगन, स्पर्श, चुबन तथा हाथापायी तक की स्थिति आ जाती है । नरसी ने दान के कारण होने वाले संघर्ष को 'सुरतसंग्राम' में पूरी तरह संग्राम का रूप दे दिया है । जिस प्रकार उपर्युक्त पदों से सूर की असाधारण कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है उसी प्रकार 'सुरतसंग्राम' में नरसी की अद्भुत कल्पना के दर्शन होते हैं । रति के साथ उत्साह का सम्मिश्रण रतिवर्णन में अनेक कवियों ने किया है परन्तु दान के साथ उसे सम्बद्ध करके शृंगार के अन्तर्गत वीर रस का पूरा वातावरण प्रस्तुत कर देना वस्तुतः एक विचित्र भाव-योजना है । नरसी ने रूपक के आधार पर दोनों का निर्वाह करना चाहा है जिसमें अधिकतर उन्हें सफलता मिली है परन्तु कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ रूपक एकागी होकर टूट जाता है और जिन वस्तुओं का उल्लेख वातावरण को पूरा करने के लिये किया गया है वे वीभत्सता का आभास कराकर शृंगार रस के आस्वादन में व्याघात उत्पन्न करती हैं । उदाहरणार्थ कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

क निर्वलो भागिया, मलमूत्र त्यागिया, कोयि सुणो गब्द नही गोपी जेवो ।

—न० कृ० का०, पृ० १०१

ख शान्ति गई वस्तिनी, वृष्टि थई अस्थिनी, वायु भयंकर तयारे वातो ।

—वही, पृ० १०३

ग. अशुद्धना चक्ष ने, गीध करे भक्षणने, दक्षने जोड़ करे कईक ले' के ।

—वही, पृ० ११७

जिस युद्ध में कटाक्ष ही बाण हो, भौहै ही धनुष हो तथा आलिंगन-चुबनादि ही प्रहार एवं आघात हों वहाँ मलमूत्र-त्याग, अस्थिवर्षा तथा गीधो द्वारा नेत्र-भक्षण का क्या प्रश्न उठता है । ऐसे वर्णन संग्राम के यथार्थ वातावरण को प्रस्तुत करने के लिए किये गये हैं परन्तु कवि को यह नहीं भूलना था कि यह संग्राम मात्र का वर्णन न होकर 'सुरत संग्राम' का वर्णन है । ऐसे स्थल अस्वाभाविक इसलिए लगते हैं कि जुगुप्सा शृंगार रस का सचारी भाव नहीं है । इन स्थलों को छोड़कर अन्यत्र रति उत्साह

के सम्मिलित चित्रण में नरसी का पर्याप्त सफलता मिली है । कहीं कहीं भावों का विकास अपनी चरमसीमा तक पहुँच गया है । बलराम के साथ विशाखा और कृष्ण के साथ राधा के युद्ध के दो ऐसे दृश्य नीचे दिये जा रहे हैं जिनमें भावावेश का अत्यन्त ओजपूर्ण चित्रण हुआ है—

क. पिड द्वय पीसता, मन मा हीसता, त्राहे त्राहे करती विशाखा ।
चुबने चोलता, सप्त विधि घोलता, अष्ट आलिंगने चोली नाख्यां ।
अष्टादश हाव मा, वलि पच भाव मा, पकडतां दाव मां दारु पाय ।
नव हवा चूकिये, कोइदि नव मूकिये, भ्रात नरसैनो बहु पीडाय ।

—न० कृ० का० पृ० १०८

ख. मर्यादिने लोपी ने, दुःखी करी गोपी ने, धोपी ने धाड़ रण बीच राधे ।
दृग-असि सज करी, ढाल उरनी धरी, भुव शरासन बिच शर ने साधे ।

—वही

दान के प्रसंग में राधा-कृष्ण का प्रेम और रोषपूर्ण सघर्ष सूरदास ने भी चित्रित किया है परन्तु उसमें ओज के स्थान पर कोमलता की तथा रोष के स्थान पर प्रेम की प्रधानता मिलती है ।^{२४}

जिन कवियों ने युद्ध और सघर्ष को दान के मूल भाव के बहुत अनुकूल नहीं समझा उन्होंने कृष्ण में इतनी विनम्रता प्रदर्शित की है कि वे याचक बनकर प्रिया के चरणों में अपना शीश तक रख देते हैं । भालुण और ध्रुवदास ने कृष्ण की मनो-दशा का इसी रूप में चित्रण किया है—

भालुण—श्याम सुन्दर हस्या त्वारे वचन श्यामाना सुणी ।

केशवजी कर जोडिया ने प्रीति बाधी अति घणी ।

—द० स्क०, पृ० १०३

ध्रुवदास—प्रिय प्रवीन रस प्रेम में कह्यो सहचरी कीन ।

दान मान रस छाँडि कै सीस पगन तर दीन ॥१७॥

गौडीय कवि माधवदास ने राधा को इतना स्नेह-विभोर चित्रित किया है कि सघर्ष की स्थिति आने ही नहीं पाती । कृष्ण के हाथ का स्पर्श होते ही वह पूर्णतया प्रेमविह्वल हो जाती है और अनेकानेक अनुभाव प्रकट होने लगते हैं ।^{२५}

दधिदान और यौवनदान देने के अनन्तर ग्वालिनों में जो प्रेमोन्माद उत्पन्न होता है और जो विसुधि उनके मन पर छा जाती है उसका वर्णन सूर ने अत्यन्त स्वाभाविक

रूप से किया है। दही बेचनेवाली ग्वालिन प्रेमजन्य विस्मृति की अवस्था में कभी वृक्षों के हाथ दही बेचने लगती है, कभी दही का नाम ही भूल जाती है और 'दही लो, दही लो' न कह कर 'कृष्ण लो, गोपाल लो' आदि कहने लगती है—

क. तरुणी श्याम रस मतवारि ।

प्रथम जोवन रस चढ़ायो अतिहि भई खुमारि ।

दूध नहीं, दधि नहीं, माखन नहीं, रीतो माट ।

महारस अँग अँग पूर्यो कहाँ घर कहाँ घाट ।

—सू० सा०, पृ० ३२४

ख. या घर में कोउ है कि नाही ।

बार बार ब्रजति वृक्षन को गोरस लैहौ कि नाही ।

आपुहि कहति लेहु नाही दधि और द्रुमन तर जाती ।

मिलति परस्पर चिबश देखि तेहि कहति कहा इतराती ।

ताको कहति आपु भुधि नाही सो पुनि जानत नाही ।

सूर श्याम रस भरी गोपिका बनते यो बितताहीं ।

—वही

ग. कोऊ माई लैहै री गोपालहि ।

दधि को नाम श्यामसुन्दर रस बिसरि गई ब्रजबालहि ।

मटुकी शीश फिरत ब्रजबीयिन बोलत बचन रसालहि ।

उफनत तक्र चहूँदिशि चितवति चित लाग्यो नँदलालहि ।

हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहि ।

सूर श्याम बिनु और न भावै या विरहिनि बेहालहि ।

—वही, पृ० ३२६

कृष्ण-प्रेम से उत्पन्न विस्मृति की उस मनोदशा का जिसमें ग्वालिन दही का नाम भूल कर उसके स्थान पर कृष्ण का नाम लेने लगती है, ब्रजभाषा के अन्य कवियों—चतुर्भुजदास तथा मीरा—ने भी किया है।^{२६}

गुजराती कवि नरसी में भी यह भाव मिलता है। ग्वालिन के द्वारा मटकी में दही के स्थान पर कृष्ण बताये जाने पर नरसी के कृष्ण सचमुच उसकी मटकी में समा जाते हैं—

घरणीघरसु लागुं माहं ध्यान रे ।

लोक कहेशे गोपी घेली रे थइ छे ।

माथे छे महि कहे छे कान रे ।

बेचनी बेचती चाली नगर मुझार रे ।
 मटुकी माहे आवी रह्या देव मोरार रे ।
 चौद लोरु अना मुखमां समाय रे ।
 ओवो वैकुण्ठनाथ केम मटुकी मां माय रे ।
 नरसैया चो स्वामी भक्त आधीन रे ।
 आप [सरीखडा कीधा आहीर रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ५३६ तथा पृ० २८८

इस पद में नरसी ने मूल-भाव विस्मृति का विकास न करके अन्तिम पंक्तियों में कृष्ण के ऐश्वर्यमय रूप का तथा उनकी सर्वव्यापकता का जो परिचय दिया है, काव्य की दृष्टि से उसकी कोई उपयोगिता नहीं दिखाई देती । दानलीला के अन्तर्गत सूर ने भी कृष्ण के ऐश्वर्य की ओर कई बार संकेत किया है । ऐसा करके उन्होंने दान की सामान्य भावभूमि को आध्यात्मिक संकेत देकर उच्चतर बनाना चाहा है जिसकी ओर इंगित किया जा चुका है परन्तु संकेतात्मकता के स्थान पर जहाँ उपदेशात्मकता आ गयी है वहाँ उनका काव्य भी शिथिल प्रतीत होने लगता है ।

जब गोपियाँ खीझ कर गाँव छोड़ जाने की बात कहती हैं तो कृष्ण उन्हें विचित्र उत्तर देते हैं—

गाउँ हमारो छाँडि जाइ बसिहौ केहि केरे ।
 तीन लोक में कौन जीव नाहिन बस मेरे ।

—सू० सा०, पृ० २९७

इसी प्रकार गोपियाँ जब कृष्ण को 'लरिका' कहती हैं, उनकी 'कमरी' पर व्यंग्य करती या उनके माता-पिता की बात उठाती हैं तो भी वे ऐसे ही विचित्र उत्तर देते हैं जिनसे लीला का आध्यात्मिक अर्थ स्पष्ट हो जाना है ।^{३७}

गहरी भावबारा के बीच-बीच सूर ने इस प्रकार के कथनों को गूँथ दिया है । निश्चय ही इनसे मूल भाव को बल नहीं मिलता वरन् एक प्रकार का व्याघात ही होता है परन्तु जैसा कि बाल-लीलाओं के प्रसंग में लिखा जा चुका है, भक्तों के हृदय में वे अद्भुत रस का संचार भी करते हैं जिससे रस दोष का बहुत कुछ परिहार हो जाता है ।

५. मानलीला—स्नेह व्यक्ति में अन्तर्निहित अहं की तीव्रतम अभिव्यक्ति है । परन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसमें अहं की सारी तीव्रता विगलित होकर परस्पर

समर्पण का रूप धारण कर लेती है। प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों के हृदय एकीभूत होकर, शारीरिक द्वैत के रहते हुए भी, एक अद्भुत मानसिक अद्वैत की सृष्टि करते हैं जिसके कारण प्रत्येक अपने स्थान पर दूसरे को अपने जीवन का केन्द्र एवं आधार मानने लगता है। दोनों के बीच किसी तीसरे का प्रवेश दोनों को असह्य हो उठता है। समर्पण के साथ अधिकार भावना का भी विकास होता जाता है। मान अथवा रोष तभी उत्पन्न होता है जब काम्य वस्तु पर रहने वाले एकाधिकार में बाधा पड़ती है। 'कामात्कोधोभिजायते' के द्वारा गीताकार ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्पष्ट-तया व्यक्त किया है। वस्तुतः रोष, क्रोध अथवा मान काम का ही परिवर्तित रूप है। मानलीला द्वारा इसी भाव सत्य को व्यक्त किया गया है। दाम्पत्य प्रेम में उदारता की अपेक्षा ईर्ष्या ही अधिक स्वाभाविक है। पहली प्रतिक्रिया उत्तेजना के रूप में ही होती है। परन्तु यह उत्तेजना 'रीति' स्थायी की उद्दीपक बनी रहती है। उसमें बाधक नहीं बनती, मान प्रेम भाव को निवार देता है, राधा कृष्ण को अन्य स्त्री में अनुरक्त समझ कर रुष्ट हो जाती है। इसी मूल प्रसंग को लेकर कवियों ने पर्याप्त भाव विस्तार किया है। मान करनेवाली राधा की मनोदशा, उसके मान के कारण उत्पन्न होने वाली कृष्ण की व्याकुलता तथा मनानेवाली दूती की भावनाएँ, सभी का अकन कवियों ने पर्याप्त तन्मयता और कुशलता के साथ किया है।

राधा के हृदय में ज्योंही सदेह उत्पन्न होता है, वह व्यंग्यपूर्वक कटु शब्द कहती हुई कृष्ण से अपना हाथ छुड़ा लेती है; एकांत में जाकर सारे आभूषण उतार डालती है और सारे क्रोध के निश्वास भर-भर कर आँसू बहाने लगती है। नरसी ने मानिनी राधा का इसी रूप में अंकन किया है जो अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है—

क. लपट मेली देने मुजने नीलंज साथ शु नेह ।
मुजथी बहाली वालमा, उर विषे राखी छे तेह ।
कर मुकाव्या पाणथी रसा भराणी रोष ।

—न० कृ० का०, पृ० १४०

ख. विनता ते बन जोती गई ज्या कामिनी तुं भूवन् ।
शोकसागर अंगे आतूर, रही रही करे रुदन ।
हार चीर शणमार भूषण, कांकण ककण जेह ।
शणमार सर्व अंग थकी अबलाये उतार्या तेह ।
ते सोल कलाअे ओभती त्रैलोक्य तारुणी सुन्दरी ।

शोक सागरे पड़ी श्यामा, ललिताओ दीठी अणमणी ।
कमल सरखां नयन दीठा, निश्वाम महेले नार ।

—वही, पृ० १४१

‘मयणछंद’ के रचयितामयण कवि ने राधा की मनोदशा को तरसी की तरह रोष की अवस्था में नहीं अंकित किया है । वसंत आने पर जब राधा का रोष उद्दीपन के कारण आप ही दूर हो जाता है उस समय कृष्ण का विरह उसे अत्यन्त विह्वल कर देता है । कवि ने इसी का वर्णन किया है—

विलवड विरहणि नारि वारि विण नलिनी भूकइ ।
वसति दधे जाइ जाय रमणि नीसासह सूकइ ।
गिरि नीझरण जिम नीर नयण जलि कचू भिन्नउ ।
मच्छी विलवड जिम्म अंबु, अंबु विण जीवह सुन्नउ ।
सखी ए वसन प्रिया रडु माननि मान धमुक्कोउ ।
रे रहसि मयण नियतणु दहण काम वाण शिरि हुक्कीउ ॥२६॥

ब्रजभाषा में सूर ने मानिनी राधा की मनोदशा का सूक्ष्मतर अंकन किया है । उसकी भाव-मुद्रा को अधिक कुशलता के साथ प्रस्तुत करते हुए रोष और विरह दोनों को एक साथ अभिव्यक्त किया है—

आज हठि बैठी मान किये ।
महाक्रोध रस अंश तपत मिलि मनु विष विषम पिये ।
अधमुख रहति विरह व्याकुल सिख मूरि मंत्र नहि मानै ।
भूक न तजै सुनि जाति ज्यों सुधि आये तनु जानै ।
कबहुक धुक्कि धरनि श्रम जलभरि महाशरद रवि सास ।
इकटक भई चित्र पूतरि ज्यो जीवन की नहि आश ।

—सू० सा० पृ० ४८७-८८

क्रुद्ध व्यक्ति, जिसके प्रति क्रोध है उसको, कटु शब्द कहने के साथ साथ समझाने वाले का भी निरस्कार करता है क्योंकि वह समझाने वाले को अपराधी का समर्थक मान लेता है । इस मनोभाव की ओर गुजराती कवि भालण ने दो पंक्तियों में संकेत भर दिया है परन्तु सूर के द्वारा इसको पूरी तरह विकसित रूप में अभिव्यक्ति मिली है—

भालण—झूती ने त्यां गाल दे छे, तूं तो धूतारी ।
मने शाने तेडी आवी, अं तो व्यभिचारी ।

—दशमस्कंध, पृ० १०६

सूर—वादि बकति काहे को तू कत आई मेरे घर ।

वे अति चतुर कहा कहिये जिन तोसी मूरख

तनु वेधत लैन पठाई वचनन शर ।

उतकी इत इतकी उत मिलवति समुझति नाहिन

को ही प्रीति रीति तू को हैं गिरिवरधर ।

सूरदास प्रभु आनि मिलेंगे छै हैं पग अपने कर ।

—सू० सा० पृ० ४८७

राधा जिस दूनी की इस प्रकार भर्त्सना करती है उसके मनोभावों को भी सूरदास ने व्यक्त किया है—

ज्यो ज्यो मैं निहोरे करौ त्यों त्यों यों बोलति है री अनोखी रूमनिहारी ।

बहियाँ गहत सतराति कौन पर, मग धरी उगरी कौन पै होत पीरी कारी ।

कौन करत मान तोसी और न त्रिय आन हठ झरि करि वरि मेरे कहे आरी ।

सूरदास प्रभु तेरो पथ जोवत तोहिं रट लागी मदन बहत तनु भारी ।

—वही

दूती चतुर है अतएव भर्त्सना का प्रतिशोध करती हुई भी अपने उद्देश्य की पूर्ति का ध्यान रखती है और मनाने के निमित्त अंत तक कृष्ण की व्याकुलता का उल्लेख कर ही डालती है ।

कवियों ने दूतियों द्वारा जो कुछ जिस ढंग से कहलाया है वह मनोवैज्ञानिकतया अत्यन्त उपयुक्त है । सही हुई राधा को मनाने के लिए वे कभी कृष्ण की एकनिष्ठा, व्याकुलता तथा निर्दोषिता का बखान करती हैं, कभी ऋतु के उद्दीपक स्वरूप का वर्णन करके क्रोध के कारण मुप्त कामभाव को जगाने का प्रयास करती हैं, और जब यह सब सफल नहीं होता तो वे ग्रौवन की क्षणभंगुरता पर बार बार बल देकर जीवन के आनन्द को शीघ्रान्तिशीघ्र पूर्ण रूप में पा लेने की इच्छा उत्पन्न करने की चेष्टा करती हैं । इस दृष्टि से भालण, नरसी तथा सूरदास की दूतियों के कथनों की समानता विशेष रूप से दर्शनीय है ।^{१०}

गुजराती कवियों की अपेक्षा सूरदास के कथनों में कुछ विशेषताएँ अधिक हैं । एक तो दूनी का राधा के रूप-गुण की प्रशंसा करने का प्रयास अत्यन्त स्वाभाविक है, दूसरे उद्दीपन के लिए प्रकृति का जो चित्र रखा गया है वह पूर्णतया उपयुक्त है । समस्त प्रकृति में तीव्र एवं व्यापक मिलन भावना दिखा कर राधा के मन में मिलनेच्छा

उत्पन्न कराने का भाव सूर की मौलिक काव्यशक्ति का परिचायक है। इसी शक्ति के आधार पर सूर यौवन की क्षणिकता की तुलना 'अंजुरी' के 'जल' और 'बदरी की छांही' से कर सके।

राधा को मनाने के लिए उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त कवियों ने कृष्ण के द्वारा अपने ऐश्वर्य का स्वयं वर्णन कराया है जो सारी भावस्थिति को अलौकिक धरातल पर ला देता है। मानलीला में नरसी और सूर ने कृष्ण के लोकोत्तर स्वरूप को अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकट किया है।^{१९}

राधा के मान करने से कृष्ण की जो दशा होती है, उसका सकेत मात्र गुजराती कवियों ने यत्रतत्र कर दिया है परन्तु ब्रजभाषा में सूर, ध्रुवदास तथा माधवदास ने उसका पूरा चित्रण किया है। सूर के कृष्ण इतने दुखी होते हैं कि उनकी चेतना ही कुछ काल के लिए विलीन हो जाती है। मुकुट, पीताम्बर आदि का भी उन्हें ध्यान नहीं रहता—

यह सुनि ग्याम विरह भरे।

कहुँ मुकुट कहुँ कटि पिताम्बर मुरछि धरणि परे।

—सू० सा०, पृ० ४८५

कृष्ण को राधा की कुज में प्रतीक्षा करनी होती है। जब तक राधा आ नहीं जाती तब तक एक एक क्षण का विलम्ब उनके लिए असह्य हो उठता है—

श्याम बन धाम मग वाम जोवैं।

कबहुँ रचि सेज अनुमान जिय जिय करत लता सकेत तर कबहुँ सोवैं।

एक छिन इक घरी, घरी इक याम मम, याम वासरहु ते होत भारी।

मनहिं मन साध पुरवत अंग भाव करि धन्य भुज धनि हृदय मिले प्यारी।

कबहि आवै सोंझ, सोच अति जिय माँझ, नैन खग इहु ह्वै रहे दोऊ।

सूर प्रभु भामिनी वदन पूरणचन्द्र रस परस मनहि अकुलत वोऊ।

—सू० सा०, पृ० ४८८-८९

ध्रुवदास ने भी सूर की ही तरह अत्यन्त मार्मिकता एवं स्वाभाविकता से कृष्ण व भावदशा का अंकन किया है। उनकी प्रतीक्षाकुलता को कवि ने अन्यतम अभिव्यक्ति प्रदान की है—

लुठत धरनि अंसुबनि भरनि बाढी नदी अपार।

गहि रहे गुन एक नेह को राधा नाम अधार ॥१२॥

मुकुट कहूँ बसी कहूँ, भूषन कहूँ पटपीत ।

मैन सैन लिये घेरिके ताते भये अति भीत ॥१३॥

सेज कुज भूषन बसन अरु फूलनि के हार ।

देखि सबै अनखात हैं पावक की सी झार ॥१४॥

तुव मग जोवत छिनहि छिन और न कछू सोहात ।

पत्र पवन खरकत जबहि उठि धावत अकुलात ॥१७॥ ;

—मानविनोदलीला

माधवदास ने कृष्ण की उस मनःस्थिति को सूक्ष्मता से आँका है जब वे मानिनी राधा को मनाने का प्रयास भी करते जाते हैं और शरीर छूते हुए डरते भी जाते हैं ।

आये मनमुख लाल लोचन सजल कीने, माला एक मल्ली की नवल कर लीने है ।
आगे लै लै धरत करत मनुहार अति पाइन परत कर कैसे डारि दीने है ।
मोहन मनावत उठावनि चिबुक गहि, जतन बनावत न सौहे दृग कीने है ।
छुड न सकत पै न रह्यो पुनि जात जिय अति अकुलात जैसे मीन जलहीने है ।

—श्री माधुरी वाणी, पृ० ८०

६ पनघटलीला—पनघटलीला की भाव-भूमि दानलीला की भाव-भूमि से बहुत समानता रखती है । दोनों में भाव-विकास भी प्रायः एक ही क्रम से होता है । जिस प्रकार दधि-दूध बेचने जाती हुई गोपियों को कृष्ण दान के बहाने से उसमें उलझाते खिझाते हैं उसी प्रकार इसमें भी यमुना-जल भरने आने वाली गोपियों की कभी गागर फोड़ देते हैं, कभी बाँह मरोड़ देते हैं; और भी अनेक प्रकार से वे गोपियों को मुग्ध कर लेते हैं । गोपियाँ भी कभी खीझ कर यशोदा के पास तक उपालंभ ले जाती हैं और कभी रीझ कर फिर उसी घाट पर जल भरने आती हैं या जल भरना ही भूल जाती हैं । पारस्परिक स्नेह की अभिव्यक्ति इसमें भी अत्यन्त स्वाभाविक रूप में की गई है । गुजराती तथा ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने राधाकृष्ण और गोपियों की पारस्परिक प्रीति का विकास चित्रित करने के लिए इस पनघट के प्रसंग को उपयुक्त पृष्ठभूमि समझ कर चुना है । सूर ने इसको अतिशय भाव-सम्पन्न बनाकर अन्य लीलाओं की सी पूर्णता प्रदान की है ।

सूर के कृष्ण मथुरा के मार्ग की तरह पनघट को भी रोक रखते हैं । गोपियाँ बेचारी उन्हें देखते ही लौट जाती हैं । एक गोपी अनजाने जल भरने आ ही गई । ज्योंही जल हिलोर कर उसने गागर भरी और सिर पर रखकर घर चली कि कृष्ण

ने आकर ढरका दिया । उसने भी कृष्ण की 'कनक लकुटिया' छीन ली और 'समसरि' करते हुए कहा कि जब तक तुम मेरी गागर नहीं भरोगे तब तक लकुटिया नहीं मिलेगी । चतुर कृष्ण ने चीरहरण के प्रसंग की स्मृति दिला कर उसे इतना भाव-विभोर कर दिया कि उसे तन-बदन की सुध भूल गई, सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण देखने लगे । इस प्रकार उसकी तन्मयता चरम कोटि तक पहुँच जाती है ।^{१०}

सूर ने जिस प्रकार मौलिक कल्पना से इस भावमय गोपी की सृष्टि की उसी प्रकार उसकी एक सखी को उससे भी अधिक भावमयता प्रदान करके चित्रित किया है । कृष्ण की खोज में वह भी पनघट आती है और जल भर चुकने पर जब उसकी विकलता सीमा पर पहुँच जाती है तो अन्तर्यामी कृष्ण प्रकट हो कर उसे आलिंगन में भर लेते हैं । इस रूप में कृष्ण का स्नेह पाकर वह उन्मादिनी बन जाती है ।^{११}

वह म्वालिन अपने मनोभावों को स्वयं प्रकट करती है । सूर ने उसके आत्म-कथन के द्वारा उसकी तन्मय अवस्था का और भी उत्कृष्ट निरूपण किया है—

आवत ही यमुना भरे पानी ।
 श्याम बरन काहू को ढोटा निरखि बदन घर गई भुलानी ।
 उन मो तन मैं उन तन चितयो तबही ते उन हाथ बिकानी ।
 उर धकधकी टकटकी लागी तनु व्याकुल मुख फुरत न बानी ।
 कहयो मोहन मोहनी तू कहि या ब्रज में नहि मैं पहिचानी ।
 सूरदास प्रभु मोहन देखत जनु बारिधि जल बूँद हेरानी ।

—सू० सा० पृ० २५८

नरसी और मीरा के गुजराती पदों में पनघट के सम्मोहन से आत्मविभोर गोपी की दशा का चित्रण प्रायः इसी रूप में मिलता है परन्तु उन्होंने सूर की तरह परिस्थितियों की विविधता के साथ स्नेह-विकास को चित्रित न करके केवल विकसित स्नेह तथा तन्मय विह्वलता को ही चित्रित किया है । नरसी की गोपी पनघट की घटना को अपनी सखी से भावभक्त होकर इस प्रकार बताती है—

सांभल बहेनी वातलडी, मीठामां अति मीठी रे ।
 जुमना पाणी हु गई ती, तहाँ नंदने कुवरे दीठी रे ।
 आगल आवी ऊभो रह्यो हुं ने घाली पग साहे आंटी रे ।
 मारा बाहला अम जोर न आणो अमे अबला तमो माटी रे ।

अधर अमृत रस गृही ने दाबी, मारी नवल पटोली फाटी रे ।
आलिंगन लीधु अति प्रेम केशर लइ लइ छाटी रे ।
जादवराय शुं स्नेह सबलो, पीठ धरु उपर न मेली छाती रे ।
नरसैयाच्यो स्वामी भले मल्यो, हु ने आपी हाथे बीटी रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २७५

अन्त तक इतनी सुधि तो उसे रहती ही है कि वह अपनी सखी को कृष्ण के आकर्षित होने की बात बता देती है परन्तु प्रेम की कटारी से बिद्ध मीरा की गोपी कच्चे घागे से बधी केवल खिचना ही जानती है, प्रिय को अपनी ओर खींचने की स्मृति उसे कहाँ—

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे मन लागी कटारी प्रेमनी ।
जल जमुना मा भरवा गयाता हती नागर माथे हेमनी रे ।
काचे ते तातणे हरि जीए बाधी जेम खीचे तेम तेमनी रे ।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर शामली सुरत शुभ एमनी रे ।

—मीराबाई की पदावली, पृ० ६०

इस प्रसंग में यशोदा को दिये गये उपालभो के रूप में गोपियों की भावनाओं का चित्रण कदाचित् सूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया है । सूर उपालंभ के रूप में भावों के व्यक्त करने में विशेष पटु है और उनकी यह पटुता पनघटलीला के अन्तर्गत किये गये भाव-निरूपण में भी परिलक्षित होती है ।^{३२}

यशोदा आवेश में उन्हें कृष्ण को दडित करने का वचन दे देती है और उसी आवेश में जो कुछ उलाहने में गोपियाँ नहीं भी कह जाती उसे भी कल्पित कर लेती है । यही नहीं, रोहिणी को सुनाये बिना उसका आवेश उसे चैन नहीं लेने देता—

× × × × ×
यशुमति यह कहिकै रिस पावति ।
रोहिणि करति रसोई भीतर कहि कहि ताहि सुनावति ।
गारी देत बहू बेटिन को वै घाई ह्यां आवति ।
हा हा करति सबनि सो मै ही कैसेहु खूंट छँडावति ।
जाति पाति सों कहा अचगरी यह कहि सुतहि धिरावति ।
सूर श्याम को सिखवत हारी मारेहु लाज न आवति ।

—वही, पृ० २६०

उपालभ सुनकर अपने कृष्ण पर खोजना भी उसके वात्सल्य का ही एक रूप है और सामने आ जाने पर क्षण भर में अपने पुत्र के शब्दों पर विश्वास कर लेना और उसे

चूमचाट कर सब कुछ भूल जाना भी उसी भाव का दूसरा रूप है। पीछे छिपे कृष्ण अचानक सामने आकर गगरी फूट जाने का कारण ग्वालिनों का सर मटकाना बताते हैं और यशोदा का रोष कृष्ण से उलट कर ग्वालिनों पर ही जा केन्द्रित होता है।^{११} भाव की यह परिणति पूर्णतया स्वाभाविक है, क्योंकि जिसके प्रति सहज स्नेह होता है उसकी बात पर सहज विश्वास भी आ जाता है और उसे दोष देने वाले पर सहज रोष भी।

यशोदा अन्त में कृष्ण को ग्वालिनों से उलझने के लिए वर्जित करती है, क्योंकि अब उसे कृष्ण की निश्छलता पर पूरा विश्वास हो गया है। परन्तु कृष्ण कृष्ण ही बने रहते हैं। वे फिर पनघट पर जा पहुँचते हैं और कभी राधा की छाँह से अपनी छाँह छुवाकर सुख लेते हैं कभी उसकी गागर में काकरी मार कर। सूर ने इस रूप में प्रसंग विस्तार करके भावों की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त क्षेत्र पनघटलीला में भी खोज लिया।

राधा-कृष्ण की पारस्परिक प्रेमभावना तथा तज्जन्य आत्मविस्मृति का एक अनुपम भाव-चित्र रसखान ने प्रस्तुत किया है—

भूल्यौ गृहकाज लोच-लाज मनमोहिनी की, भूल्यौ मनमोहन को मुरली बजाइबो ।
कहै रसखानि दिन द्वै मैं बात फैलि जैहै सजनी कहाँ लौं चंद हाथन दुराइबो ।
कालि ही कलिदीतीर चितयो अचानक ही दोउन सों दोउन को मुरि मुसुकाइबो ।
दोऊ परै पैया दोऊ लेत है बलैया उन्हें भूलि गयी गैयां उन्हें गागरि उठाइबो ।

—सुजान रसखान, छन्द ६०

इसी प्रकार ब्रजभाषा के अन्य अनेक कवियों ने पनघटलीला के प्रसंग में भावों का निरूपण पर्याप्त उत्कृष्टता से किया है। हरिराम व्यास की एक ग्वालिन इतनी प्रगल्भ है कि वह कृष्ण से उनका पीतपट 'इंदुरी' बनाने के लिए माँग बैठती है। सर पर गागर रखवा देने के बहाने वह एकान्त का सकेत करके स्वयं-दूतिका का कार्य भी करती है, फिर जब कृष्ण उसकी मनोकामना पूरी कर देते हैं तो भारी परिस्थिति को स्वयं स्मरण करके रह रह कर मुखी होती है—

कान्हू मेरे शिर धरि गगरी ।

यह भारी, पनिहारिन कोऊ मनसा पुजवत सगरी ।

राति परी धरु दूरि डरु बाढ्यो मेरी तासु जनगरी ।

देहु पीत पट करहुं इंदुरी छाँउहु छैल अचगरी ।

अंचल गहि चंचल बने झगरत नगरत लट बगरी ।
विहरत व्यासदास के प्रभुसौ म्वालनि सुख लै डगरी ।

—व्यासदासी, पृ० ५०९

पनघटलीला के भावचित्रण में इस प्रकार की विविधता गुजराती काव्य में नहीं मिलती ।

७. संयोगावस्था की विविध मनोदशाएँ—राधाकृष्ण तथा गोपियों की संयोग-लीलाओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । पूर्वोक्त रास, दान, तथा पनघट के प्रसंग भी इसी के अन्तर्गत आते हैं । शास्त्रीय मान्यता के अनुसार मान वियोग की एक अवस्था है परन्तु उसके भी प्रारम्भ और अंत में संयोग का ही चित्रण मिलता है । इन प्रधान प्रसंगों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रसंग हैं जिनके माध्यम से कवियों ने संयोगावस्था की विविध मनोदशाओं की अभिव्यक्ति की है । यहाँ उन्हीं पर विचार किया गया है । कवियों का लक्ष्य राधाकृष्ण के प्रेम का चित्रण करना रहा है अतएव पृष्ठ-भूमि को बहुधा गौण रखा गया है । कृष्ण किस गोपी से कहाँ, कैसे, कब, मिले इसको स्पष्ट न करके मिलने की उत्सुकता, मिलन-समय के मनोभावों, आंगिक चेष्टाओं तथा मिलनोपरान्त की विह्वलता आदि का चित्रण करने को ओर विशेष ध्यान दिया गया है । मनोभावों के चित्रण के साथ साथ कहीं कहीं परिस्थिति की व्यञ्जना भी मिलती है । बहुत सी परिस्थितियाँ मनोभावों के कारण ही उत्पन्न हो जाती हैं । ऐसी परिस्थितियों में गोपियों की मानसिक अवस्था का चित्रण कवियों ने विशेष जागरूकता से किया है । ब्रजभाषा में सूर तथा गुजराती में नरसी ने संयोग से सम्बद्ध अनेकानेक मनोदशाओं का अपने अपने ढंग से मार्मिक निरूपण किया है ।

गोदोहन के प्रसंग को लेकर सूर ने राधाकृष्ण के किशोर हृदयों में उत्पन्न होने वाले प्रथम स्नेहाकर्षण तथा स्वाभाविक स्नेह-विकास को जितनी कुशलता से अंकित किया है, वह सारे कृष्ण-काव्य में अद्वितीय है । सूर की भावयोजना संश्लिष्ट रूप में चलती है अतएव इस स्थल पर भी सूर ने राधाकृष्ण के मनोभावों का ही वर्णन नहीं किया है बल्कि उनके साथ यशोदा, वृषभानुपत्नी तथा अन्य ब्रजवासियों की भावनाओं को भी व्यक्त किया है जिससे परिस्थिति-विशेष की भावाभिव्यक्ति में पूर्णता आ जाती है तथा परस्पर के भावसंघात से नवीन नवीन भावों की सृष्टि होती चलती है । एक ही घटना विभिन्न व्यक्तियों के हृदय में विभिन्न भाव उत्पन्न करती है । सूर प्रत्येक के हृदय में पँठ कर प्रायः उसी के मुख से उसके भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने जाते हैं । इस प्रकार की भावयोजना तथा ऐसा भाव-निरूपण गुजराती कृष्ण-काव्य में

अलभ्य है । इसे वर्णन-शैली की विशेषता मात्र कह कर उपेक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसका मूलभूत सबध कवि की भावानुभूति से है । भावविस्तार की क्षमता वास्तव में भावानुभूति की गहराई का एक परिणाम होती है ।

भोली चंचल राधा यशोदा के यहाँ खरिफ में गाय दुहाने आई । कृष्ण से उसका प्रथम परिचय खेलने में हुआ । कृष्ण ने ही आँखों के इशारे से उसे खरिफ में गाय दुहाने के छल से आने के लिए कहा । अनुरक्ता राधा कृष्ण के अनुराग की मिलनेच्छा के रूप में पहली पहली अनुभूति करके ही उन्मत्त हो जाती है । उसके किशोर हृदय में माता-पिता का भय भी व्याप्त है और तरुणाई के आगमन से पूर्व की मुग्ध प्रीति का उद्रेक भी । फलतः उसकी मनोदशा अत्यधिक उलझ जाती है—

नागरि मनहि गई अरुझाइ ।
अति विरह तनु भई व्याकुल घर न नेक सुहाइ ।
श्यामसुन्दर मदनमोहन मोहनी सी लाइ ।
चित्त चंचल कुँवरि राधा खान पान भुलाइ ।
कबहुँ विलपति कबहुँ विहँसति सकुचि बहुरि लजाइ ।
मानु पितु को त्रास मानति मन विना भई बाइ ।
जननि सो दोहनी माँगति वेगि दे री माइ ।
सुर प्रभु को खरिफ मिलिहौ गये मोहिं बुलाइ ।

—सू० सा०, पृ० २०५

इन कुछ ही पक्तियों में सूर ने वय-संधि में उदय होने वाली अनेक भावसधियों को सजीव बना कर प्रस्तुत कर दिया है । इतनी उत्कंठा लिये राधा जब खरिफ में आकर भी कृष्ण को नहीं पाती तो चकित भी होती है और विह्वल भी । उसके मन को तभी विश्राम मिलता है जब कृष्ण को आने देखती है । उसमें चतुरता का भी उदय होने लगता है । घर से चलते समय उसका कारण भी कल्पना से दे देती है, साथ ही शीघ्र आने का आश्वासन भी देती जाती है जिससे माता मना न कर दे । माता को खोजने आने के लिए वह बहाने से वर्जित करती आती है । गन्तव्य स्थान के छिपाने का साहस उसमें अभी नहीं है ।

कृष्ण नागर है अतः पूरी तरह चतुर है । राधा के साथ प्रेम-क्रीड़ा करते समय जब यशोदा उन्हें देख लेती है तो क्षणमात्र में वे एक झूठ गढ़ लेते हैं । माता विश्वास कर लेती है कि वह श्रृंगार-क्रीड़ा न होकर बाल-विनोद था—

नीवी ललित गही यदुराई ।
जबहि सरोज धरो श्रीफल पर तब यशुमति गइ आई ।
तत्क्षण रुदन करत मनमोहन मन मे वृधि उपजाई ।
देखो ढीठि देति नहि माता राखी गेद चुराई ।
काहे को झकझोरत नोखे चलहु न देखैं बताई ।
देखि विनोद बालसुत को तब महारि चली मुमुकाई ।
सूरदास के प्रभु की लीला को जानै इहि भाई ।

—वही, पृ० २०५-६

ऐसे चतुर कृष्ण भी राधा की प्रीति के कारण इतने विसुध हो जाते हैं कि गाय के स्थान पर बैल को दुहने लगते हैं और सखाओं की बातों पर ध्यान नहीं दे पाते—

दुहन श्याम गैयाँ बिसराई ।
नोआ लै पग बाँवि वृषभ के दोहनी माँगत कुँवर कन्हाई ।

—मू० सा०, पृ० २४३

जब सुधि आने पर वे राधा की गाय दुहते हैं तो प्रेमातिरेक के कारण एक धार दोहनी में छोड़ते हैं और दूसरी राधा के मुख पर । वयस्क सखियाँ इस अन्यतम प्रेम की अभिव्यक्ति को देखते ही कामपीड़ित हो उठती हैं और उन्हें भी गृहकाज भूल जाता है—

धेनु दुहन अति ही रति बाढी ।
एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी ।
मोहन करने धार चलत पय मोहनी मुख अतिहि छवि गाढ़ी ।
मनो जलधर जलधार वृष्टि लघु पुनि पुनि प्रेम चद पर बाढ़ी ।
सखी संग की निरखति यह छवि भई व्याकुल मन्मथ की डाढ़ी ।
सूरदास प्रभु के बस भई सब भवनकाज ते भई उचाढ़ी ।

—वही, पृ० २४५

ज्यों त्यों दूध दुहना समाप्त होता है । राधा अपनी दोहनी माँगती है पर कृष्ण देते नहीं । प्रेमविभोर कृष्ण के हृदय में एक ओर अधिक से अधिक समय तक रोक रखने की लालसा है, दूसरे राधा को खिलाने में उन्हें और भी आनन्द आता है ।^{१५}

राधा के हृदय में भी जाने की तिलमात्र इच्छा नहीं है क्योंकि दोनों का प्रेम उभय पक्षी रूप में चित्रित किया गया है । सूर ने जितनी विह्वलता कृष्ण में दिखाई है

उतनी ही राधा में, वरन् स्त्री होने के कारण राधा की विह्वलता को चरमसीमा तक पहुँचा दिया है। कृष्ण से बिछुड़ कर स्वयं जाना उसके लिए असह्य है। पैर घर की ओर नहीं उठते। दो-चार पग चलती है तो फिर मुड़ कर कृष्ण को देख लेती है—

क—चलन चहुँति पग चलत न घर को।

छाँडत जनत नहीं कैसेह मोहन सुन्दर वर को।

—वही

ख—मुरि चितवत नंदगली।

डग न परत ब्रजनाथ साथ बिनु विरह व्यथा मचली।

—वही

इस प्रकार राधा कृष्ण के बीच इतनी समीपता बढ़ जाती है कि उन्हें हार का व्यवधान भी असह्य हो उठता है। जो वस्तु उन दोनों के हृदय में अंतर बनाये रखे उसे कब तक धारण किया जा सकता है—

उतारत है कंठनिते हार।

हरि हर मिलत होत है अंतर यह मन कियो विचार।

—सू० सा०, पृ० २०६

नरसी मेहता की राधा के हृदय में कृष्ण की समीपता पाने की भावना तीव्रतर है। मिलन के समय हार समीपता में बाधक होता है अतएव वह उसे धारण नहीं करती। कुछ काल के लिए हार को उतार देने में कभी धारण न कर देने की बात निश्चय ही अधिक भावुकता प्रदर्शित करती है—

पीयु मारी मेजडी नो शणगार।

जोवन सीचणहार।

पीयुजी कारण हु तो हार न धरती जाणु रखे अंतर थाये।

—न० कृ० का०, पृ० ५२८

आभूषणों के प्रति किसी स्त्री का आकर्षण वास्तविक प्रेम को पाकर ही पराजित होता है क्योंकि उस आकर्षण के मूल में प्रिय को प्रसन्न करने की ही भावना निहित रहती है। सूर और नरसी के उपर्युक्त उद्धरण राधा-कृष्ण के अनिर्वचनीय प्रेम की व्यजना करते हैं। उनमें देव कवि की सामान्या नायिका के कथन 'देव हमें तुम्हें अंतर पारत हार उतारि उतै धरि राखौ' के पीछे छिपी स्वार्थमयी भावना का लेश भी नहीं है। यह सभी उक्तियाँ 'हारो नारोपितः कंठे मया विश्लेष भोक्षणा' की परम्परा में आती हैं।

इसी तरह गोपियों के हृदय को नरसी ने अत्यन्त तीव्र अनुभूति से आसिक्त करके अभिव्यक्त किया है। उनके हृदय का मूल भाव ही गोपीभाव रहा है। गोपियों की भावनाओं के रूप में उनकी अपनी भावनाएँ मूर्त हो उठी हैं। अन्य कवियों की अपेक्षा उन्होंने कृष्ण के प्रेम में अनुरक्त गोपियों की मनोदशा को अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। उनकी कोई गोपी, कृष्ण की वशीध्वनि से विह्वल होकर, नाम जाने बिना ही श्यामछवि पर अपना हृदय निछावर कर डालती है—

नाम न जाणु पण छे कालो ।
ओ जाये ओ जाये कोई पाछो, वालो ।
छेलपणे छमकलो वहालो, शामलीये साइडु लीधुं रे ।
मारगमां वांसलडो बाहता चित हरी ने लीधु रे ।
आलगिन आप्यु वहाला अलवे, नाथ मन मान्युं तमशुं रे ।
नरमैयाचा स्वामी आपण रमिये अंतर टालो अमशुं रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २८३

कोई कृष्ण की मुसकान से विद्ध और अगभगिमा में लुब्ध हो जाती है। वह नाना प्रकार के मंगलमय उपायों से उनका स्वागत करना चाहती है—

बाइ हु तो मरकलडे वेधाणी रे ।
शामलियो आव्यो मदिरमा लटके त्यां लोभाणी रे ।
मोतीअे चोक पुरावुं प्रेमना, कुमकुमनी रोल करावुं रे ।
सैयर मारी मानती भीठु मगल गान करावुं रे ।
सोव्रणपाठ बेसारी बहालानी आरती उतरावुं रे ।
नारमैयाचो स्वामी रुदीया भीडो फूली अगनमावुं रे ।

—वही, पृ० ३८०

धीरे धीरे गोपियाँ कृष्ण को सुख देने और स्वयं सुख पाने के लिए नाना प्रकार की इच्छाएँ करने लगती हैं। उनकी इच्छाएँ क्रिया का रूप धारण कर लेती हैं। एक गोपी कृष्ण को एक छोटी सी बात कहने के लिए एकान्त में बुलाकर अंगभंगियों से अपने मनोभाव को स्वयं व्यक्त करती है। नरसी ने उसकी मुद्रा और उसके भावों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है—

ओरा आव अलगो, अक बात नानी कह तुजने जम हैडा माहे हर्ष पामे ।
कामनी काम अभिलाष करी बोलती, भुर गोवालि या माहे शुं रे रमे ।

नेण नीशान, सनकारली सुन्दरी, नेण कटाक्ष गुण बाधुरी ।
नवनवा रग करी दाखवु आपु अपूरव तेडती तारुणी प्रेमे करी ।

—वही, पृ० ३१८

एक अन्य गोपी की जिस दिन कृष्ण से दिनभर बात नहीं हो पाती है उस दिन काम-काज में उसका जी नहीं लगता और घर भी आकर्षणहीन प्रतीत होने लगता है । वह भुग्धा नहीं है कि स्नेह के भाव को समझ न सके परन्तु इतना साहस भी नहीं है कि ससार के आगे अपने स्नेह को प्रकट कर दे । अभी लोक-लाज और मर्यादा का भय बना है—

अकवार आखा दीन माहे वाहाला तमशु बात न थाय ।
कामकाज मारे चित ना आवे मंदीर मा न सोहाय रे ।
जाहेर तमशु प्रीत बधाणी ते कहे ते सोहाय ।
छानो स्नेह ते मीठो लागे, प्रगट थये पत जाये रे ।

—वही, पृ० ३०२

कभी प्रतीक्षा करते करते रात हो जाती है और उसकी आँखों को नींद घेर लेती है । कृष्ण आकर लौट गये, यह जान कर गोपी को गहरा पश्चात्ताप होने लगता है । सखियाँ सुनेगी, कृष्ण भी उसपर हँसेंगे, यह सोच कर वह पैर पड़कर क्षमा माँगने का निश्चय करती है तब तक एक सखी आकर सूचना देती है कि कृष्ण तो आँगन में खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं । अभी नुझे घर गाय दुहाने जाना है—

पाछली रातना नाथ पाछा बह्या, गु कसं रे सखी हुं न जागी ।
निखतां निखता निद्रा आवी घणी, दोल दीयोती वहाला बंद थापी ।
सोलडी मुणसे कृष्णजी हांसगे, अंहुने जइने पाय लागु ।
सरल छे शामलो मेलशे आमलो, माहावजी कने खमा जइने मांगु ।
उठ आलस तजी नथी गया नाथ हजी, ते आगणे उभा हेत जोवा ।
नारसैयाचो स्वामी भले मळीयो, घेर जइअे हवे घन दोहोवा ।

—वही, पृ० ३७३

गोदोहन के प्रसंग को लेकर नरसी ने सूर की तरह भाव-विकास तो नहीं किया परन्तु पृष्ठ-भूमि में उसे स्थान देकर भावों में तथा वातावरण में स्वाभाविकता लाने का प्रयास अवश्य किया है । सयोग की प्रत्येक स्थिति पारस्परिक प्रीति के विकास में सहायक होती है । राह चलते कृष्ण कभी बाँह मरोड़ देने हैं, कभी एकांत में मिलने का संकेत करते हैं, कभी मुस्करा भर देते हैं और कभी उपेक्षा का अभिनय करते हुए

किनारे से निकल जाते हैं । हर दशा में गोपियों का मन झकझोर उठता है । कभी हर्ष से, कभी विषाद से । कृष्ण को अपने हाथ से जमाने के लिए नरसी की गोपियाँ प्रायः उत्सुक रहती हैं—

पेर पेरना पकवान करीने मेहेल्या वहाला काजे रे ।

—वही, पृ० २७३

कृष्ण गोपियों के लिए कठहार बनजाते हैं । वे उनसे कभी पृथक् नहीं होना चाहती उन्हें देखते ही एकात में आलिंगन में भर लेने के लिए लालायित हो उठती हैं—

क—कठडाचो भूषण सजनी, अलगो न मेलुं दिवस ने रजनी ।

हरि विलोकनां अधररस चाखु, हृदया सरसो भीडी ने राखु ।

—न० कृ० का०, पृ० २९३

ख—कहान अंकलडा मळजो वृंदावन, ते वारे करीश हुं उरहार ।

—वही, पृ० २८७

भिन्न मनःस्थिति में यही गोपियाँ आलिंगन करते हुए कृष्ण का निवारण करने लगती हैं । इस निषेध के द्वारा मिलन की इच्छा का रुख और भी निखर जाता है । शब्दों में वक्रता आ जाती है । निषेध के जो कारण दिये जाते हैं उनसे इच्छा ही प्रकट होती है और निवारण उस इच्छा की पूर्ति का साधन बन कर सामने आता है—

जावा देनी जादव, मेल मारो पालव मोडीश ना मारु अंग दुःखे ।

भीड न भूवरा, राखडी तूटशे, चोली कंचुआकेरा बध छूटशे ।

—वही

कोई गोपी कृष्ण को अपना आन्तरिक आत्मसमर्पण करके अनन्य भाव से उन्हें अपना वर स्वीकार कर लेती है । भाव की इतनी तीव्रता सास-नर्तक के भय, तथा लोक-लाज सभी को अपने में लीन कर लेती है । मन का सत्य ससार के झूठे बन्धनों, मर्यादाओं तथा नियमों से ऊपर उठकर स्वयं अपने को प्रशस्त करने लगता है—

वरियो मे कृष्ण वर वरीयो, वीजो तो हुं नव जाणु रे ।

सासरिया मा माद पडावु, नणदीतो मे न आणुं रे ।

—वही, पृ० २६८

ऐसी ही एक अन्य गोपी कृष्ण से मिलने के लिए आतुर पति और परिवार की भी परवाह नहीं करती, क्योंकि उसके अंग-अंग में कृष्ण व्याप्त हो गये हैं । उनके सिवा किसी दूसरे की गति उसके हृदय तक सम्भव नहीं—

ते जतन करे बहु आपनु', तेनु धीर तम दीठे टले ।
मल्ला कारण मावजी तुजने पति परिवार थी ते चले ।
सकल अगे तमो व्याप्या, अवर बीजे नव गमे ।
तेह तणा मनोरथ पूर्या, अवर मन कही नव भमे ।

—वही, पृ० १३०

भालण के एक पद में गोपी के हृदय में कृष्ण के प्रति उठने वाली कोमल भाव-
नाओं का शृंगलावद्ध वर्णन है—

रात दिवस हुं टलवलु पण स्वप्न माहे नव देखु जी ।
आंगणडे उभी रहु जाणु आणीवाटे हरि आवेजी ।
गौ दोहता अम जाणु आ दूध हरिने पाउं जी ।
दही रुडुं जम्युं देखी इच्छा अवी कीजे जी ।
भोग लागे भूधरजीने, सासु नणदर खीजे ।

—दशमस्कंध, पृ० १३५

ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने राधा तथा अन्य गोपियों में आत्मसमर्पण, निषेधा-
त्मक स्वीकृति, तीव्रमिलनेच्छा, कृष्ण के प्रति अनन्य अनुरक्ति, लोकलाज, परिवार के
भय तथा सास-ननद के प्रति खीझ अथवा उपेक्षा भाव का अनेक रूपों में अनेक प्रकार
से वर्णन किया है । विशेष कर रीति-परम्परा के कवियों द्वारा दिये गये उदाहरणों
में प्रायः ऐसे ही भावों का चित्रण मिलता है । इन कवियों ने एक ओर भावों के
सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद दिखाकर उन्हें क्रमबद्ध करते हुए शास्त्रीयता प्रदान की, दूसरी ओर
विविध गुणों, अलंकारों तथा उक्तियों से सजाकर कलात्मक भी बना दिया जिससे
सौन्दर्यवृद्धि होने के साथ प्रायः कृत्रिमता भी आ गई है ।

इस सब को प्रमाणित करने के लिए कुछ उदाहरण आवश्यक हैं । नरसी की
गोपी कृष्ण को कंठहार बनाने तक की कामना करती है परन्तु देव की शक्ति नायिका
ने अपने प्रिय को हृदय का हार बना कर तो सुख दिया ही, माथ ही आँखों में पुतली
बना कर भी बसा लिया । यही नहीं, वह उसके अंग-प्रत्यंग में अंगराग की तरह रस
चुका है ठीक नरसी के 'सकल अगे तमो व्याप्या' के सदृश—

आँखिन में पुतरी हूँ रहै, हियरा में हरा हवै सबै सुख लूटै ।
अंगनि संग बसै अंगराग हूँ, जीवते जीवनमूरि न फूटै ।

—भवानीविलास

अगो को छूने से कृष्ण का निवारण करती हुई गोपियों की जैसी आन्तरिक स्वीकृति नरसी ने प्रदर्शित की है वैसी ही बाह्य निषेध से युक्त आन्तरिक स्वीकृति मतिराम की नायिका में, कुट्टमितहाव के रूप में, अधिक स्पष्टता से मिलती है—

नेकु नीरे जाय करि बातन बनाय करि,
कछु मन पाय हरि वाकी गही बहियाँ ।
चैनन चरचि लई सैनन थकित भई,
नैनन में चाह करै चैनन में तहियाँ ॥३६९॥

—रसराज

अनन्य आत्मसमर्पण के भाव को भी देव के द्वारा कही अधिक तीव्र अभिव्यक्ति-मिली है—

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कोऊ,
कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौ ।
कैसे नरलोक परलोक वरलोकनि में,
कीन्ही हौ अलीक लोक लीकन ते न्यारी हौ ।
तन जाड मन जाड 'देव' गुनजन जाड,
प्रात किन जाड टेक टरत न टारी हौ ।
वृंदावनवारी वनवारी के मुकुटवारी,
पीतपटवारी बाहि मूरति पै वारी हौ ।

भक्त कवियों ने इस प्रकार के भाव अपने पदों में प्रचुरता से व्यक्त किये हैं । रीति काव्य की भाव सम्पत्ति बहुधा अपने पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य पर आधारित है ।

जिस प्रकार रमण से पूर्व की मनोदशाओं का सूक्ष्म वर्णन कवियों ने किया है उसी प्रकार रमण के समय की और उसके बाद की मानसिक स्थितियों को भी अंकित किया है । गुजराती में भालण और नरसी ने इनसे सम्बद्ध भावों को विशेष मनोयोग और रसात्मकता के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है । नरसी मेहता का तो यह सर्वाधिक प्रिय विषय है । राधा के सुरतोल्लास, सुरतान्त-सुख और सुरत-सगोपन का विविध चेष्टाओं एवं अनुभावों से युक्त वर्णन उक्त दोनों कवियों ने पर्याप्त विस्तार से किया है । ब्रजभाषा काव्य में भी इस प्रकार के भाव उपलब्ध होते हैं और दोनों में साम्य भी कम नहीं है । गुजराती में इस तरह के भावों की अभिव्यक्ति प्रायः राधा के स्वानुभव के रूप में ही कराई गई है ।

राधा की शिथिल और अस्तव्यस्त दशा को देख कर एक अन्तरंग सखी उसका कारण पूछती है । राधा पहले उससे छिपाने का प्रयास करती है और जिस जिस चिह्न की ओर सखी सकेत करके प्रश्न करती है उस उस चिह्न के लिए वह काल्पनिक कारण देती जाती है । भालुण ने इस भाव का एक विस्तृत पद लिखा है जिसमें से कुछ प्रारम्भिक पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

कहे रे मने कामिनी, तु काँ श्वास भराणी जी ।
परसेवो तने का बल्यो, भमर बहु मीजाणी ।
साँचु बोळोजी

राधा कहे हु भूली पडी, वाट मे नव जाणी जी,
वनमा बीहनी अकली, अतिशे त्या उजाणी ।
साभल सुन्दरी

अतलसनी नवी शिवडावी, सहियरे बखाणी जी ।
ते चोलीनी कस क्यमत्रूटी, आवडु क्यां चोलाणी ।
मारु हैडुं आव्यु फाटवा, वाअे करीने काप्यु जी ।
पीडा टालवाने मे चोल्या करे करीने आप्यु ।

—दशमस्कंध, पृ० १३२

सगोपन के भाव को सूर ने अत्यन्त मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है । राधाकृष्ण रमण करके जब अपने-अपने घर जाते हैं तो दोनों की माताएँ प्रश्न कर उठती हैं और दोनों ही सत्य को अपने-अपने ढंग से छिपाने का प्रयास करते हैं—

क. पीत उढनियाँ कहाँ बिसारी ?

यह तो लाल ढिगनि की औरै हैं काहू की सारी ।
हौ गोधन लै गयो यमुनतट तहाँ हुती पनिहारी ।
भीर भई सुरभी सब विडरी मुरली भली सँभारी ।
हौ लै गयो और काहू की सो लै गयी हमारी ।

—सू०, सा० पृ० २०७

ख. जननी कहति कहा भयो प्यारी ?

एक बिटिनियाँ सँग मेरे थी कारे खाई ताहि तहाँ री ।
मों देखत वह परी घरनि पर मैं डरपी अपने जिय भारी ।

—वही

सूरदास के अतिरिक्त ब्रजभाषा में नायिकाभेद लिखने वाले कवियों ने इसी भाव को गुप्ता, लक्षिता, सुरतसंगोपना जैसी नायिकाओं में प्रदर्शित किया है। पर उनके उदाहरणों में वह सरसता नहीं आ पायी है जो भालण के वर्णन में मिलती है। प्रश्नोत्तर के रूप में व्यक्त करके सूर और भालण ने मूल भाव को अधिक सजीव बना दिया है। नरसी की राधा संगोपन का प्रयास नहीं करती। वह भालण की राधा जैसी चतुर नहीं दीखती। ललिता के पूछने पर वह जब स्वानुभव बताने चलती है तो उसे लाज आने लगती है। संगोपन का प्रयास और कथन में लज्जा दोनों ही मनो-भाव स्वाभाविक एवं परिस्थिति के अनुकूल हैं। भालण ने भी लाज का प्रदर्शन किया है परन्तु अत में इस प्रकार उन्होंने उसे नरसी की अपेक्षा कहीं अधिक अर्थपूर्ण बना दिया है। नरसी की राधा लाज करते हुए भी काफी निर्लज्जता से सुरत सुख का वर्णन करती है। भालण ने ऐसे स्थल पर सकेत से काम लिया है।^{१६}

रमण के कारण कृष्ण के अग दुखने लगते हैं। राधा उनकी पीडा अमृत से अधिक मधुर रस देकर दूर करती है—

अबला ते मारुं अग दुःखे, भीडीश मा रे भामिनी ।
कठण पयोधर ताहरा, भुजने ते खुंचे कामिनी ।
अमृत पे अदकु हतु, मुज कने फल जेह ।
पछे पीयुना मुखमाही, प्रेमशु मूक्युं तेह ।

—न० कृ० का०, पृ० १५०

निश्चय ही भालण के वर्णन में कोमल भावों की पर्याप्त रक्षा की गयी है जबकि नरसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। उनके वर्णन में स्थूलता अधिक है। इस तरह के वर्णन ब्रजभाषा में भी उपलब्ध होते हैं। गुजराती और ब्रजभाषा के संभोग वर्णन में कहीं-कहीं आश्चर्यजनक भाव-सादृश्य मिल जाता है। एक ही उदाहरण इस सत्य को प्रकट करने के लिए पर्याप्त है। भालण के कृष्ण सीधे राधा के अंगों का स्पर्श न करके बहाने से छूने का प्रयास करते हैं। राधा को प्रसन्न बनाने और मुग्ध करने के लिए ही कृष्ण की यह चेष्टाएँ होती हैं। राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने भी इस भाव का वर्णन किया है। उनके कृष्ण भी वैसे ही चेष्टाएँ करके अग स्पर्श करना चाहते हैं—

भालण—पगरंगु हुं पद्मिणी जो पडयो लगार जी ।
पछे तमे पधारजो, क्षण नहि लागे वार जी ।
ऐवु कहीने चरण तलासे, मुख सामुं निहाले जी ।

जाणे कोये देवता ते नयण निमेख न वाले ।
 हार जुअे ने उर उघाडे गलगलियाँ करे प्रीते जी ।
 गाले त्या चुंबन करे रमवातणी रसरीते ।
 बेसरनु मोती जुअे ने हाथ फेरवे माल जी ।

—दशमस्कंध, पृ० १३८-३९

ध्रुवदास—अलक सँवारन व्याज मैं परस्यो चाहत कपोल ।

मृदुल करन डारति झटकि रसमय कलह कलोल ॥५॥

—रसरत्नावली

राधा के द्वारा कृष्ण के हाथ झटक दिये जाने की बात लिख कर ध्रुवदास ने मूल भाव को और भी अधिक रसमय बना दिया है क्योंकि निषेध स्वीकार से अधिक आकर्षण उत्पन्न करता है । भालण ने भी अपने पद की एक पंक्ति में 'नाना मा मा रहो रहो करता' लिख कर रसमय निषेध का प्रदर्शन किया है । ध्रुवदास की राधा कृष्ण को नेत्रों तक से अपने अग नहीं छूने देती । दोनों भाव-विभोर होकर एक दूसरे की चतुरता समझते और मुस्कराते हैं—

जो अग चाहत रसिक प्रिय इन नैननि सौ छाव ।
 सो ठा सुन्दरि पहिले ही राखति बसन दुराइ ॥४०॥
 काँपत कर, थरकत हियौ बनत न मन की बात ।
 कुसल जुगल कलकोक मैं समुझि समुझि मुमुकात ॥५१॥

—वही

इसके अतिरिक्त उन्होंने एक ऐसी आन्धतरिक सूक्ष्म अनुभूति को पकड़ लिया है जिस तक किसी गुजराती कवि की पहुँच नहीं हुई । घनीभूत स्नेह होने पर दो स्नेहियों का मिलन कितना भी प्रगाढ़ क्यों न हो, उसमें विरह की अनुभूति बनी ही रहती है । वे दो हैं इसलिए विरह बना रहता है और एक होना चाहते हैं इसलिए मिलन भी अखंड रहता है । इस सूक्ष्म मानसिक स्थिति को कवि ने केवल दो पंक्तियों में बाँध दिया है ।

विरह सँजोग छिनहि छिन माँही ।
 जद्यपि ग्रीवन मेले बाही ॥४२॥

—नेहमंजरी

खंडिता गोपियों के भाव—जहाँ एक ओर कृष्ण राधा की ओर विशेष रूप से आकृष्ट दिखाये गये हैं वहाँ दूसरी ओर कवियों ने उनसे बहुनायकत्व अथवा अनेक

गोपियों को सन्तुष्ट करने की भावना का भी प्रदर्शन किया है । तब नरुणी गोपियाँ उनको पाने के लिए व्याकुल रहती हैं । कृष्ण कभी इसके साथ रमण करते हैं, कभी उसके साथ । उनमें परस्पर ईर्ष्या अथवा भयस्त्री-भाव उत्पन्न हो जाता है । एक को बचन देकर जब वे दूसरी के यहाँ रात बिताते हैं और प्रभात में अनेक रतिचिह्न लिये उसके पास लौटने हैं तो उसका खडित प्रेम कटु एवं व्यग्रपूर्ण शब्दों से उनका स्वागत करता है । एक एक रतिचिह्न उसकी ईर्ष्याविष्ट कल्पना को जागृत करने लगता है और जब कृष्ण को, जिनके लिए स्वयं सेज रचकर वह मारी रात प्रतीक्षा करती रही, तत्काल वही वापस लौटा देने के लिए उद्यत हो जाती है । परन्तु इतने आवेश के बाद भी जब कृष्ण क्षमा याचना के लिए एक कातर दृष्टि उसकी ओर डालते हैं तो वह क्षणमात्र में क्षमा ही नहीं कर देती वरन् उनके रतिश्रमनिवारण के लिए अनेक उपक्रम भी करती है । कुछ गोपियाँ अत तक कृष्ण को क्षमा नहीं करती और एक के बाद एक कटु से कटुतर व्यग्र-वाक्य कहती जाती हैं । कुछ अत्यन्त स्निग्ध शब्दों के द्वारा अपना रोष प्रकट करती हैं और कुछ स्पष्टतया उग्र शब्दों का प्रयोग करते हुए कृष्ण की भर्त्सना करती हैं । इस प्रकार खडिता गोपियों की मनोदशा की अभिव्यक्ति कवियों ने पर्याप्त सूक्ष्मता से की है यद्यपि वर्णन में लडिगत एकस्वरता भी बराबर मिलती है । गुजराती और व्रजभाषा दोनों में खडिता के मनोभावों का वर्णन प्रायः समान ढंग से किया गया है । वही रतिचिह्न वही उपालम्भ, वैसे ही व्यग्र और वैसा ही विव्रण । भावों के अकन में अन्य स्थलों की तरह सूर की विशेष क्षमता यहाँ भी परिलक्षित होती है । कृष्ण की एक ही कातर दृष्टि से अभिभूत होकर क्षमा कर देने वाली जिस खडिता गोपी की ओर ऊपर संकेत किया गया है वह राधा की सुपरिचित सखी ललिता, सूर की भावमयी वार्णा के द्वारा, नवीन रूप में सामने आती है । शाम में ही कृष्ण के लिए वह अतिव्यग्र प्रतीक्षाकुल है और सारी रात वैसी ही विह्वलता से बिता देती है—

साँझहि ते हरिपंथ निहारै ।

ललिता रुचि करि धाम आपने सुमन सुगन्धि सेज सँवारै ।

कबहुँक होत बारने ठाढ़ी कबहुँक गति गगन के तारे ।

कबहुँक आइ गली मग जोवति अजहुँ न आये श्याम पियारे ।

वै बहुनायक अनत लुभाने और वाम के धाम सिधारे ।

सूर श्याम बिनु विलपति बाला तमचुर शब्द जहँ तहाँ पुकारे ।

—सू० सा०, पृ० ४७२

उसकी यह विकलता स्वाभाविक है, क्योंकि कृष्ण उसे स्वयं वचन दे गये हैं। जब कृष्ण सवेरे रतिचिह्न लिये पधारते हैं तो वह और कुछ न कह कर दर्पण भर देख लेने का आग्रह करती है परन्तु जब वे संकोच के मारे उधर नहीं देखते तो ललिता ललित शब्दों में व्यंग्य करती है—

क.—क्यों मोहन दर्पण नहीं देखत ।

क्यों धरणी पग नखन करोवत क्यों हम तन नहीं पेखत ।

क्यों ठाढ़े बैठत क्यों नाही कहा परी हम चूक ।

पीताम्बर गहि कहाँ बैठिये रहे कहा ह्वै मूक ।

उधरि गयो उर ते उपरैना नखछत बिनगुन माल ।

सूर देखि लटपटी पाग पर जावक की छबि लाल ।

—वही, पृ. ४७३

ख.—ऐसी कहौ रँगिले लाल ।

जावक सों कहाँ पाग रँगई रँगरेजिन मिलि है को बाल ।

बदन रंग कपोलन दीन्हों अधर अरुण भये श्याम रसाल ।

माला कहाँ मिली बिन गुन की उर छत देखि भई बेहाल ।

सूर श्याम छबि सब विराजी इह देखि मोको जंजाल ।

—वही

उसके प्रश्न भरे सीधे-सादे वाक्य व्यंग्य को तीक्ष्णतर बना देते हैं। बिना कृष्ण की क्षमायाचना भरी दृष्टि पाये उनका क्रम समाप्त नहीं होता।

काहे को कहि गये आइहैं काहे झूठी सौहैं खाए ।

ऐसे मैं जाने नहीं तुमको जे गुण करि तुम प्रगट देखाए ।

भली करी दरशन हरि दीन्हें जन्म जन्म के ताप नशाए ।

तब नितए हरि नंक त्रिया तन इतनेहि सब अपराध क्षमाए ।

सूरदास सुन्दरी सयानी हँसि लीन्हे पिय अकम लाए ।

—वही

उसके लिए इतना ही बहुत है क्योंकि उसका प्रेम प्रेम का याचक है, वासना न मिली न सही। वह स्वयं कृष्ण का श्रम दूर करने के लिए नाना प्रकार के उपचार करती है। परस्त्रीरमण के चिह्नों का निवारण करके वह एक प्रकार से उस पर अपनी विजय घोषित करती है। घायल प्रेम एवं आहत अहंभाव अपनी क्षतिपूर्ति के लिए कितना जागरूक रहता है, इस तथ्य तक सूर की सूक्ष्म दृष्टि कितनी सरलता से पहुँच गयी है—

नैनकोर हरि हेरिकै प्यारी वदा कीन्ही ।
भाद कह्यो आधीन को ललिता लखि लीन्ही ।
तुरत गयो रिम दूर ह्वै हँसि कंठ लगाए ।
भली करी मनभावते ऐसेहु मै पाए ।
भवन गई गहि बाँह लै जागे निशि जाने ।
अग शिथिल निशि थम भयो मनही मन जाने ।
अग सुगध मर्दन कियो तुरतहि अन्हवाये ।
अपने कर अंग पोछिके मनसाध पुराये ।
चीर अभूषण अंग दै बैठे गिरिधारी ।
रुचि भोजन प्रिय को दियो सूरज बलिहारी ।

—वही

एक खडिता गोपी के भाव का विकास करके सूर ने एक पूरे प्रसंग की सृष्टि कर दी । साथ ही खडिता के हृदय में रुद्धिगत आवेश का ही वर्णन न करके उस स्नेहातिरेक को भी प्रदर्शित किया है जिसकी गहराई में सारी ईर्ष्या, सारा मान और सारा निषेध खो जाता है ।

ठीक इसी प्रकार के कोमल मनोभावों वाली एक खडिता गोपी का चित्रण नरसी मेहता ने किया है । नरसी की गोपी भी कृष्ण से वचन पाकर सारी रात प्रतीक्षा-कुल रही और प्रभात में शिथिल-देह कृष्ण को पाकर सब कुछ समझती हुई भी वह अपने सृष्ट न होने की बात कहती जाती है । कृष्ण यहाँ भी सकोच से गड़े जा रहे हैं । वे निद्रा का बहाना करते हैं पर विश्वास नहीं दिला पाते । जिस तरह सूर के कृष्ण क्षमा-याचनामयी दृष्टि से ललिता को प्रसन्न कर लेते हैं उसी प्रकार नरसी के कृष्ण प्रीति-युक्त हास्य से गोपी को आनंद प्रदान करते हैं—

ब्रजविहारी साभलो, साची कहुं अंक बात ।
मुज सगाथे दृष्ट करीने आवीया प्रभात ।
रजनी सुख माने गमी, जोड़ रही छु वाट ।
मुख बन्द दीधु बीठला, कोई शु कीधो ठाठ ।
साचु बोलो प्रसन्न छु, मन रीश नहीं लगार ।
काहा सुख पाय्या श्यामजी ते कहोने प्राणाधार ।
नीवुं ठाली ने नदसुत, तव बदे मुखची बाण ।
निद्रा आवी नव लहुं, ने अे ते तुं सत्य मान ।

आ चिन्ह निद्रा तणा न होय, अने दीथळ दीसे गात्र ।
 प्रकट जो जो पारखू, पाग ठगे नही पल मात्र ।
 हुम्या हरजी प्रीत आणी, अने भीडी भामिनि अग ।
 दुःख सर्वे वीसर्यु ने रम्या वेहु जण रंग ।
 सकल मनोरथ पूरण कीधा, पीढोनी गननी आरा ।
 निकट उभो नरसैयो ते, जुअे कीतुक हास ।

—न० कृ० का०, पृ० १२८

नरसी ने सारा वर्णन प्रत्यक्षदर्शी की भाँति किया है जो उनकी श्रृंगारप्रियता से व्यक्त करता है। उनके कृष्ण ने निद्रा का बहाना किया। अतएव झूठ के परिहार के लिए परिहास की आवश्यकता हुई, केवल क्षमा-याचनामयी दृष्टि यहाँ अपर्याप्त होती। रतिश्रम-निवारण को चेष्टा के स्थान पर नरसी ने रमण का उल्लेख किया है। इस स्थान पर सूर भाव की अधिक रक्षा करते हुए प्रतीत होते हैं।

नरसी के उपर्युक्त पद में रुढ़िगत रतिचिह्नों का उल्लेख नहीं है किन्तु अन्यत्र उन्होंने उनका उल्लेख करते हुए राधा की मनोदशा का चित्रण किया है। कपोल पर काजल, भाल पर महावर, पीताम्बर के स्थान पर नीलावर, अटपटी पाग, शरीर में गड़े हुए कंकण तथा नखक्षत आदि से विभूषित कृष्ण की विचित्र अवस्था राधा के शब्दों में दर्शनीय है।

कृष्ण प्रत्ये रंगे रमीया ते क्या रेणजी, अरुण उजागरा रातां नेण जी ।
 अधर भयीं रंग तंबोलजी, काजल रेखा तारे कपोल जी ।
 काजल रेखा कपोल सोहै, तीलक खडीत ताहेहं ।
 विभिचारी बोल मा वालमा तो मन माने माहेह ।
 अटपटी शीर पाघ लटके, केसर ने फुले भरी ।
 अबील गुलाल ने चुवा चदन, शोभे नाभी श्री हरी ।
 कंकण कोमल अग खुव्या रेखा दीसे नख तणी ।
 जेशु रंगे रम्या रजनी, वेगें पधारो ने मणी ।
 आ नीलावर कोइ नारनु, तमो माचु कहोने सम नेहना ।
 आधीन थया प्रभु नेहने वहाला, लाव्या ने क्याथी रेणमां ।
 कौस्तुभ मणि आ क्या वीशारी, नवसेरो पहेयों कही नारनो ।
 रीश मा आणो मन विषे, भुने कहोने मुख विहारनो ।
 कइ भामनीअे भोगव्या, रजनी ते चारे जाम ।
 कोमल अगे केम खम्या, रतिपनि रणसंग्राम ।



बेगं पधारो भुवन तेने हु आवु तमार सग ।
श्रीहरी मुख देखाऊ तार रमीआ ते जेशु रंग ।
हावे तेने प्रमन थइन, हु आपीश उरनो हार ।
नरमैया नाथजी मारी, बीनतडी वारंवार ।

—वही, पृ० १५२-५३

कृष्ण से राधा बारी बात का उसकी सौगंध खाकर, पूछना जिसके साथ कृष्ण ने रमण किया है अत्यन्त कठोर व्यंग्य है साथ ही अंत में जब वह अत्यन्त विनय से उनके संग चलकर अपना हार उसे भेंट करने की बात कहती है तो व्यंग्य की मार्मिकता और भी अधिक बढ़ जाती है । पद के प्रत्येक शब्द से राधा के मनोभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति हो रही है ।

नरसी अन्यत्र एक दूसरी गोपी का अकल करने है जो कृष्ण के साथ से लगा महावर दिखाकर अपने रोष को व्यंग्यपूर्ण ढंग से प्रकट करती है—

जो जो रे जो जो रे, साथे महावर लाग्यो ।
नेण निद्रालुवा सोहे, अग मुगधी बागो ।
उलट जायो जाहा वस्या हुता रात ।
नरमैयाचो स्वामी चुक्या, जो न लाव्या साथ ।

—न० कृ० का०, पृ० ५९१

ब्रजभाषा में खडिता के इस प्रकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति प्रायः शृंगार रस के सभी कवियों ने की है । मूर और हरिराम व्यास के निम्नोक्त उद्धरण इसके प्रमाण हैं—

मूर—जावक रग लग्यो भाल, वदन भुज पर विगाल,
पीक पल्ल अघर झलक वाम प्रीति गाढ़ी ।
घयों आय कौन काज, नाना करि अग साज,
उलटे भूषण शृंगार निरखत हौ जाने ।
ताही के जाहु व्यास जाके निशि बसे घाम,
मेरे गृह कहा काम, मूरदाग गाने ।

—सू० सा०, पृ० ४७५

व्यास—आजु पिय राति न तुम कछु सोये ।

कौन भामिनि के भवन जगे हरि जाके रस बस मोये ।

रति रस उमगि चले नखशिख अँग नीरस अधर निचोये ।
 खंडित गंड पीक मुख की छवि असन अलस अति पोये ।
 जावक पीक मधो रस कुमकुम स्वाद वासना भोये ।
 लटकति सिर पगिया, लट विगलत सुन्दर स्वाँग सँजोये ।
 तन मन कारे हौंहि न गोरे कोटि वारि जो धोये ।
 खोटी टेव न तजत व्यास प्रभु मै कै बार बिगोये ।

—व्यासवाणी, पृ० ५२३

सूरदास ने खडिताओं की ही मन-स्थिति को व्यक्त नहीं किया वरन् कृष्ण के मनोभावों को भी स्पष्टता से अभिव्यक्ति प्रदान की है । सारे प्रसंग को उन्होंने लीला-रूप में ग्रहण किया है अतएव मारी भावनाओं की अन्तिम परिणति आनन्द में होनी है । कृष्ण बाह्यतः तो संकोच प्रकट करते हैं परन्तु अन्तर से गोपी के व्यर्थ वचन, उसका रोष, उसकी खोज उनके मन में क्षोभ के स्थान पर एक विचित्र सुख की अनुभूति जगाते हैं जिसकी पुलक में उनका सारा शरीर सिहर उठता है—

श्याम त्रिया सन्मुख सहि जोवत ।
 कबहुँ नैन की कोर निहारत कबहुँ वदन पुनि गोवत ।
 मन मन हँसत वसत तनु परगट सुनत भावती बात ।
 खंडित वचन सुनत प्यारी के पुलक होत सब गान ।
 दह सुख सूरदास कछु जाने प्रभु अपने को भाव ।
 श्रीराधा रिस करति निरखि मुख मो छवि पर ललचाव ।

—सू० सा०, पृ० ४८१

कृष्ण के मनोभावों से सम्बद्ध इस तरह का कोई उदाहरण गुजराती में नहीं मिलता ।

८. कृष्ण का मथुरा-गमन—कृष्ण-काव्य की प्रधान भावना प्रेम है और प्रेम की जितनी तीव्र अनुभूति मिलन में होती है उससे कहीं अधिक विरह में । विरह एक प्रकार से मिलनकाल में विकसित होने वाले प्रेम की गहनता एवं स्थिरता का प्रमाण है । कृष्ण के ब्रज से मथुरा जाने की बात उनके प्रेम में उत्पन्न रहने वाले ब्रजवासियों के लिए कितनी समस्तिक पीड़ा का कारण हो सकती है, इसको सूर और नरसी



के अनुभूतिशील हृदयो ने पूरी तरह पहचाना । दोनों कवियों ने अपने अपने स्वभाव के अनुसार समस्त कृष्ण-काव्य की सयोग वियोगमयी भावभूमि के बीच संविस्थल जैसे इस प्रसंग को विशेष भाव-संकुल बना कर प्रस्तुत किया है । सूर का भाव-निरूपण नरसी की अपेक्षा अधिक विस्तृत और अधिक गंभीर संवेदना उत्पन्न करने वाला है । कृष्ण को मथुरा ले जाने वाले अक्रूर के मनोभावों का सूक्ष्म आलेखन सूर ने पर्याप्त कुशलता से किया है । अक्रूर के हृदय में कृष्ण के चरणों का दर्शन पाने की अभिलाषा एवं उत्कंठा तथा उनके ऐश्वर्य-ज्ञान से उत्पन्न विनम्र भक्ति भाव भागवत-कार ने भी प्रदर्शित किया है परन्तु सूर ने उसे और भी अधिक संवेद्य और संपूर्ण बना दिया है । गुजराती में नरसी के अतिरिक्त अन्य किसी महत्त्वपूर्ण कवि ने अक्रूर की मन स्थिति का स्पर्श तक नहीं किया : भालण एक दो पंक्तियों में संकेत मात्र करके रह गये हैं । यथा—

अक्रूर जी ते वेगें जाये, मनमाहे आनद न माये ।

आज मारा पूर्वज मूकाशे, दामोदरनु दर्शन थाशे ॥

—दशमस्कन्ध, पृ० १५५

सूर ने कृष्ण-चरण-स्पर्श करने की कल्पना में विभोर अक्रूर के मनोभावों का सानुभाव वर्णन किया है—

जब शिर चरण धरिहौ जाइ ।

कृपा करि मोहि देखि लैहै करन हृदय लगाइ ।

अग पुलकित वचन गदगद मनहि मन सुख पाइ ।

प्रेमघट उच्छलत ह्वै है नैन अंशु बहाइ ।

कुसल बूझत कहि न सकिहौं बार बार सुनाइ ।

सूर प्रभु गुण ध्यान अटक्यो गयो पंथ भुलाइ ।

—सू० सा०, पृ० ५८७

एक भावुक-हृदय व्यक्ति भाव-विभोर होकर किस प्रकार कल्पनाशील बन जाता है और क्या सोचता है, यह सूर को भली भाँति विदित है । सूर का उक्त पद भाव की दृष्टि से भागवत पर आधारित है परन्तु कृष्ण को रथ में बिठाकर मथुरा की ओर जाते समय अक्रूर के मन में होने वाले जिस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण सूर ने किया है वह उनकी नितान्त मौलिक भावानुभूति का प्रमाण है । ब्रजवासियों को दुखी करके अक्रूर कंस के पास कृष्ण को ले जाना उन्हें पाप कर्म लगता है, साथ ही उन्हें कंस का भय भी है । इस अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित होकर उनका मन आत्मग्लानि से भर जाता है ।

मनहिं मन अक्रूर सोच भारी ।

जननि दुखित करी इनहिं मैं लें चन्व्यो भई व्याकुल सबै घोष नारी ।

अतिहि ए बाल भोजन नवनीत के जानि तिन्हें लीन्हें जात दनुज पासा ।

कुवलयामल्ल मुष्टिक वाणूर से कियो मैं कर्म यह अति उदासा ।

फेरि लैं जाउँ ब्रज व्याम बलराम को कम लैं मांहि तब जीव मारै ।

सूर पूरण ब्रह्म निगम नाही गम्य तिनाहि अक्रूर मन यह विचारै ।

—सू० मा०, पृ० ५८७

किन्तु जहाँ सूर ने अक्रूर के मन में उठने वाली इन मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए स्थल खोज लिया वहाँ कृष्ण के ब्रह्मत्व का निरूपण करना ही उनका प्रधान लक्ष्य रहा है । यह भक्त कवियों की एक सहज प्रवृत्ति रही है ।

नरसी में भी यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है परन्तु अक्रूर की आर्त दशा उन्होंने सूर की तरह किसी आभ्यन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व के कारण न दिखा कर एक ऐसे कारण से दिखायी है जो पूर्णतया बाह्य तथा स्थूल है । कृष्ण से मिलने के लिए उतावली गोपियाँ अक्रूर को ही कृष्ण समझ लेती हैं और 'स्पर्शसुख' पाने की झोंक में उनकी दुर्दशा बना देती है । अक्रूर घबराहट में अपना नाम तक ठीक से नहीं बना पाते—

गोपी कहे हरि आव्या दावे रे, लीजीअे रम हवे भरपूर ।

अम बोली मनमा डोली रे, अक्रूर पकड़िया तेणि वार ।

स्पर्शमुख भाटे झाल्या रे, हाथ पग, शीर, केश अपार ।

ज्यम कीडीयो कीटने पकड़े रे, त्यम अक्रूर बीटी लीधा ।

कुंजमां लइ जइअे चालो रे हवे मनोरथ सीध्या ।

अक्रूर केहे नोय नोय कृष्ण रे, अ अ क्रू क्रूररररे बोलाय ।

—न० कृ० का०, पृ० ६२

चौटियों द्वारा पकड़े गये कीड़े की तरह अक्रूर की एक बाल भी गोपियाँ नहीं मुनती हैं तब वे ब्राहि ब्राहि करके कृष्ण से सहायता की प्रार्थना करते हैं—

अक्रूर बोले घणु, नव को मुणें ते तणु, वण्यु दीन रूप हरि भक्त केर ।

स्थाव माहरी करो, नहितो निश्चे मरु हु ने उगारो तमे थइने हेरं ।

—वही, पृ० ६३

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो अक्रूर की स्थिति कारुणिक होने के स्थान पर हास्यास्पद हो गयी है जो प्रस्तुत प्रसंग में त्रियोग के पूर्व के रहन दुःखमय वातावरण के अनुकूल

प्रतीत नहीं होती। रसास्वादन में सहायक होने के स्थान पर वह एक प्रकार से उसमें बाधक सिद्ध होती है। गोपियों में भी विछोह के अवसर पर 'स्पर्शसुख' को पाने की जो अंध उतावली प्रदर्शित की गयी है वह प्रेम के सूक्ष्म रूप को व्यक्त करने के स्थान पर स्थूल रूप को ही अधिक व्यक्त करती है। कृष्ण 'कुजररूप' होकर गोपियों को 'कदली' की तरह मर्दित करके परिश्रान्त करते हैं। इस भाव-दृश में भी प्रेम के स्थूल रूप की ही व्यञ्जना होती है।

इस तरह के वासनापूर्ण प्रेम का चित्रण करना नरसी का स्वभाव है किन्तु इसके साथ 'गोविन्दगमन' में उन्होंने गोपियों की मानसिक व्यथा, तथा कृष्ण के प्रति तीव्र आसक्ति का भी चित्रण किया है।

नरसी के कृष्ण मारे ब्रज में इतने लोकप्रिय रहे कि मारे गोप-गोपी सोने-जागने, बैठते-उठते उन्हीं का नाम लेते रहते। जब कृष्ण के गमन का समाचार उन्हें मिलता है तो गोपियाँ दुख से दग्ध होकर पति, परिवार की चिन्ता भूल जाती हैं और गोप उत्तेजित होकर अक्रूर को मारने का विचार करने लगते हैं—

क—सूता वेसता उठता रमता जमता करे कृष्ण ।

बाल रुखे कृष्ण कृष्ण कहीं, न मटे कोनी तृष्ण ॥

—न० कृ० का०, पृ० ५६

ख—कृष्ण जबानु साभल्यु गोपियोअे ज्यारे जी ।

बाघ देखी अजा जेवी तेम थई स्त्रियो त्यारे जी ।

कोना मसरा स्वामी पिता भ्राता हुता जी ।

माटे 'गले झलाइ' गई त्याथी सौको दुहिता जी ।

वली त्या गोप मखाअे मुण्यु गमन जी ।

लिणे तो अक्रूर मारवानु कीधु मन जी ।

—वही, पृ० २७

सूरदास ने भी कृष्ण के मथुरा-गमन का समाचार सुनकर उदास गोप-गोपियों का चित्रण किया है पर उन्होंने गोपों में वैसी उत्तेजना प्रदर्शित नहीं की जैसी नरसी ने की है—

सब मुखानी री चलिबे की मुनत भनक ।

गोपी ग्वाल नैन जल डारत गोकुल ह्वै रह्यो मूँदचनक ।

यह अक्रूर कहाँ ते आयो दाहन लाग्यो देह दनक ।

सूरदास स्वामी के बिछुरत घट नहि रहै प्राण तनक ।

—सु० मा०, पृ० ५८०

इसके अतिरिक्त सूर ने एक ऐसी गोपी की दशा का वर्णन किया है जिससे स्वयं कृष्ण ने अपने जाने की बात कही । जिसके केवल चलने की भनक सुनते ही गोपियाँ मुरझा जाती हैं उसके स्वयं कहने पर कितनी गभीर वेदना उस गोपी की हुई होगी, यह सूर की वाणी से ही व्यक्त हो सकता है । 'जल ज्यों जात बही' कह कर सूर ने उसकी अश्रुविगलित दशा की व्यंजना की है—

हरि मोसों गौन की कथा कही ।
मन गह्वर मोहि उत्तर न आयो हीं सुनि सोचि रही ।
सुनि मखि सत्य भाव की बातें बिरह बेलि उलही ।
करवत चिन्ह कहे हरि हमको ते अब होत सही ।
आजु सखी सपने मैं देख्यो सागर पालि ढही ।
सूरदास प्रभु तुम्हरो गवन सुनि जल ज्यों जाति बही ॥

—सू० सा०, पृ० ५८०

कृष्ण के प्रवास से खिन्न होकर विगत । स्नेह-स्मृतियों से आपूरित तरसी की राधा अतिशय स्मरणगील हो उठती है । कृष्ण ने एक बार उसे मिलन का वचन दिया और नहीं आये । उसने उनके आलस भरे शरीर को देखकर सब कुछ समझ लिया । वह कृष्ण से झगड़ पड़ी, रूठ गयी । कृष्ण ने मनाने के सौ यत्न किये पर नहीं मानी । कृष्ण ने उसे एक दिन कुजगली में मटकी ले जाते हुए देख लिया और 'अलि अलि सर्प' कह कर डरा दिया । फिर जब सर्प के भय से राधा काँपने लगी और सारा मान भूल कर 'कृष्ण कृष्ण' पुकार उठी तो अचानक आकर आलिंगन में भर लिया—

केवडा ऊपर काली जशो सर्प अ 'अलि अलि सर्प' ओम शब्द सुनियो ।
अंग ध्रुजी गयु केश बिखरइ गया, शरीर सारे परस्वेद बळियो ।
नासता नासता हुं पडु आखडु, त्रास पामी घणु मन मांही ।
बडाई ने बिसरी, हे कृष्ण ! कृष्ण ! ऊचरी, गोपीनो नाथ मैं निल्यो त्यांही ।
बा' लो दडबड धोडियो, मुजने आलिंगियो 'डर नहीं, डर नहीं' ओम भाख्यु ।
तरसइना नाथनुं कपट कळी गई तोय वाई हेत ओनु ओज राख्यु ।

—न० कृ० का०, पृ० ६०

सूरदास ने भी एक स्थल पर कृष्ण के वियोग में राधा को ठीक ऐसी ही पूर्व स्मृति-सकुल मनःस्थिति में चित्रित किया है । उसे भी मान करने का घना पश्चात्ताप हो रहा है—



मेरे मन इतनी शूल सही ।
 वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखी जे नँदलाल कही ।
 एक दिवस मेरे गृह आयें हो ही मथत दही ।
 रति माँगत मैं मान कियो सखि सो हरि गुसा गही ।
 सोचति अति पछिताति राधिका मूर्छित धरनि ढही ।
 सूरदास प्रभु के बिछुरे ते व्यथा न जाति सही ।

—सू० सा०, पृ० ६३८

कृष्णसे अपने सुकुमार सम्बन्ध की सरस स्मृतियों में डूबी नरसी की विरहिणी राधा आधी रात, प्रभात किसी भी समय गा उठती, कृष्ण कृष्ण रटने लगती । राधा के वेदनासिक्त स्वर का बाह्य जगत् पर व्यापक एवं मार्मिक प्रभाव अंकित करके नरसी ने राधा की विरहव्यथा को सुकियों की तरह रहस्यात्मक बना दिया है । उसके स्वर को सुन कर पशु पक्षी जाग उठते हैं, यमुना डोलने लगती है, सूर्य उग आता है, कमल खिल जाते हैं और कुमुदिनी के मन में त्रास उत्पन्न हो जाता है—

आ विधे कृष्णचरित्रना, गाय मधराते प्रभात ।
 विरह कृष्ण कृष्ण उचरती जुअे व्हाणु बायानीवाट ।
 पंखीमात्र नहीं पण पशु जागिया, सुणी स्वामिनी मुख बाण ।
 त्या स्थिर जमना लागी डोलवा, स्वर थयो जलचर ने जाण ।
 स्वर मुणियो सूरज देवता, पाछा धाय करवा प्रकाश ।
 स्वर सुणि रे कमल खीलिया, उपन्यो पोयणी ने त्रास ।

—वही

असह्य वेदना से उबरने का अन्य कोई उपाय न देखकर राधा नरसी के द्वारा कृष्ण के पास पत्र भेजती है जिसे लिखते समय वह इतनी विभोर एवं शिथिल हो जाती है कि 'मुआ हाथ' काम ही नहीं करता । यहाँ 'मुआ' शब्द भावव्यंजना की अद्भुत शक्ति रखता है । कमलपत्र पर राधा जो कुछ लिख पाती है उससे उसके दैन्यविगलित हृदय की पूरी झलक मिलती है—

अमो अवुध अबला शुं लखु छो सर्वज्ञ धनश्याम ।
 करगरी लखीअे किकरी, जाउ जमडाने धाम ।
 बली निश्चे मनमां कर्यु, आवुं जाओ ते गाम ।
 बुध लखुं शु रे विठ्ठला, मुआ हाथ न करे काम ।

—वही, पृ० ६५

कवियों द्वारा नद और यशोदा आदि की मनोदशा का जो चित्रण किया गया है उसका परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है ।

नरसी ने कृष्ण के ब्रज से बिछुड़ते समय धेनु-प्रेम को जिस रूप में व्यक्त किया है वह गुजराती काव्य में अद्वितीय है । जिस समय गायें कृष्ण के मथुरागमन का आभास पाती हैं, तत्काल 'हिसारव' करती, बधन तोड़ती, गौशाला फोड़ती निकल पड़ती हैं । कृष्ण भी उन्हें देखने के लिए अक्रूर के साथ गौशाला में जाते हैं । कृष्ण को देखते ही गायें चारों ओर से उन्हें घेर लेती हैं और प्रिय के हाथ का स्पर्श पाकर उनकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं । वे यशोदा को बुलाकर गायों और बछड़ा की दीन दशा दिखलाते हैं । गायें इस प्रकार कातर दृष्टि से कृष्ण को देखती हैं जैसे उन्हें रोकना चाहती हों । पीठ पर हाथ फेरते हुए आश्वासन देकर जब कृष्ण जाने लगते हैं तो वे बड़ी देर तक गर्दन उठा उठा कर उन्हें देखती रहती हैं और अंत में निराश होकर पड़ रहती हैं—

गायोअे जावानु जाण्यु ज्यारे रे, मोटा हिसारव कीधा तारे रे ।
तोडी बरेडु गौशाला फोडी रे, नीकली गायोनी घणी जोडी रे ।
धेनु प्रेम निरखियो नाथे रे, पेठा गौशाला मा अक्रूर साथे रे ।
आवी गायोअे गोविंद घेर्या रे, हरिये वारा फरती कर फेर्या रे ।
बधुथी चोवारे अश्रु खरता रे, बा बां शब्द वाछरुं करता रे ।
जाणी गायो तेमज भणती रे, लेइ जावाना शब्दो सुणती रे ।
न जावा देवा ओवुंदीसे रे, हिसारव करी माहे माहे हीसे रे ।
हरिअे जननी ने त्यां बोलावी रे, जशोमती व्हेली व्हेली आवी रे ।
बोलिया हरि मुखथी हसी रे, आवी जोइ लेओ गायो जशी रे ।
काळी कावरी खोडी बोडी रे, धोळी पीलीनी रुडी जोडी रे ।
हंसली बगली पोषणी राती रे, गोमती टिळवी रखे कइ जाती रे ।
तेना वाछरु सघलां जो जो रे, गायने केहे काळं न आवुं तो रोजो रे ।
कमळ कर पीठ ऊपर धरी रे, गायो रीझवी नीकळ्या हरि रे ।
ऊंची डोक करी करी भाले रे, हरि ने जोतां गायो न्याले रे ।
अदर्श थया ज्यारे दयाल रे, निराशी पडी गायो ततकाल रे ।

—वही, पृ० ६।

ब्रजभाषा में सूर ने गायों की वेदना को तो व्यक्त किया ही है, साथ ही उनके स्वभाव का अधिक सूक्ष्म निरूपण किया है । उन्होंने कृष्ण से बिछुड़ती हुई गायों की दशा अकित न करके बिछुड़ने के बाद उनकी जैसी कारुणिक अवस्था हो जाती है उसका

अकन किया है । प्रसंग-भेद अवश्य है परन्तु यहाँ तुलना की दृष्टि से सूर का एक पद उद्धृत कर देना अनुचित न होगा—

सबुकर इतनी कहियहु जाइ ।
अति कृशगात भई ए तुम बिनु परम दुखारी गाइ ।
जलसमूह वरषति दोउ ओखें, हूँकति लीने नाउ ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनो सूँघति मोई टाँउ ।
परति पछार खाइ छिनही छिन अति आवुर ह्वै दीन ।
मानहु सूर काढ़ि डारी है वारि मध्य ते मीन ।
—सू० सा०, पृ० ७११

नरसी के 'उंची डोक करी करी भाले रे' में जितनी स्वाभाविकता है उससे अधिक स्वाभाविकता नाम सुनने ही हूकने और गोदोहन के स्थानों को जा जा कर सूँघने में है परन्तु जहाँ तक संवेदना का प्रश्न है, नरसी और सूर दोनों के वर्णनों में वह समान रूप में उपलब्ध होता है ।

नरसी ने जिस प्रकार गायों की कातरता एवं उत्सुकता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है उसी प्रकार कृष्ण से बिछुड़ती हुई गोपियों की मनस्थिति को भी पूरी तरह अभिव्यक्त किया है । सारी गोपियों कृष्ण से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं । वर की बड़ी-बूढ़ी मना करती ही रह जाती है और वे भरे जल को ढलका कर मुनी-अनसुनी करती हुई जल भरने के बहाने घर से निकल ही पड़ती है—

आ आवी कही चाली गोपियो, जोई सासु लढवा धाती रे ।
भर्यु पाणी वृथा ढोली बहुवर, मुण्यु न मुण्यु करी जाती रे ।
—न० कु० का०, पृ० ६४

कृष्ण का रथ जब मयुरा की ओर चल पड़ता है तो वे राह में जा खड़ी होती है । कृष्ण की आज्ञा से अक्रूर रथ हूँकने में अपना पूरा कौशल प्रदर्शित करने है परन्तु गोपियाँ आगे-पीछे गिरती-पड़ती, उड़ती हुई धूल में भी रथ को पकड़ लेती है । चतुर राधा पहिये की कील निकाल कर रथारोहियों को पराजित कर देती हैं । भावावेश में वे अक्रूर को मारने और कृष्ण-बलराम को कुंज में जग ले जाने के लिए उद्यत हो जाती है—

अक्रूर ने मारो बांधो पछाडो, वे वीर कुंजे लीजे ।
अबलाअे बलवता पकड़्या नरमहियो घगु रोझे ।
—वही, पृ० ६९

कुज तक जाने के लिए कृष्ण जब हाथी माँगते हैं तो वे तत्काल मिलजुल कर नारी कुजेंर का रूप बना लेती हैं और कुज में जाकर रास-विलास में मग्न हो जाती हैं। गोपियाँ कृष्ण को किसी प्रकार छोड़ने को राजी नहीं होतीं—जब वे पिता की सौगन्ध खाकर शीघ्र आने को कहते हैं तब कहीं मुक्ति पाते हैं। अतः में लाख प्रयत्न करने पर भी जब विदा की वेला आ ही जाती है तो वे कृष्ण के अगणित आश्वासनों पर सदेह करती हुई बार बार शीघ्र आने का आग्रह करती हैं। कृष्ण चल देते हैं तो वे प्रेमाभिभूत होकर उनके डग गिनती रह जाती हैं—

वेहेला आवजो, वेहेला आवजो, अम गोपी भणती जी ।

नरसइयानो स्वामी तो चाल्यो गोपीयो डगला गणती जी ।

—वही, पृ० ७३

इसी तरह जब कृष्ण का रथ वजता हुआ चल पड़ता है तो वे उसे टकटकी बाँध कर देखती रहती हैं। ज्यों ज्यों रथ दूर जाने लगता है त्यों त्यों उनकी उत्सुकता बढ़ती जाती है और वे उच्च से उच्चतर वृक्ष पर चढ़कर उसे देखने का प्रयास करती हैं। पहले रथ में कृष्ण दीखते रहते हैं, फिर रथ ही दिखाई पड़ता है और अतः में जब उसकी ध्वजा भी छिप जाती है तो सारी गोपियाँ दुःख के अतिरेक में चेतनाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। यहाँ परिस्थिति के अनुकूल नरसी ने गोपियों की स्नेहाकर्षणजन्य उत्सुकता का जो क्रमिक विकास चित्रित किया है वह काव्य की दृष्टि से सराहनीय है—

रथ वेगे वाजे घणो रे, ते गोपी टकटक जोय ।

अरे सखि हरि तो गया रे, शी बले आपणी होय ।

जेवा तेवा हरि दीसशे रे, चालो चढिये ऊंची डाल ।

जेम जेम हरि जाय छे रे, तेम तेम ऊंची चढ़ती बाल ।

पछे हरि दिखता रह्या रे, एक रथ देखे सहुको नार ।

ओ रथ दिसतो रह्यो रे टकटक धज जोई रही निरधार ।

धज पण छूपी गयो रे, नही रज जोती ते काल ।

ते जब नव लही रे, ताड चढी कीर्तिनी बाल ।

ताडथी दीसता रह्या रे, के वृक्षथी पड़ी गइ निराश ।

त्रास त्रास वरतइ रह्यो रे, राधा जीव्यानी मूकी आश ।

लोथ्यो पड़ी अक अक परी रे, कोइ नव लीजे तपास ।

माधव ने शु कहीये रे, प्रभुअे घणो कयों विनाश ।

—वह

नरसी की गोपियाँ भावुक होने के साथ ही क्रियाशील भी बनी रहती हैं। उनकी भावना उन्हें मिलन और दर्शन के लिए प्रयत्नरत रहने की प्रेरणा देती हैं। इसके विरुद्ध सूर की गोपियों का भावातिरेक उन्हें सारी परिस्थिति के प्रति विचित्र प्रकार में निश्चेष्ट, निष्क्रिय तथा जड़ बना देता है। वे केवल पश्चात्ताप, रुदन एवं क्रन्दन करती रह जाती हैं। उनकी सारी चतुरता विरहानुभूति की गंभीर अश्रुधारा में बह जाती है। वे लाज त्याग कर कृष्ण को मथुरा जाने से रोकने की बात सोचती हैं पर जब अवसर आता है तो उनसे प्रेम के कारण बोला तक नहीं जाता, सारा शरीर रोमांच से भर जाता है—

गोपालहिं राखहु मधुवन जात ।

लाज गहे कछु काज न सरिहै बिछुरत नद के तात ।

रथ आरूढ़ होत बलि बलि गई होइ आयो परभात ।

मूरदास प्रभु बोलि न आयो प्रेमपुलकि सब गात ॥

—सू० सा० पृ० ५८४

कृष्ण रथ पर चढ़ कर चल भी देते हैं फिर भी उनसे गंभीर दुःखानुभूति के कारण कुछ करते ही नहीं बनता, जहाँ की तहाँ चित्रवत् खड़ी रह जाती है—

रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी ।

हरि के चलत देखियत ऐसी मनहु चित्त लिखि काढ़ी ।

सूखे वदन स्रवत नैनन ते जलधारा उर बाढ़ी ।

कधनि बाँह धरे चितवति दुम मनहु बेलि दब डाढ़ी ।

नीरस करि छाँड़ी सुफलक सुत जैसे दूध बिन साढ़ी ।

मूरदास अकूर कृपा ते सही विपति तनु गाढ़ी ।

—वही, पृ० ५८५

कृष्ण से उनकी चेतना पूर्णतया आबद्ध रहती है। विसुधि एवं निष्क्रियता उसी का एक परिणाम है, उसकी न्यूनता अथवा अभाव का प्रमाण नहीं। विछोह के अवसर पर उनके प्रेम में वासना की उष्णता तथा चपलता की गंध भी नहीं रह जाती। न तो वे नरसी की गोपियों की तरह मार्ग में व्यूह बना कर उन्हें रोकने का प्रयास करती हैं और न कुज में ले जाकर रास-विलास में निमग्न होती हैं। जब उनके प्रेम का बल कृष्ण को नहीं रोक पाया तो बौद्धिक और शारीरिक बल का प्रयोग वे क्यों करें। स्थूल चेष्टाएँ उनकी सुकुमार भावना के अनुकूल नहीं पड़ती। परन्तु सुकुमार हो कर भी उनकी भावना हृदय के गंभीरतर स्तरों तक व्याप्त दीखती है। रथ को

भाव पक्ष

देखने की लालसा, कृष्ण के प्रति अनुराक्त एवं उनके गाय रहने की इच्छा उनमें किसी प्रकार भी नरसी की गोपियों में कम प्रतीत नहीं होती। रथ कितनी दूर गया उसकी जिज्ञासा रथ उनके कृष्ण को लेकर जा रहा है इसकी अनुभूति, रथ के साथ माध धूल, पताका पवन आदि होकर मधुरा तक जाने की लालसा तथा रथ के चले जाने पर सूर्छित होकर निर पडना इसका प्रमाण है—

क—केतिक दूगि गया रथ माई ?

नैद-नंदन के चलन मखी री तिनको भिलन न पाई ।

एक दिवस हौ द्वार नद के नही रहति बिनु आई ।

आजु विधाना मति मेगी गई भौन काज बिरमाई ।

—सू० भा०, पृ० १८५

ख—मखी री वह देखौ रथ जान ।

कमलनेन काँधे पर न्यारो पीत वसन फहरान ।

—वही

ग—पाछे ही चितवत मेरे लोचन आगे परत न पाँइ ।

मन लै चली साधरी सूरति कहा करौ ब्रज जाइ ।

पवन न भई, पताका अबर भई न रथ के अंग ।

धूरि न भई चरण लपटाती जाती वहुँ लौं सग ।

ठाढी कहा करौ मेरी मजनी जिहि विधि मिलहि गोपाल ।

सूरदास प्रभु पठै मधुपुरी मुरझि परी ब्रजवाल ।

—वही

भाव-विकास की अन्तिम सीमा मूर और नरसी में समान है परन्तु मध्य की भाव-स्थिति में पर्याप्त अन्तर है। बचपन का प्रेम और रथ की धूल के कारण कृष्ण को भर आँख न देख पाने की विवशता उन्हें बहुत समय तक कचोटती रहती है—

अब तो है हम निपट अनाथ ।

जैसे मधु तोरे की माखी न्यो हम बिनु ब्रजनाथ ।

अधर अमृत की पीर मुई हम बाल दशा ते जोरि ।

सो छिड़ाय सुफलक-सुत लै गयो अनायास ही तोरि ।

जौलनि पानि पलक मीड़त रही तौ लगि चलि गये दूरि ।

करि निरध निबहै दै माई आँखिन रथ पद धूरि ।

—सू० सा०, पृ० ६१०



बलराम और कृष्ण को अवश्य सूर ने नितान्त निस्पृह एवं निर्लिप्त रूप में चित्रित किया है। बिछोह का ऐसा अवसर भी उनके मन में किसी प्रकार के भाव उत्पन्न नहीं कर पाता—

व्याकुल भये ब्रज के लोग ।
श्याम मन नहीं तेक आनन ब्रह्म पूरण योग ।
कौन माता पिता को हैं, कौन पति को नारि ?
हँसत दोउ अक्रूर के सँग नवल तेह बिसारि ।

—वही, पृ० ५८० ।

नरसी के कृष्ण ऐसे नहीं हैं। वे 'प्रेमांकुश' पकड़ कर नारीकुजर का आरोहण करते हुए कुंज में क्रीड़ा करने जाते हैं और जाते जाते फिर आने का वचन भी देते जाते हैं पर भावुकता उनमें भी उत्पन्न नहीं होती।

९ अमरगीत—कृष्ण-काव्य में अमरगीत का प्रसंग ब्रजवासियों, विशेषकर गोपियों की मनोदशा की अभिव्यक्ति का अत्यन्त प्रधान केन्द्र रहा है। कमशः इसमें सैद्धान्तिकता का समावेश हो गया परन्तु उससे भावाभिव्यक्ति की क्षति न होकर कुछ उत्कर्ष ही हुआ है। गोपियाँ भक्ति एवं प्रेम का प्रतीक बन गईं। ज्ञान और योग के समर्थनकर्ता उद्धव को वे प्रायः अपनी गम्भीर प्रणयानुभूति और निश्चल आसक्ति से पगजित कर देती हैं। बौद्धिक तर्क की अपेक्षा वे अश्रु और उच्छ्वास का आश्रय लेती हैं जो उनके विरहविदीर्ण हृदय की सहज अभिव्यक्ति करते हैं। ऐसे कवि कम हैं जिन्होंने गोपियों के भावों के साथ कृष्ण के भावों का भी अकन इन प्रसंग में किया हो। सूरदास और भालण ने कृष्ण के ब्रज-प्रेम का अंकन किया है परन्तु दोनों में मौलिक अंतर है। सूर के कृष्ण ब्रज और ब्रजवासियों के प्रति जो ममता व्यक्त करते हैं वह 'छल' के रूप में प्रकट की गई है। निर्लिप्त कृष्ण उद्धव का ज्ञानगर्व नष्ट करने के निमित्त वैसे भाव प्रदर्शित करते हैं परन्तु भालण ने अपने कृष्ण में ब्रज के प्रेम का जो चित्रण किया है वह वास्तविक है। उनके भाव छलमय होकर पूर्णतया निश्चल रूप में व्यक्त किये गये हैं, ^{१०} किसी निमित्त से भावों को व्यक्त करना भावों के असत्य होने का आवश्यक प्रमाण नहीं है, फिर भी सूर की अपेक्षा भालण के कृष्ण की स्थिति मानवीयता की दृष्टि से अधिक स्वाभाविक प्रतीत होती है। गुजराती के अन्य कवि प्रेमानन्द ने भी इस स्थल पर अपने पूर्ववर्ती भालण की ही तरह कृष्ण को मानवीय दुर्बलताओं से आपूर्ण चित्रित किया है। ^{११}

यही नहीं, प्रेमानन्द ने उद्धव में ज्ञानगर्व की अपेक्षा गोपियों के प्रेम के प्रति आदर तथा कोमलता का भाव आदि से ही चित्रित किया है—

जड लोचने जोउ ब्रजवधू, मारो थम पिंड पवित्र ।

—श्रीम० भा० पृ० ३२७

भालण ने कृष्ण की उन ममतापूर्ण ब्रज-स्मृतियों का विस्तार से आलेखन किया है जिनमें वे मथुरा के राजवैभव की अपेक्षा ब्रज के वन्य वातावरण और सहज मुख को अधिक प्रिय स्वीकार करते हैं । गोपियों और यशोदा के साथ बीती हुई अनेक मुकुमार घटनाओं का स्मरण करके वे उद्धव को अपना अभिन्न मित्र समझकर ब्रजवासियों का दुख दूर करने भेजते हैं । उद्धव कृष्ण का सदेश ब्रज में लाते हैं इस वस्तु को तो कवियों ने सामान्यतः स्वीकार किया है परन्तु उसकी भावभूमि को कुछ ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार परिवर्तित एवं विस्तृत कर लिया है । भावाभिव्यक्ति के क्षेत्र में सूर की विशेषता यहाँ भी परिलक्षित होती है । उद्धव के मथुरा लौट आने पर गोपियों की दशा सुन कर कृष्ण के हृदय में वास्तविक उद्वेलन होता है । दुखी गोपियों के पास योग का सदेश भेज कर वे पछताते हैं—

मुनु उघो मोहि नेक न विसरत वे ब्रजवासी लोग ।
तुम उनको कछु भली न कीनी निशिदिन दियो विधोग ।
यद्यपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राज-सुख भोग ।
तदपि मनहि बसत बसीवट ब्रज यमुना सयोग ।
वे उत रहत प्रेम अवलबन इतते पठयो योग ।
सूर उसास छाँड़ि भरि लोचन बढ्यो विरह ज्वर गोग ।

—सू० सा०, पृ० ७२५

कृष्ण की मन-स्थिति पूर्ववर्णित मन स्थिति से विरोध उपस्थित करती है परन्तु विचार करने पर विरोध विरोध न रहकर विरोधाभास सिद्ध होता है क्योंकि कृष्ण उद्धव को गोपियों के पास ब्रज-प्रेम की महिमा समझाने के लिए ही तो भेजते हैं । यह उद्देश्य उनके हृदय में अन्तर्निहित ब्रजप्रेम को व्यजित करता है । सूर ने इसको उक्त पद में अभिव्यक्त किया है । यों सूर ने कृष्ण को कभी निर्लिप्त, निष्काम तथा निर्विकार रूप में चित्रित किया है और कभी उनमें भावों, अकामनाओं तथा मनो-विकारों का भी प्रदर्शन किया है, इसमें सदेह नहीं ।

संदेश पाने से पूर्व ब्रजवासियों की मनोदशा—संदेश पाने से पहले ब्रजवासियों में जो आशामयी उत्सुकता उत्पन्न होती है उसको सूर ने पूरी तरह प्रत्यक्ष करके व्यक्त किया है । गोपियों की वृत्ति कृष्ण में इतनी रमी हुई है कि उन्हें उद्धव के आने का आभास अपने आप हो जाता है; सुख-दुख का मिश्रित अनुभव होने लगता

है और वे प्रिय के आगम को जताने वाले काग को खीर और पाग देने की कामना करने लगती है ।^{३९}

भावमुग्ध अवस्था में गोपियाँ वेश-साम्य देख कर उद्धव को ही कृष्ण समझ लेती हैं । यह भ्रान्ति सारे ब्रजवासियों के हृदयों को आन्दोलित कर देती है । नन्द, यशोदा, ब्रजललनाएँ तथा गोवृन्द सभी प्रेमजन्य अनुभावों से आपूरित हो जाते हैं । उनमें वितर्क का भी संचार होने लगता है—

घर घर इहै शब्द पर्यो ।
मुनत यगुमति धाइ निकसी हर्षि हियो भर्यो ।
नद हर्षित चले आगे सखा हर्षत अग ।
झुड झुडन नारि हर्षित चली उदधितरग ।
गाइ हर्षत पय स्रवत थन हुंकरत गउ बाल ।
उमंगि अग न मात कोऊ वृष तरुन अरु बाल ।
कोउ कहत बलराम नाही श्याम रथ पर एक ।
कोउ कहत प्रभु सूर दोऊ रचित बात अनेक ।

—सू० मा० पृ० ६४६

इतनी आशान्वित उत्सुकता के बाद जब उन्हें ज्ञात होता है कि वस्तुतः कृष्ण नहीं हैं, उद्धव हैं तो वे तत्काल मूर्छित हो जाती हैं । यह मूर्छा कृष्ण के प्रति उनकी गहरी आसक्ति की परिचायक है । उन्हें लगा जैसे स्वप्न में पाया साम्राज्य छिन गया हो ।

जबहि कह्यो ए श्याम नही ।
परी मुरझि धरणी ब्रजबाला जो जहँ रही सु तही ।
सपने की रजधानी ह्वै गई जो जागी कछु नाही ।
बारबार रथ ओर निहारहि श्याम बिना अकुलाही ।

—वही

कृष्ण की कुशल पूछते हुए भी उनका कलेजा काँपता रहता है । हर्ष के साथ ही आशका उन्हें व्याप्त हो जाती है—

पूछत कुशल नारि नर हरषत आये सब ब्रजवास ।
सकसकात तन धकधकात उर अकबकात सब ठाढ़े ।

—वही, पृ० ६४८

इस स्थल पर किसी भी गुजराती कवि ने इतनी कुशलता से भावाकन नहीं किया है। प्रमानन्द ने नन्द-यशोदा में तो आशामयी उत्सुकता प्रदर्शित की है परन्तु गोपियों की मानसिक प्रतिक्रिया भिन्न रूप में चित्रित की है। वे नन्द के द्वार पर रथ देख कर अक्रूर के आने की भ्रान्त कल्पना कर लेती है और इसी भ्रान्ति के वशीभूत हाँकर भाँवावेण में सारथी को मारने लगती है—

सारथि लीवो मारवा, क्रोवें गोपिका उन्मत्त ।

शु पुनरपि पापी आवियो, अक्रूर नन्द ने रोह ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२५

निश्चय ही इस कठोर भावाभिव्यक्ति की तुलना सूर के कोमल भावनिरूपण तथा सूक्ष्म अनुभूति से नहीं की जा सकती। यो मूर की कुछ गोपियों को भी उद्धव के रथ से अक्रूर के पुनरागमन का आभास होता है—

आजु ब्रज कोऊ आयो है ।

कैधौ बहुरि अक्रूर कूर है जियन जानि उठि धायो है ।

पर इसे केवल आभास तक सीमित रखकर सूर ने भाव के सौन्दर्य की पूरी तरह रक्षा की है।

सूर की गोपियों में अप्रतिहत अबाध कृष्ण-प्रेम परिलक्षित होता है। कृष्ण के न आने की बात जान कर जो गहरी निराशा उन्हें होती है उसी के भीतर से कृष्ण की पानी में कुछ पा जाने की आशा फूट पड़ती है। आगन्तुक के प्रति जो आशामयी उत्सुकता उनमें उत्पन्न हुई थी वह पाती को देखकर पुनः जग उठती है। कृष्ण के हाथ के लिखे हुए अक्षर पाकर वे इतनी अधिक भावविह्वल हो जाती हैं कि आँसू बहाने के अतिरिक्त प्रिय के नदेश को पढ़ने की भी चेतना नहीं रहती। वे उसे बार बार हृदय से लगाकर आत्मविभोर हो जाती हैं—

निरखत अक श्याम सुन्दर के बार बार लावत लै छाती ।

लोचन जल कागद मणि मिलिकै ह्वै गई श्याम जू की पाती ।

—सूर० मा०, पृ० ६४९

संदेश की प्रतिक्रिया—उद्धव के द्वारा कृष्ण का ज्ञान, योग, तपस्या और निर्गुण ब्रह्म की उपासना का क्रूर नदेश पाकर गोपियों के स्नेहाप्लावित हृदय में जो प्रतिक्रिया होती है उसे कवियों ने कही स्वाभाविकता के साथ कही अतिरजना के साथ.



पूरा विस्तार देकर चित्रित किया है। एक तो यह प्रतिक्रिया अनेकमुखी होती है—दूसरे उतनी ही गंभीर जितनी गंभीर गोपियों की प्रीति है। दोनों ही बातें मानव-मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। गोपियों का आक्रोश पहले पहल उन कृष्ण पर होता है जिन्होंने प्रीति करके धोखा दिया और ऐसा मदेश भेजा। भ्रमर को आधार बना कर वे अपना सारा आक्रोश कृष्ण की जैसी लंपटता, चंचलता, स्वार्थपरता, अस्थिर प्रीति तथा क्षणिक रसलुब्धता का बखान करती हुई प्रकारान्तर से व्यक्त कर डालती हैं। फिर वे उन उड़व पर रुक जाती हैं जो ज्ञान का संदेश लाद कर ब्रज लाये। इसके बाद जब वे कृष्ण की इस आकस्मिक विरति का कारण खोजती हैं तो उनकी बागधारा कुब्जा की ओर मुड़ जाती है और वे कृष्ण और कुब्जा के अवैध एवं अशोभन संबंध की कल्पना करके तीव्र से तीव्र व्यंग्य करने लगती हैं।

मदेश में कही हुई प्रत्येक बात का उन्हें भिन्न ही अर्थ प्रतिभासित होने लगता है। वे एक के बाद एक प्रहार करके उस मदेश की धजियाँ उड़ाने लगती हैं। जिस पाती में मदेश लिख कर भेजा गया और जिसे प्रेम की पाती समझ कर उनका हृदय लहरा उठा था उसे वे पढ़ती तक नहीं। कुछ कवियों ने इस तीव्र भावात्मक प्रतिक्रिया को उसकी गंभीरता के साथ आत्मसात् न करके बौद्धिक रूप दे दिया है परन्तु अधिकतर काव्य में इसका भावात्मक रूप ही प्रकट किया गया है। सूर ने प्रतिक्रिया की गंभीरता तथा उसके बहुमुखी प्रसार को पूरी तरह अभिव्यक्त किया है। अन्य कवियों में इसकी आशिक अभिव्यक्ति मिलती है। गुजराती तथा ब्रजभाषा के समस्त कृष्ण-काव्य में भ्रमरगीत सम्बन्धी भावनाओं के आलेखन में सूर का स्थान सर्वोपरि है।

सूर की गोपियों का प्रत्येक उद्गार सीधा हृदय से मिश्रित हुआ लगता है। इन उद्गारों में कवि ने सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदन को तीव्र से तीव्र अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे कृष्ण के मदेश और मदेशवाहक का जी भर कर परिहास करती हैं, उनपर कठोर से कठोर व्यंग्य कसती हैं परन्तु इस सबके पीछे से उनके हृदय में रह रह कर लहराता हुआ गहरा भाव-समुद्र झलकता रहता है। कवि ने कदाचित् अपने हृदय की तीव्रतम अनुभूति से भ्रमरगीत सम्बन्धी पदों का निर्माण किया है। भाव में डूब कर उसीकी कल्पना भावाभिव्यक्ति के अनगिनत प्रकार रचती जाती है जो अन्य कवियों के काव्य में नहीं मिलते।

कृष्ण के प्रति गोपियों का उपालंभ, व्यंग्य और अनन्य प्रेम—‘यह पाती लै जाहु मधुपुरी जहाँ वसै श्याम सुजाती’ कह कर सूर की गोपियाँ मदेश की व्यंग्यपूर्ण उपेक्षा करती हैं। इस भाव को प्रेमानंद ने भी प्रदर्शित किया है—

जें सदेशो श्रीकृष्णे कहाव्यो ते तमो फरी लेता जाओ ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२७

‘कृष्ण के संदेश को वापस लेने जाओ’ कहने की अपेक्षा ‘इसे उस मथुरा में ले जाओ जहाँ कृष्ण रहते हैं’ कहना व्यंग्य को अधिक मार्मिक बना देता है । कृष्ण के संदेश पर व्यंग्य करने के साथ ही सूर की गोपियाँ अपने भेजे सदेशो का स्मरण करने लगती हैं । उनका यह सोचना कि हो न हो क्रूर-हृदय कृष्ण ने उनके सदेशवाहक पथिको को उलटा-सीधा समझा दिया होगा, अत्यन्त स्वाभाविक लगता है ।

सँदेसन मधुवन कूप भरे ।

अपने तौ पठवत नँदनदन हमरे फिरि न फिरे ।

जेइ जेइ पथिक हुते ब्रज पुर के बहुरिन ओव करे ।

कै वह श्याम सिखाय प्रबोवै कै वह बीच वरे ।

—सू० मा०, पृ० ६५०

अमर के माध्यम से कृष्ण पर आक्षेप करती हुई गोपियाँ सभी काली वस्तुओं को सदोष एव निःकृष्ट घोषित कर देती हैं । इस भाव को गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनों में समान रूप से अभिव्यक्ति मिली है क्योंकि इसका मूल सूत्र भागवत की गोपियों के ‘तद-लससितसख्यैः’ से निहित है । कवियों ने सूत्रनिहित भाव को अधिक तीव्र एव स्पष्ट करके व्यक्त किया है—

गुजराती

भालण—काळा सवला धूतारा, कोणे कल्या नव जाय जी ।

मन वाल्युं वले नहि तो, कीजे कशो उपाय रे ।

—३० स्क०, पृ० २१४

प्रेमानंद—जेटला काळा ते सहु कपटी, विश्वासकोनो नव करीअे ।

काळा सर्पनी मगत करता, कोइक दहाडो मरीअे ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२८

बेहेदेव—काळा सरखा होय कूडे भर्या ।

चंपक सरखा काळे परहर्या ।

—बृ० का० दो० भाग १, पृ० ६६७

ब्रजभाषा

सूर—क मधुकर यह कारे की रीति ।

मन दै हरत परायो सरवस करै कपट की प्रीति ।

ज्यों षटपद अबुज के दल में वमन निशा रति मानि ।

दिनकर उए अनत उड़ि बैठे फिरि न करत पहिचानि ।
भवन भुजग पिटारे पाल्यो ज्यों जननी जिय तात ।
कुल करतूति जाति नहि कबहूँ सहज सुजसि भजि जाति ।
कोकिल काग कुरग श्यामघन हमहि न देखे भावै ।
सूरदास अनुहारि श्याम की छिनु छिनु मुरति करावै ।

—सू० सा०, पृ० ६७७

ख. विलग मति मानहु उधो प्यारे ।

वह मथुरा काजर की उबरी जे आवै ते कारे ।

तुम कारे, सुफलक-सुत कारे, कारे मधुप भँवारे ।

—वही

काले के अन्य अनेक दोष तो उक्त सभी कवियों ने दिखाये हैं परन्तु वे प्रतिक्षण कृष्ण की स्मृति दिलाते हैं, इस रसमय दोष को सूर की ही अन्तर्दृष्टि ने देखा । साथ ही सारी मथुरा को 'काजर की उबरी' कह कर अकूर, उद्धव, कृष्ण सब के प्रति व्यंग्य करना भाव की और भी व्यापक अनुभूति का परिचायक है ।

इसी प्रकार कुब्जा के साथ कृष्ण के अनुचित एवं अनुपयुक्त संबन्ध की परिकल्पना करके गोपियों का हृदय आहत और विदीर्ण हो उठता है । आहत स्नेह व्यक्ति के उद्गारों का जो रूप होता है वह कुब्जा को लेकर लिखे गये पदों में पूर्णतया व्यक्त हुआ है । सूर ने इस भावस्थिति को कुब्जा के मनोभावों का चित्रण करके और भी अधिक मजीब बना दिया है । अपने सदेश में राधा और गोपियों के प्रति वह मृदु कटु दोनों प्रकार से व्यंग्य करके कृष्ण पर अपना स्वत्व प्रदर्शित करती है और कृष्ण के व्रज से विमुख होने का सारा दोष उन्हीं पर मढ़ देती है ।*

इस प्रकार की भाव-योजना करके सूर ने एक ओर तो कुब्जा को प्राणवत्ता प्रदान की, दूसरी ओर गोपियों के व्यंग्यपूर्ण उद्गारों के लिए अधिक उपयुक्त आधार प्रस्तुत किया जिसकी पृष्ठभूमि में गोपियों की सागे ईर्ष्या, सारा आक्रोश अधिक स्वाभाविक तथा मार्मिक प्रतीत होने लगता है । कृष्णकाव्य के किसी अन्य कवि ने भावयोजना के क्षेत्र में ऐसी कुशलता प्रदर्शित नहीं की । कुब्जा के प्रति व्यंग्यपूर्ण उद्गार व्यक्त करती हुई गोपियों की भाव-विह्वल दशा का चित्रण दोनों भाषाओं के अनेक कवियों ने किया है । नरसी के भ्रमरगीत सम्बन्धी पदों का प्रधान भाव कुब्जा पर ही केन्द्रित है—

कसरायनी दासी कुब्जा, खुधी ने बली खोडी रे ।

काळो काहनो काळी कुब्जा, सरखी मळी छे जोडी रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २८२

कुब्जा-कृष्ण के सबध की असंगति का परिहास करती हुई एक गोपी कुब्जा को वे बातें भी कहला भेजती है जिनके द्वारा वह कृष्ण को मुखी रख सके । इस प्रकार के उद्गारों में प्रिय की कल्याण-कामना ईर्ष्या को पराजित करके प्रमुख हो उठती है अथवा रति के साथ वात्सल्य का उदय हो जाता है—

कुब्जा ने कहेजो रे, ओधव अंटलु रे, हरी हीरो आव्यो ताहारे हाथ ।
मान करीने रे, अहेने तु लजावेरे, कहु छु शीखामणनी बात ।
प्राते उठीने प्रथम पूछजे रे, जे मागे ते आपजे ततखेव ।
बीजुं काइरे, भुधर ने भावे नही रे, माहावाने छे महिमाखननी टेव ।

—वही, पृ० ३१२

भालण की गोपियों का व्यग्र कुब्जा से अधिक कृष्ण के प्रति उन्मुख है । वे कहती हैं कि कृष्ण ने कदाचित् इसीलिए विवाद नहीं किया कि जब दासी से ही कार्य सिद्ध होता है तो बंधन में कौन पड़े—

हजी शुं परण्या नथी, धणी बधारी लाज जी ।
बंधन मा शाने पडे, जो दासीअे सरे काज ।

—द० स्क०, पृ० २१२

और इसीलिए कृष्ण गोकुल नहीं आते कि अगर कुब्जा खो गयी तो कोटि उपाय करने पर भी नहीं मिलेगी—

गोकुल क्यम आवे हरि ने प्रीत जडी ।
कोटि उपाय कीजे जो आपण क्याहि मके कुबडी ।

—वही, पृ० २१९

‘हरिअधरामृत’ पीने वाली प्रेमानंद की गोपियों को ज्ञानसुधा विष के तुल्य प्रतीत होती है और वे उद्धव से कुब्जा को ब्रह्मविद्या देने के लिए कहती है, क्योंकि वे उसे ही उसके परम उपयुक्त समझती हैं—

ब्रह्मविद्या कुब्जा ने आपो, शीखी जाशे वहैली रे उद्धवजी ।
अमो आहिरडी महीडां वेचु, ओढु धाबल मेळी रे उद्धवजी ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३३०

इस कथन में भी जो वक्रता है वह भाव से सीधे सम्बद्ध है । व्यग्र यो तो कुब्जा पर प्रतीत होता है परन्तु वह ब्रह्मविद्या शीघ्र ही सीख जायेगी, इस कथन में सदेश भेजने

वाले कृष्ण के प्रति गहरी ध्वनि है । प्रेमानन्द ने यशोदा तक को कुब्जा के प्रति व्यंग्य करते हुए चित्रित किया है यद्यपि वह व्यंग्य स्वतन्त्र न होकर एक दूसरे व्यंग्य के आश्रित रूप में व्यक्त हुआ है—

अटलु कहेजो देवकी ने, जे पुत्रनु सुख लीघु अमो ।
पागो लागशे कुलवत कुब्जा, बहुना सुख लेजो तमो ।

—वही, पृ० ३३१

सूर की गोपियाँ कृष्ण के प्रति भावातिरेक में तीव्रतम व्यंग्य करती जाती हैं जिनमें कुब्जा, उद्धव तथा उनका योग और निर्गुण सभी आ जाता है परन्तु उसके बाद ही वे अत्यधिक खिन्न तथा शिथिल होकर कभी अपनी त्रुटि खोजने लगती हैं, कभी सीधे सीधे कृष्ण को कुब्जा के परित्याग की सलाह देने लगती हैं । इस प्रकार सूर ने गोपियों की भावाकुलता के अनेक स्तरों का स्पर्श किया है ।”

सूर के काव्य में वे स्थल और भी अधिक मार्मिक हैं जहाँ उन्होंने गोपियों की गभीर अनन्य अनुरक्ति को अत्यन्त सहज भाव से व्यक्त कर दिया है । गोपियों के सरल तर्क प्रेम की जटिल गति को पूरी तरह प्रकट कर देते हैं—

क—ऊधो मन न भये दस बीस ।

एक हुतो सो गयो श्याम सँग, को अवराधे ईस ?

—सू० सा०, पृ० ६७४

ख—मन में रह्यो नाहिन ठौर ।

नंद नंदन अछत कैसे आनिये उर और ।

—वही

ऐसी भावाभिव्यक्ति एक स्थल पर प्रेमानन्द में भी मिलती है—

अमृतनो घट मुख लगी भरीओ, ऊपर भरीओ ते वही जाय ।

श्री कृष्ण भर्या छे कंठ प्रमाणे, तो केम जोग समाय ।

—श्री म० भा०, पृ० ३२८

सूर ने गोपियों की एक अन्य मुकुमार भावना का चित्रण किया है कृष्ण को देखने वाली आँखों से उन्हें देखनेवाले उद्धव को पाकर वे अपने को कृतार्थ मानती हैं । एक क्षण को उन्हें लगता है कि जैसे कृष्ण ही मिल गये ।

ऊधो हम आजु भई बड भागी ।

जिन आँखिन तुम श्याम विलोके ते आँखियाँ हम लागी ।

जैसे सुमन वाम लै आवत पवन मधुष अनुगगी ।
ज्यों दर्पन मे दर्शन देखत दृष्टि परम रुचि लागी ।
तैसे सूर मिले हरि हमको विरह व्यथा तनु त्यागी ।

—सू० सा०, पृ० ६४५

इतने सरल सहज ढंग से गभीरतम स्नेहानुभूति को कृष्णकाव्य में किसी भी अन्य कवि ने शब्दबद्ध नहीं किया ।

नददास की गोपियों में हृदय की अभिव्यक्ति इतनी स्वाभाविक नहीं हो पाई है, फिर भी एक स्थल पर उनके तर्कों का भोलापन दर्शनीय है—

जो मुख नाहिन हुताँ, कहाँ किन माखन खायो ?
पाइन वित गोसंग कहाँ को बन बन वायो ?

—नददास, पृ० १२५

गुजराती में भालण की कतिपय पक्तियों में भी इस तरह की सरल भावाभिव्यक्ति उपलब्ध होती है—

ते मन पाछु क्यम बले जेणे मुरली तो रस चाख्यो जी ।
ते वा' लो क्यम विसरे जे हैडे चापी राख्यो ।
कुब्जा सरखी कोटिक करजो तमो अमारे अक जी ।

—द० स्क०, पृ० २१५

सूर और भालण ने राधा की मनोदशा को और भी अधिक सुकुमारता से चित्रित किया है । सूर की राधा इतनी भावुक है कि कृष्ण की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए वह अपनी सारी तक नहीं बुलाती—

अति मलीन वृषभानु-दुलारी ।
हरि श्रमजल अतर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी ।

—सू० सा० पृ० ७१२

भालण की राधा के हृदय में एक नदकुमार के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए स्थान नहीं । वह क्या उपालंभ दे ? एक जिज्ञासा उसे अवश्य होती है और वह यह किये कुब्जा सचमुच उससे अधिक सुन्दरी और चतुर है जो कृष्ण देखते ही मुग्ध हो गये ।

उद्धव साचु कहो निरधार ।
कुब्जा अमथी रूपे खडी चतुराई अपार ।



जेने देखीने मोहयाम्या तत्क्षण देवमुरार ।
मै तो बीजो कोय न दीठो अकज नदकुमार ।
पुनरपि मन मा तेने वाञ्छु वृंदावन अवतार ।

—द० स्क०, पृ० २१७

इसी के साथ दोनों ने उद्धव के मन पर राधा की परम प्रेममयी मूर्ति का अपूर्व प्रभाव भी अंकित किया है । विरहिणी राधा की दशा से उद्धव अभिभूत हो जाते हैं । भालण और सूर ने उनके मुख से राधा की दशा का जो वर्णन करता है वह गभीर विरह की पूर्ण व्यजना करता है ।

भालण—उद्धव करे कहु बान खरी,
राधा नथी को चौद लोक मा (तुज समी) सुन्दरी ।
अँवी प्रीत नहि करे कोये, जेती तमो करी ।
तनमत धन सनप्या सहुअ, निश्चल व्यान धरी ।

—वही,

सूर—चित दे सुनहु श्याम प्रवीन ।
हरि तुम्हारे विरह राधा मै जु देखी छीन ।
कठ बचन न बोलि आवइ हृदय परिहस भौन ।
नैन जलभरि रोइ दीनो ग्रसित आपद दीन ।

—सू० सा०, पृ० ७१९

१० पुनर्मिलन—मुदीर्घ वियोग के पश्चात् कुक्षेत्र में ब्रजवासियों का कृष्ण से मिलन, भाव की दृष्टि से, अन्यतम घटना है परन्तु सूर और भालण के अतिरिक्त दोनों भाषाओं में कदाचित् ही किसी कवि ने इस स्थिति की मार्मिकता का अनुभव किया हो । उसकी सफल अधिव्यक्ति का प्रश्न तो अनुभूति के बाद उठता है । उक्त दोनों कवियों ने भी पुनर्मिलन की विविध भाव-सकुल परिस्थिति का व्यापक चित्रण नहीं किया है । सूर ने राधा और रुक्मिणी के मनोभावों को विशेष अभिव्यक्ति प्रदान की है और भालण ने यशोदा के ।

सूर ने रुक्मिणी के हृदय में राधा तथा अन्य ब्रजवासियों के प्रति एक सुकुमार जिज्ञासा-भाव का अंकन किया । अपने प्रिय कृष्ण के विगत जीवन और पूर्वपरिचित ब्रज की गोपियों के संबंध में उसे ममतापूर्ण उत्सुकता होती है । कृष्ण ब्रजवासियों की बात उठते ही भावाकुल हो जाते हैं और उनकी आँखों में जल भर आता है—

रुक्मिणि बूझति हें गोपालहि ।
 कहै बात अपने गोकुल की कतिक प्रीति ब्रजबालहि ।
 कहा देखि रीझे राधा सो चंचल नैन विशालहि ।
 तब तुम गाय चरावन जाते उर धरने बनमालहि ।
 इतनी मुनी नैन भरि आये प्रेम नद के लालहि ।
 सूरदाम प्रभु रहे मौन ह्वै घोष बात जनि चालहि ।

—सू० सा०, पृ० ७५३-५४

‘रुक्मिणि मोहि ब्रज बिमरत नाही’ कह कर वे रुक्मिणी के आगे भावविभोर होकर अपनी जन्मभूमि ब्रज के जीवन की अनेक बातों का गुणगान करने लगते हैं । ब्रज-वासियों से मिलने का आकर्षण उन्हें नदयशोदा के पास एक दूत भेजने के लिए प्रेरित करता है । कृष्ण की भावना राधा के हृदय में प्रतिध्वनित होती है और उसके अग अग फड़क उठते हैं, मन पुलक से भर जाता है और अचल लहराने लगता है । राधा-कृष्ण की अभिन्न प्रीति इससे पूर्णतया व्यजित होती है—

माधवजी आवनहार भये ।

अचल उडत, मन होत गहगह्यो फरकत नैन खये ।

—वही, पृ० ७५४

कृष्ण का भेजा हुआ दूत सब कुछ यशोदा के प्रति ही कहता है । राधा के लिए कृष्ण ने एक शब्द भी नहीं भेजा, फिर भी भावविह्वल होकर राधा ही आँसू बहाती है । उसी के हृदय में सूर ने मिलन की उत्कठा का चित्रण किया है—

राधा नैन नीर भरि आई ।

कबधौ श्याम मिलै सुन्दर सखि यद्यपि निकट है आई ।

कहा करौं केहि भाँति जाउँ अब पेखहि नहि तिन पाई ।

सूर श्याम सुन्दर घन दरसे तन की ताप बुझाई ।

—वही, पृ० ७५५

इस स्थल पर सूर द्वारा यशोदा के मनोभावों की उपेक्षा अवश्य कुछ विचित्र सी लगती है । ब्रजवासियों की मिलनोत्सुकता का जहाँ सामूहिक रूप से चित्रण किया गया है वहाँ यशोदा का भी उल्लेख कर दिया गया है—

नद यशोदा सब ब्रजवासी ।

अपने अपने शकट साजिकै मिलन चले अविनाशी ।

—वही,

उपेक्षा के स्थान पर यह भी संभव है कि सूर ने यशोदा की अनुभूति की चरम गभीरता को उसके मौन द्वारा ही व्यजित करना चाहा हो। यह अनुमान इसलिए होता है कि कृष्ण से मिलने के बाद भी यशोदा मारी घटना के प्रति अचेत एवं विमुग्ध बनी रहती है। उसे अपनी मुग्ध तब आती है जब स्वयं कृष्ण स्मरण दिलाते हैं। यह स्थिति कदाचित् उस जडता को ध्वनित करती है जो वियोग की चरम स्थिति है और जिसके आगे मरण ही शेष रह जाता है—

तेरी जीवनमूरि मिलहि किन माई ।

महाराज यदुनाथ कहावत तबहि हुते शिशुकुँवर कन्हाई ।

पानि परे भुज घरे कमल मुख पेखत पूरव कथा चलाई ।

परम उदार पानि अवलोकत हीन जानि कछु कहत न जाई ।

फिरि फिरि अत्र सन्मुख ही चितबति प्रीति सकुच जानी न दुराई ।

अब हँसि भेंटहु कहि मोंहि निजजन बाल तिहारो हो नद दोहाई ।

रोम पुलकि गदगद तनु तिहि छिन जलधारा नैनन बरषाई ।

—वही,

भालण ने यशोदा के दुःख को इस प्रकार मौन अभिव्यक्ति न करके मुखर अभिव्यक्ति की है।

भालण की यशोदा को कृष्ण द्वारा विसार दिये जाने का गहरा क्षोभ है। देवकी को मातृत्व का पद देकर स्वयं को धाय स्वीकार कर लेने पर भी अपनी इतनी उपेक्षा उसे असह्य है। वह बिलख बिलख कर अपना दुःख सुनाने लगती है—

हु दुखणी मात, शी कहुं बात, वेहुअे आत त्यजी ने गया द्वारका ।

तारे देवकी मात, वसुदेव तात, बलभद्रभ्रात धाव हु का विसारी ।

—दशमस्कंध, पृ० ४०८

देवकी यशोदा को अपनी बहन कह कर आत्मीयता प्रदर्शित करती है। यह सुन कर यशोदा की आँखों में जल भर आता है। वह उसके आगे और भी भावविभोर होकर अपना हृदय दिखाने लगती है। देवकी ज्यों ज्यों उससे सहानुभूति व्यक्त करती जाती है, यशोदा का हृदय उतना ही भावाकुल होता जाता है। निश्चय ही भालण द्वारा वर्णित देवकी-यशोदा-मिलन काव्य की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक स्थल कहा जायगा।

देवकी कहे सुणो जशोदा, तमे भगिनी छो मारी जी ।

कृष्ण हलधर उछेरिया, शी सेवा करू तारी ।

ज्यम पापण नेत्र (ने) राखे, त्यम ते राख्या तन जी ।
 अेवा वचन सुणी जशोदा, जळ भरे लोचन ।
 जशोदा कहे देवकी सुणो मे पीयारो नव जाण्यो जी ।
 निश्चे तमो शु कहो छो मारो, प्राणाधार अही आण्यो ।
 मारे स्वप्नवत् थयुं, वरस अगीयार त्या जेह जी ।
 कृष्ण दीपक उत्सव वही गयो, मारे हुनागनी रही अेह ।
 तमो पावया मुजने शु कहो छो, अे तो प्राण आधार जी ।
 दुष्ट हृदय तो न थी फाटतु, मारु आणे टार ।
 अेम कही जशोदा रड्या गदगद कटे तेह जी ।
 त्यारे देवकी प्रतिवोध दे, तमो शु दुख आणो अेह ।
 देवकी कहे अेने पोतानु को नथी त्यां तेह जी ।
 भालण प्रभु रघुनाथ ने, घणो छे नमशु नेह ।

—वही, पृ० ४०९

यशोदा की तरह भालण ने गोपियों की मनोदशा का भी चित्रण किया है । वे सबकी सब कृष्ण को देख कर चित्र की तरह जड होकर रह जाती हैं । जब स्वयं कृष्ण बोलते हैं तो उनको चेतना आती है । यह जडता मूर द्वारा वर्णित यशोदा की जडता के समान है परन्तु भालण आगे इसका निर्वह नहो कर सके, क्योंकि इतनी भावलीन गोपियों के लिए यह स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता कि जडता से मुक्त होते ही वे कृष्ण के साथ एकान्त में रमण और आलिंगन के लिए प्रस्तुत हो जायें पर भालण ने वर्णन इसी प्रकार किया है । प्रकार साथ रमण और आलिंगन करने के बाद कृष्ण का स्वयं गोपियों को ज्ञान देने लगना भी कम अस्वाभाविक नहीं लगता—

कृष्णजी हस्या त्यारे सही जो, गोपी ग्रही सर्वदेवमुरार जो ।
 अेकाते प्रभु चालिया जो, तेगु रमिया आप जो ।
 आलिघन सर्व कोने कर्पुं जो, विरह संवघी ताप जो ।
 पछे कृष्णजीअे विचारियु जो, अेने ज्ञान हवु हवे आप जो ।

—वही, पृ० ४१०

भालण ने जितनी मार्मिकता से यशोदा-देवकी का मिलन चित्रित किया है, राधा-रुक्मिणी के मिलन में सूर ने भी उतनी ही मार्मिकता उत्पन्न की है । एक अन्तर है वह यह कि रुक्मिणी में राधा से मिलने की अतीव उत्सुकता दिखाई देती है जब कि देवकी में यशोदा के प्रति वैसा कोई भाव नहीं मिलता । रुक्मिणी की यह उत्सुकता द्वारका से ही प्रकट होने लगती है और जब वह ब्रजगोपियों के समूह को प्रत्यक्ष

देखती हैं तो वह सब से प्रधान भाव के रूप में व्यक्त हो उठती है । कृष्ण एक नीलवसन वाली गोरी भावमूर्ति की ओर इशित कर देते हैं ।

बूझति हैं रुक्मिणि पिय इनमें को वृषभानुकिशोरी ।
नैक हमै देखराबहु अपनी बालापन की जोरी ।
परम चतुर जिन कीन्हें मोहन अल्प वैस ही थोरी ।
बारे ते जिहि यहँ पढायो बुधि बल कल विधि चोरी ।
जाके गुण गनि गुथति माल कबहुँ डरते नहि छोरी ।
मुमिरन सदा बसत ही रसना दृष्टि न इत उत मोरी ।
वह देखो युवतिवृंद में ठाढ़ी नीलवसन तनु गोरी ।
सूरजदास मेरो मन बाकी चितवन देखि हर्योरी ।

—सू० मा०, पृ० ७५६

राधा और रुक्मिणी में सहमा गहरी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है । दोनों का प्रेम अधिकार भावना से ऊपर उठकर आत्मसमर्पण के क्षेत्र में पहुँच चुका है इसलिए ईर्ष्या के स्थान पर सहानुभूति का चित्रण ही उपयुक्त है और सूर ने वही किया भी है—

रुक्मिणि राधा ऐसे बैठी ।
जैसे बहुत दिनन की बिछुरी एक बाप की बेटी ।
एक सुभाव एकलै दोऊ, दोऊ हरिकी प्यारी ।
एक प्राण मन एक दुहुन को तनु करि देखियत न्यारी ।
निज मंदिर लै गई रुक्मिणी पहुनाई विधि ठानी ।
सूरदास प्रभु तहँ पग धारे जहाँ दोऊ ठकुरानी ।

—वही, पृ० ७५६ ।

इसके अनन्तर सूर ने रुक्मिणी के भवन में राधा-कृष्ण की भेट का वर्णन करना चाहा परन्तु उनकी रसना उस चरम मुख की अभिव्यक्ति में असमर्थ हो गई किन्तु जितनी पक्तियाँ उन्होंने लिखी हैं वे व्यजना की पूर्ण शक्ति रखती हैं—

राधा माधव भेट भई ।
राधा माधव, माधव राधा, कीटभृंग-गति होइ जो गई ।
माधव राधा के रंग राचे माधव राधा रंग गई ।

माधो राधा प्रीति निरतन रसना कहि न गई ।
 बिहँसि कछो हम-तुम नहि अतर यह कहि ब्रज पठई ।
 सूरदास प्रभु राधा माधव ब्रज विहार नित नई नई ।

—वही

राधा-कृष्ण-मिलन की अनिर्वचनीयता का आभास देकर भी सूर ने उसका निरूपण कर ही दिया और यही नहीं, मिलन के क्षणों में सकोच के कारण अधूरी तुष्टि की जो कचोट राधा के हृदय में रह गई, उसकी भी अभिव्यक्ति करना वे नहीं भूले । कृष्ण-मिलन के बाद राधा अपनी सखी से इस मनोदशा को व्यक्त करती है—

करत कछु नाहीं आजु बनी ।
 हरि आये हौं रही ठगीसी जैसे चित्त धनी ।
 आसन हर्षि हृदय नहि दीन्हो कमल कुटी अपनी ।
 न्यवछावर उर अरध न अचल जलधारा जो बनी ।
 कंचुकी ते कुचकलश प्रगट ह्वै दूटि न तरक तनी ।
 अब उपजौ अनि लाज मनहि मन समुझत निजकरनी ।
 मुख देखत न्यारे सी रहिहौं बिनु बुधि मति सजनी ।
 तदपि सूर मेरी यह जड़ता मगल माँझ गनी ।

—वही, पृ० ७५७

नरसी ने एक पद में राधा-रुक्मिणी और कृष्ण के साथ होने का उल्लेख तो किया है परन्तु उनके मिलन के क्षणों का सूर की तरह भावमय निरूपण नहीं किया—

राधीकानो हार हरिजे रुक्मिणि ने दीधो रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ४२६

पादटिप्पणियाँ

१. अष्टाक्षर और वल्लभसम्प्रदाय, पृ० ६६३
२. न० कृ० का०, पृ० ७६
३. वही, पृ० ६७
४. वही, पृ० १२३
५. सू० सा०, पृ० १३१
६. श्रीम० भा०, पृ० २४०
७. सू० सा०, पृ० १४४, १४५
८. द० स्क०, पृ० ३६
९. श्रीम० भा०, पृ० २५२, २५३
१०. सू० सा०, पृ० १५६
११. वही, पृ० १५६
१२. वही, पृ० १६१
१३. द० स्क०, पृ० ३५, ३६, सू० सा०, पृ० १४७, १४८
१४. द० स्क०, पृ० ४०, ४१; सू० सा०, पृ० १७५, १७८
१५. सू० सा०, पृ० १६८, श्री० पदा० द्वितीय भाग, पृ० ४, न० कृ० का०, पृ० ४६८
१६. श्रीम० भा०, पृ० २६०
१७. द० स्क०, पृ० १६२
१८. वही, पृ० १६८, १६९
१९. वही, पृ० १७१
२०. सू० सा०, पृ० ६०५
२१. द० स्क०, पृ० ६५, ६६
२२. दृ० का० दो० भाग १, पृ० ११०, १११
२३. सू० सा०, पृ० ३११
२४. वही, पृ० ३०८
२५. भा० बा०, पृ० ७४, ७५
२६. काँकरौली के पदमग्रह से, २ : १ : १८; श्री० पदा०, पृ० ६१
२७. सू० सा०, पृ० २६८, ३०६, ३०७
२८. भाला - द० स्क०, पृ० १०४, १०८, नरसी - न० कृ० का०, पृ० ५८७; सुरदास : सू० सा०, पृ० ४८७, ५०५
२९. नरसी - न० कृ० का०, पृ० ३०४; सुरदास : सू० सा०, पृ० ५१८

कृ० का०—२३

- ३० सू० सा०, पृ० २५७
 ३१, वही, पृ० २५७-५८
 ३२ वही, पृ० २५६
 ३३. वही, पृ० २६०
 ३४. वही, पृ० २०५
 ३५. वही, पृ० २४५
 ३६ द० स्क०, पृ० १३९; न० कृ० का०, पृ० १४८
 ३७. सूरदास सू० सा०, पृ० ६४७; भास्वता द० स्क०, पृ० २०७-८
 ३८. श्रीम० भा०, पृ० ६२१
 ३९. सू० सा०, पृ० ६४५
 ४० वही, पृ० ६४३
 ४१ वही, पृ० ६६५-६६६



कला पक्ष

कला का व्यवहार व्यापक और संकीर्ण दोनों अर्थों में होता है। व्यापक अर्थ में वह मनुष्य की अन्तर्चेतना से गभीर रूप में संबद्ध एक सत्य है और उसके मौन्द्य-प्रिय स्वभाव की सहज अभिव्यक्ति है। संकीर्ण अर्थ में उसे कुतूहल एवं आश्चर्य उत्पन्न करने की एक प्रक्रिया मात्र कहा जा सकता है जिसकी मौलिक प्रेरणा अपेक्षाकृत बाह्य है और जिसका सम्बन्ध बुद्धि-कौशल से अधिक है। काव्य में जहाँ भावपक्ष की प्रधानता है वहाँ उसके कलापक्ष की भी कम सहता नहीं है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र का जितना भी विस्तार है उस सब में कला की गति है। अनुभूति की सीमा में जहाँ भी कोई भाव अभिव्यक्ति की सीमा में पहुँचा वहीं उसे कला की अपेक्षा होनी है, भले ही कवि असजग होकर उसका प्रयोग करे अथवा सजग होकर। अभिव्यक्तिपरक अतिशय सजगता कभी-कभी कवि को भाव से विच्छिन्न कर देती है और श्रेष्ठ कला के लिए अनुभूति और अभिव्यक्ति का जो सामंजस्य अपेक्षित है वह नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में कला विकृत होने लगती है और काव्य का प्रभाव भी समुचित रूप में नहीं हो पाता। अन्ततः कला भावाभिव्यक्ति का साधन ही है, साध्य नहीं। यों एक मत उसे साध्य भी मानता है और इस धारणा के अनुरूप काव्य रचने की परम्परा भी रही है।

भावों के आलेखन, चित्रण एवं अभिव्यंजन में कला की जो सूक्ष्म गति है उसका निदर्शन आवश्यकतानुसार भावपक्ष के निरूपण के साथ ही कर दिया गया है परंतु दृश्य-चित्रण, स्वभाव-चित्रण, प्रकृति-चित्रण और प्रबन्ध-निर्वाह आदि में तथा उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-विधान में कला का जो रूप गुजराती और ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत मिलता है उसका निरूपण यहाँ किया गया है।

५ दृश्य-चित्रण

किसी पुराण अथवा काव्य ग्रंथ का आधार लेकर काव्य रचने वाले कवि बहुधा जो दृश्य चित्रण करने हैं उसमें अनुकरणान्मकता तथा परम्परा परिपालन का इतना आग्रह रहता है कि उसका समुचित प्रभाव उत्पन्न नहीं हो पाता। बहुत कम कवि ऐसे मिलते हैं जो दृश्यों को कल्पना द्वारा पूर्णतया प्रत्यक्ष करके उनका स्वानुभूत रूप में चित्रण करते हैं। प्रत्यक्षीकरण भौतिक रूप में ही न होकर काल्पनिक रूप में भी होता है इसलिए कल्पनाशील कवि भौतिकतया अनुभूत रूप-चित्रों, छायाओं

अथवा दृश्यों को भी इस प्रकार प्रस्तुत कर देते हैं जैसे उन्होंने उनका बहुत काल तक उसी रूप में गहन अनुभव किया हो। यह सत्य है कि काल्पनिक प्रत्यक्षीकरण मूलतः यथार्थ जगत् के प्रत्यक्ष अनुभवों पर ही आधारित होता है। भावना कल्पना-शक्ति के द्वारा उसका विकास एवं विस्तार भर कर देती है। दोनों भाषाओं के अधिकांश काव्यों में दृश्यचित्रण के जो स्थल मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि मामान्यतः कवियों ने परम्परा का पालन और आधारभूत ग्रंथ का अनुकरण दोनों ही काम किये हैं। उनकी यह प्रवृत्ति अत्यन्त व्यापक है। परतन्त्र कल्पना तथा अनुकरण की प्रवृत्ति को स्पष्ट करने लिए रास का उदाहरण लिया जा सकता है। समस्त कृष्णकाव्य में रास अनुलनीय महत्त्व का विषय रहा है। चौदनी रात में कृष्ण के साथ असंख्य गोपियों के सामूहिक नर्तन का जिस रूप में भागवतकार ने वर्णन किया वह कवियों की भावना और कल्पना दोनों का केंद्र बना। अनेक रूपधारी श्याम वर्ण कृष्ण और असीम सौन्दर्यवती गौरवर्णा गोपियों के अत्रिरल, अविराम नृत्य की अलौकिक शोभा का उन्होंने जहाँ वर्णन करना चाहा वही भागवतकार की कल्पना उनकी कल्पना पर छा गई। यह कल्पना-पारतन्त्र्य असमर्थता का ही द्योतक नहीं है। कहीं कहीं भागवत में वर्णित दृश्यो एवं रूप-चित्रों के सौन्दर्य का आकर्षण भी इसका कारण प्रतीत होता है। किन्तु यह सत्य है कि दृश्य चित्रण करने समय प्रायः कवियों ने उन-मानों तक के चयन में भागवत का आधार लिया है। 'गायन्त्यस्त तडित इव ता मेघचक्रे विरेजु' में जो रूचित्र मिलता है वह अनेक कवियों की कल्पना का अंग बन कर व्यक्त हुआ है। निम्न पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं —

ब्रजभाषा

सूर—

मानो माई घन घन अतर दामिनि ।

घन दामिनि दामिनि घन अंतर शोभित हरि ब्रजभामिनि ।

—सू० सा० पृ० ४३७

नंददास—

सावरे पिय सँग निरर्तित, चुचल ब्रज की वाला ।

जनु घनमंडल मजुल, खेलति दामिनिमाला ।

—नद० पृ० १७७

हरिवंश—

रास में रसिक मोहन बने भामिनी

उमै कल हंस हरिवंश घन दामिनी ।

—श्रीहित० पृ० ३४



गुजराती

नरसी—

अलवे अंग मांडती वहाला सग झोडती,
जाणे घन दाहिनी चमके भारी ।

—१० कु० का०, पृ० २१७

इसी प्रकार 'मध्ये मणोंनां हैमानां महासरकतो यथा' के रूपचित्र के आधार पर भी कवियों ने रास का दृश्याकन किया है। विविध आगिक चेष्टाओं, नृत्यमुद्राओं तथा आभूषणों के अनुरणन से उत्पन्न ध्वनियों के सामञ्जस्य से वैनी ही पूर्णता लाने का प्रयास किया गया है जैसी भागवत के रास-वर्णन में मिलती है।

सूर, नददास तथा नरसी जैसे कवियों, जिन्होंने रास के दृश्य को पूर्ण तन्मयता के साथ अंकित किया है, के आगे भी भागवत का रास आदर्श रूप से प्रस्तुत रहा है। यद्यपि इन कवियों के रास-वर्णन में स्वतन्त्र उद्भावनाएँ पर्याप्त रूप में मिलती हैं तथापि उपर्युक्त सत्य भी स्पष्ट रूप से अलंकृत है।

कवियों की स्वतन्त्र उद्भावनाशक्ति तथा कल्पनाशक्ति का परिचय उन स्थलों पर विशेष रूप से प्राप्त होता है जो भागवत आदि आधार ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होते अथवा जिन्हे भिन्नता देकर चित्रित किया गया है। इन स्थलों पर समर्थ कवियों में एक दूसरी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं और वह प्रवृत्ति मौलिकता-प्रदर्शन, अनुकरण तथा स्वानुभव के द्वारा आधारभूत वस्तु के अभिनवीकरण की है।

भिन्नता देकर जिन स्थलों पर दृश्य-विधान किया गया है वहाँ इस प्रवृत्ति का पूर्ण प्रस्फुटन तो नहीं ही पाया जाता परन्तु उसका जो भी रूप मिलता है वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

सूर ने भागवतोक्त दावानल के भयानक तथा उग्र रूप के विस्तार का जो दृश्य अंकित किया है वह उनकी अपनी कल्पना से विकसित हुआ है। वन में अग्नि के प्रचंड रूप धारण करने के समय किस प्रकार की परिस्थिति हो जाती है, इसका सूर ने सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण किया है। इस चित्रण में अनुकरणात्मकता के स्थान पर मौलिकता का आग्रह अधिक है —

भहरात झहरात दावानल आयो ।

घेरि चहुँ ओर करि शोर अंदोर वन घरणि आकाज चहुँ पास छायो ।

बरत वन बाँस, धरहरत कुसकाँस, जरि उडन है बाँस अति प्रबल वायो ।

झपटि झपटत लपट, पटकि फूल फूटत फटि चटकि लट लटकि द्रुम तवायो ।
अति अगिनि झार भार धुआर करि उचटि अंगार झझार छायो ।
बरत बन पात भहरात झहरात अररात तर महा धरणी गिरायो ।

—सू० सा०, पृ० २३१

इसी प्रकार प्रेमानंद ने दावानल से दग्ध वन के दृश्याकन में मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है यद्यपि सूर का सा नादसौन्दर्य वे न उत्पन्न कर सके । उन्होंने दावानल के स्वरूप को आलिखित करने की अपेक्षा उसके कारण गायो तथा अन्य पशुपक्षियों की दुर्दशा का सूक्ष्म चित्रण किया है —

अनल प्रबल वायु छे घणो, थयो तीव्र ताप दावानल तणो,
तपित तन सुरभिनां थया, प्रस्वेदना जलविदु बह्या ।
त्रासे गाय नासे अरी परी, न शके अग्नि आगल नीमरी ।
मा शब्द सुरभि भाखे, अकेक पर जइ कोट नाखे ।
धाई धाई सहु टोले थाय, काढी जीभ पड़े भूमि माय ।
श्रीकृष्णध्यान सुरभि सहु धरे, उकली अकलाई आसु भरे ।
आकाश भर्व धूम्रे आवर्य, आच्छाद्यो भानु अधार्ह कर्यु ।
फाटे बाँस वृक्ष चडचडे, बले पाँख पखी तरफडे ।
मशक शशक मृग पामे त्रास, फाटे फणा मर्प मूके श्वास ।
कीट पतंग दह्य कई कांठ, उडे धूम्रना गोटेगोट ।
ते ज्वाला जइ पहोती आकाश,.....।

—श्रीम० भा०, पृ० २७५

ब्रजभाषा के कवि गदाधर भट्ट द्वारा कृष्ण के कालीदह में कूदने तथा नाग-नाथने का जो दृश्य अंकित हुआ है वह भी इसी कोटि में आता है । गति और रूप का सम्यक् आभास देने के लिए कवि ने स्वतन्त्र रूप से अप्रस्तुत योजना की है जिससे प्रस्तुत दृश्य की छवि निखर आयी है—

नचन गोपाल फणि फणा रगे ।

मनहु मनिनील के खम ऊपर मिखी नृत्य आरभ किय अति उत्तंगे ।

प्रथम तर तुंग चढ़ि झप यमुना लई, सुभग पटपीत कटि तट लपेटे ।

एक घन ते निकसि और घन को चलयौ दयाम घन मनहुँ चपलाहि भेदे ।

बहुरि फिरि झगरि चढि सीस तडव रच्यो परसि पदतलनिमनिरँगु मोहायो ।

चरण पट तार विष झार झरहत जनु तैलतव ते कहँ नीर नायो ।

दुसह हरि भार ते कठ आयो लटकि परसि करै कवि सकल उपमा विचारा ।

मनहुँ नखचंद्र की चद्रिका त्रास ते डरपि नीची धँसी तिमिरधारा ।

—वाणी० गदा०, पृ० ३२

इस एक ही दृश्य के अन्तर्गत अनेक दृश्यों की शृंखला सी प्रतिभासित होती है । कवि का ध्यान नाग-दमन के सघर्ष, संघात से आपूरित ओजमय पक्ष पर उतना नहीं है जितना सौन्दर्य-पक्ष पर । इसीलिए उसने सम्पूर्ण दृश्य को कुछ गहरी रेखाओं द्वारा अंकित सौन्दर्यमय रूपचित्रों में परिवर्तित कर दिया है । प्रत्येक रूपचित्र उसकी कल्पना की उर्वरता तथा सौन्दर्यप्रियता का परिचायक है । ऐसा दृश्याकन कवि के उस स्वभाव की भी व्यञ्जना करता है जिसके कारण वह किसी दृश्य-विशेष को भाव का केन्द्र बना कर स्वयं रम जाता है और उसके द्वारा किया हुआ सारा वर्णन अपूर्व आत्मप्रत्यक्षता का बोध कराता है । सूर, नंददास आदि में इस प्रकार का दृश्य-विधान प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है । उक्त उदाहरण इस बात का द्योतक है कि ब्रजभाषा में यह सामान्य प्रवृत्ति है । गुजराती में इतनी समृद्ध सौन्दर्यवृत्ति से किया गया दृश्याकन कम उपलब्ध होता है । वहाँ सूक्ष्म किन्तु सहज भाव से दृश्याकन का आग्रह अधिक है । नरसी द्वारा अंकित दधिमथन करती हुई गोपी का चित्र दर्शनीय है—

मही बलोवे रे गोप्री, मही बलोवे रे गोपी ।

परबश थइने प्रेमे भराणी, तनमन हरि ने सोपी ।

भरजोवन महि कामनी घेली, नादे नूपुर बाजे ।

बलोणु अनि बाये भराणुं, मेघ पे रही रही गाजे ।

हैया ऊपर हार हुलावे, पाछल कुमकु फरके ।

कामा कृष्ण तणे रंग राती, शीश राखलडी झलके ।

कटी माहे तो घुघरी घमके, झाझरीया झमझमके ।

गाये गुण गोविंद तणा रे विछीडाने ठमके ।

मगन थइ गोरस भूली, कृष्ण कृष्ण मुख बोले ।

शीशफूल वेणी लट लटके, जाणे मणीधर डोले ।

—न० कृ० का०, पृ० ३९६

इस चित्र में कवि ने हिलते हुए हार, अलक, शीशफूल आदि की रूप-छायाओं के उनकी गतिशीलता के साथ अत्यन्त सहज रूप में प्रस्तुत किया है और मेघ तथा मणिधर के द्वारा अप्रस्तुत की भी सौन्दर्यमय योजना की है । परन्तु रूप-सौन्दर्य की अपेक्षा नाद सौन्दर्य पर उसका अधिक ध्यान है । विविध आभूषणों की अनुरणन-ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए कवि ने विविध अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग किया है ध्वनि-सौंदर्य की ओर नरसी का विशेष आकर्षण है । उनके दृश्य-चित्र प्रायः नादपू

होते हैं। रास सहस्रपदी में यह विशेषता और भी अधिक परिलक्षित होती है। कवि ने रूप और ध्वनि के साथ भावों का समास करके चित्र को अद्भुत सजीवता प्रदान कर दी है तन्मयता विस्मृति और प्रेमजन्य विवशता की भावना दधिमन्थन के इस चित्र को गोपी के आत्ममन्थन की अभिव्यक्ति के साथ और भी अधिक मोहक बना देती है। इसकी प्रेरणा संभव है भागवत में वर्णित १० : ९ : ३ दधिमन्थन करती हुई यशोदा के चित्र से ग्रहण की गई हो परन्तु दोनों में पर्याप्त भिन्नता है। सूर ने भी इस प्रकार का चित्र प्रस्तुत किया है परन्तु उनका ध्यान नरसी की तरह नाद-सौन्दर्य पर विशेष रूप से केन्द्रित न होकर अंगसंचालन एवं गति पर केन्द्रित हुआ है। भावों के सामंजस्य से सूर का वर्णन भी सजीव हो उठा है—

देख्यो हरि मथति ग्वालि दधि भेद सो ठाढ़ी ।
 धौवनमदमाती इतरानी बेनी दुरत कटि पर छवि बाढ़ी ।
 दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही जु श्याम भये चाढ़ी ।
 कर्षति है दुहँ करन मथानी गोभाराशि भुजा गहि गाढ़ी ।
 इत उत अंग मुरति झकझोरति अँगिया बनी कुचनसो माढ़ी ।
 सूरदास प्रभु रीझि थकित भये मनहुँ काम साचे भरि काढ़ी ।

—सू० सा०, पृ० १७१

पनिघट का दृश्य प्रस्तुत करते हुए सूर ने इससे भी अधिक कुशलता से गागर सिर पर रखे सखियों के साथ आती हुई एक गोपी की छवि अंकित की है। अप्रस्तुत विधान अत्यन्त समृद्ध है। गज के सादृश से गति और उन्माद तथा रूप-सज्जा की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है—

गागरि नागरि लिये पनिघट ते चली घराँहि आवै ।
 ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहि चुरावै ।
 ठिठकत चलै, मटकि मुँह मोरै बंकट भौह चलावै ।
 मनहुँ कामसेना अंगसोभा अंचल ध्वज फहरावै ।
 गतिगयंद कुचकुंभ किकिनी मनहुँ घट जहनावै ।
 मोतिनहार जलाजल मानौं खुभी दंत झलकावै ।
 मानहुँ चद महावत मुख पर अकुण बेसरि लावै ।
 रोमावली सूँड़ि तिरनीलौ नाभि सरोवर आवै ।
 पग जेहरि जंजीरन जकर्यो यह उपमा कछु पावै ।

घट जल छलकि कपोलनि किनुका मानहुँ मदहि चुवावै ।
बेनी डोलति दुहुँ निनत्र पर मानहुँ पूछ हलावै ।
गज मरदार सूर स्वामी को देखि देखि सुख पावै ।

—सू०सा०, पृ० २६१

ऐसे स्फुट चित्र अपने में पूर्ण होते हुए भी दृश्य को खड रूप में ही व्यक्त करते हैं। सम्पूर्णता के साथ विविध अंगोपांगों का सखिल्लट वर्णन करते हुए दृश्य अकिन करने की प्रवृत्ति पदकारों की अपेक्षा प्रबन्धकारों में अधिक पाई जाती है। इस दृष्टि से ब्रज-भाषा में नददास तथा गुजराती में प्रेमानंद का विशेष स्थान है। इन कवियों ने अपने प्रबन्धात्मक काव्यों में दृश्यांकन करते हुए सूक्ष्म निरीक्षण तथा वर्णन-कौशल का पर्याप्त परिचय दिया है।

स्वभाव-चित्रण

मानव-प्रकृति की सूक्ष्म विशेषताओं को लक्षित करते हुए कुछ कवियों ने अपने काव्य में मानव स्वभाव का भी चित्रण किया है। इस क्षेत्र में सूर और प्रेमानंद की विशेष गति है। प्रेमानंद के प्रबन्धों का तो यह असाधारण गुण है जो उनकी लोकोन्मुखी काव्य-चेतना की एक सहज प्रवृत्ति को व्यक्त करना है। रूढ़ि अथवा परम्परा के अनुरूप स्वभाव-चित्रण एक वस्तु है और स्वानुभव के आधार पर जीवन्त रूप में मानव-स्वभाव को चित्रित करना दूसरी। प्रेमानंद और सूर दोनों ही की प्रतिभा दूसरी दिशा में जागरूक रही पर सूर ने स्वभाव की अपेक्षा भाव को अधिक आत्मीयता से व्यक्त किया है और प्रेमानंद ने भाव की अपेक्षा स्वभाव को।

कृष्ण-जन्म के अनन्तर अपने बालक को परधर भेजने वाली देवकी की भावनाओं को प्रेमानंद ने लोकानुरूप अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'मल्ला आवशे भाई भोजाई जशोदानो धन सुख दहाडो' में लोकसामान्य स्त्री की चिंता अनुस्यूत है। यशोदा का कुडी खटका कर, घुंघरू बजाकर और ऐसे ही अन्य प्रयत्नों से अधिकाधिक रोते हुए कृष्ण को चुपाने का प्रयास माता के स्वभाव को मूर्त कर देता है। इसे क्रिया की स्वाभाविकता कहा जा सकता है—

खखडावे कडा द्वार साकळी, बजाडे घुघरो मा धई आकळी ।

सुघाडे पुष्प, देखाडे गाय, तेम तेम बमणो रोतो जाय ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४९

प्रेमानंद के काव्य से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे स्वाभाविकता के पर्यवेक्षण में उनकी सहज प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। निम्नलिखित कुछ अंश विशेष दर्शनीय हैं—

क—काइ आपी पाछु लीये झोटी रे, गोपी खणे गालमा चोंटी रे ।

—वही, पृ० २५४

ख—वृषभ वच्छ मही षी बहुगाय, भा शब्द मार्ग मा थाय ।

हीसारव करे गौ पाछी फरे, पोताना वच्छने आवी मले ।

लीधी वस्तु जे जे कार्जनी, उरवल मुशल सम्मार्जनी ।

काढ़्या गौना खीला खैची खैची, लीघां सुप टोप चक्की मांची ।

शकट घन धान्यना भर्या, जुवो घरमा कांइ विसर्या ।

धातु पात्र वस्त्र गासडी, लइ गोपिका शकटे चडी ।

थाओ चालता सामु भणे, घरमा जई दाटी थापण खणे ।

ठालू गोकुल उदवस्त थयु, माजार श्वान सौ सागे गयु ।

श्रीकृष्ण कहे केम रहेगे राकडा, सौ सान करी तेइया माकडा ।

रमकडां लीघां जगोमती, नवे घेर अेवा मळता नथी ।

—वही, पृ० २५९

ग—हाथना कडा चडावेरे, मारे दोट पाधरी फावे रे ।

—वही, पृ० २७०

घ—कोई कहै हाउ आव्यो विकाल, देखाडो रोता रहेशे बाल ।

पुठे बालक काकरा नाखे, ऋषि जी रामकृष्ण मुखथी भाखे ।

—वृ० का० दो०, भा० १, पृ० २४६

प्यार से गाल में चिकोटी काट लेना, खेलते समय हाथ के कड़ों को ऊपर चढ़ा लेना, बृद्ध व्यक्ति के ऊपर ककड फेंक कर खिझाना आदि यह सब ऐसे विदु हैं जिनका उल्लेख वही कवि कर सकता है जिसने जीवन को उसके व्यापक और सहज रूप में सूक्ष्म दृष्टि से देखा हो । वृंदावनगमन से सम्बद्ध जो दूसरा उद्धरण है उसमें पशुस्वभाव का यथार्थ अंकन है, साथ ही गाँव और घर को छोड़ कर जाने वाली की, व्यवहार में आने वाली छोटी से छोटी वस्तु के प्रति गहरी ममता का जो शृंखलाबद्ध सूक्ष्मातिमूक्ष्म वर्णन प्रेमानंद ने किया है वह उनके लोक-जीवन से धनीभूत परिचय का स्पष्ट प्रमाण है । मनुष्य की ममता वस्तुओं तक ही सीमित नहीं रहती वरन् कुत्ते-बिल्ली आदि तक व्याप्त हो जाती है । कुछ घर में छूटा तो नहीं, यह सोच कर घर को फिर फिर देखना-भालना कितना स्वाभाविक है । माता अपने बालक के खिलौने तक रख लेती है क्योंकि नये घर में इस प्रकार के कहीं मिल सकेंगे । वस्तुतः यह एक ही उदाहरण प्रेमानंद की स्वभाव-चित्रण-पटुता को पूरी तरह प्रकट कर देता है ।

बाल-स्वभाव, स्त्री-स्वभाव, लोक-स्वभाव, पशु-स्वभाव जैसे स्वभाव-चित्रण के अनेक रूपों में सूर ने भी अपनी सहज गति प्रदर्शित की है । बालस्वभाव की बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख बाललीलाओं के प्रसंग में किया जा चुका है । बालकृष्ण के स्वरूप-विकास और लीलालेखन में सूर ने बाल-स्वभाव में अपनी पैठ का अभूतपूर्व एवं आश्चर्यजनक परिचय दिया है । साथ के ग्वाल-बालों का खेलते-खेलते कृष्ण को अनेक प्रकार से खिझाना और उनका अपनी माता से बलराम आदि की शिकायत करना बालको के लोकसामान्य सहज स्वभाव को ही प्रकट करता है । कृष्ण के मस्कारों का जो वर्णन सूर ने किया है वह स्पष्ट ही सामान्य लोक जीवन के अनुरूप है ।

स्त्रियों के स्वभाव का भी सूर ने कम परिचय नहीं दिया है । गोपियों का बात बात पर उलाहना लेकर यशोदा के घर जाना स्त्रियों की स्वाभाविक वृत्ति को प्रदर्शित करने के लिए ही सूर ने वर्णित किया है । यशोदा और गोपियों के पारस्परिक सवादों में स्वाभाविकता को और भी निखार मिला है—

प्रेमानन्द की तरह सूक्ष्म पर्यवेक्षण की शक्ति भी सूर में दिखाई देती है । जल भरने की क्रिया की स्वाभाविकता लक्षित करते हुए सूर लिखते हैं—

जल हलोरि गागरि भरि नागरि जबही शीश उठायो ।

—सू० सा०, पृ० २५७

इस वर्णन में जल भरने से पहले उसे हिलोरने की बात कवि की पर्यवेक्षणशक्ति की सूक्ष्मता व्यक्त करती है ।

पशुस्वभाव का चित्रण सूरसागर में अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है । इस दिशा में सूर प्रेमानन्द से अधिक सूक्ष्मदर्शी प्रतीत होते हैं । चरवाहों के नियन्त्रण में तनिक भी शिथिलता आई कि पशुओं का समूह इधर उधर भटक जाता है । ग्वालबाल कृष्ण को पुकारने के निमित्त नद के द्वार पर थोड़ा सा रुके कि गायें आगे निकल गईं । एक ग्वाल यह देख कर अपने मखाओं को पुकार उठता है—

आवहु वेगि विलम जनि लावहु गैयाँ दूरि गई ।

—सू० सा०, पृ० १९४

‘गैयन घेरि सखा सब लाये’ लिख कर सूर ने गायों को घेर घेर कर इकट्ठा करने की विधि का भी संकेत कर दिया है । कभी कभी यह काम एक समस्या बन जाता है क्योंकि पशु भी अपने साथ ममता दिखाने वाले की इच्छा का ही अनुसरण करते हैं । सूर ने

निम्न पद में गायों के स्वभाव की एक बहुत ही सूक्ष्म बात की ओर लक्ष्य किया है । पराये घर से आये हुए पशु सदा ही पूर्व स्मृति के कारण भाग जाने की उत्सुक देखे जाते हैं । इसी आधार पर सूर वृषभानु की दी हुई गायों में भाग जाने की विशेष उतावली प्रदर्शित करते हैं—

दुन चढ़ि काहे न टेरहु कान्हा गइयो दूरि गई ।
धाई जान सबनि के आगे जे वृषभान दई ।
घेने न धिरत तुम बिन माधवजू मिलन नहीं बाढ़ई ।
बिडरत फिरत सकल वन महियाँ एकइ एक भई ।
छाँड़ि खोलि सब दूरि जात हैं बोलौ जोसके थोक कई ।
सूरदास प्रभु प्रेम समुझि कै मुरली सुनत सब आइ गई ।

—वही, पृ० २३४

नरसी मेहता ने भी गोविन्दगमन में कृष्ण से बिलुड़ती हुई गायों के स्पन्द-स्वभाव का अत्यन्त मार्मिक अंकन किया है जिसका उल्लेख भाव-चित्रण के प्रमग में किया जा चुका है ।

प्रकृति-चित्रण

कोई भी जीवन्त काव्य प्रकृति से पूर्णतया विरल नहीं हो सकता । कृष्णकाव्य तो और भी नहीं, क्योंकि कृष्ण का वह जीवन जो प्रधानतः काव्य का विषय बना, यमुना के तटवर्ती वनों, पशु, पक्षियों के मधुर रव से मुखरित सघन कुजों और मुक्त आकाश के नीचे कभी हरियाली बिखेरती हुई, कभी चाँदनी से धोई हुई गोकुल और ब्रज की धरती से निकटता से सम्बद्ध रहा है कि कृष्णलीलाओं का स्मरण आते ही वृंदावन की कल्पना अपने अलौकिक प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ प्रत्यक्ष हो उठती है । गुजराती तथा ब्रज दोनों के कृष्णकाव्य में कृष्ण-लीलाओं से अभिन्न इस नैसर्गिक सौन्दर्य को अभिव्यक्ति मिली है । कृष्णभक्त कवियों द्वारा किये गये प्रकृति चित्रण को सामान्यतः उद्दीपन की कोटि में रखा जाता है जो बहुत दूर तक उचित भी है, क्योंकि उनके लिए कृष्ण और उनकी लीलाओं से इतर और कुछ आलम्बन हो ही नहीं सकता था । दार्शनिक दृष्टि से सभी कुछ कृष्णमय तथा कृष्ण के ही स्वरूप का विस्तार माना गया अतएव प्रकृति को स्वतन्त्र आलम्बन के रूप में स्वीकार करना उस भावभूमि पर संभव नहीं था जिसमें प्रायः समस्त कृष्णोपासक कवि विचरण करते थे । सूर ने राधा को आदि प्रकृति मान कर प्रकृति को कृष्ण ब्रह्म से अभिन्न स्वीकार किया । पुरुष और प्रकृति की तरह राधा कृष्ण को स्वीकार करने वाले कवियों ने प्रकृति को आध्यात्मिकता के आरोप के साथ कृष्ण से सम्बन्ध करके देखा । यह स्थिति भी प्रकृति को महत्त्वपूर्ण तो बनाती है पर आलम्बन कोटि में नहीं प्रस्तुत करती, दूसरे

आदि प्रकृति राधा में प्रयुक्त 'प्रकृति' वन वृक्ष लता रूप में व्यक्त 'प्रकृति' से अर्थ में बहुत कुछ भिन्न है। राधा का समस्त वर्णन प्रकृति-वर्णन की कोटि में नहीं आ सकता। इतना सब होते हुए भी प्रकृति के आलंबन तथा उद्दीपन रूपों के बीच कोई स्पष्ट सीमा-रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती। वस्तुतः इनमें भिन्न बीच की एक अन्य स्थिति भी संभव है और जो सगुण भक्ति काव्य में उपलब्ध भी होती है। इस विषय में 'प्रकृति और काव्य' के एक विगेषज्ञ का मत उल्लेखनीय है—

“हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में प्रकृति के स्वतन्त्र आलंबन रूप को स्थान नहीं मिल सका। परन्तु यह भी देखा गया है कि प्रमुखता न मिलने पर भी प्रकृति मानवीय भावों से मम स्थापित कर सकी है। वस्तुतः जब प्रकृति मानवीय भावों के समानान्तर भावात्मक व्यंजना अथवा सहचरण के आधार पर प्रस्तुत की जाती है, उस समय उसको विशुद्ध उद्दीपन के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। वैसे प्रकृति को लेकर भावप्रक्रिया का आधार मानव है। आलंबन की स्थिति में, व्यक्ति अपनी मन-स्थिति का आरोप प्रकृति पर करके उसे इस रूप में स्वीकार करता है, जब कि उद्दीपन में आलंबन प्रत्यक्ष रूप में दूसरा व्यक्ति रहता है। ऊपर की स्थिति मध्य में मानी जा सकती है। आश्रय का आलंबन परोक्ष में है और प्रकृति के माध्यम से भाव व्यंजना की जाती है। इस सीमा पर भी प्रकृति पर आश्रय की भावस्थिति का आरोप होता है पर वह किमी अन्य आलंबन की संभावना को लेकर।”

कृष्णकाव्य के अन्तर्गत प्रकृति-चित्रण व्यापक एवं विविध रूप में हुआ है और इस सारी व्यापकता एवं विविधता के साथ मानवीय भावों का अद्भुत सामञ्जस्य मिलता है। आलंबन रूप में प्रकृति को न स्वीकार करने पर भी एक विचित्र आत्मीयता से उसका चित्रण किया गया है। उद्दीपन के अन्तर्गत प्रकृति के साथ मानवीय भावनाओं के सम्बन्ध की इतनी अनेकरूपता उपलब्ध होती है कि उसको संकुचित शास्त्रीय परिभाषाओं में बाँधना कठिन है। कभी कवियों ने भाव को आधार मानकर प्रकृति को उसी के अनुरूप चित्रित किया है और कभी प्रकृति को आधार मानकर भाव-जगत् में उसकी प्रतिक्रिया का संवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। कभी मानवीयता अथवा-मानव सबंधों का आरोप उस पर किया गया है और कभी उपमानों के रूप में प्राकृतिक सौन्दर्य के अगणित उपादानों को ग्रहण किया गया है। कल्पना का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। कहीं कहीं तो प्रकृति के वास्तविक रूप की नितान्त उपेक्षा करके कल्पना के महारे अलौकिक रूप-विधान अत्यन्त मोहक रूप में रच डाला गया है और भक्तहृदय के सहज विश्वास ने उसे यथार्थ समझ कर कल्पना के आनन्द में भिन्न अलौकिक आनन्द की उपलब्धि भी की।

वृन्दावन का वर्णन गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कवियों ने प्रायः इसी प्रकार किया है। ब्रजभाषा के कवियों में अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करने का आग्रह अपेक्षाकृत अधिक है। कृष्ण की लीलाभूमि होने के कारण वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया जाना ही स्वाभाविक है। यथार्थ जगत् में प्रकृति परिवर्तनशील है, रमणीय के साथ उमका भयानक तथा कष्टकर रूप भी अनुभव में आता है परन्तु कवियों ने वृन्दावन के लिए इन सब दोषों से मुक्त एक आदर्श प्राकृतिक सौन्दर्य का विधान स्वीकार किया है। गौडीय तथा राधावल्लभीय कवियों की भावना के अनुसार वृन्दावन में भदा वसंत ऋतु बनी रहती है। वहाँ की प्रत्येक लता कल्पतरु है और प्रत्येक फूल पारिजात है। वहाँ की भूमि विविध वर्ण वाले रत्नों से संचित सुवर्ण-मयी है। अगणित कुंजों में सप्तवर्णी प्रकाश छाया रहता है। प्रत्येक कुंज के प्रवेश द्वार पर सहचरियाँ नियुक्त हैं जिनकी सख्या कल्पनातीत है—

इसी सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट की दृष्टि में वह 'योगपीठ' है।

श्री वृन्दावन योगपीठ गोविन्द-निवासा ।

तहाँ श्री गदाधर चरन-परन सेवा की आसा ।

—गदा० वाणी०, पृ० ६

नरसी को भी वृन्दावन के लताद्रुम अनेक वर्णों में प्रतिभासित होते हैं। वस्तुतः उनके लिए वृन्दावन वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दरतर है—

मारुं वृन्दावन छे रुडुरे वैकुण्ठ नहि आवु ।

—न० कृ० का०, पृ० ५३७

कृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन नन्ददास के लिए चिदम्बन है। वहाँ निरंतर शरद् ऋतु रहती है और प्रत्येक रात्रि पूर्ण चंद्र से आलोकित रहती है। सूर और नरसी ने किसी एक ऋतु को नित्य न मान कर वर्षा, शरद् और वसंत आदि सभी ऋतुओं में वृन्दावन का अलौकिक सौन्दर्य से युक्त चित्रित किया है। सारी प्रकृति कृष्ण के रास-नृत्य के साथ उल्लास में नाच उठती है। चन्द्रमा थक जाता है, यमुना का प्रवाह उलट कर बहने लगता, रात्रि असाधारण रूप से षट् मास की हो जाती है।

आराध्य की लीलास्थली के इस अलौकिक वातावरण के साथ कवियों की भावना का इतना तादात्म्य हुआ कि उनके हृदय में वृन्दावन की रज, लता, गुल्म और नृण-तस सभी के प्रति एक विचित्र आत्मीयता एवं मुग्धता का भाव जाग उठा। ब्रजभाषा के अनेक कवियों में इसकी अभिव्यक्ति मिलती है—

सूर—माधव मोहि करौ वृन्दावन रेनु ।

—सू० सा०, पृ० २०३

हरिराम व्यास—क. वृन्दावन के रूख हमारे मात-पिता सुत-बंधु ।

ख. मैदामिश्री मुँह रे मेरे वृन्दावन की धूरि ।

व्यास वाणी, पृ०

रसखान—कोटिन के कलाधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौ ।

गुजराती कवियों में वृन्दावन के प्रति इतनी तन्मयता का भाव विकसित नहीं हुआ ।

प्रकृति के साथ मानवीय सुख-दुख की भावना का समीकरण गोपियों की संयोग और वियोगमयी मनोदशा के चित्रण में विशेष रूप से उपलब्ध होता है । पशुपक्षी और लता-वृक्ष सभी उनकी अनुभूतियों के प्रति सहानुभूति रखते हुए दिखाई देते हैं । गोपियों को कुछ कहना-सुनना होता है तो वे ही उनके सबसे अधिक आत्मीय सिद्ध होते हैं । उन्हीं के माध्यम से वे हृदय की गभीरतम भावनाओं को अभिव्यक्त करती हैं । दोनों भाषाओं के कवियों ने ऐसे स्थलों पर प्रकृति को विशेष सवेदनीय प्रदर्शित किया है ।

नरसी की विरहिणी राधा के स्वर का प्रभाव इतना व्यापक है कि अर्धरात्रि में पक्षी उसे सुन कर जाग उठते हैं और यमुना भी डोल उठती है, सूर्य देवता प्रकाश करने लगते हैं, कमल खिल जाते हैं और पद्मिनी भयभीत हो जाती है—

पखीमात्र नहि पण पशु जागिया, मुणी स्वामिनी मुख वाण ।

त्या स्थिर जमना लागी डोलवा, स्वर थयो जलचर ने जाण ।

स्वर सुणियो सूरज देवता, पाला धाय करवा प्रकाश ।

स्वर सुणि रे कमल खीलियां, उपन्यो पोयणी ने वास ॥

—न० कृ० का०, पृ० ६०

नरसी ने पक्षियों पर राधा के स्वर के प्रभाव को व्यक्त करने के साथ साथ राधा पर उनके स्वर का प्रभाव भी व्यक्त किया है । विरह की दशा में राधा को उनका स्वर नहीं आता—

चकचक करती चकलियु आवे, जाणे वियोग तो भागे रे ।

खुश खुश खुश खीशकोली कहे छे, राधा ने रुडु न लागे रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ६१

अन्य क्षणों में यही प्रकृति राधा के मन में कृष्ण के साथ रमण करने की उल्लासमयी भावना जागृत करती है—

केसुडां फुलया रे, आव्यो फागण मास ।

रंगभरी रमदा नरहरि साथे, आणी मन उल्लास ।

—वही, पृ० २२४

वर्षाकाल में बरसते हुए मेघों के बीच ज्यों-ज्यों पक्षीरव बढ़ता है त्यों त्यों राधा के हृदय में प्रेम उमड़ता है—

श्रावण मास सदा मुखकारी जरमर वरसे मेह रे ।

दादुग मोर वपैया बोले, तम तम उपजे तेह रे ।

—वही

भालण की गोपी का मान मेघों में तड़पती हुई बिजली को देखकर तथा पपीहे की पुकार सुनते ही विलुप्त हो जाता है । बादल के गरजने के साथ उसका हृदय विदीर्ण हो उठता है—

सामुं जोरे सुन्दरी, विजलडी (गी) जबुकेरे ।

मेघ अधारी आवियो, हलवे हलवे टपके, रीसाव्यो रहिये नहि रे ।

वपैयो पीयु पीयु कहीने, धाढे सादे पुकारे (रे) ।

मान करे (जे) मित्रवु, ते स्त्री ने (अवारे) ।

घणा रे दिवसना रुसणा (ते) भादरवे भाजे ।

हैडुं फाटे विरहिणी, जे वारे वन गात्रे ।

—दशमस्कंध, पृ० १०७

इस प्रकार गुजराती के अनेक कवियों ने प्रकृति के उद्दीपक वातावरण की अनुकूलता और प्रतिकूलता के अनुरूप मानव-हृदय की विविध दशाओं का आलेखन किया है । १५वीं शती के नयषि की रचना फागु में प्रकृति के उद्दीपक रूप का अत्यन्त निखरा हुआ चित्रण है । कवि लिखता है—

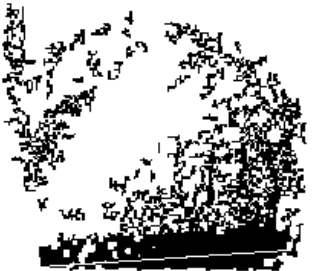
वसन तथा गुण गहगह्या, महमह्या सवि महकार ।

त्रिभुवन जयजयकार, पिकारवु करहि अपार ॥३॥

जिमि विहसई वणसई, वणसई मानिति मानु ।

यौवन मदि हिं तु दपती, दपती थाहि युवानु ॥४॥

यिक के स्वर को त्रिभुवन पर वसत की विजय के जयजयकार के रूप में ग्रहण करना तथा वनस्पतियों के मानिनिधियों के मान नष्ट करने के लिए विहंसने की कल्पना वास्तव



में सुन्दर है। वसन् ऋतु को विलास को ऋतु के रूप में गुजराती काव्य में बहुधा निरूपित किया गया है। तरसी के 'वसतना पद' इसके प्रमाण हैं। यह सब होते हुए भी सयोग और वियोग दोनों पक्षों में जितनी व्यापकता एवं विविधता से सूर ने प्रकृति का चित्रण किया है वह समस्त कृष्ण-काव्य में दुर्लभ है।

सूरदास की गोपियाँ अपनी विरह-विगलित दशा की अभिव्यक्ति के लिए यमुना को माध्यम बनाती हैं परन्तु वे इतने से ही संतुष्ट नहीं होती। यमुना को वे अपनी तरह सजीव और विरह-कातर देखती हैं। जिस प्रकार कृष्ण के वियोग ने उन्हें स्नान-मना बना दिया है उन्हीं प्रकार यमुना भी उनके विरह-ज्वर से दग्ध होकर और भी काँकी पड़ गयी है—

दिखियत कालिंदी अति कारी ।

अहो पथिक कहियो उन हरिसों भई विरह-जुर जारी ।

मन पर्यंक ते परी धरणि बुकि नरँग तलफ नित भारी ।

नट बारू उमवार चूर जल परी प्रसेद पनारी ।

विगलित कब कुछ कास पुलिन पर पक जु काजल मारी ।

मन में भ्रमर ते भ्रमत फिरत है दिगि दिगि हीन दुखारी ।

निवि दिन चकई बादि वकत है प्रेम मनोहर हारी ।

सूरदास प्रभु जोई यमुन-गति भोड गति भई हमारी ।

—सू० सा०, पृ० ६१५

पद के मध्य की पंक्तियों में भावावेग आरोप का रूप ग्रहण कर लेता है। बालू, काम, पंक आदि सब एक भिन्न रूप में प्रतिभासित होने लगते हैं। प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ साथ भाव-जगत् की सूक्ष्म अनुभूति का ऐसा साहचर्य सूर के ही पदों में मिलता है। इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन को केवल उद्दीपन विभाव तक सीमित नहीं रखा जा सकता—

सूर ने उद्दीपन रूप में भी प्रकृति में अद्भुत प्राण-प्रतिष्ठा की है।

प्रकृति के प्रति व्यक्त होने वाली रागात्मिका वृत्ति तीव्रता की सीमा पर पहुँच कर उपालम्भ से युक्त भावात्मक अनुकथनों के रूप में प्रकट होने लगती है। 'भवबुद्ध तुम कत रहत हरे' तथा 'माई मेरे मोरउ बैर परे' से प्रारम्भ होने वाले पदों में इसी प्रकार की तीव्र अनुभूति मिलती है।

तरसी मेहता के काव्य में भी उपालम्भ की ऐसी तीव्र भावना कहीं कहीं उपलब्ध हो जाती है। पभीहे के बोल एक गोरी को बाण के सदृश लग रहे हैं। वह उसे पापी और वैरी कह-कह कर कोसने लगती है—

बपैया पीउने शो रे सभारे ।
 अवलाना हैडा होयरे सकोमल, वेणने वाणे अम कां मारे ।
 अधोजली जल नयण भराणा, शब्द सुणी सुणी तारो ।
 लोय रे बपैया लु अरे पापीडो, जनमनो वेरी मारो ।

—न० कृ० का०, पृ० ३००

रास के प्रसंग में भाव-विभोर होकर गोपियाँ वृक्ष वेलियों, पशु-पक्षियों तक से कृष्ण का पता पूछने लगती हैं। प्रकृति के प्रति ऐसी आत्मतल्लीनता का चित्रण भागवत का आधार लेकर गुजराती तथा ब्रज दोनों के कवियों ने किया है। चन्द्रमा आदि को दूत बनाकर भावाभिव्यक्ति का रूप भी मानवीयकरण की इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। वसंत ऋतु के बाद जिस ऋतु का अत्यंत तल्लीनता के साथ कृष्णकाव्य में वर्णन मिलता है वह है वर्षा। उमड़ते-धुमड़ते काले काले बादलों को देखकर सूर की गोपियाँ कभी उन्हें कामदेव के बधनमुक्त हाथी समझने लगती हैं और कभी उनमें कृष्ण की प्रतिच्छाया देखने लगती हैं—

क. देखियत चहुँ दिसि ते घन घोरे ।
 मानहु मत्त मदन के हथियत बल करि बधन तोरे ।

—सू० सा० पृ० ६२७

ख. आजु घनश्याम की अनुहारि ।
 तनइ आये साँवरे ते सजनी देखि रूप की आरि ।
 इन्द्रधनुष मानो पीत वसन छवि दामिनि दशन विचारि ।
 जनु वगपाँति माल मोतिन की चितवत हितहि निहारि ।
 गर्जत गगन गिरा गोविन्द मिसु सुनत नयन भरे वारि ।
 सूरदास गुण सुमिरि श्याम के विकल भयीं ब्रजनारि ।

—सू० सा०, पृ० ६२९

पहले पद में मेघ केवल उद्दीपन की सामग्री है, दूसरे में वे गोपियों की कृष्ण-विषयक आसक्ति के सजीव रूप बन कर कृष्ण के ही सदृश प्रतिभासित होने लगते हैं।

संयोग पक्ष में वर्षा का वर्णन कम मनोरम नहीं हुआ है। वरसते हुए मेघों और तड़पती हुई बिजलियों के बीच कभी हिंडोलों पर राधाकृष्ण को भूलते देखकर, कभी कुंजों में से भीगते हुए आते देखकर कवियों ने एक विचित्र प्रकार के आह्लाद का अनुभव किया जिसकी अभिव्यक्ति दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में मिलती है ;



ब्रजभाषा में विशेष रूप से । हिडोला भूलने के चित्र सूर और नरसी ने प्रायः समान भावात्मकता से अंकित किये हैं परन्तु कुजविहार के समय रिमझिम बूंदों के आघात से जो स्नेह संबंध में नवोन्मेष आ जाता है उसकी अभिव्यक्ति ब्रजभाषा के काव्य में अनुपम रूप से हुई है । श्रीभट्ट द्वारा निम्नलिखित पद में अंकित राधाकृष्ण का भावमय चित्र वस्तुतः अद्वितीय है—

भीजत कुंजन ते दोउ आवत ।
ज्यों ज्यों बूंद परत चूनरि पर त्यो त्यो हरि उर लावत ।
अति गंभीर भीने मेघनि की द्रुम तर छिन विरमावति ।
जय 'श्रीभट्ट' रसिक रस लंपट हिलिमिलि हिय सचुपावत ।

—नि० मा०, पृ० १९

इसी चित्र को नरसी ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है ।^१

पङ्क्तुवर्णन प्रकृति-वर्णन का रूढ़ स्वरूप रहा है । इस विषय में जितनी सूक्ष्मता सेनापति के काव्य में उपलब्ध होती है वैसी गुजराती के किसी कवि की कृति में नहीं मिलती । परन्तु बारहमासा में जितना जीवन्त वर्णन प्रेमानन्द ने प्रस्तुत किया है वह ब्रजभाषा में दुर्लभ है ।

उपमान रूप में तृण, तरु, पर्वत, लता, कमल, भ्रमर, हंस, चकोर आदि प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं का उपयोग साहित्य में सदा से होता आया है । न गुजराती का काव्य इसका अपवाद है, न ब्रजभाषा का । कृष्ण का गोपाल रूप आराध्य रूप में मान्य होने से कृष्णभक्त कवियों ने रूढ़ उपमानों के अतिरिक्त नवीन नवीन उपमान प्रकृति से चुने हैं । ब्रजभाषा में सूर तथा गुजराती में प्रेमानन्द ने इस क्षेत्र में विशेष मौलिकता प्रदर्शित की है ।

प्रबन्ध-निर्वाह

प्रबन्धकाव्य की सर्जना पदरचना से भिन्न प्रकार की कला की अपेक्षा रखती है । वस्तु-संयोजन, कथा-कथन तथा भाव-निरूपण सबका सम्यक् रूप से सामंजस्य स्थापित करने के साथ साथ प्रवाह को अक्षुण्ण रखना आवश्यक होना है । पदकार केवल भावमय अथवा रमणीय स्थलों का चयन करके उन्हीं की अभिव्यक्ति तक अपने को सीमित रख सकता है, पुनरावृत्ति उसके लिए क्षम्य है, परन्तु प्रबन्धकार एक तो भावमय स्थलों के बीच आने वाले इतिवृत्तात्मक नीरस स्थलों की उपेक्षा नहीं कर सकता, दूसरे किसी प्रकार की पुनरावृत्ति प्रबन्ध को सद्बोध बना देती है । एक ही पात्र की मनस्थिति के आलेखन से उसका दायित्व समाप्त नहीं होता बरन्

उसे अनेक पात्रों की मानसिक अवस्था का सखिलष्ट चित्रण करना होता है । कथा को विकसित करने के लिए एक जीवन्त वातावरण की सृष्टि करना अनिवार्य है जिसके लिए उसे लोक-जीवन के विविध पक्षों तथा लोकस्वभाव के विविध रूपों से परिचित होना भी आवश्यक है । यह बात नहीं है कि पदकारों को उक्त वस्तुओं के परिज्ञान की अपेक्षा नहीं होती, फिर भी उनका प्रधान उद्देश्य गेय भावाभिव्यक्ति ही होता है । अन्य सब कुछ उसकी पृष्ठभूमि में गौण रूप से स्थित रहता है । परन्तु प्रबन्धकारों को भावनिरूपण के साथ लोकजीवन और लोकचेतना से सम्बद्ध सभी वस्तुओं को पर्याप्त महत्त्व देना होता है ।

ब्रजभाषा में नंददास तथा गुजराती में प्रेमानंद और भालण में प्रबन्ध-विधान की पट्टा विशेष रूप से परिलक्षित होती है । कथा-प्रवाह का उक्त कवियों ने सम्यक् निर्वाह किया है और वस्तु-नयोजना में भी अपने अपने स्वभाव के अनुसार पर्याप्त कुशलता प्रदर्शित की है ।

नंददास की अनेक रचनाओं में प्रबन्धात्मकता के दर्शन होते हैं परन्तु आख्यान शैली का पूर्ण निर्वाह और वास्तविक प्रबन्ध योजना 'स्किमनीमगल' तथा 'रूपमंजरी' में ही संभव हो सकी है । 'विरहमंजरी' में कथा का अभाव है । 'भैरवगोत' में भवादात्मकता की प्रधानता के कारण प्रबन्ध के अन्य अंगों का विकास नहीं हुआ है । 'श्याम मगई' और 'मुदामाचरित' अत्यन्त सक्षिप्त रचनाएँ हैं जिनमें कथा की तीव्रता ने कवि को वातावरण और भावों के विकास के लिए अवसर नहीं दिया । 'रासपंचाध्यायी' में अवश्य कथा का पर्याप्त विस्तार एवं स्थिरता है जिससे भावों और दृश्यों का समुचित आलेखन हो सका है । उसमें आने वाले भावपूर्ण स्थलों की समीक्षा भावपक्ष के अन्तर्गत 'रासलीला' के प्रसंग में की जा चुकी है । प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से इन सभी रचनाओं में पूर्वोक्त दोनों रचनाएँ श्रेष्ठ हैं । 'रूपमंजरी' कवि की नितान्त मौलिक कल्पना-सृष्टि है । प्रारम्भ में सैद्धान्तिक आधार और वैयक्तिक निवेदन देकर कवि ने आत्मीयता और आध्यात्मिकता का वातावरण रच दिया है जिससे आगे की प्रेम-कथा में अर्थगाम्भीर्य के साथ ही रुचिरता भी उत्पन्न हो गयी है । सघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के अभाव की पूर्ति एक प्रकार से नायिका के ग्रीवमन्तागम, श्रवण और स्वप्नदर्शन से उत्पन्न पूर्वानुराग तथा षट्ऋतु के साथ मानसिक दशा के सखिलष्ट निरूपण से हो जाती है, क्योंकि इसमें जिस आलंकारिक शैली का प्रयोग किया गया है वह अत्यन्त आकर्षक है । वर्णन प्राचीन काव्य-परम्परा के अनुकूल है अतएव गुजराती आख्यान काव्यों से कहीं कहीं आश्चर्यजनक साम्य उपलब्ध होता है । नगर-शोभा, प्रेम-विरह तथा यौवनागम के रुढ़िगत वर्णन इसके प्रमाण हैं ।*

कथा की समाप्ति सयोग-सुख सन्तोष की स्थिति का चित्रण करके की गयी है। दोनों भाषाओं के रुक्मिणी और सुदामा सम्बन्धी काव्य इसको चरितार्थ करते हैं। नन्ददास के 'रुक्मिणीमंगल' में प्रयुक्त 'मंगल' शब्द सुखान्त की इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। नन्ददास ने इस काव्य का प्रारम्भ बिना किसी भूमिका के ही कर दिया है किन्तु भावों की योजना प्रारम्भ से ही परिपक्वता धारण करती गयी है। रुक्मिणी की विरह-विल्लस अवस्था का जैसा चित्रण नन्ददास ने किया है वसा गुजराती के रुक्मिणी-सम्बन्धी किसी काव्य में नहीं मिलता। रुक्मिणी-हृण्ण से पूर्व सघर्ष की स्थिति के चित्रण में प्रेमानन्द ने सर्वाधिक पटुता प्रदर्शित की है। परिस्थिति और तदनुरूप मनोभावों के अकल में उन्होंने पर्याप्त मौलिकता का प्रमाण दिया है। नारद का समावेश करके प्रेमानन्द तथा अन्य गुजराती कवियों ने कथा में विशेष रोचकता उत्पन्न कर दी है। अन्त में विवाह का लोकानुरूप सजीव वर्णन करके सूर, भालण, प्रेमानन्द आदि ने स्थिति को पूर्णता तक पहुँचा दिया और उसके द्वारा उनको विविध मनोभावों के वर्णन का अवसर भी मिल गया। प्रबन्ध-विधान सुरक्षित रखते हुए कवियों ने परिस्थिति और मनोदशाओं के आलेखन में विशेष कौशल प्रदर्शित किया है। सुदामाचरित के अन्तर्गत सुदामा की दरिद्रता और कृष्ण से उनकी भेट के चित्रण उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ब्रज-भाषा में इस सम्बन्ध में नरोत्तमदास का स्थान अद्वितीय है। सुदामा की दरिद्रता की पूरी व्यञ्जना कवि ने सुदामा की स्त्री के वाक्यों से सफलतापूर्वक करा दी है। 'या धरते न गयो कबहुँ पिय टूटो तयो अरु फूटी कठौती' में निर्धनता के अभिशाप से अभिशप्त एक गृहिणी के हृदय की मर्मवेदना समाई हुई है। सुदामा की जीर्ण वस्त्रों से आवृत्त दुर्बल काया का परिचय जब द्वारपाल कृष्ण को देता है उस अवसर पर भी कवि ने दरिद्रता का यथार्थ अंकन किया है—

सीस पगा न भगा तन में प्रभु जाने को आहि बसै केहि ग्रामा ।
धौली फटती सी लटो दुपटी अरु पाँय उपाहन की नहि सामा ।
द्वार खड्यो दुज दुर्बल एक रह्यो चकि मो वसुधा अभिरामा ।
पूँछत दीन दयाल को वाम बतावत आपन नाम सुदामा ।

—सुदामाचरित्र

गुजराती आख्यानकार प्रेमानन्द ने सुदामा की दरिद्रता का अधिक विस्तार से वर्णन किया है और उनके वर्णन में यथार्थता की मात्रा अधिक ही है—

धातुपात्र नहीं कर सहावा, सार्जुं वस्त्र नहीं सम खावा ।
 जेम जल विण बाढ़ी झाड़ुवा, तेम अन्न विण बालक बाहुवा ।
 नीचा घर भीतडियो पड़ी, श्वान माजर आवे छे चढ़ी ।
 अतिथि फरी निर्मुख जाय, भवानक नव पामे गाय ।
 अन्न बिना पुत्र पारे बागला, तो क्या थी टोपी आगला ।
 बाघ्या नख ने बाधी जटा, माहि उडे रक्षानी घटा ।
 दर्भ तणी तूटी सादडी, नाथ जी ते पर रहो छो पड़ी ।
 बीजे त्रीजे पामो छो आहार, ते मुजने दहे छे अंगार ।
 हुतो दरिद्रसमुद्र मां बूड़ी, हेवातणमा अकेकी चूड़ी ।
 सौभाग्य ना नहीं शणगार, नहि काजल नहि किडियां हार ।
 नहि ललाटे देवा कुंकु, अन्न बिना शरीर रह्यु मुकुं ।

—बृ० का० दो०, भाग १, पृ० २४०-२४१

सुदामा के पुत्रों का चित्रण करके प्रेमानंद ने कथा को अधिक मार्मिक बना दिया है । द्वारका जाते हुए अपने पिता से जब वे अपनी भूख मिटाने योग्य कुछ लाने की दीनताभरी प्रार्थना करने लगते हैं तो सारा वातावरण दुख से भर जाता है—

ऋषि सुदामा ने कहे बालकडां, करी ने रोता मुख ।

पिताजी अबु लावजो, जेने जाय आपणी भूख ।

—वही, पृ० २४५

इस तरह की मौलिक भावस्थिति का निर्माण करके प्रबन्ध को सजीव बना देना प्रेमानंद का स्वभाव है । सुदामा से कृष्ण अन्तःपुर में भेंट करते हैं अतएव प्रेमानंद ने प्रतिहार के साथ दासी का भी उल्लेख किया है । इस तरह की व्यावहारिक तथा राजसमाजोचित बातों के चित्रण की ओर उन जैसे पटु प्रबंधकार का ही ध्यान जा सकता है । कृष्ण को सुदामा के आगमन का समाचार देने वाली दासी की संशयग्रस्त मनोदशा का आलेखन करने के साथ ही उन्होंने नरोत्तमदास की तरह आगंतुक के दारिद्र्य की भी व्यंजना कर दी है—

न होय नारद अवश्यमेव रे, नहीं वशिष्ठ ने वामदेव रे ।

न होय दुर्वासा न अगस्त्य रे, मै तो ऋषि जोया छे समस्त रे ।

नही विश्वामित्र के अत्री रे, नहीं लाव्यो चिट्ठी के पत्री रे ।

दुःखी दरिद्र सरखो भासे रे, अंक तुबीपात्र छे पासे रे ।

पिगल जटा भस्मे भरीयो रे, सुधारूपी नारीअे वरियो रे ।

—वही, पृ० २४८

कृष्ण-सुदामा-मिलन के अवसर पर प्रेमानन्द और नरोत्तम दोनों ने स्थिति की मार्मिकता को पूरी तरह परखते हुए कृष्ण के मनोभावों का उचित अंकन किया है परन्तु नरोत्तम को अधिक सकलना मिली है । कृष्ण के हृदय को उन्होंने अधिक भावुकता से अभिव्यक्त किया है—

प्रेमानन्द—घोड़शोषचार पूजा कीधी, अगर धूप धूमाय ।
करजोड़ी प्रदक्षिणा कीधी, हरि ने हरख आसु थाय ।
पोताने ओढवानी पीत पछेडीये, लोह्या ऋषिना पाय ।
ऊभा रही कर विअणो ग्रही ते, विटुल टोले बाय ।

—बही, पृ० २५०

नरोत्तम—कैसे पिहाल बिवांइन मौ भयें, कटक जाल गये पग जोये ।
हाय सखा तुम पायें महा दुख, आये इते न कितें दिन खोये ?
देखि सुदामा की दीन दसा कहना करिके कहनानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल मौ पग धोये ।

—सुदामाचरित्र

नरोत्तम के काव्य में प्रबन्धात्मकता के साथ मुक्तक काव्य का सौंदर्य भी उपलब्ध होता है । ऐसी दशा में कवि का ध्यान कथाप्रवाह की ओर से हट कर कथाक्रम का अनुसरण करने वाले मुक्तकों को सँवारने में लग जाता है । नददास का सुदामाचरित प्रबन्ध की दृष्टि से अत्यन्त साधारण काव्य है अतएव उसमें उक्त स्थलों का विकास नहीं मिलता ।

उक्तिवैचित्र्य और अलंकार-विधान

दोनों भाषाओं में जिन कवियों ने अनु-वादात्मकता में ऊपर उठ कर मौलिक कल्पना के योग के साथ काव्यमर्जना की है उनकी रचनाओं में बहुधा कला के वैचित्र्यमूलक अथवा चमत्कारवादी स्वरूप के भी दर्शन होते हैं । सामान्य रूप से कुछ न कुछ अलंकार किसी के भी काव्य में खोजे जा सकते हैं क्योंकि अलंकार कथन-शैली के ही विविध प्रकार हैं परन्तु कुछ कवियों में उक्ति-वैचित्र्य तथा चमत्कार-प्रदर्शन की मनोवृत्ति अन्तर्निहित होती है जो उनकी तद्विषयक जागरूकता से प्रमाणित होती है । ऐसे कवियों के काव्य में चमत्कारबहुल कलात्मकता का आग्रह अपवाद-स्वरूप न प्राप्त होकर नियमत मिलता है । ब्रजभाषा में रीति कालीन प्रेरणा से लिखा गया कृष्णकाव्य प्रधानतः इसी मनोवृत्ति का परिचायक है । भाव प्रायः उक्ति और चमत्कार-प्रदर्शन का आधार मात्र होकर आये हैं । केशव-दास, मतिराम, बिहारी और देव जैसे कवियों का वर्ग का वर्ग लगभग इसी कोटि में

आता है। कतिपय भावगील कवियों ने भावपक्ष और कलापक्ष के बीच सामंजस्य स्थापित किया परन्तु ऐसे उदाहरण कम उपलब्ध होते हैं। भक्त तथा आख्यानकार कवियों के द्वारा जो चमत्कारिता का प्रदर्शन यत्र तत्र मिलता है वह एक गौण प्रवृत्ति के रूप में ही है। इनकी उक्तियाँ तथा इनके अलंकार काव्य-वैभव के सहज अंग होकर आये हैं। जागरूकता का निषेध तो सर्वथा नहीं किया जा सकता किन्तु जाग्रह अवश्य नहीं मिलता। मौलिकता पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

उक्ति-वैचित्र्य—उक्ति की विचित्रता, अथवा चकता बहुत में अलंकारों के मूल में निहित रहती है अतएव उक्ति-वैचित्र्य प्रायः उपमादि अलंकारों के सुनिश्चित रूप में सम्मुख आता है। इस प्रकार की सामग्री 'अलंकार-विधान' के अन्तर्गत आगे प्रस्तुत की गयी है। यहाँ केवल उन्हीं उदाहरणों को लिया गया है जिनमें उक्ति का सहज एवं व्यापक स्वरूप अशुण्ण रहा है। कवि की अपनी कल्पना में उद्भूत उक्तियों के अतिरिक्त कुछ रूढ़ उक्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं। दोनों भाषाओं के काव्य में दोनों प्रकार का उक्ति-वैचित्र्य मिल जाता है।

भालण और नन्ददास की यौवनवर्णन सम्बन्धी निम्न उक्तियाँ परम्परागत और रूढ़ प्रकार की ही हैं—

भालण—यौवन ने पगनी चंचलता लई मैली लोचन जी।

कटि कीधी अति पातली, उरज कर्पा अति घन।

—द० स्क०, पृ० १३४

नन्ददास—क. जुवन राउ जब उर पुर लयी, सैसव राउ जघन बन गयी।

अरन लगे जब दोउ नरेसा, छीन पर्यौ तब तिय मधि देसा।

—नद०, पृ० ५

ख, बालपने पग चंचलताई, अब चलि छबिले नैनन आई।

—वही, पृ० ६

इस प्रकार की रूढ़िमयी उक्तियों का प्रयोग बिहारी आदि रीतिपरम्परा के कवियों द्वारा प्रायः किया गया है।

विरह-व्यथा सम्बन्धी भालण की एक दूसरी उक्ति दर्शनीय है। वियोग की अग्नि हृदय में बराबर जलती रहती है तो भी शरीर भस्म नहीं होता क्योंकि वह नेत्रों में प्रतिक्षण ढलकने वाले आँसुओं से भीगा रहता है—

हैंडें पावक प्रजले रे, नयणें नीर न साय।

भस्म न थाये ते भणी रे, आँसुडे ओलाय।

—द० स्क०, पृ० २१९

भ्रमरगीत के पार्ती-प्रसंग में मूर ने विरहाग्नि और अश्रुओं के गुणों को दूसरे प्रकार की उक्ति में सगुणित कर दिया है—

नैन सजल कागज अति कोमल कर अंगुरी अति ताती ।
परसे जरै विलोके भाजै दुहँ भाँति दुख भाती ।

—मू० मा०, पृ० ६४९

मूर में भाव को तीव्रतर बना देने वाली उक्तियों की सृष्टि करने की अद्भुत क्षमता है। काली रात को नागिन कहने के साथ कृष्णपक्ष के बाद शुक्लपक्ष के आने की बात को उक्ति-चमत्कार प्रदर्शित करते हुए जब वे नागिन का डसकर उलट जाना कहते हैं तो कथन में एक विचित्र मार्मिकता आ जाती है—

पिया बिनु नागिन कारी राति ।
कबहुँक जामिनि उवति जुन्हैया डसि उलटी हँ जाति ।

इसी तरह वंशों सम्बन्धी पदों में मूर ने गोपियों के भावों को अनुपम उक्ति-सौन्दर्य से विभूषित किया है। उनकी उक्तियाँ वाम की बाँसुरी में प्राण डाल देती हैं—

मुरली तऊ गोपालहि भावति ।
सुनि री सखी जदपि नंदनंदहि नाना भाँति नचावति ।
राखति एक पाँय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति ।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढ़ी है आवति ।
अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नार नचावति ।
आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर कर-पल्लव सन पद पलुटावति ।
भृकुटी कुटिल कोप नासा पुट हम पै कोपि कोपावति ।
सूर प्रसन्न जानि एकौ पल अधर सु शीश डोलावति ।

—मू० सा०, पृ० २४०

गुजराती कवि प्रेमानंद में भी उक्ति-वचित्र्य की अद्भुत क्षमता मिलती है। गोपियाँ भ्रमर को अनेकानेक उपालम्भ देती हैं। इसी क्रम में प्रेमानंद ने भ्रमर के पर्याय 'घड़पद' को आधार बनाकर एक मौलिक उक्ति का निर्माण कर डाला। चार चरणोंवाला पशु होता है, इस तर्क से भ्रमर छोटो पशु हुआ—

छे षट चरण तारे बिषे, मुण्य भमरा रे ।
माटे दोढ पशु नु केहेवाय, भोगी भमरा रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२९

ठीक इसी प्रकार की उक्ति नंददास के भँवरगीत में मिलती है जिसमें ड्योड़े परतु की बात तो नहीं है परन्तु पशु कह कर उसके अन्य लक्षणों का विस्तार किया गया है —

कोउ कहै रे सखुय प्रेम पटपद पशु देख्यौ ।
अब लौं इहि ब्रज देश माँहि कोउ नाहि बिनेस्यौ ।
दोइ सिंग मुख पर जमे. कारौ पीरौ गात ।

—नंद०, पृ० १३६

प्रेमानंद की दो एक अन्य उक्तियाँ भी दर्शनीय हैं । गोपियाँ कृष्ण के पाम संदेसा भेजती हैं कि मृगया के बहाने ही ब्रज में आ जाना, क्योंकि यहाँ सभी स्त्रियाँ मृगनयनी हैं—

तेना तमे कहावौ राजकुमार ।
मृगयाने रमवा रे, वन पधारजो रे,
अही अमे मृगनेगी सहु नार ।

—श्रीम० भा० पृ० ३३१

आँसुओं की वर्षा के रूप में ग्रहण करके शारदीय रास के प्रसंग में वे एक सुन्दर उक्ति रच डालते हैं—

शरद समे आव्यु चोमासु, लागी आँसुनी झेली ।

—वही, पृ० २९०

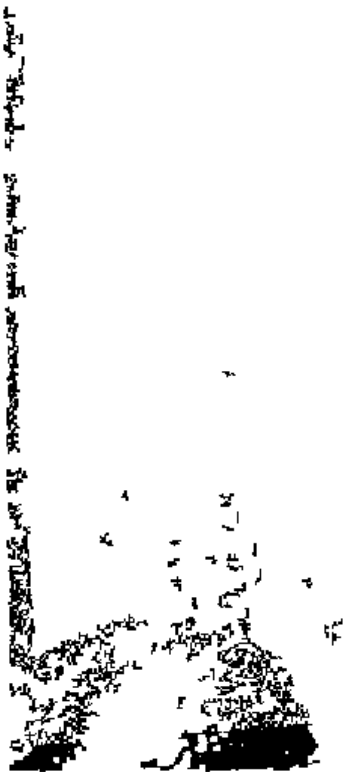
सूरदास ने भी आँसू और वर्षा के सादृश्य की लेकर भिन्न प्रकार की उक्ति का निर्माण किया है—

निशिदिन वरषतु नैन हमारे ।
सदा रहति वर्षा ऋतु हम पर जबते श्याम सिधारे ।

—सू० सा०, पृ० ६२०

यह थोड़े से उदाहरण ही दोनों भाषाओं के कवियों की उर्वर कल्पना-शक्ति तथा उक्ति-वैचित्र्य की क्षमता के प्रमाण हैं ।

अलंकार-विधान—ब्रजभाषा के रीतिकवियों को छोड़कर कृष्ण-काव्य के अधिकांश रचयिताओं की वृत्ति भाव-निरूपण में अलंकरण की अपेक्षा गौण रही है पर जहाँ भी अलंकृति मिलती है, वहाँ शब्दालंकारों की तुलना में अर्थालंकारों का प्रयोग व्यापक और सहज रूप में किया गया है । गुजराती में श्लेष, यमकादि शब्दालंकारों का प्रयोग तो अपवाद रूप में ही मिलता है । फागु काव्य के रचयिता नर्याषि ने आन्तरप्राप्त के रूप में अमन और सभग दोनों प्रकार के यमक का प्रयोग किया है । कहीं कहीं



स्वतन्त्र यमक भी उपलब्ध होता है । अनुप्रास का आपह फागु में आद्योपान्त मिलता है । नयवि की गन्दयोजना बहुत कुछ केगव, मतिराम, बिहारी और देव के समानान्तर है । निम्नलिखित कतिपय उद्धरण इसके प्रमाण हैं—

वन्तिमु फागि नरायण, राय णमइ जसु पाइ ।
तसगुण अणुदिण खेलत, हेल तजाइ अवाइ ॥२॥
आदिय मास वसतक, संत करइ उत्साह ।
मलयानिल महि वायउ, आयउ कामगिदाह ॥१७॥
वगवरि आदिय प्रभु वीनविउ, नवि दसइ दिसारि रे ।
माधव माधव भेटण आविन देव भुरारि रे ॥२८॥
थणमरि नमती तरुणी करुणी वरुणी चरण सचारि रे ।
चालइ चमकत अमकत नेउर केउर कटक विशाल रे ॥३०॥

किन्तु भालण और नरसी जैसे प्रमुख कवियों में यमक के दो ही चार उदाहरण मिल पाते हैं, वह भी बहुत खोजने पर—

भालण—क. श्रीकृष्ण वर थाये अमारे, ओह वर आपो तमे ।

—द० स्कं०, पृ० ७९

ख. शी कहू बातडी, दुखे गइ रातडी, आँख अति रातडी थइरे मारी ।

—वही, पृ० १९४

नरसी—क. पंथनु जेम पशु पूठल बलग्युं फरे नरसैना नाथजी नाथ तोडी ।

—न० कृ० का० पृ० ४३८

ख. स्वासनो शो विस्वास, नहि निमिपनो, आश अधुरी अने अेम भरवुं ।

—वही, पृ० ४८०

पुनरुक्तिप्रकाश का जैसा सुन्दर प्रयोग गुजराती में नरसी ने किया है वैसा ब्रज-भाषा में नहीं मिलता—

क. चालती गजनी चाल चाल ।

लट छूटी ने आवे भाल भाल ।

—वही, पृ० २६०

ख. फूली फूली फूली हु तो हरिमुख जोइफूली रे ।

भूली भूली भूली मारा वरनो धंधो भूली रे ।

—वही, पृ० ५०४

भालण और सूर ने भी इसका सफल प्रयोग किया है ।^{१९}

वर्णवृत्तिमूलक अनुप्रास गुजराती कवियों द्वारा प्रयुक्त अवश्य हुआ है परन्तु अत्यन्त सहज रूप में । आग्रहपूर्वक शब्दों को अनुप्रास के क्रम से नियोजित करने की ओर उनका ध्यान उतना नहीं है जितना ब्रजभाषा के अनेक कवियों का रहा है । नंददास की तरह शब्दों को जड़ जड़ कर चमकाने की प्रवृत्ति उनमें कम मिलती है । भालण, नरसी, प्रेमानंद की अनुप्रास-योजना के कुछ विशिष्ट उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये गये हैं—

भालण—हरिने हिंदोलु प्रीने हालरीयु भाउ ।
पोढे परमानंद, वारणे हु जाउ ।

—३० स्क०, पृ० १८

नरसी—क. नाचना नाचता नयणे नयणा मल्ला, मदभर्या नाथ ने ताथ भरता ।
अमकते झांझरे ताली दे तारणी, कामिनी कृष्णसु केल करता ।
—न० कृ० का०, पृ० २१८

ख. कर्मकूडा करी, खाण चारे भरी, नामवा नीसरयो नाम वारी ।
कृष्ण कीर्तन विना, जाम जाये वृथा, जेम रहे जूगटे सिद्धि हारी ।
—वही, पृ० ४८०

ग. अग उमंग लई रग बेरग थई उचरे व्यग उछरग आगे ।
नाद करी पाद ने, बाद धरि मादने साद उल्लाद विखवाद मागे ।
—वही, पृ० १०३

प्रेमानंद—क. तरणीतनयाना तरगमा कीधा संध्यातर्पण ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२६

ख. केसर बोली चोली रे चोसर चपकहार ।
चतुरा चाले चमकती, झांझरतो झमकार ॥५१॥

—सास

ऐसे उदाहरण अधिक नहीं मिलते । इन्हें एक प्रकार से अपवाद कहा जा सकता है क्योंकि इनमें अनुप्रास के प्रति सजगता का आभास है । ब्रजभाषा के पदकारों में गुजराती कवियों की तरह ही वर्ण-मैत्री का आग्रह प्रायः नहीं मिलता । सहज नाद-सौन्दर्य, अकृत्रिम माधुर्यमयी पदयोजना, भाव के अनुरूप शब्द-विधान पद साहित्य के स्वाभाविक गुण हैं । सायास लाये हुए अनुप्रास तथा अलंकार रूप में मिलने वाले श्लेष और यमक के उदाहरण अधिक नहीं हैं ।

नंददास की स्थिति पदकारों में भिन्न है । मानुप्रास वर्णमैत्री से युक्त शब्दयोजना उनका स्वभाव रहा है । उनके काव्य में शब्दों के अलंकरण की यह प्रवृत्ति प्रायः सर्वत्र

मिलती है । निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं—

क. द्विज न गयी फिरि भवन, गवन कियौ धरि जु पवन गति ।

—नद०, पृ० १४४

ख. बगर बगर सब नगर, उड़ी नभ गुड़ी बनी छवि ।

—वही, पृ० १४५

ग. तब रुक्मिणि कौ कागर, नागर नेह नवीनौ ।

वसनछोर नै छोरि विप्र श्रीधर कर दीनौ ।

—वही, पृ० १४६

घ. हरी हरी यौ दुलहिनि कहि सब लोग पुकारे ।

—वही, पृ० १५३

दलभरसिक ने भी वर्णमैत्री का विगेष आग्रह प्रदर्शित किया है परन्तु उनकी अनुप्रास-प्रियता निरर्थकता की सीमा तक पहुँच गयी है ।

इस प्रवृत्ति का चरम रूप ब्रजभाषा के रीतिकालीन कवियों में उलब्ध होता है । कही कही उनमें शब्दालंकारों का आग्रह भावामिव्यक्ति से भी प्रधान हो गया है, समानान्तर तो वह रहा ही है । इस चमत्कार-प्रियता पर कुछ कवियों ने गर्व प्रकट दिया है । सेनापति अपनी कविता की श्लेषमयता का उद्घोष करने हुए लिखते हैं—

कोई है अभग कोई पद है सभग, सोधि,

देखे सब अग सम मुखा के प्रवाह की ।

सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई ,

जाकी द्वै अरध कविताई निरवाह की ॥६॥

—कवितरत्नाकर, तरंग १

उनके 'कवितरत्नाकर' की पहली तरंग 'श्लेष तरंग' ही है जिसमें श्लेष के आधार पर ऐसे ऐसे सादृश्य उपस्थित किये गये हैं जिनका भाव से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है । सादृश्य का आधार रूप और मनोभाव न होकर चमत्कार-भावना ही है । बिहारी ने भी श्लेष का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है ।

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर ।

को घटि ये वृषभानुजा , वे हलधर के वीर ॥६७॥

—बिहारीरत्नाकर, पृ० २७८

ऐसा एक भी उदाहरण समस्त गुजराती कृष्णकाव्य में खोजने पर भी न मिलेगा । 'कृष्णकीड़ाकाव्य' में केशवदास ने अवश्य श्लेष का प्रयोग किया है परन्तु वक्रोक्ति से

मिश्रित करके । फिर जिस पद में श्लेषवक्रोक्ति का यह प्रयोग मिलता है वह शुद्ध गुजराती का पद नहीं है । उसमें व्रजभाषा का सम्मिश्रण है । यथा—

‘जो वनमाली तो फूल बैचजै , चुबे बेल गुलाला ।’
 ‘सुण्य चतुरी ! हु चक्री’ ‘तू काण कवण कुलाला ।’
 ‘अरे अरे अनग हू अबला ।’ ‘नाग तमे हम नारी ।’
 ‘हू हरि, हेला हस महिरखणी !’ ‘तू माकड वन मुझारी ।’

—श्रीकृ०ली० का० पृ० १०९

वर्णमैत्री का आग्रह और शृङ्खलाबद्ध वृत्त्यनुप्रास-विधान भी गुजराती में दुर्लभ है । देव के निम्न छंद की शब्दयोजना का कोई सादृश्य उसमें उपलब्ध नहीं होता—

जब ते कुंअर कान्ह, रावरी कलानिधान,
 कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी ।
 तबही ते ‘देव’ देखी देवता सी, हँसति सी,
 खीझति सी रीझति सी रूमति रिसानी सी ।
 छोही सी छली सी छीनि लीनी सी छकी सी छीन,
 जकी सी टकी सी लागी थकी थहरानी सी ।
 बीधी सी बधी सी बिसबूडी सी विमोहित सी ,
 बैठी बाल बकति बिलोकनि बिकानी सी ।

—भवानीविलास

केशवदास और मतिराम में भी शब्दालकारों के प्रति पर्याप्त आकर्षण मिलता है । यही नहीं रसखान, ध्रुवदास और माधवदास जैसे सम्प्रदाय-सम्बद्ध कवियों तक में यह अलंकरण-प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है —

रसखान—सेस महेस दिनेस गनेस मुरेसहु जाहि निरतर ध्यावै ।

जाहि अनादि अनत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावै ।

ध्रुवदास—पिकवैनी प्रेमावली प्रेमरस में लीन ।

परिमल पुन्या पावनी पदमावती प्रवीन ॥७०॥

—मडलसभासिंगर

माधवदास—सरस मुठार सार हार गजमोतिन के,

किये हैं सिंगार तन वरन वरन को ।

चचल चपल चपला के भ्रम चौकि परै,
चाहि चकचौबी लागे मोहन के मन को ।

—मा० वा०, पृ० ७०

यद्यपि कूटत्व को अलंकरण नहीं कहा जा सकता तथापि प्रधानतः शब्द चमत्कार पर ही आश्रित होने के कारण 'सूरसागर' तथा 'साहित्यलहरी' में उपलब्ध कूट पदों की ओर निर्देश कर देना यहाँ आवश्यक है । सूरदास के अनेक कूट सारंग आदि अनेकार्थी शब्दों पर ही आश्रित है—

सारंग सारंगधरहि मिलावौ ।
सारंग विनय करत सारंग सो सारंग दुख बिसरावहु ।

—सू० सा०, पृ० ३८८

कही कही शब्द के रूप को विकृत करके उसे समानार्थी बनाते हुए दुरूह कल्पना से कूटत्व उत्पन्न किया गया है जैसे निम्नलिखित पद में 'मास' और 'मास' तथा 'बीस' और 'विष' को एक अर्थ में ग्रहण किया गया है—

कहत कत परदेसी की बात ।
मदिर अरध अवधि बदी हमसों हरि अहार चलिजात ।
शगिरिपु वरष सूररिपु युगवर हररिपु किए फिरै घात ।
नखत वेद ग्रह जोरि अरध करि बनि आवै सोड खात ।
सूरदास प्रभु तुमहि मिलन को कर मीडत पछितात ।

—सू० सा०, पृ० ७०१-२

सूर ने कूटों की रचना में यमक आदि के अतिरिक्त मख्या तथा सम्बन्धवाची शब्दों और रूपकालिदायोक्ति जैसे अर्थालंकारों का सम्यक् प्रयोग किया है ।^१ साहित्य-लहरी में यह कूट-शैली और भी अधिक व्यापक रूप में मिलती है ।

गुजराती कवियों ने कूट-शैली में पद-रचना नहीं की और किसी अन्य प्रकार से ही काव्य को दुरूह बनाया है ।

अर्थ को अलंकृत करने में कवियों ने सादृश्यमूलक अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग किया है, विशेष रूप से उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का । इन अलंकारों में जो अप्रस्तुत योजना की गयी है वह एक ओर परम्परागत कमल, चंद्र, हंस, मीन, गज, केहरि, व्याल आदि उपमानों से समृद्ध है, दूसरी ओर उसमें कवियों द्वारा स्वप्रत्यक्ष सादृश्य को व्यक्त करने वाले अभिनव एवं अपूर्व उपमानों का भी सम्यक् योग है । दोनों

भाषाओं के अनेक कवियों ने अलंकार-विधान में मौलिक प्रतिभा का पर्याप्त परिचय दिया है । उदाहरणस्वरूप नीचे कुछ उपमाएँ प्रस्तुत की जाती हैं जिनकी स्वाभाविकता एवं मौलिकता में उन्हें विशेष आकर्षक बना दिया है —

गुजराती

नयविः— ताग माहि जिम चन्द्र, गोपिय माहि मुकुद ॥ ४८ ॥

—फागु

नालण— १. मन तो पीतानु राखिये रे, नालिकेर ज्यम तीर ।

—द०स्क०, पृ० ९१

२. तेने प्रीत कोण शु आवे, दित प्रत्ये नवा फल चाखे ।

चाच अडाडी ने जेम सूडो, जइने बेसे बीजी शाखे ।

—वही, पृ० १११

३. ज्यम पापण नेत्र ने राखे त्यम ते राख्या तन जी ।

—वही, पृ० ८०९

नरसी— १. वासना लागी घटघटमा, जेम बालमा पड्यु तेल ।

तारी वासना नो मने पास लाग्यो, जेम बेहूके फूलेल ।

तारे मारे प्रीत बंधाणी, जेम सूतरती फेल ।

—न०कृ०का०, पृ० ३१५

२. प्रीतडी मायली शामला साथे, जडी कुदन हीरले रे ।

—वही, पृ० ३४८

प्रेमानन्द— १. मूलरूप धरियु माया तजी, बाधी जोजन दोढ ।

जेम पर्वत ऊपर पोपटो तेम वीराजे रणछोड ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४७

२. जेम समुद्रमा पडे बीजली तेम अग्नि ज्वाळ गोविदे गळी ।

—वही, पृ० २७६

३. तपफणावत ध्रुवण उभा,

—वही, पृ० २९९

४. हुं बिना बलवली शर्य जेम टलवळे टीटूडी ।

—वही, पृ० ३१५



ब्रजभाषा

सूर—

१. कनक भूमि पर कर पग छाया यह उपमा एक राजत ।

कर कर प्रति पद प्रतिमणि वसुधा कमल बैठकी साजत ॥

—सू० सा०, पृ० १४४

२. अब अंबर ऐसो लागत है जैसो झूठो थारु ।

—वही, पृ० ३४७

३. जोवन रूप दिवस दमही को ज्यों अँजुरी को पानी ।

—वही, पृ० ४८६

४. सूरदास प्रभु तुम्हरो गवन सुनि जल ज्यो जात बही ।

—वही, पृ० ५८०

५. अब यह शशि ऐसो लागत ज्यों विनु माखनहि मद्यो ।

—वही, पृ० ५८४

६. नीरस करि छाँडी मुफलक सुत जैसे दूध बिनु साढी ।

—वही, पृ० ५८५

७. सूरदास वा भाइ फिरत हौ ज्यों मधु तोरे माखी ।

—वही, पृ० ६११

८. देखी माधो की मित्राई ।

आई उधरि कनक कलई मी दै निज गये दगाई ।

—वही, पृ० ६१४

९. मुनत लोग लागत हमै ऐसे ज्यो करुई ककरी ।

—वही, पृ० ७०३

१०. विनु गोविंद सकल सुख सुदरि भुस पर की सी भीति ।

—वही, पृ० ७५०

नन्ददास—

१. पानी पर पराग परी ऐसी । बीर फुटक भरी आरसि जैसी ।

—नन्द, पृ० ३

२. लै चले नागर नगधर नवल तिया कौं ऐसे ।

माँखिन आँखिन धूरि पूरि, मधुहा मधु जैसे ॥

—वही, पृ० १५२

३. कहूँ देखियत कह नाहिं, बधू बन बीच बनी यौ ।

बिजुरिन के से टूक, सघन बन भाँझ चलत ज्यों ॥

—वही, पृ० १६१

माधवदास— बैठि कहा कविता सी करी सुधि है कछु साँवर के तन की ।

—मा० वा०, पृ० ७९

ध्रुवदास— ज्यो ज्यों सर मे जल बढै, कमल बढै तिहि भाँति ।

ऐसे प्रिये की रुचि बढै निरखि प्रिया तन काँति ॥२५॥

—रतिमजरी

सेनापति— मान उड़ि जात ज्यों कपूर उड़ि जात है ॥३६॥

—कवित्तरत्नाकर, तरंग १

बिहारी— छुटी न सिसुता की झलक, झलकयो जोवन अग ।

दीपति देह दुहनु मिलि, दिपति ताफता-रग ॥७०॥

—बिहारीरत्नाकर, पृ० ३४

उपर्युक्त उपमाओं में विविधता है, अनेकरूपता है । उन्हें किसी एक वर्ग के अन्तर्गत नहीं रक्खा जा सकता । अधिकतर उपमाएँ रूप-सादृश्य पर आधारित होती हैं जैसे प्रेमानंद और नंददास की कई उपमाएँ उद्धृत की गयी हैं परन्तु रूप के अतिरिक्त गुण, भाव और स्वभाव के अनुरूप भी औपम्य की कल्पना की जाती है । नरसी और मूरदास की उक्त उपमाओं में यही बात परिलक्षित होती है । वस्तुतः धर्म, जो उपमा का आधार होता है और उपमेय उपमान को एक सूत्र में आवद्ध करता है, अपने में अत्यन्त व्यापक है । कवियों ने उसकी व्यापकता का पूरा लाभ उठाते हुए अपनी अपनी अनुभूति और कल्पना के अनुरूप वस्तु तथा वातावरण की प्रकृति को ध्यान में रखकर उपमानों का कुशलता पूर्वक चयन किया है । सादृश्य को विविध प्रकार से व्यक्त करने तथा अधिक स्पष्ट बनाने के लिए कहीं कहीं उपमाओं की शृंखलाएँ भी रच दी गयी हैं जिन्हे शास्त्रीय शब्दावली में मालोपमा की सजा दी गयी है । गुजराती कवियों की कुछ मालोपमाएँ विशेष दर्शनीय हैं—

भालण—चितातुर तमो काय दीखो, जुहारी ज्यम हारिया ।

व्यापारी बहाण बूडे, रग अवे आविया ।

स्वेद अगे गात्र भगे, नीर दो नयणे झरे ।

ऋण पीड्यो अति घणुं, निर्धन ज्यम चिताकरे ।

—द० स्क०, पृ० १८६

नरसी—चंद्र विट्यो जेम चादरणीअे, तरुवर विट्यो जेम वेली रे ।

गोविंद विट्यो गोवालणीअे, हसागवनी हेली रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ३०७

प्रेमानंद—क जेम वर्षाकाळना तृणने, उपाडे नहानुं बाल रे ।
जेम उन्मत्त गज ले शुद्धमां, सुकोमळ कमळ नो नाळरे ।
तेम पर्वत लीधो ऊचळी, लीलाअे लक्ष्मी नाथ रे ।
थम काई पहाँतो नथी, जेम को मुद्रिका धरे हाथ रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० २८४

ख जेम गुप्त खड्गकोश मध्ये, भस्मे ठाक्यो हुताश ।
जेम अभ्रमां आदित्य घेर्यो गुप्त रूप कीर्धुं अविनाश ।

—वही, पृ० २४६

अन्य स्थलो पर भी नरसी मेहता और प्रेमानंद ने रूप वर्णन में उपमा का ही अधिक प्रयोग किया है । अनेक उपमेय तथा अनेक उपमान होने से उनकी निम्न पक्तियों में मालोपमा अलंकार तो नहीं है परन्तु विभिन्न उपमाओं की माला अवश्य है—)

नरसी—तेत्रांजुज नाशा कीर जेवी, छे दगन पक्ति दाडिम बीज लेवी ।

आम्रकातलीशा अधर सोहता, लाल लाल स्त्रीना मन मोहंता ।

—न० कृ० का०, पृ० ४५३

प्रेमानंद—कदली पत्र बासो विराजे, पेट पोयण पान ।

भर्या परिमल नाभि निर्मल रोमावली पकज तत ।

कवु जेवी ग्रीवा शोभा कंठ कोकिला नाद ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४६

ब्रजभाषा के सूरदास नंददास आदि कवियों ने उत्प्रेक्षा का सर्वाधिक प्रयोग किया है । कही वस्तु, कही हेतु और कही फल की कल्पना करके उत्प्रेक्षा के प्रायः सभी रूपों का व्यवहार किया गया है । उपमा की तरह उत्प्रेक्षाओं की भी श्रृंखलाएँ रच दी गयीं हैं । रीति परम्परा के कवियों ने नखशिख वर्णन में उत्प्रेक्षा का प्रचुर प्रयोग किया है । गुजराती कवियों ने अपेक्षाकृत इस अलंकार को बहुत कम व्यवहृत किया है । नीचे दोनों भाषाओं के काव्य से कतिपय उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे कवियों की कल्पना-शक्ति और वर्णन-वैचित्र्य का सम्यक् परिचय मिलता है—

गुजराती

भालण—सुन्दर वदन सोहामणु रे, नानडिया शा दत ।

जाणे कलममा प्रगटी रे, कुदकली विकसत ।

कठे हरिनख लटकतो रे, कौस्तुभनो आकार ।

मुक्तामाळ सोहामणी रे, जाणियो गंगावार ।

—द० स्क०, पृ० ३६

नरसी—१. मुखनी शोभा शी कहु जाणे पूतमचद बीराजे रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ४६१

२. बेणाना कुसुम लटकता दीसे जाणे मणीधर डोले रे ।

—वही, पृ० ५८४

प्रमानंद—१. जिह्वा जाणे मणिणी रे, मुख गुफानु द्वार ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४७

२. रुक्मिणी हीड ब्रह्मा मळती रे, जाणे तेजमाथी तारुणी प्रगटीरे ।

—रुक्मिणी हरण

ब्रजभाषा

सूर—१. सूरश्याम किलकत द्विज देख्यो, मानो कमल पर बीजु जमाइ ।

—सू० सा०, पृ० १३९

२. भाल विशाल ललित लटकनमनि बालदशा के चिकुर सुहाए ।

मानो गुरु शनि कुज आगे करि शशिहि मिलन तम के गण भाए ।

उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पटपीत उढाए ।

नील जलद पर उडगन निरखत तजि सुभाउ मनौ तडित छपाए ।

—वही, पृ० १४३

३. सूरश्याम लोचन जल बरसत जनु मुकुता हिमकर ते ।

—वही, पृ० १७९

४. नैनपीन भकराकृत कुडल भुजवल सुभग भुजग ।

मुकुतमाल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिए सग ।

मोर मुकुट मणिगण आभूषण, कटि किकिनि नखचद ।

मनु अडोल वारिधि मै विवित राका उडगणवृन्द ।

वदनचन्द्र मंडल की शोभा अवलोकनि सुख देत ।

जनु जलनिधि मधि प्रगटकियो शशि श्री अरु सुधा समेत ।

—वही, पृ० २३७

५. रतन जटित पग सुभगपांवरी, नूपुर ध्वनि कल परम रसाल ।

मानहुँ चरणकमलदल लोभी निकटहि बैठे बालमराल ।

—वही, पृ० ३४७

६. चंदन चरचित कुच उर उपटित मनु नवघन मे उदित दोउ शशि ।

—वही, पृ० ४७६

७. केसरि आड लिलाट हो बिच सेदुर को विदु ।

चक्र तजे ता नैन भृग जनु बैठो रथ इंदु ।

—वही, पृ० ४९०

८. वॉह उँचाइ जोरि जसुहानी ऐड़ानी कमनीय कामिनी ।

भुज छूटे छबि यों लागी मनो टूटि भई द्वै टूक दामिनी ।

—वही, पृ० ४९८

९. तुम सो प्रेमकथा को कहिबो मनहुँ काटिबो घाम ।

—वही, पृ० ७००

नददास—१. कज कज प्रति पुज अलि गुजत इमि परभात ।

जनु रवि डर तम तजि भज्यो, रोवत ताके नात ।

—नद, पृ० ३

२ नवला निकसति तीर जव नीर चुवत वर चीर ।

असँवन रोवत बसन जनु, तन बिछुरन की पीर ।

—वही, पृ० ६

३ और विहगम रंग भरे बोलत हिय हरही ।

जनु तरवर रस भरे परस्पर बाते करही ।

—वही, पृ० १४५

४ अरुन चरन प्रतिबिम्ब अवनि में यो उनमानी ।

जनु धर अपनी जीभ धरति पग कोमल जानी ।

—वही, पृ० १५१

५ कछु रुकमिनि चलि आई हरि लै रथ बैठाई ।

घन ते बिछुरी बिजुरी, मनौ घन मैं फिरि आई ।

—वही, पृ० १५२

हरिवंश—अंस अस बाहु दै किशोर जोर रूप रासि,

मनौ तमाल अरुजि रही सरस कनक बेलि ॥१७॥

—श्रीहित० चौ०, पृ० ८

श्रीभट्ट—पलक-पलक मानो अलित तलिन पै प्रात मुदित हित पंख पसारे ।

अजन-अमिल रेख इषद लखि बसि नागिन मानो खजन गारे ।

—नि० मा० पृ०, १५-१६

हरिराम व्यास—याही तै माई कुचनि के ओर भये कारे ।

ये पिय के नैननि मैं वसत, इनमे पिय के तारे ।

—व्या० वा०, पृ० ४८९

ध्रुवदास—१. जमुना की छवि कहा कहौ तहाँ न आनद धोर ।

मनहुँ ढर्यो सिंगार रस करि प्रबाह चहुँओर ॥९॥

—मडलसभासिंगार

२. नासापुट मुकुता फण्यो चितै रहे दृग द्वद ।

भाजन भरि तन झलकि परो मनो रूप की बुद ॥३६॥

—वही

मतिराम—स्वेद के बूंद लसे तन मै रति अंत रही लपटाय गुपालहि ।

मानो फली मुकुताफल पुजन हेमलता लपटानी तमालहि ॥३१९॥

—रसराज

केशव—भखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनौ सति अक लिए ।

बिहारी—मकराकृत गोपाल कै सोहत कुंडल कान ।

धर्यो मनौ हिय-धर समरु, ड्यौंढी लमत निसान ॥ १०३ ॥

—बिहारीरत्नाकर

देव—भाल गुही मुकुतालर माल, सुधावर मै मनौ धार मुधा की ।

—भावविलास

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि ब्रजभाषा-काव्य में मिलने वाली उत्प्रेक्षाओं के समक्ष गुजराती काव्य की उत्प्रेक्षाएँ सरल, अमंशिलष्ट तथा अनूहात्मक हैं । ब्रजभाषा के कवियों ने अपने उत्प्रेक्षण में सूक्ष्मता, सुकुमारता, सश्लिष्टता एवं ऊहात्मकता का विशेष परिचय दिया है । सूर और नददास की उत्प्रेक्षाओं में रूपछायाओं के अद्भुत वैभव के साथ उक्ति-वैचित्र्य का अपूर्व आग्रह मिलता है । सूर, केशव, बिहारी आदि कवियों ने कही कही वर्ण सादृश्य के आधार पर ग्रहों को उत्प्रेक्षण का साधन बनाया है जिससे उनके ज्योतिष ज्ञान का आभास मिलता है । गुजराती में वर्ण पर आधारित ऐसी उत्प्रेक्षाओं का अभाव है । नरसी ने अवश्य एक स्थल पर ऐसी उत्प्रेक्षा की है—

लीलवट आडरे शोभती केसरतणी रे जाणे मुखे उग्यो शशीयर भाण ।

—न० कु० का०, पृ० ४०४

इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि ब्रजभाषा-काव्य में कल्पना का आलंकारिक स्वरूप कहीं अधिक विकसित हुआ । कही कही यह वृत्ति गूढ़ और दुरूह भी होगयी है किन्तु अधिकतर भाव, रूप, वर्ण आदि के सादृश्य का पूर्ण निर्वाह हुआ है ।

गुजराती कवियों ने उत्प्रेक्षा से अधिक रूपक का प्रयोग किया है । उनके रूपकों की रचना भी प्रायः सहज मुलभ एवं परम्परागत उपमानों पर ही आश्रित है । कल्पना का चमत्कार कम परिलक्षित होता है । रूपको का अंगविस्तार करके उन्हें सागरूपक बनाने की प्रवृत्ति इसीलिए नहीं मिलती । गुजराती-काव्य में प्राप्त रूपक अलंकार के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं

भालण—१. नयण कचोले अमृत पीतां, क्यम पूरण थाउं ।

—द० स्क०, पृ० ७८

२. आशा अंबर ने तांतणे मारा वळग्याजी प्राण ।

—वही, पृ० २२०

नरसी—अकुटि अमर रे, धनुष्याकार छे रे, वा लाजीना नेण दीसे छे बाण ।

प्रेम धरी ने रे नाखे वा लो अम भणी रे, वा ले मारे वेध्या मनने प्राण ।

—वही, पृ० ४०४

प्रेमानन्द—१. कचुकी भीजे कटावनी आंसुडा केरी धार ।

कुच-शकर पर स्वेदनी काम करे रे पखाल ॥२०॥

जोवन-जलनिधि ऊलद्यों कोटि काम तरंग ॥२१॥

—मास

२. विरहिणी ने मतापवा आव्यो मेघ भुजंग ॥४३॥

—वही

३. नयणे काजल मारी रे साधे मोहना बाण ।

अगुठी धनुष कसी करे, ताणे कर्ण प्रमाण ॥९४॥

—वही

४. नरजे वाले ने सहारे अणे निपाव्या जीव ।

अे ब्रह्मा ने अे ब्रह्माणी अे शक्ति ने अे शीव ॥

—प्रा०का०मा०, पृ० १७०

उक्त उदाहरणों में अनेक रूपक एकदेश-विवर्ति हैं । कुछ में समस्तवस्तु-विषय-कता का आभास है । बहुधा निरग रूपक का ही प्रयोग है । इसके विरुद्ध व्रजभाषा में साधारण रूपकों के अतिरिक्त सांगरूपकों का विशेष आग्रह मिलता है । सूर ने इस क्षेत्र में अद्भुत क्षमता प्रदर्शित की है । यह सत्य है कि रूपक का अत्यधिक विस्तार कभी कभी विरसता का भी संचार करने लगता है परन्तु सूर के कतिपय सांगरूपकों में कल्पना और भाव का विचित्र संयोग हुआ है । उनके कुछ अतिविस्तृत रूपकों में जटिलता, वृहता और तीरसता भी आगयी है । ध्रुवदास आदि अन्य अनेक कवियों ने रूपक-रचना में विशेष कौशल प्रदर्शित किया है । निम्न उदाहरण प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

सूर—१. माधव जू नेक हटकौ गाइ ।

निशि वासर यह भरमति इत उत अगह गही नहि जाइ

क्षुधित बहुत अघात नाही निगम द्रुम दल खाइ ।

—मू० सा०, पृ० ८

२ अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल ।

काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय को माल ।

महामोह को नेपुर् बाजत निन्दा शब्द रमाल ।

भरमभये मन भयो पखावज चलत कुसंगन चाल ।

तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल ।

माया को कटि फेटा बाव्यों लोभतिलक दियो भाल ।

—वही, पृ० १९

३ चिरहवन मिलन सुधि त्रास भारी ।

नैन जल नदी पर्वत उरज येई मनो सुभग बेनो भई अहिनि कारी ।

नैनमृग अवन बनकूप जहँ लहँ मिले, अम गली सधन नहि पार पावै ।

सिंह कटि व्याघ्र अग अग भूवन मनो दुसह भये भार अतिही डरावै ।

—वही, पृ० ३८६

४. तुम्हारो गोकुल हो ब्रजनाथ ।

घेर्यो है अरि चतुरंगिनि लै मन्मथ सेना साथ ।

गर्जत अति गभीर गिरा मन मैंगल मत्त अपार ।

धुरवा धूरि उड़त रथ पायक घोरन की खुरनार ।

चपला चमत्तमाति आयुध वग-पंगति ध्वजा अकार ।

परत निसाननि धावतमकि घनु तरपत जिहि जिहि वार ।

मारैमार करत भट दादुर पहिरे बहु बरन सनाह ।

—वही, पृ० ६२८

इनके अतिरिक्त सूर ने 'देखौ माई सुन्दरता को सागर' तथा 'साँचो सो लिखवार कहावै, से प्रारम्भ होने वाले पदों में रूपक के अंग-प्रत्यंगों का बहुत विस्तार किया है। ऐसे विस्तृत रूपकों में उन्होंने कही कही उत्प्रेक्षादि अलंकारों का अन्तर्भाव कर लिया है अर्थात् प्रधान भूमिका तो रूपक की रही है परन्तु उसके अंगों का सादृश्य निरूपित करने में उत्प्रेक्षादि का आश्रय लिया गया है। जैसा कहा जा चुका है कि इतने विस्तृत रूपक गुजराती काव्य में उपलब्ध नहीं होते अतएव इस प्रकार के अलंकार समिश्रण के भी दर्शन नहीं होते। नरसी का 'सुरतसंग्राम' एक अपवाद है। रूपक पर आश्रित इतनी विशाल कल्पना ब्रजभाषा के किसी काव्य में नहीं मिलती। रति को युद्ध का रूपक देकर दोनों भाषाओं में वर्णित किया गया है जिसके अनेक उदाहरण

दिये जा सकते हैं । फिर भी रूपक-रचना की व्यापक प्रवृत्ति ब्रजभाषा में ही पायी जाती है । सूर के अतिरिक्त अन्य भक्त कवियों ने भी इस प्रवृत्ति का सम्यक् परिचय दिया है जो निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है—

गदाधरभट्ट—१. आज कहूँ ते या गोकुल मे अद्भुत बरखा आई हो ।
मणिगण हेमहीर धारा की ब्रजपति अति झर लाई हो ।
बानी वेद पढ़त द्विज दादुर हिये निरखि हरियारे हो ।
दधिघृत नीर क्षीर नाना रंग बहि चले खार पनारे हो ।
आनन्दभरी नाचत ब्रजनारी पहरे रग रग सारी हो ।
वरन बरन वादरन लपेटी विद्युत न्यारी न्यारी हो ।

—वाणी, पृ० ११

२. जो मन स्वाम-सरोवर न्हाहि ।
बहुन दिनन को जर्यो बर्यो तूँ, तवहो भले निराहि ।
नयन वयन कर चरन कमल से, कुंडल मकर ममान ।
अलकावली सिवाल जाल तहँ, भौह मीन मो जान ।

—वही, पृ० २५

माधवदास—माली नव मदन तरुनी तन अलबाल,
जतन जुगुति सों जोवन बीज बयौ है ।
उपज्यौ है अकुर सनेह को सरस अति,
सुरति के मेह सो सुनित सरमयौ है ।
मूल प्रतिकूलता सुमन फूल फूलि रह्यौ,
हावभाव पल्लव मधन छाँह छयौ है ।
मधुरते मधुर लग्यो है एक मान फल,
सोई जाने मुख जिन लोभी रस लयौ है ॥३५॥

—मानमाधुरी

ध्रुवदास ने शतरंज, चौपड़ आदि को लेकर विचित्र रूपकों की सृष्टि की है जिनमें भाव की अपेक्षा काव्य-कौतुक अधिक है—

मन नृप मन्त्री चौप सों रुचि कीनी रख चाल ।
उरज गयंद सुरग दूग पायक अंगुली लाल ॥१२॥

—हित० सिंगारलीला

सखियन तलप बिसात बनाई । कहि न जाइ सोभा कुछ भाई ॥९८॥

पासे नैन कटाछनि ढारै । हावभाव रँग-रँग की सारै ॥९९॥

—नेहमजरी

नरसी और ध्रुवदास ने स्त्री शरीर की कल्पना सफल लता के रूप में की है । दोनों के रूपकों की समानता दर्शनीय है । मुस्कान को फूल कह कर ध्रुवदास ने सादृश्य का अधिक निर्वाह किया है—

ध्रुवदास—कोमल कुदन बेलि मनु सीची रग मुहाग ।

मुसकनि लागे फूल फल उरज भरे अनुराग ॥ २० ॥

—रतिमजरी

नरसी— अमृत वेलडी ब्रज नी नारी उर वर सफळ फली रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ३३३

इस तरह की रूपक-रचना ब्रजभाषा के रीतिकाव्यों में भी उपलब्ध होती है । उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के अतिरिक्त रूपकातिशयोक्ति, संदेह, दृष्टान्त आदि अन्य सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग भी दोनों भाषाओं के काव्य में मिलता है परन्तु प्रधानता पूर्वोक्त अलंकारों की ही रही है । रूपकातिशयोक्ति को सूर ने सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत किया है । उनके पास उपमानों का अशेष कोष रहता है जिसकी सहायता से उनकी कल्पना अभूतपूर्व वैभव के साथ रूप-चित्र रचती जाती है । रूपकातिशयोक्ति सूर के समृद्ध अलंकरण का एक अंशमात्र है । सूर ने इस अलंकार का प्रयोग अपने पूर्ववर्ती पदकार विद्यापति की परम्परा में किया है । भालण ने राधा के रूप वर्णन में इसका व्यवहार किया है । रूपकातिशयोक्ति का ब्रजभाषा जैसा विस्तृत समृद्ध प्रयोग गुजराती में नहीं मिलता—

सूर—अद्भुत एक अनूपम बाग ।

युगल कमल पर गज क्रीडत है, तापर सिंह करत अनुराग ।

हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फले कज पराग ।

रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ।

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर शुक पिक मृग मद काग ।

खजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मणिधर नाग ।

—सू० सा०, पृ० ३९०

भालण—कनकलता ऊपर कशा रे बे लघुपर्वत शृंग रे ।

अेम अटपटू उचरे रे, कहे वच्चे वहेती गग रे ।

खंजन मीन मधुकर कह्या रे, तेतो चद्रबिब मुझार रे ।

—द० स्क०, पृ० १४५

सूर ने दानलीला के अन्तर्गत तथा कूटो में इस अलंकार का और भी चमत्कारिक प्रयोग किया है जिसका संकेत प्रसंगानुसार किया जा चुका है ।

‘संदेह’ सबन्धी तुलनात्मक स्थिति निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है—

ब्रजभाषा

सूर— १ राधे तेरे नैन किधौ मृगवारे ।

२ राधे तेरे नैन किधौ री वान ।

३ राधे तेरे नैन किधौ बटपारे ।

—सू० मा०, पृ० ५०८

नंददास—किधौ नीलमनि किकिनि माही, रोमावलि तिहि जोति की छांही ।

किधौ लटी कटि दिखि करतारा, रोमधार जनु धर्यो अधारा ।

—नंद०, पृ० ७

गुजराती

नरसी—छो रे रंभा के रे मोहनी, के छो रे आनंद के चंद ।

के रे पाताळमांनी पद्मनी, अेवो विचार करे गोविंद ।

—न० कृ० का०, पृ० १६५

प्रेमानंद—सुदामे जाणी आवी राणी, इंद्राणी के रुक्मिणी ।

सावित्री के सरस्वती, के शक्ति शकर तणी ॥१५॥

—बृ० का० दो०, भाग १, पृ० २७५

ब्रजभाषा के कवियों ने संदेह का प्रयोग कवि-कल्पित विविध रूप-छायाओं तथा भाव-व्यजक उपमानों को लेकर किया है किन्तु गुजराती कवियों ने पात्र विशेष की किसी अन्य पात्र के सम्बन्ध में अनिश्चयात्मक मनस्थिति को व्यक्त करने में इसका व्यवहार किया है जैसा कि नरसी और प्रेमानंद की उक्त पंक्तियों से प्रकट है । दोनों प्रयोगों में पर्याप्त भिन्नता है । एक में रूप-सादृश्य के साथ उक्ति-वैचित्र्य पर अधिक बल है दूसरे में केवल रूप-सादृश्य पर ।

कथन पर बल देने और उसे प्रभविष्णु एवं सुन्दर बनाने के लिए ‘दृष्टान्त’ अलंकार का प्रयोग गुजराती कवियों ने बराबर किया है—

भालण—रीसावी रहेवा नव दीजे, कोमळ तन करमाये ।
वीजा वृक्ष रहे सिच्या विना, जुडवेली मूकाये ।

—द० स्क०, पृ० ११०

प्रेमानंद—मुआ वळ्ळना चर्मने माटे, गाय प्रीते वूअं रे ।
मोटा वळ्ळने शृंगे मारे, सगपण काड न सूअं रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३१६

ब्रजभाषा में मूरदास तथा नंददास आदि ने भी इसका पर्याप्त कुशलता से प्रयोग किया है । इन कवियों का लक्ष्य भी कथन को सशक्त, प्रभावमय एवं सुन्दर बनाना रहा है—

सूर—तेरो बुरो न कोई मानै ।

रस की बात मधुप नीरम सुनि रसिक होइ सो जानै ।
दादुर बसै निकट कमलनि के जन्म न रस पहिचानै ।
अलि अनुराग उडत मन बाँध्यो कही मुनत नहि कानै ।
सरिता चली मिलन सागर को कूल सबै द्रुम भानै ।
कायर वकै लोभ ते भागै, लरै सो सूर बखानै ।

—सू० सा०, पृ० ७००

नंददास—प्रेम एक, इक चित्तनौ एकहि सग समाइ ।
गंधी कौ सौदौ नही जन जन हाथ बिकाइ ।

—नद०, पृ० १७

गुजराती कवियों में कथन को अलंकृत करने की ओर प्रेमानंद का झुकाव अधिक प्रतीत होता है । उन्होंने अनन्वय, अपन्हति तथा उल्लेख आदि कतिपय अन्य मादृश्य-मूलक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है ।

अनन्वय—उपमा ते कोनी आपिये, ना मळ्यु अंकु प्रवत ।
अं रुक्मिणी ते रुक्मिणी, श्रीकृष्ण ते श्रीकृष्ण ।

—प्रा० का० मा०, पृ० १७०

अपन्हति—न होय इन्द्र अं छे कृष्णजी जेणे आप्यु मुनि ने वळ निरवार ।
नोय इन्द्र कमळ लोचनखरा, जेने नथी नेत्र हजार ।

—वही, पृ० १६९

उल्लेख—कोई कहे इन्दु, कोई कहे काम...

कोई कहे हाउ आव्यो विकाळ...

कोई बृद्ध जादवे दीठा ऋखी...

—बृ० का० दो०, भाग १, पृ० २४६

‘उल्लेख’ का उनका प्रयोग विचित्र है क्योंकि उसमें वक्रोक्ति का अन्तर्भाव हो गया है। यादव स्त्रियाँ जर्जर देह सुदामा को जब इन्दु और काम कहती हैं तो वहाँ वक्रोक्ति की प्रधान हो जाती है परन्तु जब कोई स्त्री उन्हें ‘हाउ’ समझती है और कोई यादव ‘ऋखी’ समझता है तो उल्लेख ही प्रधान हो उठता है। ऐसा उदाहरण ब्रजभाषा में कदाचित् ही कही मिले।

सादृश्यमूलक अलंकारों के अतिरिक्त जिन अलंकारों का दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में सफल प्रयोग हुआ है उनमें ‘प्रतीप’ तथा ‘अत्युक्ति’ विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रतीप का प्रयोग रूपा-वर्णन के प्रसंग में अधिक किया गया है—

गुजराती

भालण—पवव को ला ने प्रवालडां रे, मुख आगळ शु नाम रे।

दादमनी कलिका तणु रे, कहानजी कहे शु काम रे।

—द० स्क०, पृ० १४५

प्रेमानंद—सुदामाना वैभव आगळ, कुबेर ते कोग मात्र।

—बृ० का० दो० भाग १, पृ० २५८

ब्रजभाषा

सूर—१. कंज खजन मीन मृग शावकनि डारति वारि।

अकृष्टि पर सुरचाप वारत तरनि कुंडल हारि।

—सू० सा०, पृ० ३५५

२ राधे तेरे रूप की अधिकाइ।

शशि उर घटत, हेम पावक परि, चपक कुसुम रहे कुम्हिलाइ।

इभ तूटत अरु अरुण पक भए विधिना आन बनाइ।

कद्रुज पैठि पताल दुरे रहि खगभति हरिवाहन भए जाइ।

हस दुर्यो मर दुर्यो सरोरुह गज मृग चले पराइ।

सूरजदास विचार देखि मन तोर रसन पिक रही लजाइ।

—वही, पृ० ५१३

नंददास—मृगज लजे, खंजन भजे, कज लजे छवि छीन ।

दृगन देखि दुख दीन ह्वै, मीन भए जल लीन ।

—नंद०, पृ० ६

हरिराम व्यास—निरुपम राधा नैन तुम्हारे ।

अजन छवि खजन मद गजन मीन पानि दुरि हारे ।

निशि शशि डरत पंकजकुल मुकुचत अधिकनि मृगज विडारे ।

—व्या० वा०, पृ० २४१

उक्त उद्धरणों को देखने से ज्ञात होता है कि ब्रजभाषा में 'प्रतीप' अत्यन्त समृद्ध एवं मृदुलाबद्ध रूप में प्रयुक्त हुआ है । उसके जितने भेद ब्रजभाषा काव्य में उपलब्ध होते हैं उतने गुजराती में नहीं मिलते ।

दोनों भाषाओं में 'अत्युक्ति' का व्यवहार विरह-सम्बन्धी वर्णन में विशेष रूप से हुआ है जो निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है । कवियों ने विरह-ताप और विरह-दौर्बल्य को लेकर विविध प्रकार की अत्युक्तियों का सृजन किया है जिनमें ऊहा का पुट लगभग समान रूप में मिलता है । रीति कवियों ने उसे अस्वाभाविकता की सीमा पर पहुँचा दिया—

गुजराती

भालण—कुसुम चदन शीतल घणा, ते अग लामे अगर ।

—द० स्क०, पृ० १३७

नरसी—हँयामा रे होळी वळे कीम करी रमु वसन्त ।

—न० कृ० का०, पृ० ५२४

प्रेमानंद—ऊननो ताप निश्वास मूके ।

कामिनी कठनी माल सूके । ॥१६॥

सूकी गधुं तन हेली रे, बेली ऊतरे बाह ।

धरलीअे लेता जोती रे, अगूठी अे माह ॥१८॥

—मास

ब्रजभाषा

सूर—१. कर अँगुरी अति ताती ।

परसे जरै

—सू० सा०, पृ० ६४९

२. गनतहि गनत गई सुनि सजनी अँगुरि की रेखे ।

—वही०, पृ० ६७९



नंददास—१. लिखी विरह के हाथन पाती अजहूँ ताती ।

—नद०, पृ० १४७

२. उपजि विरह दुख दवा अवा उर ताप तये है ।

कोउ कोउ हार के मोतिया, तचि तचि लाल भये है ।

—वही, पृ० १४३

बिहारी—औघाई सीसी सुलखि बिरह-बरनि बिललात ।

बिच ही सुखि गुलाब गौ, छोटौ छुई न गात ॥२१७॥

—बिहारीरत्नाकर, पृ० ९१

देव—हाथ उठायो उड़ाइबे को, उडि काग गरे परीं चारिक चूरी ।

—भवानीविलास

कार्य कारण, क्रम और संख्या मूलक अलंकारों का प्रयोग गुजराती में नहीं मिलता एक दो स्थल पर अगर मिलता है तो अपवाद स्वरूप ही जैसे क्रमश 'अक्रमातिशयोक्ति' और 'सार' से युक्त प्रेमानंद की निम्न पक्तियों में—

१. मुखमा मुष्टि तादुल मूक्या, दारिद्र्य नाख्या कापी ।

कर मरडी ने गाठडी लीधी साथेना दुख मोड्या ।

जेम चीथरा छोड्या नाथे, तेम बधन तोड्या ।

ज्यारे तादुल मुखमा मूक्या, उठी छापरी आकाश ।

—बृ० का० दो० भाग १, पृ० २५३

२. काण्ठ पे पाषाण कठिन छे तेपे कठिन छे लोढुं ।

वज्र तुल्य छे काळज मारु लोकने शु देखाडु मोढु रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० २७२

संख्या पर आधारित सूर की 'सूर सकल षट् दरशन वे हें बारह खरी पढ़ाऊँ' जैसी पक्ति का तो एक भी सादृश्य गुजराती काव्य में नहीं मिलता ।

पादटिप्पणियाँ

१. अजभाषा—नन्ददास : नद०, पृ० १७६, हरिवंश श्रीहित वीरासी, पद, ७१
गुजराती—नरसी : न० कृ० का०, पृ० १८५, प्रेमामन्द श्रीम० भा०, पृ० २६३
२. प्रकृति और काव्य, हिन्दी खड, पृ० ४२५—रघुपिता. ज्यो० रघुवंश
२ न० कृ० का०, पृ० २६७, ५८३
३. भालसा : द० रुक०, पृ० १३४, प्रेमामन्द : बृ० का० दो० भाग १, पृ० २४६, २४७;
नन्ददास नद, पृ० ३-६, १४५
५. भालसा : द० रुक०, पृ० ७४; सूरदास : सू० सा०, पृ० १५०
६. सू० सा०, पृ० १५३, ३८८, ३८९, ४७१, ५१३, ५३०, ५३१, ६१४, ६६४, ६९५, ६३० इत्यादि

६

छंद

दोनों भाषाओं के काव्य में छंद-विधान प्रायः काव्य-शैली के अनुरूप ही हुआ है। काव्य की तीन प्रमुख शैलियाँ मिलती हैं—

१. आख्यान-शैली
२. पद-शैली
३. मुक्तक-शैली

आख्यान-शैली का प्रधान गुण वर्णनात्मकता है और पद-शैली की प्रधान विशेषता, गेयता। गुजराती के आख्यान काव्यों में भी गेयता का पर्याप्त योग रहा है जो रागों के सकेत से स्पष्ट ज्ञात होता है। प्रथम दोनों शैलियों का अनुसरण गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कवियों ने किया है परन्तु अन्तिम मुक्तक-शैली का व्यवहार जिस रूप में ब्रजभाषा के रीतिकारों ने किया है, गुजराती में उपलब्ध नहीं होता। ब्रजभाषा में पद-शैली की प्रधानता है और गुजराती में आख्यान-शैली की।

कवियों ने इन शैलियों का परस्पर सम्मिश्रण भी किया है और स्वतन्त्र अनुसरण भी। यह सम्मिश्रण बहुधा कवि की आन्तरिक प्रेरणा तथा भावानुभूति के समानान्तर हुआ है। मुख्यतया पद-शैली में रचना करने वाले सूर जैसे कवि ने भी कथा क्रम का कुछ न कुछ निर्वाह किया है और आवश्यकता के अनुसार बीच बीच में आख्यान-शैली को भी अपनाया है। इसके विरुद्ध मुख्यतया आख्यान-शैली में रचना करने वाले भीम, भालण, केशवदास, प्रेमचंद, लक्ष्मीदास, माधवदास आदि अनेक गुजराती कवियों ने भावप्रधान स्थलों पर पद-शैली को स्वीकार किया है। ब्रजभाषा में ध्रुवदास तथा माधवदास आदि ने आख्यान-शैली के साथ मुक्तक-शैली का सम्मिश्रण कर दिया है। नरोत्तमदास ने तो कथा-कथन में मुक्तक का ही आद्योपान्त व्यवहार किया है। नरदास में अवश्य शैलीगत मिश्रण नहीं मिलता। उन्होंने दोनों शैलियों को पृथक् पृथक् व्यवहृत किया है।

वास्तव में पद भी एक प्रकार का मुक्तक ही है परन्तु गेयता प्रधान होने के कारण उसे मुक्तक से भिन्न स्वतन्त्र रूप में स्वीकार किया जाता है ।

आगे इन शैलियों के अन्तर्गत आने वाले छंदों पर पृथक् पृथक् विचार किया गया है और अन्त में रागों की तुलनात्मक स्थिति भी प्रदर्शित कर दी गयी है ।

१. आख्यान-शैली

गुजराती में आख्यान रचना 'कडवा' वद्व रूप में हुई है । भीम और भालण से लेकर प्रेमानंद तक प्रायः सभी आख्यानकारों ने इसी रूप का अनुसरण किया है ।

कडवा के सामान्य गीति में तीन अंग होते हैं । प्रारम्भ में दो-चार पक्तियों का एक 'मुखबन्ध' आता है । यह सभी कडवों में होता है, ऐसी बात नहीं है । परन्तु मुख्य मुख्य आख्यानों के अधिकांश कडवों में मुखबन्ध मिलता है । मुखबन्ध के समाप्त होने पर कडवा की व्यापक 'देशी' आती है । इन देशियों में 'ढाल' नामक रचना अथवा किसी अन्य प्रकार की देशी का समावेश होता है और अंत में व्यापक देशी की समाप्ति पर उपसंहार की तरह 'वलण' अथवा 'उथलो' का प्रयोग किया जाता है । यह वलण या उथलो पूरे होते हुए कडवा का उपसंहार करने तथा आगामी कडवा की वस्तु की सूचना देने के लिए आता है । उथलो या वलण का प्रारम्भ कडवा की देशी की पक्ति के अन्तिम शब्द में होता है और कदाचित् इसलिए इसकी ऐसी सजाई है । यह अधिकतर एक द्विपदी का होता है । पर कहीं कहीं अधिक द्विपदियाँ भी आती हैं । कडवों में इनका होना अनिवार्य हो, ऐसा कोई नियम नहीं है । मुखबन्ध की तरह यह भी कडवों का अपरिहार्य अथवा अव्यभिचारी अंग नहीं है ।

कडवांजड़ शैली का प्रयोग करते हुए भी कवियों ने भिन्न भिन्न शब्दों का व्यवहार किया है ।

अपने दशमस्कंध में भालण ने कडवा के स्थान पर 'पद' लिखा है और देशी के स्थान पर 'ढाल' । भीम ने किसी ऐसे पारिभाषिक शब्द का प्रयोग न करके 'पूर्वछायु' से मुखबन्ध का निर्देश किया है और 'चूपै' से देशी या ढाल का । यह छंदों के नाम हैं । भीम ने और भी जिन छंदों का व्यवहार किया है उनका नाम-सकेत कर दिया है । केशवदास ने यद्यपि इन परिपाटी का अनुसरण न करके अपने काव्य 'श्रीकृष्णकीडा-काव्य' का निर्माण सर्गवद्ध रूप में किया है तथापि कडवा का भी व्यवहार उनके द्वारा हुआ है । जिन कवियों ने कडवा, ढाल और वलण जैसे शब्दों का व्यवहार किया है उन्होंने भी कहीं कहीं छंदों के नामों का निर्देश कर दिया है । ढाल का व्यवहार नाकर और प्रेमानंद आदि कवियों ने बराबर किया है । ब्रह्मदेव ने ढाल के लिए 'डोढ' का भी व्यवहार किया है और प्रेमानंद ने 'चाल' का ही ।

ब्रजभाषा में न तो इन शब्दों का प्रयोग हुआ है और न कडवाबद्ध शैली का ही व्यवहार हुआ है । दोहा-चौपाई की शैली अवश्य मिलती है जिसका कडवाबद्ध शैली से पर्याप्त साम्य भी है और अन्तर भी । साम्य इस प्रकार कि चौपाइयों की एक निश्चित मर्यादा के बाद दोहे के प्रयोग किये जाने से बीच की चौपाइयों का रूप ऊपर और नीचे के दोहे के साथ कड़वों जैसा ही हो जाता है परन्तु अन्तर यह है कि दोहों का प्रयोग साधारण क्रम से होता है, सुखबन्ध और वृत्त के रूप में नहीं । नरदास की करमंजरी, विरहमंजरी तथा दशरत्न इसी ढंग की रचनाएँ हैं । ध्रुवदास और माधवदास की अनेक रचनाओं में दोहा-चौपाई के ऐसे ही क्रम का अनुसरण किया गया है । गुजराती आख्यान-काव्यों में भी दोहा-चौपाई अथवा इन्हीं से निर्मित या इसी जाति के छंदों का विशेष व्यवहार हुआ है । कीकुवसही, देवीदास, परमाणंद, फाग, प्रमाणंद तथा केशवदास वंणव के काव्य इसके प्रमाण हैं ।

छंद की दृष्टि से आख्यानों के दो प्रमुख भेद हो सकते हैं । एक तो वे आख्यान अथवा वर्णनात्मक काव्य जिनमें किसी एक ही छंद का प्रयोग हुआ हो, दूसरे वे काव्य जिनमें मिश्रित छंद-प्रणाली या अनेक छंदों का प्रयोग किया गया हो । प्रथम प्रकार के काव्यों में ब्रजभाषा की कई रचनाएँ आती हैं । नरदास की गोवर्धनलीला तथा मुदामाचरित और सूर की अविकल वर्णनात्मक लीलाओं में चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है । नरदास की रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी तथा सिद्धान्तपंचाध्यायी केवल रोला छंद में लिखी गयी हैं । इसी तरह ध्रुवदास की दानविनोदलीला, सुख-मंजरी, आनंदलता, रमरत्नावली जैसी अनेक कृतियों में दोहे का ही व्यवहार हुआ है । गुजराती में नरसी की बाणलीला भी दोहों में ही लिखी गयी है । १५वीं शती की रचना 'मयणछंद' में मात्र छप्पय छंद में मानलीला का प्रसंग वर्णित है । किन्तु गुजराती में अधिक संख्या में मिश्रित छंद-प्रणाली के काव्यों की हैं । रामक, आन्दोल, अद्वैत और फागु नामक छंदों से युक्त फागु काव्य की शैली का एक स्वतन्त्र स्थान है । फागु में गेया-त्मकता और वर्णनात्मकता का विचित्र योग हुआ है । कुछ विशिष्ट एवं प्रिय छंदों को बदल बदल कर बार बार प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति गुजराती कवियों में बहुत मिलती है । ब्रजभाषा में ध्रुवदास तथा माधवदास ने बहुधा मिश्रित छंद-प्रणाली का अनुसरण किया है । नरोत्तम के मुदामाचरित में भी अनेक छंद प्रयुक्त हुए हैं ।

आख्यान-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप

दोहा—दोहा अथवा 'दूहा' का दोनो भाषाओं में प्रचुर प्रयोग मिलता है । भीम, केशवदास तथा संत ने गुजराती में 'पूर्वछायु' अथवा 'पूर्वछायो' नाम से जिस छंद का व्यवहार किया है वह भी दोहा ही है । वस्तुतः पूर्वछाया शब्द का अर्थ वह

छंद है जो पहले की पंक्ति की छाया लेकर लिखा जाय । दोहा ही क्या, कोई भी छंद पूर्वछाया के रूप में व्यवहृत किया जा सकता है । प्राचीन गुजराती साहित्य में इसके प्रमाण भी हैं परन्तु उन जातिबद्ध प्रबन्धों में जिनमें चौपाई व्यापक रूप में व्यवहृत हुई है, 'पूर्वछायो' शब्द दोहे के लिए प्रयुक्त हुआ है ।^१ उक्त तीनों कवियों के काव्य से एक एक 'पूर्वछायो' नीचे उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

भीम—उदरमाहि बालक वसइ, पीडा करइ अगाधि ।

माता मनि आणइ नही, तेह तणा अपराध ॥

—हरि० षो०, पृ० १५०

केशवदास—जलविना जलचर जम दहे, विण धन चातुक मेह ।

त्यम हरिणाक्षी हरि विना, दाजे विरहे देह ॥ २८ ॥

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १४९

सत—शरद समधी सद कथा, शुकजी कहे सुणि भूप ।

साभलता थाय सपदा, लीला ईश अरूप ।

—गु० व० सो०, ह० प्र० ग्रंथांक ७९२

स्पष्ट है कि पिगल के नियमों के अनुसार यह दोहे ही हैं । भालण, नरसी और प्रेमानंद आदि कुछ कवियों ने गेयता के कारण 'रे' अथवा 'जी' आदि का दोहे के चरणों के साथ संयोग कर दिया है । प्रेमानंद के मामले में तो यह विशेषता बराबर मिलती है । छंद की दृष्टि से इनके द्वारा भी दोहे का ही व्यवहार हुआ है—

भालण—क. करमाहे लइ कामडी रे, कुवर पूठे धाय ।

रीसे लोचन रातडा रे, जशोदा जी ब्वास भराय ।

—द० स्क०, पृ० ३९

ख सर्वस्व अने सोंपिये, ते बस कयम न थाय जी,

आत्मसमर्पण ऊफरो, बीजो नथी उपाय जी ।

—वही, पृ० १३४

नरसी—श्री गुरुने प्रणाम करीने, वर्णवु श्री जदुराय ।

श्री कृष्णनी लीला साभलता, पातिक दूर पलाय ।

—न० कृ० का०, पृ० ४२८

प्रेमानंद—वली अ दीपक गोकुल गामनो रे, गोवालान्तो राय ।

बदन इवु निखंता रे, तृप्त नेत्र न थाय ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४६

वस्तुतः यह दोहे की देशी हैं अर्थात् दोहे की गति के आधार पर निर्मित गीत ।
 ब्रजभाषा में दोहे का व्यवहार गुजराती से भी अधिक व्यापक रूप में मिलता है ।
 दोहे के अन्त में ९ या १० मात्राओं की एक लघु पंक्ति जोड़ कर एक विशेष प्रकार
 की गेयात्मकता उत्पन्न करने का प्रमाण दिया गया है जो चरणों के बीच में गेयात्मक
 शब्द रखने से भिन्न कोटि की वस्तु है । सूर, नंददास और हरिराय द्वारा दोहे के इस
 विशिष्ट प्रयोग के निम्न उदाहरण दर्शनीय हैं—

सूर—एहि मग गोरस लै सबै, दिन प्रति आवहि जाहि ।

हमहि छाप देखरावहू, दान चहत केहि पाहि ।

कहत नदलाडिले ।

—सू० सा०, पृ० ३२०

नंददास—प्रेमधुजा, रसरूपिनी, उपजावति मुखपुज ।

सुंदर श्याम विलासिनी, नववृंदावन कुज ।

सुनौ ब्रजनागरी, ।

—नंद, पृ० १२३

हरिरायजी—गोवर्धन के शिखर ते, मोहन दीनी टेर ।

अति तरंग सों कहत हैं, सो ग्वालनि राखी घेर ।

नागरि दान दे ।

हरिरायजी के दोहे में 'सो' का गेयात्मक समावेश ठीक भालण और प्रेमानंद की
 तरह हुआ परन्तु यह अपवाद स्वरूप है । नंददास ने दोहे को रोले के साथ संयुक्त
 करके तब उसके अंत में १० मात्राओं के गेय लघु अंश का योग किया है जिससे उनकी
 छंद-योजना में अधिक विशेषता आ गयी है । गुजराती में भालण ने 'ध्रुवा' अथवा
 'टेक' के रूप में दोहे को स्थान देकर उसके साथ उक्त ब्रजभाषा कवियों की तरह
 गेय लघुअंश संयुक्त कर दिया है—

देवकी कहे साभलो, पूरा थया दशमास ।

उदर माहे त्या गर्भ धर्यो छे, ते करशे तेज प्रकाश ।

पीउजी ओ शु कहिये ।

—द० स्क०, पृ० १०

दोहा छंद के इस विशिष्ट प्रयोग का साम्य दर्शनीय है । दोहों के साथ ध्रुवा का
 संयोग प्रेमानंद ने भी किया है परन्तु ऐसे उदाहरण वही मिलते हैं जहाँ पद-शैली का व्यव
 हार हुआ है । भालण में भी यही बात है पर ब्रजभाषा में इसे वर्णनात्मक प्रसंगों
 में एक विशेष छंद के रूप में व्यवहृत किया गया है ।

दोहे के लिए 'साखी' नाम का व्यवहार दोनों भाषाओं के कवियों ने किया है, जैसे गुजराती में नरसी और प्रेमानंद ने तथा ब्रजभाषा में हरिराम व्यास और पीतांबरदेव ने ।^१ नरसी ने साखी के अन्तर्गत दोहे की देशी को स्वीकार किया है पर कहीं कहीं दोहे से भिन्न छंद भी प्रयुक्त मिलता है । उदाहरणार्थ, निम्नलिखित छंद को दोहा कहना कठिन है—

गर्भ गाल्यो उमियाजीअे, नारी पामी मुख धणु रे ।

कैसे जाण्यु गर्भ गळीयो, ते पराक्रम न जाण्यु प्रभु लणु रे ।

इसमें मात्रा, यति और गति का ही अंतर नहीं है वरन् दूसरे और चौथे चरण के अंत में एक गुरु और एक लघु का भी विधान नहीं है । ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं । साधारणतया दोहा और साखी पर्याय रूप में ही ग्रहण किये जाते हैं । संतकाव्य की परम्परा इसकी साक्षी है और साखी नामक कोई स्वतंत्र छंद होता भी नहीं । गुजराती के एक कवि वासणदास ने एक विचित्र नाम 'चुआक्षरा' का व्यवहार दोहे के लिए किया है । नीचे एक चुआक्षरा उद्धृत किया जाता है ।

वृदावनि रलीआमणू अनि रुडो माधव माम ।

रुडा मोर कला धरे स्वामी पुरो आस ॥३॥

गंयतापरक 'अनि' को निकाल देने पर यह स्पष्ट ही दोहा सिद्ध होता है । यदि 'चुआक्षरा' को किसी शब्द का विकृत रूप माने तो भी दोहे से उसके अर्थ की संगति सिद्ध नहीं होती—

चौपाई, चौपई—दोनों भाषाओं के कवियों ने वर्णनात्मक प्रसंगों में मुख्यतया प्रयुक्त १६ मात्रा की चौपाई और १५ मात्रा की चौपई के बीच कोई अंतर प्रदर्शित नहीं किया है । गुजराती में १५ मात्रा की 'चौपई' का अधिक व्यवहार हुआ है जिस के अन्त में एक गुरु, एक लघु का प्रायः निर्वाह हुआ है । कहीं अन्त में लघु के बाद गुरु भी मिलता है जिससे चौपई छंद चौबोला छंद में परिणत हो जाता है । ब्रजभाषा में १६ मात्राओं की चौपाई अधिक व्यवहृत हुई है पर कवियों ने १६ मात्रा के अन्य छंदों पदरि, डिल्ला, उपचित्रा, पञ्चटिका, पादाकुलक आदि से उसका कोई भेद नहीं किया है ।^१ प्रायः चौपाई के अन्तर्गत १६ मात्रा के छंदों के सभी रूपों का व्यवहार हुआ है । यही नहीं, १५ मात्रा की चौपई और चौबोला को भी चौपाई से पृथक् नहीं रखा गया है । गुजराती कवियों की भी स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही है । उन्होंने भी चौपाई और चौपई के बीच कोई विवेक नहीं दिखाया । 'चौपाई', 'चौपई', 'चोपै' अथवा चूपै को समानार्थी ही समझा है । १६ मात्रा के छंद 'अरिल्ल' और

‘पाघडी’ का अवश्य पृथक् रूप में विधान हुआ है और इनके लक्षणों का भी निर्वाह किया गया यद्यपि अनेक स्थलों पर उनमें भी अशुद्धता मिलती है । अरिल्ल २१ मात्रा के प्लवगम छंद का पर्याय भी है ।^१ ब्रजभाषा में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जैसा कि हरिवंश की स्फुटवाणी, ध्रुवदास की मानलीला और मनिनिगार में विदित होता है । गुजराती कवि केशवदास ने अरिल्ल का १६ मात्रा का रूप ग्रहण किया है जिसको ब्रजभाषा के कवियों ने चौपाई के अन्दर समाविष्ट कर लिया है । पिंगलशास्त्र के अनुसार अरिल्ल के अन्त में दो लघु भी रह सकते हैं और यगण भी आ सकता है । परन्तु गुजराती में यगणान्त रूप नहीं मिलता । केशवदास ने इसका नाम ‘अडयल’ दिया है; उनके द्वारा प्रयुक्त ‘युयंड’ और ‘मुंडेल’ नामक छंद भी अडयल से भिन्न प्रतीत नहीं होने ।^२ इन छंदों के अन्त में ‘ह’ अक्षर बराबर जोड़ दिा गया है—

आगे मत्स्यादिक अवतारह, तूह ज नृपुंगु भुवन ने तारह ।

श्वजा भूतल भार उतारह, मुर नर पक्षग करवा सारह ।

—श्री कृ० ली० का०, पृ० ६१

भीम ने जगणात छंद को ‘अडयल’ कहा है जो वस्तुतः पद्धरि का लक्षण है—

सृष्टि विनागइ हू अज अक, सदा निरंतर हू अज अक ।

—हरि० षो०, पृ० ४४

अरिल्ल की तरह पद्धरि भी पादाकुलक का एक भेद है जिसके अंत में जगण होना आवश्यक है । भीम ने इसका भी व्यवहार किया है ।^३ कही कही गुरु को लघु करके पढ़ने की आवश्यकता होती है । यह गुजराती और ब्रज दोनोंमें समान रूप से किया जाता है । गुजराती में कही लघु को गुरु भी मानना पड़ता है—

है कृष्ण! कृष्ण! लीला-विलास, शरणागत-वत्सल श्रीय निवास ॥१६॥

त्रय-ताप-निवारण स्वयं प्रकाश, वेगि करि स्वामी शोक-नाश ॥१७॥

—हरि० षो०, पृ० १६८

बिना व्यवधान के १६ और १५ मात्राओं के विविध छंदों का परस्पर जो सम्मिश्रण दोनों भाषाओं में मिलता है उसके भी उदाहरण आवश्यक है । भीम और केशवदास ने तो चूपै, चौपाई का व्यवहार १५ मात्रा के छंद के लिए ही किया है अतएव उनके काव्य से उदाहरण नहीं दिये गये हैं—

भालण—अम करता गोकुल माहे आव्या, माधवजीना मनमाहि भाव्या—चौपाई ।

आळिगन दीर्घुं अति प्रेम, कहो काकाजी कुशली क्षेम ---चौपाई ।

—द० स्क०, पृ० १५५

नरसी—नद नाम सुणी चोदिश जोती, नहि नहि कही बली सशय खोती—चौपाई ।

हरि कहे आवे नक्की मम तात भूली गोपी मानी खरी बात ।—चौपाई ।

स्त्रीअं नंद मानी लज्जा धरी, नरसहीनो स्वामि नाठो मुठियो करि—चौबोला

—न० कृ० का०, पृ० ६३-६४

प्रेमानंद—छे छेल्ले आश्रमे अं सतान, अं मारे शत पुत्र समान ; —चौबोला ।

तुं विना दया कोण आणेजी, मामो तुने कहेशे भाणेजी । —चौपाई ।

तमने भ्राति बालकनी पडे, केम घात हशे आ कन्या बडे । —चौबोला ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४२

मूर—व्रतपूरण कियो नंद कुमार, युवतिन के मेटे जजार । —चौबोला ।

जप तप करि अब तन जिनि गारो, तुम घरनी मैं भर्ता तुम्हारो ।—चौपाई ।

अंतर शोच दूरि करि डारहु, मेरो कह्यो सत्य उर धारहु ।—अरिल्ल ।

—सू० सा० पृ० २५३

नददास—गोपरहे सब जोहे, मोहे, जानहि नहिन कछू हम को है । —चौपाई ।

गोपी चकित चाहि कै ताहि, कहन लगी कि रमा यह आहि । —चौपाई ।

अपने पिय कौं देखति डोलति, यातै नहि काहू सौं बोलति । —अरिल्ल

लरिकन लहति लहति छवि छई, नद के मुन्दर मदिर गई ।—चौबोला ।

—नद०, पृ० २२१-२२२

ध्रुवदास—श्री हरिवंश हिये जो आनै, ताको वह अपनो करि जानै ॥९७॥ चौपाई ।

यह रस गायो श्री हरिवंश , मुक्ता कौन चुगै बिनु हस ॥९८॥ चौपाई ।

रसद रहस्य मजरी भई, छिनछिन जोति होति है नई । ॥९९॥ चौबोला ।

—रहस्यमजरी ।

दोहे की तरह चौपाई का भी अनेक रूप में व्यवहार हुआ है । प्रेमानंद ने अपने भागवत दशमस्कंध में कड़वे के मुखबन्ध के रूप में इसको प्रयुक्त किया है । ढाल में तो व्यापक रूप से चौपाई का प्रयोग हुआ ही है । पद-रचना में भी इसका योग मिलता है ।

गाथा और वस्तुबन्ध—इन दोनों छंदों का प्रयोग एक दो स्थल पर भीम और केशवदास के काव्यों में मिलता है । केशवदास ने 'गाथा' नाम दिया है जो अपभ्रंश का रूप है । व्रजभाषा में वर्णनात्मक काव्य में तो किसी कवि ने इसका व्यवहार नहीं किया, परन्तु हितहरिवंश के शिष्य सेवकजी के स्फुट काव्य में यह 'गाथा' और 'गाथा' दोनों नामों से अन्य छंदों से संयुक्त एवं मिश्रित रूप में उपलब्ध होता है—^{१०}

भीम—तारा कवणी गणीजइ, कवणेण गणीइ भूमि रज कणिआ ।

कवणि गणीइ जल लहरी, हरिगुण जाइ कवणे गणीआ ।

केशवदास—मरकत मुक्ता मळे, सोलह बनीह मोहयं ।

कणय तिम शाम शरीरे, अजनि अवलेपन भणय ।

सेवक—वर भूमि रमानि सुखद दुम वल्ली प्रफुलित फलित विविध वरन ।

नित सरद बसत मत्त मधुकर कुल बहु पतत्रि नादहि करनं ।

गाथा अथवा आर्या के नियमों का भीम ने तो लगभग ठीक निर्वाह किया है परन्तु अन्य उदाहरण नाम मात्र के लिए गाथा कहे जा सकने हैं । गुजराती और ब्रजभाषा में प्रयुक्त गाथा छंद के उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि इसका कोई निश्चित रूप नहीं रहा है । कवियों ने इसे तुकान्त से युक्त कर दिया है । अपभ्रंश में भी गाथा का कोई सुनिश्चित रूप नहीं रहा । यह एक सामान्य नाम था जो बाद में तीस, बत्तीस मात्राओं की चरणान्तप्रास-हीन द्विपदी के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगा ।^{१२} केशवदास ने श्री कृष्णक्रीडाकाव्य में गाथा के एक विकसित रूप 'दडेलक आर्या' का प्रयोग किया है । साधारण आर्या का प्रयोग भी उन्होंने किया है जो लक्षण में उनकी गाथा से भिन्न नहीं ।^{१३} वस्तुबंध जो छप्पय की तरह मिश्र छंद प्रतीत होता है, ब्रजभाषा में प्रयुक्त नहीं हुआ । इसकी कुछ पक्तियाँ दोहे के समान होती हैं, विशेष कर पाचवी और छठी ।

सोरठा—ब्रजभाषा में सोरठे में काव्य-रचना माधवदास, ध्रुवदास सेवक आदि अनेक कवियों ने की है । रीति कवियों ने भी इसका व्यवहार किया है पर गुजराती कृष्ण-काव्य में भीम और केशवदास ने ही इसे व्यवहृत किया है ।^{१४} सोरठा के पहले गुजराती में दूहा शब्द का बराबर प्रयोग हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि इसे दोहे का ही एक भेद समझा गया है । दोनों भाषाओं में इसका स्वरूप एक जैसा ही है ।

छप्पय—गुजराती में मयण के 'मयणछंद' में इसका आद्योपात व्यवहार हुआ है । भीम और केशवदास ने भी इसे व्यवहृत किया है ।^{१५} भीम ने इसके लिए 'कवित्त' शब्द प्रधान रूप से दिया है और छप्पय गौण रूप से । केशवदास ने 'छेपाया' तथा 'कलश' नाम से जो छंद लिखे हैं वह छप्पय ही हैं ।^{१६} ब्रजभाषा में वर्णनात्मक काव्य में माधवदास ने इसका व्यवहार किया है और स्फुट काव्य में हरिवंश, तत्ववेत्ता, रसिकदेव, सेवक और पीतांबर ने । मयण की तरह तत्ववेत्ता का यह सर्वाधिक प्रिय छंद है । सोरठे की तरह ही इसके स्वरूप में भी कोई अन्तर नहीं मिलता ।

रोला—छप्पय से इतर कहीं अन्यत्र गुजराती कृष्ण-काव्य में रोला छंद का प्रयोग हुआ हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता । नयषि और चतुर्भुज के द्वारा प्रयुक्त फागु छंद का पहला और तीसरा चरण रोला का होता है और दूसरा तथा चौथा दोहे का । यदि अन्तिम अक्षर को गुरु रूप में पढ़ा जाय तो वह रोला ही प्रतीत होता है ।^{१७}

ब्रजभाषा में नंददास ने आने आख्यान काव्य में इसका सर्वाधिक प्रयोग किया है । अन्य कवियों में सूर, वल्लभरसिक और गदाधर इसके प्रयोक्ता रूप में उल्लेखनीय हैं ।

चन्द्रावली—इस मिश्र छंद के प्रारंभ में चरणाकुल के साथ दोहे के उत्तर पद के संयोग से बनी दो पक्तियाँ रहनी हैं और बाद में कुडली के साथ चरणाकुल के चार चरण ।^{१०} इसका व्यवहार मात्र गुजराती में मिलता है और वह भी कृष्ण-काव्य में केवल फूढ कवि के द्वारा ।

कुडलिया—ब्रजभाषा में ध्रुवदास ने रहसिलता, प्रेमावली और नितर्विलास आदि अनेक वर्णनात्मक रचनाओं में इस का व्यवहार किया है तथा हरिवंश और सेवक ने स्फुट काव्य में गुजराती कृष्ण-काव्य में यह व्यवहृत नहीं हुआ है ।

गीतिका—इस छंद का व्यवहार ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में अगवाह स्वरूप ही हुआ है जैसे सूर की निम्न वर्णनात्मक पक्तियों में—

मकर कुडल जटित हीरा लाल शोभा अति बनी ।

पद्मा पिरोजा लगे बिच-बिच चहूँ दिम लटकत मनी ।

—सू० मा०, पृ० ७३३

यहाँ हरिगीतिका और गीतिका की पक्तियों का मिश्रण हो गया है क्योंकि पहली पंक्ति २८ मात्राओं की है और दूसरी २६ की । गुजराती में मालण, नरसी प्रेमानंद, शोधजी आदि कई कवियों ने इसकी ढाल की रचना में स्थान दिया है । उनके प्रयोग को गेयात्मकता की प्रधानता के कारण गीतिका की देगी कहा जा सकता है—

भालण—बात बीतक विस्तारी छे सुणिजे श्रवणे नाथ हो ।

मनुष्य माया अनुसरी ने झाटक्या वे हाथ हो ।

विलाप त्यां कीधा घणा ने नीर त्या नयणे झरे ।

दुःख पासे अति घणु ने शोक कीधो त्या सरे ।

—द० स्क०, पृ० ३१०

नरसी—काहाना सुणीजे बात मोरी, तोरां नयण छे निद्राभर्या ।

प्रगट अणो अग माहे, चिन्ह तो दीमे खरा ।

—न० कृ० का०, पृ० १२७

प्रेमानंद—वस्या श्रीकृष्ण हेत साथे, संकर्षण पूछे गया ।

अकर प्रीते पाय लाग्या, नाथजी ओ कर ग्रहया ।

परस्पर स्तवन कीवां, भत्रीजा वाम दक्षिण रखा ।

बलगी हाथे आदर साथे मदिर मा तेडी गया ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३०२

शोधजी—एहवे समे एक वर्ध ब्राह्मण जतां मारग माहि जो ।

—हकिमजीहगण

मात्राओं की न्यूनाधिकता तथा गुरु ऋधु के उच्चारण की अनिवार्यता प्रायः सर्वत्र मिलती हैं । कही कही यह भी कहना कठिन है कि यह गीतिका छंद की ही रचना है ।

सवैया (मात्रिक) —यह ३१ मात्रा के वीर छंद का ही दूसरा नाम है ।^{१७} गुजराती पिंगलकार ३२ मात्रा के सवैया का भी परिचय देने हैं ।^{१८} पहले प्रकार के सवैया का प्रयोग गुजराती में केशवदास ने और दूसरे प्रकार के सवैया का प्रयोग ब्रजभाषा में सेवक ने किया है ।^{१९} पर केशवदास के 'सवाइयो' छंद की भाषा ब्रज ही है । कुछ अंशों में नयधि के फागु में प्रयुक्त रामक छंद को यदि सवैया जैसी कही जा सकती है । गैयात्मक अन्तिम 'रे' के स्थान में जगणात्मक शब्द रख देने पर इसका रूप स्पष्टतया वीर छंद जैसा हो जाता है । 'रे' को निकाल देने पर यही सरसी छंद में परिणत हो जाता है जिसका परिचय आगे दिया गया है—

गोपिय लोपिय ठाण निरोपिय वनि वनि भमइ मुकुद रे ।

अह्य बीचारी किहि सचारी बोलित कुल नभचद रे ॥५१॥

बाट घाट सब बाधइ सहियर तब कुण रग रे ।

अह्य मूकी तु किमि हिव चालई पालइ गोपिय वृद रे ॥५२॥

—फागु

चांद्रायण—११ जगणान्त और १० रगणान्त अर्थात् कुल २१ मात्राओं के इस छंद का व्यवहार ब्रजभाषा में सूरसागर के अन्तर्गत सूर ने तथा रहसिलदा के अन्तर्गत ध्रुवदास ने किया है । सूर ने इसको स्वतन्त्र रूप में व्यवहृत न करके 'रोला दोहा' में संयुक्त छंद के पूर्व स्थान दिया है ।^{२०} गुजराती में 'चंद्रायणी' अथवा 'चंद्रायणा' चंद्रावला के पर्याय रूप में माना गया है ।^{२१} परन्तु भालण ने दशमस्कंध में २१ मात्रा के चांद्रायण जैसे एक छंद का प्रचुर प्रयोग किया है । उसे चांद्रायण की देवी कहा जा सकता है । उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पक्तियाँ दर्शनीय हैं—

कसने कही सकेत, नारद वेगे गया ।

गाता गूण गोविंद, अतरधान थया ।

राय तणे मन क्रोध, आवी प्रगट थयो ।

भालण प्रभुनो भ्रात, कसे तेडावीयो ।

—द० स्क०, पृ० ४

प्रेमानंद ने अपनी 'ब्रजवेलि' में जो छंद प्रयुक्त किया है वह भी २१ मात्राओं का है परन्तु गति, यति तथा अन्य लक्षणों को देखते हुए वह प्लवगम अथवा अरिल्ल सिद्ध होता है जिनका उल्लेख चौगाई के प्रसंग में किया जा चुका है ।

सरसी और सार—चौगाई की १६ मात्राओं के बाद दोहे के सम चरण की ११ मात्राओं के योग से २७ मात्रा के सरसी छंद का निर्माण होता है । सरसी के अन्त में रहने वाले एक गुरु और एक लघु वर्ण के स्थान पर यदि दोनों वर्ण गुरु कर दिये जायें तो वही २८ मात्रा का सार छंद हो जाता है । सरसी और रासक का साम्य सबैया के प्रसंग में निर्दिष्ट किया जा चुका है । गुजराती के वर्णनात्मक काव्य में इनका व्यवहार कम हुआ है पर ब्रजभाषा में सूरसारावली जैसी सम्पूर्ण रचना कुछ पक्तियों को छोड़ कर आद्योपात सार और सरसी छंद में ही लिखी गयी है । भीम द्वारा प्रयुक्त 'चालनीचूपै' सरसी छंद ही है—

उद्धवन् हितकारण जाणी, बोलइ थी भगवान ।

कथा अनादि विवेक समंधी, परमारथ विज्ञान ।

—हरि० षो०, पृ० १९२

अढैयु, आदि-लघु मात्रिक छंद—वर्णनात्मक काव्यों में कभी मुखबन्ध के रूप में, कभी स्वतन्त्र रूप में अनेक लघुमात्रिक छंदों का प्रयोग गुजराती कवियों ने किया है जिनमें से 'अढैयु' सर्वप्रमुख है । यह फागु शैली का छंद है और नयर्षि के फागु में उपलब्ध होता है । पहली दो पक्तियों में दोहे के सम पदों की तरह ११, ११ मात्राएँ होती हैं और शेष दो चरणों में अन्तिम गेयात्मक 'अ' के संयोग के कारण १२, १२ मात्राएँ मिलती हैं^{११}—

गजविड पहिरइ बाल, सिरि वरि मोतिय जाल,

करजित कमलू अ, अति नख विमलू अ ॥ ३७ ॥

इसी प्रकार का ११ मात्राओं के अशों में निर्मित 'आन्दोला' छंद भी फागु काव्य में प्रयुक्त हुआ है । केशवदास ने 'अढैया' नामक एक छंद प्रयुक्त किया है जो गेयात्मक है और चौगाई के साथ 'अढैयु' की एक पक्ति संयुक्त करके बना है, कदाचित् इसी कारण उसे 'अढैया' की उपाधि मिली है ।^{१२} केशवदास ने १२ मात्रा के एक अन्य छंद का 'कारिका' शीर्षक से व्यवहार किया है ।^{१३} भालण के दशमस्कंध में, मुखबन्ध के

रूप में, अठेयु जैसे छंद का बराबर प्रयोग हुआ है पर उसमें गेयात्मक 'अं' नहीं मिलता । कहीं कहीं चारों चरणों में ११, ११ मात्राएँ बनी रहती है—

मन विमासे बात, भगिनीनो करै घात ।
गर्भवतो छे नारी, नानी बेन अं मारी ।

—द० स्क०, पृ० ८

आव्या ब्रह्मा इन्द्र, तेन्नीस कोटि ने रुद्र ।
नारद रुखीवर जेह, अवतार आठमो अह ।

—वही, पृ० ९

ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में ऐसे लघु छंदों का व्यवहार नहीं हुआ है ।

झूलना—गुजराती कृष्णकाव्य में यह नरसी मेहता का सर्वप्रिय छंद रहा है और उन्हीं के काव्य में विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है । यह छंद गुजराती के प्राचीन राम काव्यों में भी मिलता है और नरसी तक इसका स्वरूप पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका था । इसकी गति निम्नलिखित प्रमाण में चलती है—^{१६}

दालदा दालदा दालदा दालदा
दालदा दालदा दालदा गा ।

नरसी के 'सुरतमग्रास' और 'मुदामाचरित' में आद्योपान्त इसी का व्यवहार हुआ है । ब्रजभाषा में सुर ने कतिपय वर्णनात्मक प्रसंगों में इसे प्रयुक्त किया है—

नरसी—जदुपती नाथ ते, मित्र छे तमनणा, जाओ वेगे करो कृष्ण पास ।
प्रीत पूरवतणी, हेत धरशे हरि, मनना मनोरथ सफल थागे ।

—न० कृ० का०, पृ० १५७

सूर—झिरकि कै नारि दै गारि गिरिधारि तब पूछ पर लात दै अहि जगायो ।
उड़्यो अकुलाइ डरपाइ खगराइ को देखि वालक गरब अति बढ़ायो ।

—सू० सा०, पृ० २२०

अन में यगण के साथ १०, १०, १०, ७ के क्रम से यति और मात्राओं का विधान हिंदी के पिगलकारों ने झूलना के लिए आवश्यक माना है ।^{१७} वैसे २०, १७ मात्राओं के यन्त्रिक बाले ठीक ऐसे ही छंद की मजा हमाल दी गयी है ।^{१८} सेवक ने ठीक उमी जाती 'करखा' नामक छंद का प्रयोग अपने काव्य में किया है ।^{१९}

चोटक अथवा तोटक—इस छंद का प्रयोग ब्रजभाषा और गुजराती में एक दूसरे से संबंधा भिन्न रूप में हुआ । हिंदी के पिगलकारों के मत से यह वर्णिक वृत्त है जिसमें

चार सगण होते हैं ।^{३०} ब्रजभाषा कृष्णकाव्य में कदाचित् मेवक ने ही इसे प्रयुक्त किया है—

पहिले हरिवंश सुनाम कहौ हरिवंश सुधमिनि संग लहौ ।

हरिवंश जू नाम सदा तिनके, मुख संपति दपति जू जिनके ।

—श्रीहितचौरासी मेवकवाणी, पृ० ६७

गुजराती छंद-शास्त्र के एक विद्वान् के अनुसार त्रोटक किसी छंद-विशेष का नाम न होकर बीच-बीच में आने वाले छंदों का विशेषण मात्र है ।^{३१} त्रोटक शीर्षक से अष्टकल और सप्तकल रूप वाली जो पक्तियाँ भीम और केशवदास की रचनाओं में मिलती हैं उन्हें देखते हुए यही कहना यथार्थ प्रतीत होता है कि गुजराती कृष्णकाव्य में त्रोटक नाम से किसी छंद-विशेष का अभिप्राय ग्रहण नहीं किया गया । निम्न-लिखित उदाहरण इसके प्रमाण हैं—

१—भाजइ नहीं ते थोव, बलदेव भरिया क्रोध ।

प्रहार भूकड़ ठीक, तेणइ हैइ कूटइ हीक ।

—हरि० पौ०, पृ० १६४

२—अण हाथ्य बळगा, बळी अळगा, बहु बेले तिहां बाल ।

बेगु बाजे गीत ज गाजे, मधुर सादल ताल ।

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० ८३

३—रथ नद दोआरे जाणी रे, आवे सहु तार्य उजाणी रे ।

अकूर कूर बली आव्यो रे, अयवा को अच्युत लाव्यो रे ।

—वही. पृ० १४८

उक्त तीनों उदाहरणों में से छंदशास्त्र की दृष्टि से पहला तोमर का, दूसरा २६ मात्रा के झूलना का और तीसरा पदपादाकुलक का उदाहरण है ।^{३२} साथ ही जिस २६ मात्रा के झूलना का केशवदास ने त्रोटक शीर्षक से अधिक व्यवहार किया है वह हरिकोलाषोडशकला में प्रबंध शीर्षक से व्यवहृत हुआ है । इस प्रकार त्रोटक प्रबंध का पर्यायवाची सिद्ध होता है ।^{३३}

संस्कृत वृत्तः शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, इन्द्रवज्रा और भुजंगप्रयात—गुजराती में व्यवहृत इन चारों वृत्तों का ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में कहीं भी व्यवहार नहीं हुआ है । गुजराती में संस्कृत वृत्तों में काव्य लिखने की एक परम्परा रही है जो १४वीं शती तक जाती है ।^{३४} ह्रस्व-दीर्घ का निर्धारण उच्चारण और गेयात्मकता के आधार पर कर लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता कवियों ने ली है और चरणान्त में प्रास का

विधान अनिवार्य रूप से बराबर किया है जो महत्वपूर्ण है। इस सबके आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि गुजराती कवियों ने इनका देशीकरण कर डाला है। केशवदास ने श्रीकृष्णकोडाकाव्य में रासवर्णन ही शार्दूलविकीर्णित में किया है, पर वामणदास ने तो अपने कृष्णवृंदावनरास के समस्त अंशों को इसी वृत्त में रच डाला। नीचे दोनों के काव्य से एक एक उदाहरण दिया गया है—

१ —बाहे दुदभी देव सेव करता, पुणो ज वर्षी रह्या।

गाये कितर सर्व कृष्ण गुणने तेणे न जाये कह्या।

वाजे नूपुर किकिणी बलययुक् गौरागी गोपी तणी।

मोहे मध्य मुरारी मरकत पणो हेनाग माहे मणी।

—श्री कृ० ली० का०, पृ० १०१

२—साथि सोल सहस्र नारि शामा कामा ते कामाकुली।

कीधा अगनि छाटणनि कृष्णे वाजिन् वाजे वली।

खेला खेळ अपार अत्य गयता राधा ते साथे सही।

राखे वासण स्वामी शर्ण ताहारे एहवी ते वाणी कही।

—राधारग

कदाचित् दोनों कवियों ने शार्दूलविकीर्णित को रासवर्णन के विशेष उपयुक्त समझा है अथवा इस वृत्त-विशेष में रास-वर्णन की कोई परिपटी भी हो सकती है।

मालिनी और इन्द्रवज्रा का प्रयोग गुजराती कृष्ण-काव्य में केवल रत्नेश्वर द्वारा हुआ है। वारमास नामक गेयता-प्रधान काव्य में, प्रत्येक मास के वर्णन के प्रारंभ में, मालिनी छंद को स्थान दिया गया है। न, न, म, य, य, इन पाँच गणों में बनने वाली प्रत्येक पंक्ति को कवि ने आठ और सात वर्णों के दो भागों में विभाजित करके दोनों को तुक में युक्त कर दिया है और इस प्रकार संस्कृत के वृत्त को अधिक मनोरम बना दिया है। यथा—

मुरत मुख विशाला, साभलो ब्रीजबाला।

सुकति कुमुममाला, शोक निव्वास ज्वाला।

निरखी नयन मीचे, आसुखे अग मीचे।

दुख लखि मखी आवे, बाय साही बोलावे।

—बृ० को० दो०, भाग ६, पृ० ८०३

इन्द्रवज्रा का प्रयोग रत्नेश्वर ने श्रीवर के 'वागीशा यस्य वदने' के अनुवाद करने में किया है—

विराजते यस्य भुक्ते सरस्वती ।
लक्ष्मी सदा वक्षसि विराजती ।
जेने हृदे ज्ञान प्रकाश धाम ।
नृसिंह ने आद्य करू प्रणाम ।

—रत्नेश्वर मेघजी कृत श्रीमद्भागवत, दशमस्कंध ।

भुजगप्रयात में भीम, केशवदास और प्रेमानंद ने काव्य-रचना की है । प्रेमानंद ने इसे वृत्त के रूप में न अपनाकर गंगात्मक नियमों की अवहेलना करते हुए देशी के रूप में व्यवहृत किया है जिसका नाम उन्होंने 'भुजगप्रयात नी देशी' दिया है । किसी छंद और उसकी चाल की देशी में पर्याप्त अंतर होता है ।^{११} अन्य कवियों में भी नियमों का पूर्ण परिपालन नहीं मिलता । तुलान्त का इसमें भी विधान किया गया है । संस्कृत वृत्तों में भुजगप्रयात ही सबसे अधिक लोकप्रिय रहा है, जैसा उक्त कवियों के काव्य से प्रमाणित होता है । निम्नलिखित प्रकृतियाँ उदाहरण रूप में दर्शनीय हैं—

१—तपसा तणू मूल ओ देह जाणु, तेगइ काइ अहकार प्रमाद आणु ।

तप आचरता मन शुद्ध थाइ, जिगइ माया मोइ अग्न्यान जाइ ॥१३॥

—हरि० पो०, पृ० ६४

२—इका आवती गोबिका पानकी ओ, उधा आवती आउली कल लई ।

इगे दतशावा करी दोष टाले, कपूरे करी कोशला म्हो पखाले ।

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १०१

३—गुरुचर्ण पकजनु ध्यान राखु, काळी नाग श्रीकृष्णनु युद्ध भाखु ।

गुरु गणपति सरस्वती शीघ्र नामु, शुक कहे वदन वाणी नो प्रवाद पामु ।

—श्रीम० भी०, पृ० २७०

२. पद-शैली

पदों की रूपरेखा—किसी भी गेय पद्यरचना को पद कहा जा सकता है । यह सबसे व्यापक शब्द है ।^{१२} भानुषा और नरसी जैसे कवियों ने इसे 'कडवा' के स्थान पर व्यवहृत किया है जिसका आधार कदाचित् गेयता ही है । ब्रज-भाषा में यह अपेक्षाकृत निश्चित स्वरूप की रचनाओं के लिए अत्रा है जिनमें अधिकतर एक या ध्रुवा का होना आवश्यक है । वतुन पद अनेक जाति के होते हैं । कुछ ध्रुवा-रहित और कुछ ध्रुवा-सहित । शीर्षों गकार के पद शीर्षों भागाओं में उल्लंघन होते हैं । नरसी की शृंगारमाला तथा हिडोलागायदों के अनेक पद ध्रुवाहीन हैं । इसी तरह सूरदास ने भी टेकरहित पदों की रचना की है ।^{१३} अन्य कई पदकारों ने दोनों तरह के पद रचे हैं । कुछ पद अत्यन्त लम्बे होते हैं और कुछ अत्यन्त लघु । गुजराती के

कतिपय कवियों ने ध्रुवा की एक या अनेक पक्तियों के बाद कडवो की तरह कुछ पक्तियों का क्रमिक विधान किया है जिनके अंत में ध्रुवा की आवृत्ति का हर बार संकेत कर दिया है । ब्रजभाषा में भी दीर्घ और लघु दोनों ढंग के पद मिलते हैं ।

ध्रुवा और ध्रुवा-सहित पद—टेक या ध्रुवा एक स्थायी गेय पंक्ति अथवा पक्ति-समूह के रूप में मिलता है । गुजराती कवियों ने कही कही पद के प्रारम्भ में दी हुई पक्तियों में से अन्तिम कुछ ही पक्तियों को ध्रुवा के रूप में व्यवहृत किया है पर ऐसा कम ही मिलता है । प्रायः एक द्विपदी और उससे सम्बद्ध एक लघु किन्तु विशेष गेयता-युक्त पक्ति को ध्रुवा बनाया गया है । नीचे अनेक पंक्तियों वाले कतिपय ध्रुवा दिये जाते हैं जिससे स्थिति अधिक स्पष्ट रूप में समझी जा सकती है—

१—आनंद अंक अभिनवु रे वृंदावन मझारि ।

वश वजावड़ विठलु रे, तेणइ छदइ नाचइ नारि ।—ध्रुवपद
वृंदावनि गोपी नाचइ रे, तेणइ रगि राचइ राम ॥वृंदा०॥

—हरि० षो०, पृ० १५३

२—माधव अतरि नारी, अगना अतरि हरि ।

रासक्रीड़ा वृंदावनि रमइ आनंद भरि ।—ध्रुवपद
नदानदनि अंक माडिलइ अति उछाह ।

गोपी सरसां कृष्ण रमइ, वृंदावन माहिरि ॥नदा०॥

हरि० षो०, पृ० १५४

३—मली माननी सधली टोले, खात्ये हर जी कीधो खोले ।

नानडियो लोचन चोले रे ।—ध्रुवपद
हरि चड्यो रे आडे, मान रमाडे. । रे० हरि०

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३१

४—भदिर माहे पेसी करी, ग्रहे गोरस सार रे,

अभिनवी विद्या अहनी, लहो नही लगार रे ।

सामलो राव यशोमती, कहूँ कूअर ना सूत्र रे ।

वर्य वर्य हींडे पेसतो, लीला लाडको पुत्र रे ।—ध्रुवपद । सामलो०

—वही, पृ० ४३

५—कमल पाअे अति कोमलडो रे, मयण थकी अति रुडो,

अमृत पाअे रस आगलो, हवे बाद म कर्य तू कूडो । ध्रुवपद । कमल०

—वही, पृ० १२२

६—ओल्या कपटीनो क्रूर परधान, ओहने तहो म द्यो ओवडू मान,
शू गोप तणी गइ सान रे ।—ध्रुवपद *

—वही

७—चालो सहीयो जोवाने रे जइये, विनती तो जइ बा'ला ने कहीये,
मुख दु ख तो है डा मा रे सहीये, कोने जोइ ने ता रे रहीये ॥चालो०॥

—न० कृ० का०, पृ० ४१३

८—ओलीये झूलो कहान गोवाळा ।

ब्रजनी बाला गाय-हालरु हालोनी नदलाला,—टेक

—श्रीम० भा०, पृ० २८८

९—गोपी आवी यशोदा पासे, करवा हरिनी रावजी ।

वचन बोले बढवा मरखा, हरि साथे हृदे भाव जी ।

गोकुळ केम रहीअं. भागो गोरमनो व्यापार कहोजी क्या जइअं ।

—टेक, गो०

—वही, पृ० २५३

गुजराती काव्य में पदों के साथ इतने दीर्घ और विविध प्रकार के ध्रुवा अथवा ध्रुवक देने की परिपाटी प्राचीन रही है । ^{१६} ब्रजभाषा में ऐसे ध्रुवाओं का व्यवहार नहीं हुआ है । श्रीभट्ट तथा हरिव्यासदेव जैसे कुछ पदकारों ने अपने प्रत्येक पद के पङ्क्तियों के एक दोहा रक्खा है जो टेक की पक्ति से भिन्न रहता है अतएव गुजराती ध्रुवाओं से उसकी तुलना नहीं की जा सकती । एक पक्ति की छोटी टेक का व्यवहार ब्रजभाषा के पदों में बराबर हुआ है । गुजराती के पदों में भी ऐसी टेक बहुधा मिलती है । फाग, विवाह और लोरी के गीतों में 'रे लोल' 'मनोरा झूमक हो', जैसे गयाशों की बराबर आवृत्ति मिलती है जो लोकगीतों की छाया प्रतीत होती है ।

ध्रुवा के अतिरिक्त पदों के शेष अंश में स्वतन्त्र चरणान्तप्राप्त वाली द्विपदियों का विधान हुआ है । जिन पदों में ध्रुवा नहीं होता उनमें भी द्विपदियों का ही विधान मिलता है । कभी कभी यह द्विपदिया ध्रुवा के तुक की एक स्वतन्त्र पक्ति देने के बाद रक्खी गयी है । ब्रजभाषा के पदों में ऐसा अधिकतर मिलता है । बहुत से पद ऐसे भी मिलते हैं जिनमें द्विपदियों के स्थान पर ध्रुवा के साथ तुक का निर्वाह करने वाली तथा उसी के समान गतिवाली अपेक्षाकृत दीर्घ पक्तियों का विधान किया गया है । द्विपदियों अथवा इन पंक्तियों की संख्या को निर्धारित करने में कवि पूर्णतया स्वतन्त्र रहे हैं । प्रायः यह निर्धारण वस्तु और भाव के अनुरूप हुआ है । गुजराती और ब्रजभाषा के पदों में ध्रुवा की उक्त भिन्नता को छोड़कर बहुत अधिक समानता मिलती

हैं । १५वीं शती में ही गुजराती कवि भीम और भालण के काव्य में उक्त सभी प्रकार के पद उपलब्ध हो जाते हैं जब कि ब्रजभाषा में इस शती में कोई काव्य नहीं मिला ।

पद-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप

पदों में केवल मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है । वर्णिक छंद तो कहीं अत्रिद रूप में ही मिलते हैं जिन पर आगे सुक्तक-शैली के प्रयोग में विचार किया गया है । मात्रिक छंदों में अधिकतर वड़ी प्रयुक्त हुए हैं जिनका निरूपण किया जा चुका है जैसे दोहा, चौगाई, सवैया, गीतिका, सार, सरसी, झूठना आदि । इन्हीं की जाति के तथा और भी अनेक मात्रिक छंदों के संयोग से दोहो भाषाओं में पद-रचना हुई है । तुलनात्मक दृष्टि ऐसे प्रमुख छंदों का परिचय नीचे दिया गया है—

विष्णुपद—१६, १० के क्रम से २६ मात्रा तथा अंत में गुणवर्ग वाले विष्णुपद नामक छंद का पद-रचना में प्रचुर प्रयोग हुआ है—

भालण—१ क्षणअंक पडखोजी मनमोहन लइ उत्तमंग धरू ।

उभराई जागे मही मारु, अ नवनिन हरू ।

—द० स्क०, पृ० ३८

२ वड़ी वार थड रमता मुजने, मे अति भूख सही

हवे तो मे रह्यु न जाये, रहेवा छो रे मही ।

—वड़ी

नरसी—गातर भग कीधा गिरधारी, जेम रे मायी झटके ।

वेग वजाडी वहाले मारे वनमा रग तणे कटके ।

—न० कृ० का०, पृ० ३०५

मीरा—चित्त चढी मेरे माधुरी मूरत उर बिच आन अटी ।

कबकी ठाढी पथ निहाहूँ, अपने भक्त खडी ।

मी० प०, पृ० ५

सूर—मुनि वशिष्ठ पंडित अति ज्ञानि, रवि रवि लग्न धरै ।

तात मरन सियहरन राम वन-वनु धरि विरति भरै ।

—सू० सा०, पृ० २७

हरिवंश—बिचलै श्याम घटा अति नीतन ताके रग रसी ।

एक चमकि चहुँ ओर सखी री आने मुभाय लमी ।

हि० चौ०, पद ५५

रेखाकित स्थलो पर गुरु को लघु अथवा लघु को गुरु करके पढ़ना होता है । उक्त कुछ उदाहरण ही पद-साहित्य में इस छंद की व्यापकता के प्रमाण हैं ।

सार और सरसी—इन छंदों का परिचय दिया जा चुका है । पद-साहित्य में यह छंद भी विष्णुपद की ही तरह अत्यन्त व्यापक रूप में मिलते हैं । एक मात्रा के अन्तर से छंद परिवर्तन तो हो जाता है पर गति प्रायः वैसी ही रहती है । यानि अनिवार्यतः १६ मात्राओं के बाद आती है । कुछ कवियों ने गेयता के कारण अतिरिक्त 'रे' या 'ने' का भी संयोग कर दिया है—

भीम—थड विण अेक महा वृक्ष ऊग्यु, प्रसरी शाखा पंच ।
बीज अकुर बहु फलि फलियु, त्रिधा विस्तारे रच ।
अलीक ससार लछड अनोपम, अगन्यानि प्रतिभासइ ।
विवेक विवाग्ड, दृढ़विश्वासइ, न्यान प्रकाशइ नासइ ।

—हरि० पौ०, पृ० ६८

भालण—अेणी पेरे देवकी टळवळ्या, हरिनं हैये चापे रे ।
पीयु तणे कर वालक आपे, भे थी हैडु कापे रे ।
भामणडा मावडी लइने, लइ चाल्या वसुदेव रे ।
भालणप्रभु रघुनाथ मूक्या, जगोदा घेर ततखेव रे ।

—द० स्क०, पृ० १३

केशवदास—करे अन्याय केशव घर माअे रे, ढोले ने गोरस गोली ।
माखण माकडला ने आपे, नित्य तेडी ने ताही टोली ।

—श्री कृ० ली० का०, पृ० ५०

नरसी—भावे रे भजता मारो वहालो, रग रेल रस वाध्यो रे ।
कठ विलागी कहान जी ने अधुर अमृत रस आप्यो रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २८६

प्रमानद—१ मूल पोतानु विचारीये रे, तु उदे धयो आज काल ।
कसने घेर गोरस लइ जाता, नद न पडी छे टाल ।

२. सग कीधो जड गोवालानी, टाढी राव शीरावे ।
पीडारो वन पशु ने चारे, बुद्धि कोनी पावे ।

—पृ० २७१



मीरा—१. ऊभी ठाढी अरज करतहूँ, अरज करत भयो भोर ।

मीरा के प्रभु हरि अविनामी, देख्यौ प्राण अकोर ।

—मी० प०, पृ० २

२. साजि निगार बाँधि पग घुँघरू, लोक लाज तजि नाची ।

गई कुसति लई साधु की सगति भगत रूप भई सोची ।

—वही, प० ७

सूर—१ ख्याल परे ये सखा सखे मिलि मेरे मुख लपटायो ।

तुही निरखि नान्हे कर अगने मै कैसे करि पायो ।

—सू० सा०, पृ० १७६

२ अति कृश गात भई ए तुम बिनु परम दुखारी, गाइ ।

जल समूह वरषति दोउ आँखैं हँकति लीने नाउँ ।

जहाँ तहाँ गोदीहन कीतो सूँवति मोई ठाउँ ।

—वही, पृ० ७११

ताटक—सार छंद के अन्त में यदि एक गुरु वर्ग और रख दिया जाय तो वह ३० मात्राओं का ताटक छंद बन जाता है । इसका दोनों भाषाओं के पदों में कम व्यवहार हुआ है । सार छंद की पूर्वोक्त कुछ पंक्तियों के माथ मयुक्त 'रे' को यदि छंद का अंग मान ले तो वह ताटक का ही उदाहरण मानी जायेगी । नरसी के काव्य में ऐसे अगणित पद मिलते हैं । नरसी, और मीरा के निम्नलिखित पदांश इसके शुद्ध उदाहरण प्रस्तुत करने हैं—

नरसी—कोह सजनी ओ केह पेरे मूकुं आनंद रूपी मा'वां ने ।

तही समरथ अवला विग कोई जे अहेनो पालव सा'वां ने ।

—न० कृ० का०, पृ० ५३१

मीरा—नाचि नाचि पिव रमिक रिझाऊं प्रेमी जन को जाचूँगी ।

प्रेम प्रीत की बाँधि घूँवरू, सुरत की कछनी काछूँगी ।

—मी० प०, पृ० ६

झूलना, हरिप्रिया आदि दीर्घ छंद—गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के पद-साहित्य में दीर्घ छंदों का प्रचुर प्रयोग मिलता है । झूलना ऐसे छंदों में सर्वप्रमुख है । इसका भी परिचय दिया जा चुका है । नीचे नरसी, प्रेमानंद, सूर और हरिवंश के कुछ पदांश प्रमाण रूप में उद्धृत किये जाते हैं—

नरसी—जागो ने जोड़ें तो जगत कीसे नहीं, ऊँच मा अटपटा भोगभासे ।

चित्त चैतन्य विलास तद्रूप छे, ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे ।

—न० कृ० का०, पृ० ४८६

प्रेमानंद—परब्रह्म निष्कर्म ते परम क्रीडा करे, रास विलास व्यभिचार भासे ।

भक्तविश्राम श्रीराम कहणानिधि, नामलेता कोटि कर्म न्हासे ।

—श्रीम० भा०, पृ० २९४

भूर—घेरि चहुँ ओर करि शोर अदोर बन धरणि आकाश चहुँ पान छायो ।

वरत बन बाँस धरहरत कुल काँस जरि उडतहँ बाँभ अनि प्रबल वायो ।

—सू० मा०, पृ० २३१

हरिवंश—वदन जोति मनो मयक, अलकतिलक छवि कलक,

छपति श्याम अक मानौ जलद दामिनी ।

विगत वास हेमखम्भ मनो भुवग वेनीदड,

पिय के कठ प्रेम पुज कुंज कामिनी ।

—हि० चौ०, पद ८०

हरिवंश की तरह सूर ने इसमें भी दीर्घतर छंद हरिप्रिया का प्रयोग किया है जो गुजराती कृष्ण-काव्य में अलभ्य है । इस छंद में १२, १२, १०, १० के क्रम से ४६ मात्राएँ होती हैं ।^१ हरिवंश द्वारा प्रयुक्त छंद के चौथे चरण में दस के स्थान पर आठ मात्राएँ हैं—

जागिये गुपाल लाल, आनंदनिधि नदबाल,

यशुमति कहै बार बार भोर भयो प्यारे ।

नैन कमल से विशाल, प्रीति बापिका सराल,

मदन ललित वदन ऊपर कोटि बारि डारे ।

—सू० मा०, पृ० १५८

हरिप्रिया के सदृश अन्य दीर्घ किन्तु भिन्न गति के अन्तर-आवृत्तिमूलक छंद गुजराती कवियों ने भी लिखे हैं । भीम ने एक पद में समान तुक के १३, १३, मात्राओं वाले चार चरण रख कर तब टेक की पुनरावृत्ति की है—

रास रमइ, नृत्य हुइ, अंक धौइ ऊवर धौइ,

मुनिवर केरा मन मोहइ, अन्तरि ब्रह्मादिक जोइ ।

रे गोकुलि जनम्या गोवन्द ।

—हरि० षो०, पृ० १४१

रचना-तंत्र की दृष्टि से हरिप्रिया और इसमें पर्याप्त अंतर भी है और वह यह कि झूलना या हरिप्रिया में आवृत्ति वाले अंश, छंद के अंश होते हैं जबकि यहाँ वे स्वतन्त्र षड बनाते प्रतीत होते हैं। केशवदास ने भी १४. १४ मात्राओं की तीन आवृत्तियों के योग से एक दो पदों का निर्माण किया है—

१. घुघरीये घीर न धावे, प्रेमे बहु पानो आवे,
भूख्यो ध्यो कांइ न भावे ॥ रे० हरि० ॥

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३१

२ हरिचरण ग्रही रहि नारी. मुखे हनिया देवमुरारी,
केशवदास स्वामी सुखकारी—नन जइये रे।

—वही, पृ० १२३

भालण के काव्य में ७, ७, ७, १३ के विराम से युक्त पद-रचना के भी उदाहरण मिलते हैं। देखने में यह ७, ७, ७, ५ के कम वाले लघु झूलना के समान लगता है, केवल अंतिम अंश में ८ मात्राएँ अधिक हैं पर वस्तुतः ७ मात्रा वाले अंश के अंत में प्रास-युक्त गुरु-लघु वर्णों की अनिवार्य आवृत्ति इसकी गति को उस झूलना की गति से पर्याप्त भिन्न बना देती है—

चंचल काय, कोण उपाय, माखण साय, दोणी फोडी दूधनी ।
ऊखल पीठ, माडे ठीठ, कहानक दीठ, शीके थी चढी ने ग्रहे ।
मांकडा साथ, त्रिभुवननाथ, लइ लइ हाथ, बहेंची आपे बाल ने ।
अमे आप्यु जेह, आणीने नेह, नव ले तेह, चोरी ने भावे घणु ।

—द० स्क०, पृ० ३७

कुंडल और उड़ियाना—२२ मात्राओं के इस छंद में १२, १० के कम से यति का विधान होता है और अन्त में दो गुरु वर्णों का होना आवश्यक माना जाता है। “गुजराती की अपेक्षा ब्रजभाषा के पद-साहित्य में इसका व्यवहार अधिक मिलता है—

केशवदास—ककिणी ने नादे नरहरि नाहानडियो नाचे ।
आखडी ने मचकडे मात यशोमती राचे ।

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० ४०

नरसी—छानो मानो आव्यो कहान, पाछली ने राते ।
वेणु मां तही ख गायो, आवी ने प्रभाते.

—न० कृ० का०, पृ० ४१९

सूर—नासिका लोचन विशाल, सतत सुखकारी ।

सूरदास धन्य भाग्य, देखत ब्रजनारी ।

—सू० मा०, पृ० १८०

मीरा—मुरली कर लकुट लेऊँ, पीतवसन धारूँ ।

काँछी गोध भेष मुकुट, गोधन मँग चारूँ ।

—मी० प०, पृ० ६२

जहाँ कहीं अन्तिम गुरु वर्ण के पहले गुरु वर्ण न आकर लघु वर्ण आया है वहाँ यह छंद उड़ियाना नाम से अभिहित किया जाता है जो कुडल का ही एक उपभद्र है।^{४१} उदाहरण के लिए सूर की निम्न पक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

नद जू के वारे कन्हैया छाँडि दे मथनियाँ ।

बार बार कहे मात यगोमति रनियाँ ।

—सू० मा०, पृ० १४३

उपमान, शोभन और रूपमाला—उपमान में १३, १० का मात्रा-क्रम तथा अन्त में दो गुरु वर्ण होते हैं, रूपमाला में १४, १० के मात्रा-क्रम के साथ अन्त में एक गुरु और एक लघु । यदि रूपमाला के अन्त में जगण हो तो वही शोभन छंद हो जाता है।^{४२} ब्रजभाषा की तुलना में गुजराती में यह छंद बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं और यदि कहीं मिलते भी हैं तो यति के नियम की पूर्ण अवहेलना के साथ । मात्राओं में भी पर्याप्त शिथिलता दिखाई देती है जो एक सामान्य वस्तु है और सर्वत्र पायी जाती है—

नरसी—सोल सहस्र सुन्दरी मळी अचरज पामी ।

भक्तवत्सल मळ्यो, नरसैनो स्वामी ॥

—न० कृ० का०, पृ० ३१७

मीरा—मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।

—मी० प०, पृ० ६

नरसी और मीरा की उद्धृत पक्तियाँ उपमान छंद की लगती हैं । मीरा की अपेक्षा नरसी की पक्तियाँ कहीं अधिक सदोष हैं । नरसी ने कहीं कहीं रूपमाला और शोभन का भी व्यवहार किया है पर वह और अधिक विकार-ग्रस्त है।^{४३} ब्रजभाषा में सूर और मीरा आदि के कुछ पदों में यह व्यवहृत हुआ है।^{४४}

३. मुक्तक-शैली

मुक्तक-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप

मुक्तक-शैली में दोहा, सौरठा, कुडलिया, छप्पय के अतिरिक्त मनहरण, घनाक्षरी और वर्णिक सबैया का प्रयोग विशेष रूप से हुआ । पहले चार छंदों का परिचय

आख्यान-शैली के छंदों के अन्तर्गत दिया जा चुका है। मुक्तक-शैली के कवियों ने इनमें कोई छंदगत भेद प्रस्तुत नहीं किया, प्रत्येक छंद में वर्ण्य-वस्तु की पूर्णता के कारण ही यह मुक्तक बन जाते हैं।

मनहरण और घनाक्षरी—यह वर्णिक छंद है जिनमें ८, ८, ८, ७ तथा ८, ८, ८, ८ एवं ८, ८, ८, ९ का यति-क्रम रहता है। अन्तिम ३३ वर्णों की घनाक्षरी देवघनाक्षरी कहलाती है और ३२ वर्ण वाली रूप घनाक्षरी।^{१४} सर्वैया गणात्मक वृत्त है जिसके भक्तगणंद आदि अनेक भेद होते हैं।^{१५} मनहरण और घनाक्षरी में ह्रस्व और दीर्घ का कोई भेद ही नहीं रहता। सर्वैया में छंद-शास्त्र की दृष्टि में यह भेद रहता तो है पर ब्रजभाषा और गुजराती दोनों में ही, गति के अनुसार, दीर्घ को ह्रस्व पढ़ने की प्रथा मिलती है। इन छंदों का व्यवहार गुजराती कृष्ण-काव्य में नहीं हुआ। लक्ष्मीदास द्वारा लिखित सर्वैया अपवाद प्रस्तुत करते हैं पर उनकी भाषा भी गुजराती नहीं है।^{१६} सर्वैया का व्यवहार ब्रजभाषा में केशवदास, मतिराम, देव, सरसदेव, नागरीदास, माधवदास, बल्लभरसिक, ध्रुवदास, नरोत्तमदास, आलम, रसखान, हरिवंश और सेवक द्वारा हुआ है।

इसी तरह मनहरण को केशवदास, मतिराम, देव, सूरदास, मदनमोहन, नरोत्तम-दास, रसखान, ध्रुवदास, सेवक, बल्लभरसिक, सरसदेव, तथा सेनापति ने व्यवहृत किया है। सेनापति ने सर्वैया का व्यवहार किया ही नहीं। ध्रुवदास तथा माधवदास ने मनहरण और सर्वैया को अपने वर्णनात्मक काव्यों में स्थान दिया है। घनाक्षरी में देव जैसे कुछ ही कवियों ने काव्य-रचना की है। मनहरण कवित्त का कुछ रूप सूर और मीरा के पदों में भी परिलक्षित होता है।^{१७}

कवियों ने प्रायः ८, ८, ८, ७ के यति-क्रम का अनुसरण न करके १६, १५ पर यति का निर्वाह किया है। कुछ ने उसमें भी शिथिलता दिखाई है।

आन्तर-प्रास—दोनों भाषाओं के कवियों ने कतिपय छंदों में यति के साथ अनु-प्रास का निर्वाह किया है। दूसरे शब्दों में यह आन्तर-प्रास आन्तर-यति के समानान्तर मिलता है। यह लम्बे छंदों में विशेष रूप से मिलता है।^{१८} 'प्राकृत पैगलम्' तथा 'छंदोनु-शासन' से ऐसे अनेक छंदों का परिचय मिलता है जिनमें आन्तर-प्रास एवं आन्तर-यमक का विधान नियम रूप में होता है। अपभ्रंश काव्य इसका प्रमाण है। यह आन्तर-प्रास कभी अन्त्यानुप्रास जैसा मिलता है और कभी यमक के रूप में यति के पूर्वापर अंशों को शृंखलाबद्ध करता हुआ। दूसरी स्थिति में उसे आन्तर-यमक की संज्ञा दी गयी है। नयवि के 'फागु' काव्य में प्रयुक्त रासक और फागु नामक छंदों में कुछ अपवादों

को छोड़कर प्रायः सर्वत्र इसी का विधान मिलता है। कहीं कहीं यमक के स्थान पर मात्र अनुप्रास दृष्टिगत होना है, फागु की निम्न पंक्तियों में दोनों रूप दिखाई देते हैं—

- १ आविध मास बनतक, सत करइ उत्साह ।
मलयानिल सहि वायउ, आयउ कामगिदाह ॥१७॥
- २ वत्सि सु फाणि नगयण, राय गमइ जसु पाइ ।
तस गृण अणुदिण खेलत हेल तजाइ अपाइ ॥ २ ॥

गुजराती कवि चतुर्भुज के काव्य में भी ऐसे छंद मिलते हैं।

ब्रजभाषा में नंददास ने रोला छंद में कहीं अनुप्रास और कहीं यमक की ग्रंथि दी है—

- १ कृपा रग रम अयन, नयन राजत रतनारे ।

—चद०, पृ० १५५

- २ जो जनमन आकरषत, वरषत प्रेम सुधा रस ।

—वही, पृ० १५६

- ३ तब कहीं श्री सुकदेव, देव यह अचरिज नाही ।

—वही, पृ० १६२

- ४ तँसिय पिय की मुरली, जु रली अधर सुधारस ।

—वही, पृ० १६४

उक्त छंदों में आन्तर-प्रास होते हुए भी चरणान्त-प्रास का स्वाभाविक रूप में निर्वाह किया गया है पर गुजराती में कुछ छंद ऐसे मिलते हैं जिनमें केवल आन्तर-प्रास का ही विधान है। चरणान्त-प्रास या तुक उनमें प्रायः नहीं मिलता। नीचे की पंक्तियाँ प्रमाण रूप में प्रस्तुत की जाती हैं—

- १ निरखना रुखमणी रूप अ, भूप मोह्या ते भूमें पडे ।

पीडाये सखी पर्य पर्य कामे अ, हाम धरीने हाले नहीं अ ।

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १८३

- २ छ दहाडाने छोकरे ते पूतना शोभी,

तारा दोषी दुरिजन जाजो मरी रे ।

मोटा थड ने चारो वन गावडी रे,

मावडी यशोदा जी जागे भामणा रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० २८८

ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में इस तरह का तुकान्तहीन कोई छंद प्रयुक्त नहीं हुआ है। तुकान्त के विधान में आन्तर-प्रास को तरह ही शिथिलता दोनों भाषाओं में दिखाई



देनी हैं। उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के तुक पाये जाते हैं। हरिप्रिया, झूलणा आदि छंदों में आन्तरप्रास का विधान मिलता है। नरसी ने कहीं इसका पूर्ण निर्वाह किया है, कहीं अपूर्ण और कहीं किया ही नहीं। उनकी निम्न पक्तियों में आन्तर-प्रास दर्शनीय है। कवि ने पहली दो पक्तियों पर ही अनुप्रास रखने की चेष्टा की है—

कृष्ण ने हठी मठी, शीघ्र आवो बळी, जाणसे दुख अतरजामी।

विनति मनसा धरो, आळस परहरो, सहाय थासे नरमैनो स्वामी।

—न० कु० का०, पृ० १५७

सूर ने तीनों पक्तियों को प्रास-युक्त बनाने का प्रयास किया है जिसके अपवाद भी मिलते हैं। पद-शैली के छंदों में झूलना के जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें सूर की यह विशेषता देखी जा सकती है। दो पक्तियों में प्रास का निर्वाह हरिवंश ने भी किया है। झूलना के ही प्रसंग में जो पक्तियाँ भालण के काव्य से उद्धृत की गयी हैं उनमें तीनों पक्तियों में प्रास का पूर्ण निर्वाह हुआ है, ठीक वैसा ही जैसा सूर के हरिप्रिया छंद में। अन्य कवियों में भी आन्तर-प्रास का विधान मिलता है। वस्तुतः ये छंदों के निर्माण में यह प्रवृत्त गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कृष्ण-काव्य में समान रूप से पायी जाती है यद्यपि यह सत्य है कि फागु और रासक इन दोनों छंदों का व्यवहार ब्रजभाषा काव्य में नहीं हुआ है।

रागों का निर्देश—मुक्तक-शैली में तो नहीं किन्तु आख्यान-शैली और पद-शैली के काव्यों में रागों का निर्देश बराबर मिलता है। ब्रजभाषा के आख्यान-काव्यों में रागों का उल्लेख नहीं मिलता पर गुजराती में प्रायः सर्वत्र प्राप्त होता है। जिन रागों का उल्लेख गुजराती आख्यानों और पदों के साथ मिलता है उनमें निम्न-लिखित प्रमुख हैं।

बेराडी, सामेरी, गोडी, मारु, धनाथ्री, परजियो, देशी, नटनारायण, केदारो, देशाख, कल्याण, रामग्री, गूजरी, मलार, कानडो, काफी, आशावरी, वसन, भैरव, टोडी, शारंग, श्रीराग, सीधुडो, मालाखाड, प्रभात, बिहाग, कालेरो, भूपाल, मालव, हीडोले, अरगजो, होरी और मेघ आदि।

इसी तरह ब्रजभाषा के पदों के साथ मुख्यतया निम्नोक्त रागों का उल्लेख मिलता है।

कल्पदुम, काफी, विभास, विलावल, टोडी, आसावरी, धनाथ्री, वसंत, देवगधार, शारंग, मलार, गौड़, गौरी, कल्याण, कान्हरो, केदारो, नट, कमोद, जयति श्री,

भूपाली, गूजरी, मारु, मालव, चौतारो, विहाण, भैरव, कल्याण, अडानी श्रीराम, प्रभाती, भैरवी, देस, मालकोस, ईमन, खम्माच, हमीर, पचम, रामकली, हिडोरा तथा धमार आदि ।

दोनों नामावलियों में बहुत से नाम समान रूप से मिलते हैं । इनमें संगीत की दृष्टि से राग-रागिनियों तथा ताल-स्वर सभी पर आधारित नाम हैं जिनका स्वतन्त्र अध्ययन अपेक्षित है ।

इन रागों का छंद के साथ कोई अभिन्न सम्बन्ध रहा हो, ऐसा नहीं लगता । * एक ही राग के अन्तर्गत विभिन्न छंद प्रयुक्त हुए हैं और एक ही छंद विभिन्न रागों में निर्दिष्ट है । अतएव रागों का निर्देशन गेयता को ही प्रमाणित करता है । मसब है, मात्रा और गति के सम्बन्ध की सामान्य त्रुटियों के मूल में संगीतात्मकता भी एक कारण हो परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से बिना स्वतन्त्र विवेचना के कुछ नहीं कहा जा सकता ।

पादटिप्पणियाँ

१. प्रा० गु० छं०, पृ० १३५
२. क—बृ० का० दो० भाग १, पृ० ६६७
ख—श्रीम० भा०, पृ० २८२, २८५, २८८ आदि
३. प्रा० गु० छं०, पृ० १३७
४. नरसी . त० कृ० का०, पृ० १६६, ४२८—४३१, प्रेमचानन्द . रुक्मिणीहरणः
हरिरामव्यास . व्या० वा०, पृ० १७६; धीतान्वरदेव . सिद्धान्त की सारी
५. छन्दःप्रभाकर, पृ० ४७-५१
६. वही, पृ० ५५-५६
७. श्रीकृ० ली० का०, पृ० १०४
८. छन्दःप्रभाकर, पृ० ४८
९. हरि० पौ०, पृ० ७, २८; श्री कृ० ली० वा०, पृ० १२८
१०. श्रीहित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ६४, ८८
११. प्रा० गु० छं०, पृ० १०५
१२. श्रीकृ० ली० का०, पृ० १४०, १४२
१३. हरि० पौ०, पृ० ८, १६४, श्रीकृ० ली० वा०, पृ० ११०
१४. हरि० पौ० पृ० १२०, श्रीकृ० ली० का० पृ० ५८
१५. श्रीकृ० ली० का०, पृ० १४१, १४२
१६. प्रा० गु० छं० पृ० १५७-१५८
१७. वही, पृ० १८०
१८. छन्दःप्रभाकर, पृ० ७०
१९. प्रा० गु० छं० पृ० ७२
२०. श्रीकृ० ली० का०, पृ० १२४, श्रीहित चौरासी सेवकवाणी, पृ० ७३, ७४
२१. मूरदास . डॉ० प्रजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५३६
२२. प्रा० गु० छं०, पृ० १६१-१६२
२३. वही, पृ० ७६६
२४. श्रीकृ० ली० का०, पृ० १२०
२५. वही, पृ० १०६
२६. प्रा० गु० छं०, पृ० १७२, १७६
२७. छन्दःप्रभाकर, पृ० ७६, विगतप्रकाश, पृ० २२
२८. छन्दःप्रभाकर, पृ० ७६
२९. श्रीहित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ६१

- ३० छंद प्रभाकर, पृ० १५२; विंगलप्रकाश, पृ० २७५
 ३१ प्रा० गु० छ०, पृ० २१३, २१८
 ३२ छंद प्रभाकर, पृ० ४४ ५०, ६५
 ३३. प्रा० गु० छ०, पृ० २१८
 ३४ वही, पृ० १२, १८
 ३५ वही, पृ० २२८
 ३६ वही पृ० २२९
 ३७. सूरदास डॉ० व्रजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५७३
 ३८ प्रा० गु० छ० पृ० ८८-८९
 ३९. छंद प्रभाकर, पृ० ७८
 ४० वही, पृ० ५८
 ४१. वही पृ० ५९
 ४२ वही, पृ० ५९, ६२
 ४३ न० कु० का०, पृ० ४-३, ७२८
 ४४ सूरदास डॉ० व्रजेश्वर वर्मा; प्रथम संस्करण, पृ० ५४०, मी० प० भूमिका पृ० ४३
 ४५ छंद प्रभाकर पृ० २१३, २१६, २२०
 ४६ वही, पृ० २०९, २०७
 ४७. कविचरित, भाग २, पृ० ३६६
 ४८ मी० प० भूमिका, पृ० ४४, सूरदास डॉ० व्रजेश्वर वर्मा प्रथम संस्करण, पृ० २४७
 ४९ प्रा० गु० छ०, पृ० ७०, ७१
 ५०. वही पृ० १४०, १४१

भाषा-शैली

साहित्य में भावाभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम होने के कारण भाषा अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखती है। शिथिल एवं असमर्थ भाषा सुन्दर से सुन्दर भाव को प्रभावहीन बना देती है। इसके विरुद्ध सशक्त एवं समर्थ भाषा साधारण भाव से भी विलक्षणता उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होती है। श्रेष्ठ काव्य वस्तुतः भाव और भाषा दोनों के श्रेष्ठ सामंजस्य से उद्भूत होता है। भाषा की इस शक्ति और सामर्थ्य का बहुत बड़ा आधार शब्द-भांडार होना है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी भाषा-शक्ति का सहज परिचायक होता है। अतएव यहाँ गुजराती और ब्रज दोनों के कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त भाषा का, उसके शब्द-भांडार तथा मुहावरों और लोकोक्तियों की दृष्टि से, तुलनात्मक विवेचन पहले किया गया है और भाषा की शैलीगत विशेषताओं का निरूपण बाद में।

शब्द-भांडार—शब्द-भांडार तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी इन चार वर्ग के शब्दों से निर्मित होता है। अतः दोनों भाषाओं के शब्द-भांडार का अध्ययन क्रमशः इन्हीं चार वर्गों के अनुरूप किया जाना अपेक्षित है। देशज शब्दों के साथ लोकप्रचलित शब्दों को भी ले लिया गया है। इनके अनिरिक्त पर्याय शब्दों से भी शब्द-वैभव का अनुमान होता है इसलिए संक्षेप में इस ओर भी निर्देश कर दिया गया है।

तत्सम शब्द

जिन तत्सम शब्दों का दोनों भाषाओं में प्रयोग हुआ है उनमें संस्कृत भाषा के शब्दों का पूर्ण बाहुल्य है। धर्म, भक्ति, सिद्धान्त दर्शन तथा उच्चतर मास्कृतिक वातावरण से सम्बद्ध सहस्रों संस्कृत शब्दों को उनके तत्सम रूप में कवियों ने बराबर स्थान दिया है। संस्कृत ग्रन्थों को आधार बनाना और कभी-कभी आदर्श मानना इसका अत्यन्त प्रमुख कारण रहा है। 'यदि प्राचीन साहित्य का अध्ययन ध्यानपूर्वक किया जाय तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि उस समय भी साहित्यिक भाषा संस्कृतगर्भित थी'। इन शब्दों के साथ ब्रजभाषा के एक प्रसिद्ध वैयाकरण ने

स्वीकार किया है कि 'प्राचीन ब्रजभाषा साहित्य में तत्सम संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है' ।^१ मध्यकालीन गुजराती की स्थिति भी प्रायः ब्रजभाषा के ही समानान्तर है । १६वीं और १७वीं शती की रचनाओं में तो तत्सम शब्दों का विशेष व्यवहार मिलता ही है किन्तु गुजराती कृष्ण-काव्य में १५वीं शती से ही नयर्षि, मयण, भीम और भालण की रचनाओं में बहुसंख्यक तत्सम शब्द उपलब्ध होने लगते हैं । नीचे इन कवियों द्वारा व्यवहृत कुछ शब्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं ।

नयर्षि—गुण, यादव, उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, गृह, परिवार, मास, सत, उत्साह, मलयानिल, सहकार, अभिनव, कुल, सुरतरु, चदन, नदन, गध, रण, कामी, देव, माधव, निज, पकजनाल, विशाल निर्मल, जल, सकल, सहित, नवनिधि, नभ, तारा, प्रभु, नाग, सुरनर, प्रिय, क्रीडा, पुरी इत्यादि ।

मयण—कज्जल, मानिनि, निकदन, देव, गध, दिवस, विरह, उर, अति, चीर, अबला, क्षिति, भोगी, भ्रमर, रम, चतुर, कंकण, शशि, पवन, कामिनि, कामबाण इत्यादि ।

भीम—सनकादिक मदा, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, ऐश्वर्य, कृष्णचरित्र, उत्तम, कथा, पवित्र, सुमंगला, सुललित, श्रवण, भवरोग, तृप्ति, भूमि, बहु, पीडा, मृत्यु, लोक, मस्तक, केश, वाणी, परमानन्द, भूपाल, आकाश, नाश, वृक्ष, पुत्र, कलत्र, नागेन्द्र, दिवाकर, चन्द्र, प्रपन्न, श्रीकांत, दृष्टांत, सदेह, श्रावण, मध्य, कन्या, अपराध, दुःख, यथा, विश्वास, इत्यादि ।

भालण—श्रीगणपति, सिद्धिबुद्धि, हरसुत, दया, लक्ष, लाभ, उज्ज्वल, दत्त, माता, विख्यात, इच्छा, क्रीडा, विस्तार, स्वामी, तेजस्वी, अतरिक्ष, हस्ति, कुमस्थली, अष्टादश, द्विसहस्र, आकाशवाणी, क्रोध, विवाह, खड्ग, महानिदित कर्म, अपराध, प्रतिबोध, ज्ञान, गर्भ, भय, अंतःकरण, कारागृह, आकर्षण, आरोपण, अवतार, कन्यका, मनुष्य, लक्षण, कीर्तन, संशय, मिथ्या, चतुर्भुज, स्वरूप, भाग्य, तोरण, पुनरपि, प्राणजीवन, निश्चय, परमानन्द, स्वस्तिवाचन, जातकर्म, मस्तक, बालुका, स्वच्छ, पीतांबर, मुक्ताफल, अमृतसावी, अद्भुत, विस्मय, तत्क्षण, कल्याण, निज-स्थान, ऋषिपत्नी, ब्राह्मण, इन्द्र महोत्सव, जलवृष्टि, प्रदक्षिणा, नमस्कार, आश्चर्य, पुष्प, भास्कर, रक्त, निर्विष, उत्सव, लघुशंका, सत्य, कौटिल्य, नालिकेर, प्रतिज्ञा, मन्मथ, द्राक्ष, सत्यार्थ, वारिजनेत्र, रोमांचित, अव्व, दत्तधावन, क्षीरसागर, आह्लाद, अवश्यमेव, ... इत्यादि ।

दिवेटिया, ध्रुव, शाम्बरी आदि गुजराती भाषाशास्त्रियों ने १५वीं से लेकर १७ वीं शती के पूर्वार्ध तक की भाषा को 'जूनी गुजराती', 'मध्यकालीन गुजराती' अथवा 'गुर्जरभाषा' के नाम से एक युग के अन्तर्गत रक्खा है।^१ यह अपभ्रंश के ठीक बाद का युग है। १५वीं शती के पूर्वोक्त कवियों की रचनाएं अधिकतर में विरचित होने के कारण अपभ्रंश की छाया से युक्त हैं। प्राचीन गुजराती के अनेक लक्षण उनमें पाये जाते हैं जो प्रेमानंद तक पहुँचते-पहुँचते पूर्णतया विलुप्त हो जाते हैं।^२ नरसि और भोम की भाषा जैन कवियों की भाषा से मिलनी-जुलती है। ऐसी स्थिति में इन कवियों द्वारा इतनी अधिकता से तत्सम शब्दों का प्रयोग यह सूचित करता है कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य की भाषा तत्समता की ओर बहुत प्रारंभ से झुकने लगी थी। १६वीं, १७वीं शती के नरसी और प्रेमानंद द्वारा तो तत्सम शब्दों का और भी प्रचुरता से व्यवहार हुआ है। प्रेमानंद की मनोवृत्ति यद्यपि लोक-सामान्य-जीवन में विशेष रमती है तथापि पौराणिक होने के कारण उन्होंने कदाचित् सर्वाधिक तत्सम शब्दों का व्यवहार किया है। नरसी और प्रेमानंद के काव्य से चुनकर कुछ प्रमुख तत्सम शब्द नीचे दिये जाते हैं जो उक्त स्थापना को प्रमाणित करते हैं।

नरसी—चैत्र, पूर्णिमा, क्षमा, युद्ध, प्रसन्न, व्यग्र, गर्व, दर्प, कदर्प, मुक्ति, निश्चय, युक्ति, पिष्टपेषण, प्राग, गोष्ठि, शोषण, सत्यभामादिक, प्रभात, स्वामी, भवसागर, वल्लभ, अकृति, असर, किकर, नित्य पुनरपि, अवतार, मोक्षदाता, दुर्लभ, नीरस, मनोरथ, अमृत, सर्वत्र, पुरुषोत्तम, पर्वत्र, सङ्घ, आभूषण सकलगुणनिधान, लक्षण, निर्मल, विश्राम, संग्राम पद्मिनी, वंणव ... इत्यादि।

प्रेमानंद—वर्णाश्रम, कर्तुं न कर्तुं, कपायमान अकस्मात्, शरणागत, पार्थिव, अष्टादश, शिरोमणि, व्यासात्मज, कयाग्रवण, नौका, स्नेह, इन्द्रासन, गर्भ, धूम्रपान, पृथ्वी, अमृत, वसुधा, सुरभि, कान्ठाकार, पाषाण, कनिष्ठ कारागृह, प्रातःस्नान, अश्वत्थ, प्रमाण, परमेश्वर, दीप्तिमान, सप्त, द्राक्ष, निद्रास, विरहिणी, घोष, गोष्ठी, सन्ताप, आभूषण, दूषण, प्रघाण, कर्णश्रवण, पीयूष, श्रोतावक्ता, स्वल्प, वेदोक्त धर्म, प्रपञ्च, उच्छेद, ब्राह्मण, गोणितवर्ण ... इत्यादि।

लगभग ऐसी ही स्थिति ब्रजभाषा के कवियों की है। सूरदास, नंददास, हरिवंश, श्रीभट्ट, गदाधर, ध्रुवदास और विहारि के काव्य से चयित निम्नलिखित शब्द प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किये जाते हैं।

सूरदास—चरण, पगु, रक, करुणासय, अविगत, अतर्गत, परमस्वाद, निरतर, अगोचर, निरालम्ब, चकृत, भवनास, ब्रीडा, कलानिधान, गुणसागर, ब्रह्मलोक,

पर्यंत, मृतक, गर्व, मताप, कृपासिंधु, क्षुधित, त्रिगुण, अतर्यामी प्रभु, रमिकशिरोमणि, शिखी, अमुरनिकदन, मुखारविन्द, सुकृत, क्रीडा, महामहोत्सव, ब्रह्माड, क्षुद्र, मेघवर्तक, आकाश, घोषकुमारी, दधिभाजन, चित्रित, लुब्ध, सम्बन्ध, सुगन्ध, मुभगपुलिन, करपल्लव, मुद्रिका, चतुर्दश, अष्टसिद्धि, अखिल, जघन, श्रृङ्गार, द्युति, कटाक्ष, मुकुलित, पद्म, मन्मथ, त्रिवली, अद्भुत, तरणि, खडिता, मध्य, कनक, कलश, पीयूष, विभावरी, विराजमान, आच्छादित, नीलाम्बर, मानापमान, परितोष, सिद्धात, यूथ, यद्यपि .. इत्यादि ।

नंददास—प्रेम-पद्धति, तत्त्व, कचन, इदु, मतिमद, भिन्न, प्रभु, मुकुट, इदीवर, राजीव, चिबुक-कूप, रोमावलि, अधोक्षज, प्रतिमा, अद्भुत, द्वारावनि, पुलकित, आसक्ति, कर्म, क्रिया, दिव्यदृष्टि, विरमता, बुद्धि, अमरेद्रवृ द, कृपा-निधान, नीलोत्पलदल, रसासवपान, चिद्धन, तिमिरग्रसित, रमिकपुरंदर, उज्ज्वल, परमात्मा, परब्रह्म, प्रारब्ध, छादन, अवधिभूत, सच्चिदानन्द, आश्रय . इत्यादि ।

हरिवंश—राण, श्रवण, रमण, रसलपट, भूषण, शिथिल, अलकावलि, विथकित, रुचिर, मीमत, गलित, अलंकृत, चित्रित, शिरोमणि दम्पति, प्रमथित, मिथुन, निर्मित, सुपेशल, मुकुर, विभ्रम, ललितादिक, सभ्रम, विशदवेश, राका मध्य, नेति नेति, वेपथु, अद्भुत, कौशेय, चिकुर, चिबुक, पृथु, नितम्ब कृश कटि, रतिरण, माधविका, मधुपूरित, पशुरिव, जघनदुकूठ, पयोधर, खडित, विलुलित इत्यादि ।

श्रीभट्ट—वृंदाविपिनविलास, वृषभानुजा, कुज, त्रिभुवनपोषण निरन्तर, व्यजन, पुष्प, चदन, सौरभ, मुकुट, मन्मथ, मिथुन, भृकुटि, मुदित, सम्भ्रम, शिखंड-मंडित . . . इत्यादि ।

गदाधर—पदारविन्द, परमतत्त्व, पुलिन, पवित्र, त्रिचित्र, पल्लवनिर्मित, स्थल, कलधौत, पद्माकर, द्वर्वाकुर, नित्यानन्द, भृकुटि, कौस्तुभमयूख, नादामृत, कदर्पदर्पापहर, मुरलिका, पीयूषनिर्झर, ब्रह्मा, रुद्रादि, गुच्छ, घटिका, दृष्टि, स्वाद, प्रतिविव, क्रीडा, आडम्बर ... इत्यादि ।

ध्रुवदास—चित्रित, विचित्र, कल्पतरु, अवलव, किंवा, प्रथम, प्रताप मडलाकार, विस्तार, कुज, मजु, युगल शृंगार, नासापुट, कचुकी, कचन, नारदादि, ब्रह्मादि, दम्पति, प्रेममाधुरी, अद्भुत, नित्य, किशोर, मुक्ता, हृद्रोग, वारिधि, राजहंस, विररीत, अनुराग, निगम इत्यादि ।

बिहारी—हरित, नृपति, स्तन, लोवन, विरह, लोभ, स्वेद, रोमांच, कच, भुज . . इत्यादि ।

दोनों भाषाओं के कवियों ने अपनी अपनी भाषा के अनुकूल सामान्य ध्वनि-परिवर्तन कर के तत्सम शब्दों का इससे कहीं अधिक बड़ी संख्या में व्यवहार किया है । पूर्वोक्त अनेक शब्द इस ध्वनि-परिवर्तन के साथ उन्हीं काव्यों में व्यवहृत हुए हैं जिनमें वे तत्सम रूप में मिलते हैं । कुछ तत्सम शब्द छंद-विधान या उच्चारण सम्बन्धी अनेक कारणों से अत्यन्त विकृत कर दिये गये हैं । कहीं कहीं उनमें बिना स्पष्ट अकारण के प्रायः स्वेच्छा से ही कवियों ने विकार उत्पन्न किये हैं । उदाहरणार्थ गुजराती में भीम द्वारा प्रयुक्त 'हीम, वीनती, पापीष्ट, ऊर, त्रिभावन, मंगलच्यारि, भालण द्वारा प्रयुक्त 'अन्या (अन्याय), प्रतीकार, प्रत्य, रोहिदास (रोहिताश्व), प्रभा (प्रवाह), केशवदास द्वारा प्रयुक्त 'नार्य, मुरार्य, धूल्य, धूसारव, विक्षात, कोमल्ल, नरोद्हरि, संक्षा, नरसी द्वारा प्रयुक्त 'अस्तुभान, सोत्रण, रुदीया, ब्रध, अधुर, केन्द्रप, (कन्दर्प), कलिवर, भूजबल, दुरीजन, धनुण्याकार, अहोनीश, भर्म, शीच, तथा प्रेमानंद द्वारा प्रयुक्त 'अशरणशर्ण, जस्त, अहरनिश, शमश्या, गर्वभासुर, नाटारंभ अतूल, ओशीकल, प्राक्रम, शीला (शिला) प्रस्तुत किये जा सकते हैं । ब्रजभाषा में इसी प्रकार सूर ने कैटभारे, वैराग, तातु, अकाश, तटनी प्रभृति शब्दों का प्रयोग किया है । ' ब्रजभाषा के अन्य कवियों ने भी स्वेच्छा से तथा छंद-निर्वाह के लिए तत्सम शब्दों में पर्याप्त विकार ला दिया है जिसके उदाहरण कम नहीं मिलते, प्रकट, भोग, अवतार, शोच, परिणय, निस्सरण, खड, प्रणाम, पोषण, सतोष, विस्तार, हरण जैसे अनेक तत्सम शब्दों से दोनों भाषाओं के कवियों ने क्रिया पदों का निर्माण कर लिया है जिनमें तत्समता पूरी तरह सुरक्षित रही है । इस प्रकार तत्सम शब्दों को विविध रूप में प्रयुक्त करना कवियों की शक्ति का परिचायक है और कहीं कहीं अशक्ति का भी ।

तद्भव शब्द

गुजराती और ब्रजभाषा दोनों का विकास अपभ्रंश से हुआ है अतएव तद्भव शब्दों का अत्यन्त विनाल संख्या में पाया जाना स्वाभाविक ही है । दोनों भाषाओं के कवियों ने तद्भव शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है । जैसा ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है, १५वीं शती की गुजराती भाषा अपभ्रंश के अधिक समीप है अतएव नरयणि, मयण, भीम और भालण की रचनाओं में तद्भव शब्दों का प्राचुर्य विशेष रूप में मिलता है । केशवदास, नरमी और प्रेमानंद द्वारा रचित बाद की रचनाएँ भी अशुद्ध तद्भव शब्दों से आपूरित हैं । इन सभी कवियों की रचनाओं से कुछ प्रतिनिधि शब्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं ।

नयधि—जसु, मझारि, जादव, पुहता, सहियर, वा, अंतेउरी, नेउर, केउर
हरखिय, निरखिय, दीविइ (द्वीप), मयण, पणमइ ।

मयण—मूकी, पयोहर, नाह, वयण, कचूउ, तुह, वभ, सयल, नन्धि, तित्थि, निठर,
रवणि, विहडण, दैतांह, नेह, उल्हसी, वइट्टी, दिट्टी, हुहविउ, ठविउ, वत्त, वल्लही,
मच्छी, लच्छी, बुझ्भवि, एकाउलि, रेह, किद्धीय, पुलइ, पेणीय, ऊअरि, डसण, समप्पिय,
गल्ल, गेहणि, तूठइ, अहर, पीनत्थण, मूकइ, नीमासह, भिन्नउ नियनणु .. इत्यादि ।

भीम—थाण, अवर, बिहु, कान, अगलि, हुआ, कूअटइ, सरखा, पुहुता, कीधु,
मूकीइ, मझारि, कमाड, विणठी, नचत (निश्चित), दाघी, सूकइ, हैआ, सधला,
दीठुं, सूतइ, शीआल, पोलिदुआरि, फोफल, पसाइ, न्यान इत्यादि ।

भालण—पासा, दीठी, कादवे, केड, पूठे, गोठडी, मूडे, ठार, सासु, जेठाणी, मुगट,
जड्यां, मूकी, माणस, अमी, अलूणा, पाखे, ठाम, मधला, जुड, भादरवे इत्यादि ।

केशवदास—सायर, गेडी, मोहोट्टं, हइआ, दीवो, साकर, जूठु-साचू, दुल्लम,
दूवली, मुझार, गोवाल, सह, वखाण, वयण, दोहिला, मुया, अवर, धरन, विवरत,
ततखेव, रखवाल, आँखडी, पाँखडी इत्यादि ।

नरसी—फागण, पूठल, आखा, सहीयर, खूणे, मुआ, आसु, दोहेला, जुवती,
राणगार, बहाली, जोवन, बायक, चुडिलो, दाझे, पीयू, पखीआ, उग्यो, आथम्यो, रेणी,
वालमा, नेण, जाम, विभिचारी, माकडां गेडी, दीठी, पालव, शीख, रोंत, मोधी,
बाई, इत्यादि ।

प्रेमानंद—तंबोल, गाम, हैया, वाझणी, अजाणी, नंण, भाणेजो, मासी, हीका, दोड,
ओछगे, माणस, पहोर, मलियागर, महोटा, दीवो, भामणे, मोझार, गाडा, दैत,
फोफल, फणसी, केनु, पोयण, गोवाला, विखाणे, धेर, दहाडे, पूठे मूके, गेडी, आहीर,
फेणा, लीधु, दीधु, लोदु, जीभ, मेह, जोवन, ठाम, मच्छ, कच्छ, नाठा, चोहोजुग,
हुगणा, थोभण, आखो दांत, भूखी, बरसात, खट, कोड, पाछा, नहावा, दीसे,
कुहाडा, लावा, जोग, विजोग, विहणी, माछली, आखा, पाखे, भादरवो, सहियर,
भोजाई, कादव इत्यादि ।

ब्रजभाषा के कवियों ने भी अगणित लक्ष्मण शब्दों का व्यवहार किया है परन्तु
उनमें अपभ्रंश की छाया, जो १५वीं शती के गुजराती कवियों में बहुत अधिक स्पष्ट
है, कहीं भी प्राप्त नहीं होती । हरिवंश की स्फुट वाणी में अवश्य अपभ्रंश का

आभास मिलता है जो कृत्रिम है। मूर, नददास, हरिवंश, श्रीभट्ट आदि जिन कवियों के काव्य से तत्सम शब्द उद्धृत किये गये हैं उन्हीं के काव्य से नीचे तद्भव शब्दों के भी उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट प्रकट हो जाती है।

मूर—ढिठाई, पठाई, गवन, भक्तवच्छल, जाति गोत, खंभ, बरजि, भरमति, निठुर, सींग, दई, बिगरी, गाठि, दात, छिन, काजर, वच्छ, पूत, गुनी, नैन, बेनी, पाति, फरी, थाप्यो, थिर, पुहप, साथियो, सँजोइ, लीपि, भादौ, आठै, मोवरनथाल, ठाँउ, पाछे, कनिया, धरनी, भुवगम, बांभन, बिनानी, मथनियाँ, चौगुनौ, कोखि, जायो, आँसू, चोच, ग्वारि, बरही, अँगुरी, साँझि, मुकुता, अंकवारि, बूँद, मरवर, काग, चिहुर, मूँदि, भौहन, वारे, बाँह, मँडवारी, जोवन, फागुन, भौन, अँचरा, पतूखी, इत्यादि।

नददास—प्रनऊँ, जोति, वरनत, झाँई, बिख, देस, ठाँ, जीह, अच्छर, पखान, घोरहर, नाइक, पछितयौ, रूखन, रवनी, धरती, लुनाई, सुठौन, राउ, जोवन, लच्छ, माँवरौ, जतन, परपचनि, मुरझाइ, धूरि, उपखान, अकास, परमान, दुलही, वजमारे, माँखिन, बिजुरी, करनिका, दुति, माँझ, साँझ, मनमथफाँसी, गाँउ, छप्पि, मूरति, बिजना, जुद्ध, अतरजामी, सुमिरन, भाउ, अटारी,इत्यादि।

हरिवंश—ठौर, समै, जुद्ध, जुत, परायन, जुवली, अम, नैन, औसर, सिज्या, नइ, बूँदन, नयौ, पिया, वरम्म, भवन्न, विसवासित, बिछुरंत, निकज्ज, गज्ज, लज्ज, बिहून ... इत्यादि।

श्रीभट्ट—चरन, तीरथ, गोद, वीरज, भौह, मैन, बिछौने, चँवर, निरखल, रतियाँ, हुलसन्त, जूथ, मुहाग, छता, मेह, धुनि, मुकुँवारी, अंस, अरुन.....इत्यादि।

गदाधर—चोस, उपाड, बरखा, पनारे, उल्हयो, पूत, सीस, ग्यान, मज्जादा, बितई, ठई, छिन, सुहाग. इत्यादि।

ध्रुवदास—अँन, रैन, निबाह, नैन, सिंगार, हुलास, सनेह, पिय, सुहाई, कुँवरि, निसरै.....इत्यादि।

बिहारी—नीठि, दीठि, ईठि, नैन, नेहु, जोति, दुति, अहेरी, जोवन, दुलहिया, किय, बिथुरे, जोन्ह, जतन, मोगु, तोपु, दच्छिन, पच्छीनु, सोनजुही.....इत्यादि।

दोनों भाषाओं के काव्य में प्रयुक्त तद्भव शब्दों पर दृष्टिपात करने से सहज ही ज्ञात हो जाता है कि इस ओर कवियों की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होती रही। प्रायः तद्भव शब्द तत्सम अथवा अर्धतत्सम शब्दों के द्वारा स्थानान्तरित किये जाने लगे।

लोक-प्रचलित तथा देशज शब्द

मध्यकालीन भक्ति-साहित्य बहुत अंश में लोकोन्मुखी रहा है। लोक-चेतना से उसका निर्माण हुआ है और लोक-भाषा में उसे अभिव्यक्ति मिली है। कविगण लोक-जीवन से बराबर सम्बद्ध रहे हैं। फलतः लोक-व्यवहार के बहुसंख्यक शब्द दोनों भाषाओं के काव्य में उपलब्ध होते हैं जिनमें अनेक शब्द ऐसे हैं जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों से नहीं सिद्ध होती अतएव उन्हें देशज सज्ञा दी गयी है। आगे गुजराती कवियों में भीम, भालण, केशवदास, नरसी और प्रेमानन्द की रचनाओं से ऐसे शब्द प्रमाण रूप में उद्धृत किये गये हैं।

भीम ^{१०}—झखड़, फोक, ऊलटपालट, तालोवेलि, जूजूआ, भाकझमाल, खूसट, चीस, रलीयामणी, सुचंग, फरुकड़, इत्यादि।

भालण ^{११}—भुटी, टाहु, हुलरावशे, धवरावी, लटके, टळवळ्या, फाव्यो, दीकरी, करगरे, झडपी, बोंवडु, अटपटी, वटोलियो, अडवडशे, लडथडशे, जोखम, करमलडो, कोलियडो, अवटाऊ, तालावीहीली, भंभेरी, पाखल, टची, फोकट, छेलपण, मोडामोड, धिंगाई, असुर (देर), अलूराई, मीटसगाई इत्यादि।

केशवदास ^{१२}—टोले, हलुअडे, कमकमे, हाम, शीकूँ, हालेडोले, लाडवेहेली, पाडोशण, निटोल, डूगर, छीलर, ठाकोर... .. इत्यादि।

नरसी ^{१३}—भाकमभोल, खचको, भचको, टीलडी, झगझोल, वलगाझुमी, मरकलडो, सथह, गांजे, माची, टाहुँ, कीलकलाट, शाकु, तोतलु, ओथ, चीथरडु, धूलधाणी, थोथाठाला, नोहरा, ठुपणु, भाडडो, झोटी, टकोपैसो, खाट... इत्यादि।

प्रेमानन्द ^{१४}—पोपटी, दीकरी, छोकरा, चत्तापाट, शीके, मीठडा, लटपटी, भडकी, झुझकार्यो, गुछळा, छछेडी गडगडाट, दुकडो, पीपली, खखार्या, करमाया, टळवळी तरफडे, हलुअे, टळके, झीले, टोळे, गोरटी, खंजरी ढोलकी, रवावडु, बापडु पडछदा, आछटे, डाबो, फडफडे... इत्यादि।

ब्रजभाषा में लोक-प्रचलित तथा देशज शब्दों का और भी अधिक व्यापक प्रयोग हुआ है। पदकारों में सूर सब का प्रतिनिधित्व करते हैं। सूरसागर में ऐसे शब्दों का सर्वाधिक व्यवहार हुआ है। आख्यानकार कवियों में नंददास तथा रीतिकारों में बिहारी प्रतिनिधि रूप में लिये जा सकते हैं अतएव ब्रजभाषा के इन्हीं तीनों कवियों की रचनाओं से ऐसे शब्द चुनकर प्रस्तुत किये जाते हैं।

सूर ^{१५}—खतियाना, अपुनपौ, कैती, चेटक, धगरी, सेत, महुरैटी, सिकहरै, विहजाना, सकाना, अजगुत, मौड़ा, उपरफट, खसमगुसैया, हटकना, टटकी, चिकनियाँ

मुहोंचही, गास, चोटी-गोटी, फग, खोचन, हॉक, डहकाना डोंगरी, अचगरी, अलकलडैते, अखूट, ढुह, अहीठ, ठगमूरी, साट, चाँडिले, गोंसो, खुटक, फेफरी, बुडकी, छोहरा, मकसकाना, झूखी, नौतम, फोकट, ठालीबैठी, जोगावगी, खिसियानो, टकटोरना, निटोल, फूचो . . . इत्यादि ।

नंददास ^{१६}—छिल्लर, निरवारि, चटसार, लरिकार्ई, लटक, फूलेल, खुभी, टौनी, गुड़ा-गुडी, थुरवाने, पृई, ठगौरी, झरमलतार्ई, उनहारी, अचरिज, टटावक, चुचाई, मुसकि, ठकुराईत, ढिग, पटबिजना, भीगुर, अहरनि, डहकि, नकवानो, होडनि, अरगाइ, उगहन, चटपटी, अटपटी, बजमारे, चुटिया, इत्यादि ।

बिहारी ^{१७}—मरक, होडाहोडी, खुभी, भौर, अनाकनी, बहाल, झूलमुली, टोडो, टलाटलीं, बरबट, चटपटी, एडी, आड, महावर वदाबदी, किरकिटी, चटकाहट, चहुटिनी, गदराने, गोरटी, हूयौ, इठलाइ, मुलकी, गुडहर, अनखाइ, लरिका, महदी . . . इत्यादि ।

इन दिये हुए शब्दों में सम्भव है कि कवियों ने कुछ अपने आप गढ़ लिये हों परन्तु सभी शब्दों की रूपरेखा स्पष्टतया लोक-सिद्ध, ठेठ और देशज लगती है ।

विदेशी शब्द

कृष्ण-काव्य में विदेशी शब्दों का सामान्यतः बहुत कम व्यवहार हुआ है । बहुत से कवि ऐसे हैं जिन्होंने विदेशी शब्दों का बहिष्कार सा किया है पर कुछ ऐसे भी हैं जिनके काव्य में कतिपय स्थलों पर इनका प्रचुर प्रयोग हुआ है । ऐसे स्थल अपवाद रूप में ही मिलते हैं ।

गुजराती कवियों में भालण ने 'कागळ' का प्रयोग अपने दशमस्कंध में किया है ।^{१८} 'कागळ' निश्चित रूप से अरबी 'कागद' का रूपान्तर है । नरसी ने दस्त होश, दील, नूर, शर्म जबाप, जकात, माल, हाल, फजेत, इजारे, मीरात, जैसे कई शब्दों का व्यवहार किया है जो सभी विदेशी हैं ।^{१९} प्रेमानंद के दशमस्कंध के अन्तर्गत 'खामी' 'नफेरी' आदि शब्द अपवाद रूप में ही मिलते हैं ।^{२०} परन्तु उनके रुक्मिणी-हरण में बाज, हौदा, नेजा, कांफला, अरज, सूवा, सरदार, उमराव, तलवार, रस्ता, कीनखाव, तैयार, वस्तर जैसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।^{२१}

ब्रजभाषा में मूर के काव्य में बहुत से अरबी-फ़ारसी शब्द व्यवहृत हुए हैं ।^{२२} 'साचो सो लिखवार कहावै' पंक्ति से प्रारम्भ होने वाले उनके एक ही पद में मसाहत, कैद, जहूतिया, कसूर, फरद, असल, अवारजा, मुजमिल, कुल्ल, बारिज, जमाखर्च

गुजरान, मुसाहिब और जबाब इत्यादि कई दुरूह विदेशी शब्द प्रयुक्त हुए हैं^{१५} ऐसे ही एक दूसरे पद में अमल, साबिक, मिनजालिक, बासिलवाकी, स्याहा, मुस्तौफी, मुहरिर जिम्मे आदि का प्रयोग हुआ है।^{१६}

‘गरीबनिवाज’, ‘दामनगीर’ तथा ‘शहर’ जैसी और भी कई शब्द सूर के काव्य में मिलते हैं।^{१७} नददास ने ‘गरज’, ‘लाइक’ ‘अरदास’ आदि का व्यवहार अपवाद रूप में ही किया है।^{१८} वल्लभरमिक की वाणी में स्याह, जुलफ, इष्क, शहर, मुष्किल, जाहर, परदा, हाल, महबूब, आशिक जैसे बहुत से शब्दों का व्यवहार हुआ है।^{१९} इसी तरह हरिदास के पदों में दर, पिरर आदि शब्द प्रयुक्त मिलते हैं।^{२०} बिहारी ने भी अनेक फारसी-अरबी शब्दों का व्यवहार किया है। उनके दोहों में दजाफा, हवाल, कबूलि, रोज और ताफता आदि क्लिष्ट-सरल सभी तरह के विदेशी शब्द मिलते हैं।^{२१} सदर्कै, निलाय, खानाजाद जैसे कुछ अरबी-फारसी शब्द मीरा के काव्य में भी पाये जाते हैं।^{२२}

फारसी के राजकीय भाषा होने के कारण तथा दरबारी प्रभाव के कारण बहुधा ऐसे शब्द दोनों भाषाओं में व्यवहृत हुए हैं। कवियों ने उनके रूप और ध्वनि में अपनी अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार परिवर्तन कर दिया है।

पर्याय शब्द

सूर्य, चन्द्र, कमल, भ्रमर, दिन, रात, नयन, मुख आदि अनेक शब्दों के अनेक पर्याय दोनों भाषाओं के कवियों द्वारा, अर्थ तथा छंद की आवश्यकतानुसार, बराबर प्रयुक्त हुए हैं। सबका परिचय देना संभव नहीं है अतएव दोनों भाषाओं से केवल ‘कृष्ण’ शब्द के पर्याय यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे इस सम्बन्ध की तुलनात्मक स्थिति का आंशिक परिचय निश्चित रूप से हो जाता है। दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में ‘कृष्ण’ से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई शब्द हो भी नहीं सकता।

गुजराती कवियों द्वारा कृष्ण के लिए विट्ठल^{२३}, त्रीकम^{२४}, सामलवान^{२५}, भूधर^{२६}, सालिग्राम^{२७}, और रणछोड़^{२८}, आदि कुछ ऐसे पर्यायों का प्रयोग व्यापकता से हुआ है जो या तो व्रजभाषा में प्रयुक्त ही नहीं हुए हैं या केवल अपवाद रूप में उपलब्ध होते हैं। ‘वीठल’, ‘सालिग्राम’ और ‘टीकम’, जो त्रीकम (त्रिविक्रम) का ही परिवर्तित रूप है, का व्यवहार मीरा की पदावली में मिलता है।^{२९} ‘वल्लभ’ शब्द के विविध रूप बाहला, बा’ला, बहालो नरसी के पदों में कृष्ण के लिए प्रायः प्रयुक्त हुए हैं।^{३०} इसी शृंखला में मीरा द्वारा प्रयुक्त ‘बाल्हो’ भी आता है।^{३१} प्रेमानंद

ने 'पाङ्कुरग' का प्रयोग किया है जो कदाचित् किसी अन्य कवि द्वारा प्रयुक्त नहीं हुआ—

मुने मळीया पाङ्कुरगा रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३३२

कृष्ण के विकृत रूप कहान, कहाना, आदि का प्रयोग भी गुजराती कवियों ने बराबर किया है।^{१०} ब्रजभाषा में इसी तरह कान्हा, कन्हैया, कन्हार्ई आदि का यत्नत व्यवहार हुआ है।

कृष्ण के लिए गुजराती कृष्ण-काव्य में बहुत से विष्णुवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं।

श्रीरंग, नारायण, माधव, गोविन्द, गरुडाग्रामि, हरि, भगवान्, श्रीकान्त, जगन्नाथ, श्रीपति, नरहरि, वैकुण्ठराय, वतुर्भुज, जगदीश, जुगजीवन, गरुडारूढ, केशव, श्रीनाथ, लक्ष्मीनाथ, कमलेश, कमलापति, लक्ष्मीवरा, पुरुषोत्तम, चक्रपाणी, अच्युत आदि। यह और पूर्वोक्त श्रीकम, विट्ठल, गारगपाणि आदि सब शब्द विष्णु के अवतारी तथा ऐश्वर्यशाली रूप से सम्बद्ध विविध वस्तुओं पर आधारित हैं। ब्रजभाषा में भी इनमें से अधिकांश शब्द व्यापक रूप से कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मुकुन्द, मुरारि, दामोदर, आदि कुछ अन्य शब्द भी दोनों भाषाओं में समान रूप में मिलते हैं। कृष्ण के लिए विविध प्रकार के सम्बन्धमूलक, नन्दकुमार, नन्द-किशोर, नन्दलाल, नन्दनदन, यशोदानदन, वामुदेव, राधावर, राधिकारमण, हलधर-नोर, बलवीर, गोपीनाथ, ब्रजविहारी, ब्रजराज, वनमाली, गोकुलराय, गोकुलनाथ, गोपाल, कुजविहारी, जादवराय, जदुनाथ, जदुपति, जदुनदन, तथा उनके सौन्दर्य एवं रूपगुण आदि को प्रकट करने वाले श्यामसुन्दर, श्याम, सुन्दरश्याम, घनश्याम, मावलिया, मनमोहन, मोहनलाल, रक्तिकशिरोमणि, मदनगोपाल आदि शब्दों का भी दोनों भाषाओं में व्यापक व्यवहार हुआ है। गुजराती में सौन्दर्यमूलक शब्दों में 'श्यामळा', 'अश्यामळिया', 'श्यामलवान' जिनका उल्लेख हो चुका है, का अधिक प्रयोग हुआ है और ब्रजभाषा में श्याम, घनश्याम आदि का। ब्रजभाषा में नाम के स्थान पर स्नेहसूचक लाल, लाड़िलो, प्यारो, जैसे कुछ शब्द भी सामान्य रूप से व्यवहृत हुए हैं। कृष्ण के लिए ब्रजभाषा में प्रयुक्त कदाचित् बहुत कम ऐसे शब्द हैं जो गुजराती कृष्ण-काव्य में न मिलते हों।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

लोक प्रचलित भाषा में लोक के अगणित अनुभव वाक्यों तथा वाक्यांशों के रूप में संचित होते रहते हैं जिन्हें लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों की संज्ञा दी

जाती है। इनमें लाक्षणिकता, अर्थ-गभीरता, वैचित्र्य तथा मार्मिकता के साथ सारल्य का अद्भुत योग रहता है। कभी-कभी इनकी सरलता साहित्य के शतश लाक्षणिक प्रयोगों से भी अधिक प्रभविष्णु सिद्ध होती है। दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में इनका पर्याप्त व्यवहार हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के बीच बहुत गहरी सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती फिर भी मामान्यतः जो अर्थ ग्रहण किया जाता है उसके अनुसार कहा जा सकता है कि गुजराती कृष्ण-काव्य में लोकोक्तियों का व्यवहार कम और मुहावरों का व्यवहार अधिक हुआ है। ब्रजभाषा में दोनों प्रायः समान अनुपात में व्यवहृत हुए हैं। गुजराती में भालण, नरसी और प्रमानंद को छोड़कर अन्य कवियों की भाषा में इनके बहुत कम दर्शन होने हैं। इसी तरह ब्रजभाषा में सूरदास और नन्ददास के द्वारा ही इनका विशेष व्यवहार हुआ है। गुजराती के उक्त कवियों द्वारा व्यवहृत कुछ लोकोक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

भालण ^{४१}—क. कीधु पोतानु पोते रे सहेवु।

ख. कालवश अे सकळ प्राणी कोण मारे, कोण मरे।

ग. जेने भावे बावल बोरडी ऊँट आगळ धरे पान।

घ. बेहुनी राठ माँहे बेहु जाणे वोजे नव लहेवाय।

नरसी ^{४२}—क. वात पकवान थी भूख न भागे।

ख. करनी तो कागनी होड करे हंसनी।

ग. तादुल मे री ने तुषवळगी रहे भूख नहि भागे अेम थोथे ठाले।

घ. परहरी वस्त्र ने वळगे चुथे।

ङ. अंधगुरुअे वळी निरंध चेला कर्पा।

च. आकना वृक्ष थी अमृत फळ तोडवा।

छ. सोनु ने सुगन्ध अेक छे रे।

प्रमानंद ^{४३}—क. पोपटी प्रसवे सुतने हुलावे होली।

ख. कीडी सचे ने तेतर खाय।

ग. अेक मारग ने बे अर्थ।

घ. सुख मां व्यापे क्रोध ने काम। दुखमां साभरे केशवराम।

ङ. छपाचे पोचे हाथो हाथ नु काम।

संभव है इन उक्तियों में सभी वास्तविक लोकोक्तियाँ न हो किन्तु कथन-शैली निश्चय रूप से लोकोक्तियों के सदृश है। कभी-कभी समर्थ कवियों के ऐसे कथन ही लोकोक्तियों का रूप धारण कर लेते हैं। ब्रजभाषा के कवियों में से, जैसा कहा जा चुका है, सूर और नन्ददास प्रतिनिधि रूप में लिए जा सकते हैं। यद्यपि परमा-

नन्ददास आदि अष्टछाप के शेष कवियों तथा अन्य पदकारों एवं रीतिकारों द्वारा भी लोक-प्रचलित उक्तियाँ काव्य में ग्रहण की गयी हैं तथापि उपर्युक्त दोनों कवियों का महत्त्व इस क्षेत्र में सर्वोपरि है, जैसा निम्नोद्धृत लोकोक्तियों से स्पष्ट प्रमाणित होता है—

- सूर “—क. दुरत नहि नेह अरु सुगन्ध चोरी ।
 ख. बीस विरियाँ चोर की तौ कबहुँ मिलि है साहु ।
 ग. जो जाको जैसो करि जानै सो तैसो हित पावै ।
 घ. सूर मिले मन जाहि जाहि सो ताको कहा करै काजी ।
 ङ. खाटी मही कहा रुचि मानै मूर खवैया घी को ।
 च. झूठी बात तुसीसी बिनकन फटकत हाथ न आवै ।
 छ. कहा कथन मौसी के आगे जानत नानी नानन ।
 ज. जैमो बीज बोइए तैसो लुनिए ।

- नन्ददास “—क. घर आयो नाग न पूजही बाँबी पूजन जाहि ।
 ख. बातन विजन कोन अघाये, काके हाथ मनोरथ आये ।
 ग. मृगतृष्णा कब पानी भई, काकी भूख मन लड्डवन गई ।

मुहावरो के सम्बन्ध की तुलनात्मक स्थिति के परिचय के लिए भी दोनों भाषाओं के पूर्वोक्त कवियों के काव्य से ही उदाहरण दिये गये हैं—

- भालण “—क. पडे ते झाखो थई ।
 ख. स्वप्ने नव सुणियुँ ।
 ग. लूण उतारे भामणा डाले ।
 घ. चोल तणो जेम चटको रे ।
 ङ. विण मूल्ये बेचाणी ।
 च. चांफे आगुली रे ते दाते ।
 छ. मीट माडी रह्या ।
 ज. नहि मुण्यो नव दीठो ।
 झ. ठाली जाउँ ।
 ञ. कहो तेवा सम खाउँ ।
 ट. पर थी घर वसे नहि ।
 ठ. न जाणे दूध न पाणी ।
 ड. घणे दिन हाथे चढी ।
 ढ. खात थाय ।

- ण. बला लउँ तारी हो ।
 न. अघा ने ज्यम लाकडी ।
 थ. जो कनक तोलो काय ।
 द. जो हिम गालो हाड ।

- नरसी—क. बोल्हो पीणी हाथ ।
 ख. करी दर्श बडी मा पाणी पाणी जी ।
 ग. कुशल छे बालगोपाल सहु ।
 घ. कान भकारा ।
 ङ. तागे हाथ अ आवे नही ।
 च. राड न कीजे ।
 छ. बूडता बाहेडी कुण सहासे ।
 ज. पोहो फाट्यु ।
 झ. शूँ मूछ मरडे ।
 ञ. थोथा ठाला खाड्या ।
 ट. खात भागे ।
 ठ. पार पाम्या ।
 ड. जेहने जे गमे ते ने पूजे ।
 ढ. सात साधु त्यारे तेर टूटे ।
 ण. रक मनावु त्यारे राय रुठे ।

- प्रेमानंद—क. नन्दजी राखो वाँधी मूठी ।
 ख. भडकी उठ्यो ।
 ग. पडी तेने पेटडीया मा फाळ ।
 घ. दाव पड्यो ।
 ङ. मरता ने शूँ मारो ।
 च. दाभ्या ऊपर लूण लाव्यो ।
 छ. बसवा लागी हाथ ।
 ज. जेवो ऊगे तेवो आथमे ।
 झ. वस्त्र नथी सम खावा ।
 ञ. भावट भांगशे ।
 ट. लोक हसाव्या ठीठी रे ।



सूरदास^{१९}— क. चाले जाउ भई पोइसि ।

ख. तुम सग रहै बलाइ ।

ग. है कछु लैन न दैनु ।

घ. दाई आगे पेट दुरावति ।

ङ. दूध दूध पानी सो पानी ।

च. पाँच की सात लगायो ।

छ. वातनि गही अकास ।

ज. सौह करन को आये ।

झ. कौन पै होत पीरीकारी ।

ञ. मीड़त हाथ ।

ट. कौड़ी हू न लहै ।

ठ. बहे जात माँगत उतराई ।

ड. चाम के दाम चलावै ।

ढ. दाधे पर लोन लगावै ।

ण मूरी के पातन के बदले को मुकुताहल दैहै ।

त मिलावत हौ गढि छोलि ।

थ. को भुस फटकै ।

द. अपनो बोयो आप लोनिए ।

ध. दाउँ दै हार्यो ।

नंददास^{२०}— क. पचि मरे ।

ख. हिय लोन लगावौ ।

ग. छुधित ग्रास मुख काढि ।

घ. गाठि की खोइकै ।

ङ. जबहि लौ वाँवी मूठी ।

च. करत नकवानी ।

छ. सिर धुनही ।

ज. बनि रह्यो बान ।

झ. फीक परी ।

ञ. टकी लगि जाइ ।

दोनों भाषाओं में प्रयुक्त लोकोक्तियों और मुहावरों को विहंगम दृष्टि से देखने पर अधिक सादृश्य नहीं दिखाई देता फिर भी कुछ लोकोक्तियाँ और मुहावरे प्रायः

एक जैसे ही है जैसे प्रेमानंद का 'घसवा लागी हाथ' और सूर का 'भीड़त हाथ'। जले पर नमक लगाने के मुहावरे को भी दोनों ही भाषाओं के कवियों ने अपने ढंग से प्रयुक्त किया है। यह सादृश्य भाषागत प्रयोग की सुसम्बद्ध परम्परा के द्योतक है। अधिकांश मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ दोनों भाषाओं के अपने-अपने प्रदेश की लोक-संस्कृति का परिचय देते हैं।

भाषा-शैली की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त भाषा सामान्यतः सरल और प्रवाहपूर्ण है। सूर के कूट पदों को छोड़ कर दोनों भाषाओं के किसी कवि ने क्लिष्टता और दुरुहता लाने की कही चेष्टा नहीं की। अधिकतर गीतात्मकता और कथात्मकता का निर्वाह होने के कारण गुजराती और ब्रजभाषा दोनों में एक अशिथिल प्रवहमानता उपलब्ध होती है जिसका व्याघात कुछ असमर्थ कवियों द्वारा ही हुआ है अन्यथा सभी समर्थ कवियों में उसका रूप अक्षुण्ण रहा है। प्रधानतया आख्यान-काव्य में प्रयुक्त होने के कारण गुजराती भाषा का स्वरूप अधिक व्यावहारिक है। ब्रजभाषा में व्यावहारिकता की अपेक्षा साहित्यिकता अधिक है। उसके आदि-कवि सूर में ही भाषा का स्वरूप साहित्यिकता की ओर बहुत झुका है। रीति-कवियों के हाथ में पहुँच कर ब्रजभाषा सर्वथा साहित्यिक भाषा बन गयी और क्रमशः उसमें कृत्रिमता का आग्रह बढ़ने लगा। इसके विरुद्ध प्रेमानंद की भाषा तत्सम शब्दों से पूरित होने पर भी उस अर्थ में साहित्यिक नहीं कही जा सकती जिस अर्थ में नंददास और बिहारी की भाषा। भालण, प्रेमानंद तथा उनकी श्रेणी के अन्य गुजराती आख्यान-कारों द्वारा प्रयुक्त भाषा प्रायः सहज प्रकृति की है और उसमें साहित्यिकता का प्रदर्शन सर्वत्र न मिल कर केवल कुछ विशेष स्थलों पर ही मिलता है जब कि ब्रज-भाषा के प्रमुख आख्यानकार नंददास की भाषा सर्वत्र सँवारी हुई है और पग-पग पर कवि के 'जड़िया' होने की घोषणा करती है। गुजराती के श्रेष्ठतम पदकार नरसी मेहता की भाषा भी आख्यानकारों की भाषा से बहुत अधिक दूर नहीं है। साहित्यिकता का पुट उसमें अवश्य है परन्तु प्रकृत रूप को उसने आच्छादित नहीं किया है। उनकी अपेक्षा सूर के पदों की भाषा अधिक समृद्ध, शक्तिसम्पन्न और अधिक साहित्यिक है। ब्रजभाषा के कवियों में भाषा का संस्कार करने की प्रवृत्ति प्रारंभ से ही मिलने लगती है जब कि गुजराती में कोई भी कवि इस सम्बन्ध में प्रयासशील नहीं दिखाई देता। भाषा के प्राकृत रूप पर ही गुजराती कवियों को गर्व रहा है। प्रेमानंद में यह भावना अत्यन्त मुखर होकर व्यक्त हुई

हैं। उन्होंने बार-बार संस्कृत की स्पर्धा में अपनी भाषा को प्राकृत कह कर प्रस्तुत किया है—

आ पासा व्यास बाँचे संस्कृत, आ पासा मारुं प्राकृत,
व्यासवाणी में जाणी यथा, तेवी प्राकृते जोडी कथा।

श्रीम०, भा० पृ० २५७

भालण ने प्राकृत और गुर्जर कह कर तथा नरसी ने प्राकृत और अपभ्रंश का नाम लेकर भाषा के प्राकृत स्वरूप की श्रेष्ठता का उद्घोष किया है—

क. प्राकृत ने प्रीछवा करी, गुर्जर भाषाओ विस्तरी।

—द० स्क०, पृ० ३११

ख. तेणे कृष्णनुं गमन कराव्युं ते प्राकृत मांय करिये रे।

—न० कृ० का०, पृ० ५६

ग. अपभ्रष्ट गिरा विषे, काव्य केवुं दिसे, गाय हिसे ने ज्यम तीर लागे।

—वही, पृ० ११७

भाषा तथा उसके प्राकृत रूप से सम्बद्ध ऐसी प्रबुद्ध चेतना तथा ऐसी सगर्व जागरूकता ब्रजभाषा के कवियों में उपलब्ध नहीं होती। ब्रजभाषा के भक्त कवियों में भाषा के प्रति गर्व तो नहीं किन्तु प्रेम अवश्य प्रतीत होता है यद्यपि रीति कवियों में केशवदास जैसे कवि भी मिलते हैं जिन्हें 'भाषा कवि' होने में शर्म आती है, क्योंकि वे ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थे जिसके दास भी संस्कृत छोड़ कर भाषा बोलना नहीं जानते थे। भाषा के सम्बन्ध में इस तरह की भावना अपवाद ही प्रस्तुत करती है क्योंकि अन्य रीतिकारों में कहीं भी ऐसा भाव नहीं मिलता। यह केशवदास की वैयक्तिक धारणा ही अधिक प्रतीत होती है, फिर भी गुजराती कवियों की धारणा के ठीक विरुद्ध होने के कारण काफी महत्वपूर्ण है। गुजराती कवियों द्वारा व्यक्त धारणाओं से स्पष्ट हो जाता है कि क्यों उनका झुकाव भाषा को प्राकृत रूप से दूर करके संस्कृत बनाने की ओर नहीं रहा। उन्होंने उतने ही अंश में अपनी भाषा को संस्कार दिया है जितना विषय-वस्तु तथा काव्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक था। भाषा के अलकरण की प्रवृत्ति भी इसीलिए गुजराती की अपेक्षा ब्रजभाषा में अधिक मिलती है जो अलकार-विधान के सम्बन्ध में दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है।

भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता दोनों भाषाओं में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। भाव-पक्ष के अन्तर्गत विवेचित, उद्धृत तथा सकेतित स्थल इसके प्रमाण हैं। सामान्यतया तत्सम और तद्भव शब्दों से मिली-जुली भाषा का व्यवहार हुआ

है परन्तु ऐसे स्थलों पर भाषा प्रायः अर्द्धविम, तत्समताहीन, लाक्षणिक तथा लोका-
क्तियों और मुहावरों से युक्त मिलती है। भाव-विश्लेषण के साथ साथ भाषा की
लाक्षणिकता और व्यञ्जना-शक्ति की ओर बराबर निर्देश कर दिया गया है। मूल,
भालण तथा प्रेमानन्द के पद इस तथ्य को विशेष रूप से प्रमाणित करते हैं। कवियों
ने भावों की कोमलता को व्यक्त करने के लिए शब्दों को विविध प्रकार से कोमल
बनाने का बराबर यत्न किया है। आजपूर्ण स्थल काव्य में अपेक्षाकृत कम है अतएव
भाषा में ओज की अपेक्षा माधुर्य और प्रसाद गुण का प्राधान्य स्वाभाविक रूप में मिलता
है। मयण जैसे कवि एक दो ही हैं जिन्होंने शृङ्गार-वर्णन के लिए भी ओजस्विन
भाषा और वीरोचित छंद का व्यवहार किया है। वस्तुगत और भावगत सुकुमारता
की छाया काव्य की भाषा पर बराबर परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ कवियों ने
कोमलता और सुकुमारता की व्यञ्जना के लिए शब्दों में 'ल', 'ड' या 'ड़' का संयोग
किया है। यह प्रवृत्ति गुजराती कवियों में बहुत अधिक मिलती है। भालण के गङ्गा
ही पद में 'नानडियो हैडु, पालणडु, घुंघरडी, आंसुडां, भामणडां, मावडी जैसे अनेक
शब्द प्रयुक्त हुए हैं।" नरसी ने इस प्रकार के शब्दों का और भी अधिक व्यवहार
किया है। उन्होंने प्रेमजन्य लघुता को सूचित करने के लिए कहीं-कहीं 'ड' और 'ल'
का एक साथ योग किया है। आँखडली, पाखडली, राखलडी, बाहुडली की तरह
बहुत से शब्द प्रमाण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। मधुर वर्णों के दोहरे योग
से बने इन शब्दों के अतिरिक्त एकहरे योगवाले तो अगणित मिलते हैं जैसे नानडीयो,
सेजडी, घुंघटडी, टीलडी, बासलडी, मारगडे, मरकलडो, दीवडीयो, बाहुडी, माइड'।
नरसी के यह सभी शब्द केवल चार पृष्ठों से चुने गये हैं।" इससे यह प्रमाणित
होता है कि इस प्रकार की शब्द-योजना उन्हें कितनी अधिक प्रिय थी और इसमें
उनकी भाषा का माधुर्य कितना अधिक बढ़ गया है। ब्रजभाषा के कवियों ने भी
शब्द-निर्माण की इस शैली का सम्यक् प्रयोग किया है परन्तु 'ड' और 'ल' के स्थान
पर 'ड़' और 'या' का योग मिलता है जैसे 'मावडी' के स्थान पर 'मैया' और 'कानडो'
के स्थान पर 'कन्हैया' तथा 'दुख' और 'मुख' से 'दुखडा' और 'मुखडा'। दीर्घ मात्राओं
को लघु करके भी ब्रजभाषा-कवियों ने अनेक शब्दों का निर्माण किया है। यथा अँमुवा,
निदिया, पगिया आदि। 'मेरे लाल को आउ निदरिया' में नींद को लघु बनाने के
लिए दोहरे वर्णों का योग हुआ है। 'दँतुलिया' आदि अन्य शब्द भी इसी प्रकार
बनाये गये हैं। भाषा को भावानुकूल और मधुर बनाने की यह एक शैली है।
कवियों ने कोमल एवं अनुनासिक वर्णों से युक्त शब्दों की आवृत्ति या शृंखलित संयोग
से भी स्थल-स्थल पर भाषा को मधुरता और कोमलता प्रदान की है। इस सम्बन्ध
में दोनों भाषाओं के कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं—

गुजराती

भालण—रणक झणक ककण क्षुद्रो, घटिका शो किकिणी ।

चरण ठवण हसगवण नेपुर धुणी धुणी ।

—द० स्क०, पृ० १२१

नरसी—ताळी देता तारुणी, झाजरनो झमकार ।

कटि किकणी रणअणे, घुघरीना घमकार ।

—न० कृ० का०, पृ० १६३

प्रेमानंद—शणगार साजे, रूप राजे, गाजे घुघरु पाय ।

ठमक अणवट झमक झाझर छमक पहानी थाय ।

—श्रीम० भा०, पृ० २८६

ब्रजभाषा

सूरदास—१. जननि कहति नाचौ तुम देहौ नवनीत मोहन,

ननुकु झुनुकु चलत पाँडन चायन नूपुर बाजै ।

—सू० सा०, पृ० १५०

२. पायन नूपुर बाजई कटि किकिनी कृजै ।

नन्ही एडियन अरुणता फलबिबन पूजै ।

—वही, पृ० १४७ ।

नंददास—नूपुर, ककन, किकिनि, करतल मजुल मुरली ।

ताल, मृदंग, उपग, चग एकहि सुर जुरली ।

...तैसिय मृदु-पद-पटकनि चटकनि कटतारनि की ।

लटकनि, मटकनि, झलकनि, कल कुंडल हारनि की ।

—नंद०, पृ० २७६

ब्रजभाषा का माधुर्य सुविदित है परन्तु गुजराती भाषा में भी पर्याप्त माधुर्य मिलता है जो उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है । प्रधान कवियों को छोड़कर सामान्यतया गुजराती कवियों ने भाषा को मधुर बनाने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है जबकि ब्रजभाषा में सुकुमार वर्ण-योजना और मधुर पदावली के विन्यास की ओर कवि प्रायः सजग रहे हैं ।

रूप-शृंगार वर्णन करने में कवियों ने तत्सम और आलंकारिक भाषा का व्यवहार किया है परन्तु साधारण कथा-वर्णन या वस्तु-निर्णय में भाषा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है और फलतः शिथिलता, नीरसता, अतगढपन, असमर्थता तथा अपरिपक्वता रह रह कर झलकती है । यह दोष साधारण कोटि के कवियों में तो मिलते ही हैं, कहीं कहीं सूर, भालण और प्रेमानंद तक में प्राप्त हो जाते हैं ।

कथा-वर्णन में मूर की भाषा उतनी ही शिथिल मिलती है जितनी भाव-वर्णन में प्रवाहपूर्ण और सशक्त। विषय के अनुसार भाषा का रूप तो बदला हुआ मिलता ही है, साथ ही उसको चित्रात्मकता और सजीवता में भी उत्कर्ष-अपकर्ष होता जाता है।

विविध भाषाओं का मिश्रण

भाषा के सम्बन्ध में अभी तक जिस स्वरूप-परिवर्तन का उल्लेख हुआ है वह शैली की विशेषता कहा जा सकता है परन्तु दोनों भाषाओं के कई कवियों ने एक भाषा का प्रयोग करते करते बीच-बीच में किन्हीं अन्य भाषाओं का जो मिश्रण अथवा प्रयोग किया है वह किसी की दृष्टि से शैली की विशेषता नहीं माना जा सकता। एक तो इस मिश्रण का कोई उद्देश्य लक्षित नहीं होता, दूसरे वह सर्वत्र मिलता नहीं। कवि-विशेष के स्वभाव से भी इसका सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो पाता अतएव विविध भाषाओं के मिश्रण को एक 'विविधता' मात्र कहना उचित होगा। इस मिश्रण के मूल में जो कारण निहित हैं वे शैली-तत्त्व से सर्वथा भिन्न हैं।

ब्रजभाषा के कुछ कवियों ने पंजाबी का मिश्रण किया है और गुजराती के कुछ कवियों ने मराठी का। संस्कृत का आभास उत्पन्न करने की चेष्टा कतिपय स्थलों पर दोनों भाषाओं में मिलती है। गुजराती के कई कवियों ने ब्रजभाषा का व्यवहार किया है। ब्रजभाषा के कवियों द्वारा गुजराती में काव्य-रचना तो नहीं हुई परन्तु कुछ गुजराती शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है। मीरा की स्थिति सबसे पृथक् है क्योंकि उनके काव्य में ब्रजभाषा राजस्थानी तथा गुजराती तीनों का व्यापक मिश्रण है और आशिक रूप से पंजाबी का भी। आगे भाषाओं के मिश्रण से सम्बन्धित सारी स्थिति का पृथक्-पृथक् निरूपण किया गया है।

पंजाबी का मिश्रण—ब्रजभाषा के साथ पंजाबी का मिश्रण वल्लभरसिक, पोताम्बरदेव और मीरा के काव्य में कतिपय स्थलों पर मिलता है। शब्दावली, बहुवचन तथा विभक्तियों आदि के पंजाबीपन के कारण ऐसे स्थल स्पष्टतया अलग प्रतीत होते हैं यद्यपि वे लिखे स्वतन्त्र रूप से नहीं गये हैं। ऐसे स्थलों से चयित कुछ पक्तियाँ दर्शनीय हैं—

क. पंथ असाडे कोई पैर न रखो अमी लखि लखूँ लोग हँसाए ।

नेह नगर दे अदर नू असी शिरदे पैर चलाए ।

आह पवेननि वाह की सीदा अमी तिस्सी राहों चल्लौ ।

इष्क दिलाँ दे नाले नाले महबूबों दी गल्लौ ।

स्याह जुलफ छल्ले जिस छल्ले असी धर सल्ले तिसी महल्लौ ।

वल्लभरसिक रूमाल लाल पर भूमि हमेसै झल्लौ ।

—श्रीव० २० वा० पृ० ३९

ख. ऐसी तू चिपटी दिल दी सुइयो काली कमली कीती है ।
हुण आशानू जावन आवेनै अग अंग करि जीती है ।
...ऐसी तू साडे लखना नू तू जाना काहू दाना ।
तू तो ढोल बजदा चोरा चसमो बीच छिपाना ।
तेरे दिल बिच दया दरद ना डारा फंद निमाना ।
पीताम्बर ते राजस जग में गाया वेद पुराना ।

—नि० मा०, पृ० ३०८

ग. हो काँनौं किन गूँधी जुल्फों कारियाँ ।
मुवर कला प्रवीन हाथन सँ, जसुमतिजू ने सँवारियाँ ।

—मी० प०, पृ० ५७, पद १६५

लागी सोहो जाणै, कठण लगण दी पीर ।

विपति पड़्या कोइ निकटि न आवै 'सुख में, सब को सीर ।

—वही, पृ० ६६, पद १९१

मराठी का मिश्रण—मराठी की षष्ठी विभक्ति का व्यवहार गुजराती कवियों में भीम, नरसी और केशवदास द्वारा हुआ है—

क. भीमचइ-स्वामी श्रीकृष्णइ ससार सागर तारी ।

—रि० बो०, पृ० १५५

ख. महारा वहालाजीमा कुसुमचो भार नही रे ।

नरसैवाचो-स्वामी भले मलीयो, सुखकरो गोकुल राइ रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २०७

मनमथचो पीड दोहली देखी जोवन न रहे झालु रे ।

—वही, पृ० ३५७

कंठडाचो भूषण सजनी ।

—वही, पृ० ३९३

अंगभीडी आलिंगन लीधु चोलीयाचो कस तूटी गई ।

—वही, पृ० ३७३

ग. केशवदास चो स्वामी, सेवक काजे रे राम ।

—श्रीकृ० ली० का० पृ० ४०

गुजराती के अनेक कवियों ने कृष्ण के लिए 'बिट्ठल' शब्द का प्रयोग किया है जिमकी और सकेत पर्याय शब्दों के प्रसंग में किया गया है।

गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध पारखी तथा प्रमुख भाषा-शास्त्री न० भो० दिवे-टिया के मत से 'चो' 'ची' 'चा' तथा 'बिट्ठल' का प्रयोग गुजराती पर मराठी भाषा के प्रभाव का निश्चित प्रमाण नहीं है।^{१३} नरसी मेहता के पदों में कुछ स्थलों पर जो मराठीपन मिलता है वह उक्त लक्षणों तक ही सीमित नहीं है, जैसा नीचे लिखे पदांशों से प्रकट है—

आपुला मंदिरमां हो, सखी जालवरे दीवडो ।

घणे दहाडले पीयु प्राहुणला आव्या, आदर गोरवा दीजे ।

—न० कृ० का०, पृ० ४१७

अतंग आहेडीजे जाल मांडीला पंखी कामीजन आवीला ।

जुगत करी जुवती जोता, ततक्षणुं पासे पाडीला ।

घन स्तन भार भरीला, कामीजन आप विसरीला ।

शरणे तुमारे आवीला, नरसैयाचे स्वामी विसरी गेइला ।

—वही, पृ० ५०१

संस्कृत का मिश्रण—दोनों भाषाओं के अनेक कवि संस्कृत के ज्ञाता थे और कुछ ने तो संस्कृत में काव्य-रचना भी की है जैसे ब्रजभाषा में हितहरिवंश और गुजराती में केशवदास। हितहरिवंश ने 'राधासुधानिधि' की रचना की है और केशवदास ने 'श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य' में भीमकृत 'हरिलीलापौडशकला' की तरह बीच बीच में जो अनेक संस्कृत श्लोक सगुणित किये हैं उनमें से 'सोल स्वयकृत संस्कृत' लिखकर सोलह को स्वरचित स्वीकार किया है।^{१४} यहाँ भाषा के कवियों की संस्कृत रचनाओं का परिचय देना अभीप्सित नहीं है वरन् संस्कृत की ओर उनके झुकाव की ओर संकेत कर देना ही इष्ट है। इन कवियों के भाषा-काव्यों में कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जो संस्कृत के नियमों के अनुसार बने हैं। हरिवंश ने 'नेति नेति वर्दति' तथा 'पशुरिव' लिखकर और केशवदास ने 'निरीक्षणे' 'यमुनातटे' 'वनितया' तथा 'तन्त्री ताबुलवर्जितं च बहुल' जैसे शब्दों एवं शब्दसमूहों का प्रयोग किया है।^{१५} जिन कवियों ने 'गाथा', 'गाहा' या आर्या छंद का व्यवहार किया है उन्होंने कही-कही चरणान्त के शब्दों को संस्कृत की द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप दे दिया है। पृष्ठ १६५ पर सूरसागर में भी एक पद में 'पारपार' 'आधार' जैसे रूप

बनाये गये हैं । ब्रजभाषा के कवि गदाधर भट्ट की वाणी में संस्कृत के कई पद मिलते हैं ।^{१६} कहीं कहीं उनके ब्रजभाषा के पदों में संस्कृत का आभास मिलने लगता है—

रूपवलकोटिकन्दर्पदर्पापर हरध्यात पद कमल विश्वबधो !

नामआभासअधरासि विध्वंसकर सकल कन्याण गुनग्राम सिंधो !

—श्रीगदा० बा०, पृ० १३

गुजराती कवियों द्वारा ब्रजभाषा का प्रयोग एवं मिश्रण

१. भालण—१५ वीं शती के कवि भालण के दशमस्कंध में भालण की ही छाप से प्राप्त होने वाले ब्रजभाषा के छे पदों की ओर प्रथम अध्याय में ही संकेत किया जा चुका है । दशमस्कंध के सम्पादक हरगोविंद द्वारकादास कांटावाला के मत से भालण 'ब्रजभाषामा सारी कविता करतो हतो. तेनी प्रतीति दशमस्कंदमा रचेली हिन्दी कविता उपरथी थाय छे' ।^{१७} अर्थात् भालण ब्रजभाषा के सुन्दर कवि थे जिसकी प्रतीति उनके दशमस्कंध में प्राप्त होने वाली हिन्दी कविता से होती है । दशमस्कंध में ब्रजभाषा के चार पद एक साथ मिलते हैं और दो अलग अलग ।^{१८} एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है जिससे भाषा विषयक स्थिति का ठीक ठीक अनुमान हो सके—

कोन तप कीनो री, माई नंदवरणी ।

ले उछग हरि कु पयपावत, मुखचुवन मुख भीनो री ।

तृप्त भये मोहनजू हसत है, तब उगमत अधर ही फीनो री ।

जशोंमती लटपट पूछन लागी, वदन खेचि तब लिनो री ।

रिदे लगाये बदजू मोहि तु कुलदेवा दीनो री ।

सुन्दरता अंग अंग कहा वरनू, तेजही सब जुग हीनो री ।

अतरिक्ष सुर इन्द्रादिक बोलत, ब्रज जन को दुख खीनो री ।

इह रस सिंधु गान करी गाहत हे, भालन जन मन भीनो री ।

—द० स्क०, पृ० ५३-५४

यह पद इसलिए और भी उद्धृत किया गया है कि इसकी प्रथम पंक्ति का, भालण की गुजराती में रचित, निम्न पंक्ति से अद्भुत सादृश्य मिलता है—

शां तप कीधा ते कामिनी रे, थइ सुन्दरवर नी माय ।

—द० स्क०, पृ० ३६

तुलना करने पर लगता है जैसे दोनों एक ही कवि के द्वारा रची गयी हो । भालण के दशमस्कंध में अन्य अनेक प्रयोग मिले हैं जिनका स्वरूप गुजराती के अनु-

कूल न होकर ब्रजभाषा के अनुकूल हैं। उदाहरणार्थ 'नद केरे आंगणे' (पृ० ३२:) मोरलीनो रस लेत (पृ० ६९), मटुकी (पृ० १३८, १५०), हुलराव्यो (पृ० १९०), आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है। भालग छाप वाले ब्रजभाषा के पदों में गुजराती का मिश्रण नहीं मिलता। विभक्तियाँ और क्रियापद ब्रजभाषा के ही हैं, केवल ध्वनि का नगण्य अन्तर कहीं कहीं मिलता है। यह सभी पद वात्सल्य भाव से सम्बन्ध हैं। वात्सल्य भाव भालग के अन्य गुजराती पदों में भी प्रमुख रूप से मिलता है।

२. नरसी—इसी तरह नरसी मेहता कृत काव्य-संग्रह में नरसी की छाप वाले दो ब्रजभाषा के पद मिलते हैं, जिनकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

क. साखी—पीय नग अंकात रस विलसत राधा नार।

कंध चडावन को कहौ ताते तजी गये जु मोरार।

बाल—ताने तजी गये जु मोरारी, लाल आय संग ते टारी।

त्याँ ओर सखी सब आई, क्याह देख्यो मोहनराई।

साखी—प्रेम प्रीत हरि जानके, आअे उनके पास।

मुदित भई त्या भामनो, गुण गावे नरसैयोदार।

—न० कृ० का०, पृ० १०८-११०.

ख. वसंत विवाह आदर्यो हो हो, आदर्यो रे परणे छे नदजी को लाल।

जैसो मुन्दर श्याम बन्धो हे ऐसी बनी राधेनार बल जाऊँ।

पहेलो परण्यो महेता नरसीनो स्वामी पछी परण्यो आ सकल संसार।

—वही, पृ० २५३

नरसी के एक अन्य पद में ब्रजभाषा के अनुकूल शब्द प्रयुक्त हुए हैं—

वृन्दावननी कुंजगलनमे महिडाँ बेचण रे।

महि मटुकी शीर पर लीखी चाली वतनी बाटे रे।

—वही, पृ० ५८४

३. केशवदास—केशवदास के श्रीकृष्णकीडाकाव्य में केवल दो स्थलों पर ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। पहले स्थल पर राधा की मानलीला के सम्बन्ध का एक पद दिया है, तदुपरान्त एक निश्चित क्रम से कारिका की एक एक पंक्ति के पश्चात् श्लोक की चार चार पंक्तियाँ दी गयी हैं। इस प्रकार चालीस पंक्तियों का ब्रजभाषा में रचित यह दूसरा पद प्राप्त होता है जो यशोदा और गोपी के संवाद रूप में निर्मित हुआ है। दोनों पदों के प्रारम्भिक अंश परिचय के लिए नीचे दिये जाते हैं—



भालण का ब्रजभाषा में लिखित पद

ह॥३॥मोर पीछुं जफललोत्तेशवनावनउचिलरत्नलं
 म॥भालण प्रभुबीधाताकी गतिचरित्रतुसारहेसववां
 । ह॥४॥१२४॥रागसारंग॥कहोमैयाकेसेसुषपाउ॥६॥
 दिनसुलोकसीदामाषेलनमंगकोनयेजाउ॥कहो॥१॥
 नादिनयेहेहेवेवृजवावामीनके॥यांदांचोरचोरदा
 माषनषाउ॥नादिनहंदाबनअतिवन्नयाकारनहूं
 अचराउ॥कहोमैयाकेसेसुषपाउ॥१॥नादिनहंदावेगो

—भालण कृत दशमस्कंध की एक प्राचीन प्रति का,
 भालण छाप वाले ब्रजभाषा के पद से युक्त पृष्ठ ।

प्राप्ति-स्थान—संग्रहालय, गुजरात-विद्या-सभा, अहमदाबाद

ह० प्र० नं०—४७४ (आदि त्रुटक)

रचनाकाल—अज्ञात

क. त्यज अभिमान गोवाली, घर्य आयो वनमाली ।

याके चरण चतुर्मुख सेवे, किकर होय कपाली ।

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १०९

ख कारिका—सुन हो यशोमनि माय, कृष्ण करत हे हे अति अनिआय ।

त्रोटक—कृष्ण करत हे अन्याय अतलीबल, गोपी को कह्यो न माने ।

देखन लोक, लाज कुछूँ नही, नार्य बोलावत ही शाने ?

हम गुनवनो सती सुलखणी, यह विध्य रह्यो न जाय ।

कोपहि काल्य सुनेगो कंसासुर. सुन हो यशोमनि माय ।

—वही, पृ० १०९

केशवदास के इन पदों में गुजराती गैत्री और गुजराती शब्दों का स्पष्ट मिश्रण हुआ है । पहले पद का ध्रुवा दूसरे पद में कारिका और त्रोटक का क्रम तथा 'माकड़', 'शाने', 'भोहोटी', 'कामणगारो' जैसे शब्दों का प्रयोग इस मिश्रण को प्रमाणित करता है ।

दूसरे स्थल पर प्रारंभ में कडवा और त्रोटक के क्रम वाला एक पहले जैसा दीर्घ पद मिलता है तथा अंत में एक 'सवाइयो' दिया हुआ है । इस स्थल पर भी भाषा में मिश्रण हुआ है । कडवा तथा त्रोटक का कुछ अंश और सवाइयो की चारो पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

क. कडवा—सुनो मेरे सैया यादव रैया, गोकुल रहीये, लागूँ पैयाँ ।

त्रोटक—लागीये पैया हरि न जैहे, बात यह मन जाणी हे ।

उन क्रूर के अक्रूर का विसास कछु न आणी हे ।

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १२३

ख. गोकुल सकल विकल विदरसन, छन अंक होत युगतर च्यार ,

सोइ अब दिवस मास गत होइ हे, जीये कयो मधुरी मुरार ?

केशोदास मली सब गोपो, रोओती दुख आगहे नदनार ,

कोइक भाग सुभाग हमारो, जो हरि आवे कंसासुर मार ।

—वही, पृ० १२४

केशवदास की रचना के सम्पादक अबालाल बुलाकीराम जानी ने 'निवेदन' में कवि के उत्कृष्ट ब्रजभाषा-ज्ञान की पर्याप्त प्रशंसा की है ।^{१९}

४. लक्ष्मीदास—भालण के दशमस्कंध में जिन लक्ष्मीदास की रासपंचाध्यायी प्रक्षिप्त मिलती है उनके द्वारा रचित कतिपय छोटे छोटे ब्रजभाषा के पदों की भी

सूचना मिलती है।^{१०} कुछ पदों की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है और कुछ से गुजराती का मिश्रण हुआ है। नीचे लक्ष्मीदास का एक पद उद्धृत किया जाता है—

आजु मेरे सफल भये नयन ।
कोटि मन्मथ रूप चतुर जु निरखे गीरिधर चित्र ।
कोटि रवि छवि जोति आनन अंबर कोटिक भिन ।
जन लक्ष्मिदास विचित्र तरुनि लिखि चित्र सो भिन ।
आजु मेरे सफल भये नयन ।

—क० च०, पृ० ३३३

इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा में रचित एक पद केदारा का, एक रामगरी का तथा एक कानरा का, और मिलता है।^{११} लक्ष्मीदास द्वारा लिखित चार ब्रजभाषा के 'सवाइआ' भी प्राप्त होते हैं। इनमें से एक दर्शनीय है—

अंबर चारू यू तडीत पीतांबर सुन्दर गढे टटिय भूना ।
कठ मनोहर हार बीजोतजलधर घोर छबी सूतना ।
सीर मोर के चद आनंद बदन कवल्ल भूजा लटकी फूँदना ।
लक्ष्मीदास किहि बली जाउ नरभेष घोषपति नद के ललना ।

—क० च०, पृ० ३६६

शास्त्री को इन पदों और सवैया के लक्ष्मीदासकृत होने में शका नहीं है। उनके अनुसार इनमें ब्रजभाषा का तत्कालीन रूप अपने ढंग से मिलता है।^{१२}

५. ब्रह्मदेव—ब्रह्मदेव की 'भ्रमरगीता' नामक कृति में भी एक पद ब्रजभाषा का प्राप्त होता है। पद का विषय वही है जो समस्त कृति का है। पूर्वापर प्रसंग की दृष्टि से भी पद उचित स्थान पर प्रायः अप्रक्षिप्त रूप में प्राप्त होता है—

प्रीत बनी है असी नीकी ।
नाही री उधो दिवस चार की, मोहे तो पेले भवकी ।
दिन-दिन प्रीति बदी जाअे उधो, तिल बयो आ तन छूटे ।
अबनिशि गाठ पड़ी माधो सु, नवि छूटे तन लूटे । प्री०
माधो बिन मेरे हँअे उधो उरना कोय सुहाये ।
विविध रूप छां री मेरे नयनां, स्वरूप क्याम को चाहे । प्री०
बचन पराये सुनत दुख उपजे हरिलीला बिन सोई ।
बेहदे प्रभु विनारी उभो, वानी सफल न होई । प्री०

—वृ० का० दो०, भाग १, पृ० ६७५

६. कृष्णदास—‘श्री रुक्मिणी विवाहना ‘पदों’ में, जो अनेक कवियों के पदों का एक छोटा सा संग्रह है, कृष्णदास की छापवाले दो तीन ऐसे पद मिलते हैं जिनकी भाषा ब्रज है। भाषा का सामान्य स्वरूप कुछ विकृत एवं अनिश्चित है। पदों की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

क. मिह-भक्ष को श्याल पावे मेरे तो पति अँक व्याम है।

कहत कृष्णोदास गिरिधर रुकमैयो शिशुपाल है।

—कडवुं० ६ ठु०

ख श्रीकृष्ण तहाँ रथ साज ठाड़े, सत्य करन प्रभु पातियाँ।

कहेत कृष्णोदास गिरिधर, बहोर सुनी द्विज बलियाँ।

—कडवुं० ६ ठु०

ब्रजभाषा के कवियों द्वारा प्रयुक्त कतिपय गुजराती शब्द

गुजराती कवियों द्वारा जिस रूप में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है उस रूप में किसी भी ब्रजभाषा कवि ने गुजराती का प्रयोग नहीं किया। बहुत खोजने पर कहीं एक दो शब्द ऐसे मिल पाते हैं जो गुजराती से आये प्रतीत होने हैं। सूरदास द्वारा प्रयुक्त ‘कापर’, ‘सोटे’, ‘आखौ’ तथा ध्रुवदास द्वारा प्रयुक्त ‘दोहिली’ शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं।^{१३} सूरसागर में सूर का ऐसा कोई पद नहीं मिलता जिसमें गुजराती का व्यवहार हुआ हो परन्तु भालण के दशम स्कंध में ‘सुरदास’ के नाम से दो गुजराती पद भी प्रक्षिप्त मिलते हैं।^{१४} यह अट्छापी सूर की रचना हों, ऐसा संभव नहीं दीखता। अतएव सूरदास नामक किसी अप्रसिद्ध गुजराती कवि ने इनकी रचना की हो, यही संभव है।

मीरा के पदों की भाषा

मीरा के पदों में कुछ गुजराती के, कुछ ब्रजभाषा के, कुछ राजस्थानी के और कुछ मिश्रित भाषा के पद मिलते हैं। प्रथम अध्याय में इस ओर संकेत किया जा चुका है। कुछ पदों में खड़ी बोली का पुट भी है। पंजाबी के प्रसंग में भी मीरा के पदों की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की गयी हैं। वस्तुतः मीरा के पदों की भाषा का स्वरूप बहुत ही अनिश्चित है। डाकोर वाली प्रति में उनके पदों की भाषा शुद्ध राजस्थानी है जबकि बृहत्काव्यदोहन में संगृहीत सौ से अधिक पद गुजराती के हैं। मीरा की पदावली जैसे संग्रहों में ब्रजभाषा के भी शताधिक पद मिलते हैं। डाकोर की प्रति स० १६४२ की बताई जाती है अतएव यदि वह प्रामाणिक है तो उनके पदों की भाषा राजस्थानी ही ठहरती है। स० १६९५ की गुजराती में प्राप्त एक प्रति

म जो उनके पद मिलते ह उनकी भाषा ब्रज ह किमी अन्य प्राचीन संग्रह म भी मीरा के गुजराती पद नहीं मिलते, गुजराती लिपि में लिखे पद अवश्य मिलते हैं। इस सारी स्थिति पर गुजराती के विद्वान मृशी के निम्नलिखित कथन में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—

“मीरां गुजराती न होती ज, अनेां पदो गुजरातीमां लखाया न होना अ मत् वास्तविक लागे छे। हाल अने नामे मडायलां पदो केटला अनेा ते पण नवकी करव मुक्केल छे। पण गुजरात मां शुद्ध-भक्तियो प्रचार सामान्य लोक मा जेटलो अनेा पदोअे कयो छे तेटलो नरसिंहना पदोअे पण कयो नथी.”^{१६}

अर्थ—मीरां गुजराती तो नहीं ही थी, उनके पद भी गुजराती में नहीं लिखे गये थे यह मत् वास्तविक लगता है। इधर इनके नाम से प्रचलित पदों में से कितने इन्हीं के हैं यह भी निश्चित कर पाना कठिन है। परन्तु यह मत् है कि गुजरात में शुद्धभक्ति का जितना प्रचार मीरां के पदों द्वारा हुआ उतना नरसी के पदों से भी नहीं हो सका।

मीरा के पदों में जो विविध भाषाओं का रूप मिलता है उसका कारण उनका बहु प्रदेशव्यापी प्रचार प्रतीत होता है, जैसा कबीर आदि कुछ अन्य कवियों के पदों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। जो भी कारण हो, प्रस्तुत अध्ययन में मीरा के पदों का अन्यतम महत्त्व है।

1

-

22

1

†

•

9

1

2

२५ अष्टाक्षर श्रीर वल्लभसम्प्रदाय. भाग २, पृ० ८८२

२६ वही, पृ० ८८८

२७ श्रीव० र० वा०, पृ० ३० ४०, ४१, ७६

२८ नि० मा० पृ० २०२

२९ बिहारी रत्नाकर पृ० ४ २२, २७ २८, ३४

३० मी० प०, पृ० २२ पद ५५

३१ हरि० पौ०, पृ० १४३, १७५, द० स्क०, पृ० ९८, १४६। श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३०, ४३, ४६
न० कृ० का०, पृ० ६५, १६३, ३०१, ३०७, ३४८, ३६२, ३६४, ४०४, ४०८, ४७१, ४९२
श्रीम० भा०, पृ० २८८; प्रेमानन्द कृत भास में कन्द संख्या ६२, सुदामाचरित में, वृ० का० दो
भाग १, पृ० २५०

३२ न० कृ० का०, पृ० ४७२ ४८८; श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३०, ४४; प्रेमानन्दकृत भास में कन्द
संख्या ७१

३३ हरि० पौ०, पृ० १४३, द० स्क०, पृ० १२, ६२, ९७, श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३०१

३४ हरि० पौ०, पृ० १४५, न० कृ० का०, पृ० ४७२, ४८०, ४८४, ४८५; श्रीकृ० ली० का०, पृ० २९

३५ हरि० पौ०, पृ० १४४, श्रीकृ० ली० का०, पृ० २६

३६ द० स्क०, पृ० २३०; न० कृ० का०, पृ० ८४, श्रीम० भा०, पृ० २४०, २४७, ३१६; वृ० का०
दो० भा० १, पृ० २४८

३७ मी० प०, पृ० १८, ४९, पद ४३, ४५ १३६

३८ न० कृ० का०, पृ० २०१, २०२, २०६ २०५

३९ मी० प०, पृ० ६२ पद ५४

४० द० स्क० पृ० ६२, न० कृ० का०, पृ० ३०५

४१ द० स्क०, क पृ० १०, ख पृ० १६, ग, पृ० १३७, घ. पृ० ११०

४२ न० कृ० का०, क पृ० ४८५, ख पृ० ४८४, ग. पृ० ४८५, घ पृ० ४८५, ङ. पृ० ४८०

च पृ० ४८८, छ पृ० ५२२

४३ श्रीम० भा०, क. पृ० २४१, ख पृ० २४१, ग. प्राचीन काव्य माला पृ० ११३, घ. वृ० का० दो०
भाग १, पृ० २५६, ङ. वही, पृ० २८४

४४ सूरदास, डॉ० प्रलेखर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५२८

४५ नन्द०, प पृ० १२७, ख पृ० ११, ग पृ० १२

४६ द० स्क०, क पृ० ६, ख पृ० ११, ग. पृ० ५६, घ पृ० ६६, ङ पृ० ७१

च पृ० ७३, छ पृ० ७४, ज पृ० ७७, झ पृ० ९१, ञ पृ० ६५७

ट पृ० ९६, ठ पृ० ६६, ड पृ० १००, ढ. पृ० ११५, शा पृ० १६

त. पृ० १७२, थ पृ० २२३, द पृ० २२२

४७. न० कृ० का०, क. पृ० ६५, ख. पृ० ११८, ग पृ० १५६, घ. पृ० २७३, ङ. पृ० ३१६

च. पृ० ४६२, छ पृ० ४७५, ज पृ० ४७६, झ. पृ० ४७६, ञ पृ० ४७७

ट. पृ० ४८२, ठ पृ० ४८३, ड पृ० ४८५, ढ पृ० ४८५, शा पृ० ४८६

१८ श्रीम० भा०, कं. पृ० २५२,	ख पृ० २७२	ग. पृ० ३२५,
घ. पृ० ३०६,	ङ पृ० ४२०	च पृ० ६३०,
छ मास छ० सं० ४५,	ज वृ० का० दो०, भा० १ पृ० २७०	
झ वही, पृ० २४०,	ञ. वही, पृ० २४१,	ट. श्रीम० भा० पृ० ३२७

४६. सूरदास : डॉ० अजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५२६, ५२८

५० नद०, क. पृ० १२७ ख. पृ० १३०, ग. पृ० १३३, घ. पृ० १३८, ङ पृ० १४०,
च. पृ० ३३, छ पृ० २ ज. पृ० ३, झ पृ० ७, ञ. पृ० १४३

५१. द० स्क०, पृ० १३

५२ न० कु० का०, पृ० १७०, १७१, १७४, १७५

५३ गुजराती लैंग्वेज एगड लिटरेचर, पृ० ६०-६७

५४ श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३११

५५ श्रीहितचौरासी पद, ११, ५२, श्रीकृ० ली० का०, पृ० १००, १०२, छं० सं० ४१, ४२, ५१

५६ श्रीगदा० वा०, पृ० ६, १०, १६, १८, १९

५७ द० स्क०, प्रारभ में दिया हुआ 'कविचरित्र', पृ० ५

५८ द० स्क०, पृ० ५३, ५४, ५९९, २०१, २०७

५९ श्रीकृ० ली० का० प्रारभ में दिया हुआ 'निवेदन', पृ० १३

६०. कविचरित, भाग २, पृ० ६६५

६१ वही, पृ० ३६६

६२ वही, पृ० ३६७

६३ सु० सा०, पृ० १३२, ४८९, ६५५, प्रीतिचौवन्ती. छ० सं० ३३

६४ द० स्क०, पृ० २२३, २२४

६५ गुजराती साहित्य, खंड ५ भा०, पृ० ६४७

उपसंहार

उपसंहार

गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में प्रस्तुत, भावगत और विचारगत जो व्यापक साम्य मिलता है वह दोनों भाषाओं से सम्बद्ध प्रदेशों की सांस्कृतिक एकता का परिणाम है। यत्र तत्र जो थोड़ा सा वैषम्य प्राप्त होता है वह दोनों प्रदेशों की संस्कृति की क्षेत्रीय विशेषताओं पर आधारित है। सारी परिस्थिति पर गंभीरता-पूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि साम्य आन्तरिक है और वैषम्य अपेक्षाकृत बाह्य। इस साम्य और वैषम्य में गुजरात तथा ब्रज की भौगोलिक स्थिति का बहुत बड़ा हाथ रहा है जिसके कारण दोनों का सांस्कृतिक सम्बन्ध इतनी मात्रा में सम्भव हो सका। यह सम्बन्ध धर्म, राजनीति, भाषा और साहित्य आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यक्त हुआ। कृष्ण का यादवों समेत मथुरा को छोड़कर द्वारका में जा बसना एक ऐसी घटना है जिसे दोनों प्रदेशों के सांस्कृतिक सम्बन्ध के प्रतीक रूप में ग्रहण किया जा सकता है।^१ कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा है और देहोत्सर्ग भूमि गुजरात। काठियावाड़ में प्रभास से कुछ मील दूर एक स्थल आज भी दिखाया जाता है जहाँ श्रीकृष्ण शर-विद्ध होकर गिरे थे।^२ इसी तरह मथुरा के इतिहास में कृष्ण के महाभिनिष्क्रमण को बहुत महत्वपूर्ण घटना माना जाता है।^३ कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण ही मथुरा और द्वारका दोनों को भारतवर्ष की सात मोक्ष-दायिका पुरियों में स्थान मिला है।^४ कृष्ण के समय की द्वारावती और वर्तमान द्वारका की स्थिति में भेद माना जाता है फिर भी आधुनिक द्वारका का इतिहास २००० वर्ष प्राचीन कहा जा सकता है।^५ मथुरा से द्वारका तक के सुविस्तृत क्षेत्र में कृष्ण-भक्ति अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित रही जिसके अनेक प्रमाण पुरातत्व विज्ञान की खोजों में मिलते हैं। मथुरा क्षेत्र में कृष्ण-बलराम की कई मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। एक शिला-पट्ट पर नवजात कृष्ण को लिए वसुदेव के यमुना पार करने का दृश्य अंकित मिलता है और एक गुप्तकालीन मूर्ति कालीय-दमन की भी मिली है।^६ गुजरात क्षेत्र में कालीय मर्दन और गोवर्धन धारण विषयक अनेक प्रतिमाएँ अथवा प्रस्तर आलेखन आबू, मनोद, सोमनाथ तथा मांगरोल नामक स्थानों पर मिले हैं।^७ कृष्ण का 'त्रैलोक्यमोहन' रूप तो केवल गुजरात में ही उपलब्ध होता है।^८ कृष्ण की चतुर्भुज और द्विभुज मूर्तियाँ विष्णु से उनकी एकता प्रमाणित करती हैं। गुजरात में कृष्ण-भक्ति के प्रचार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण अनावड़ा से प्राप्त वि०

स० १३४८ के शिला लेख से मिलता है जो शांगदेव से सम्बद्ध है। इस लेख का प्रारम्भ 'वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूभारमुद्धिभ्रते' से होता है। यह जयदेव के 'गीत-गोविंद' की पक्ति है। इस शिलालेख से एक कृष्ण-मन्दिर के होने की भी सूचना मिलती है।^१

दामोदार की उपासना के भी कई प्रमाण मिलते हैं। गिरनार में प्राप्त होने वाला स० १४७३ का एक शिलालेख दामोदार कृष्ण की स्तुति से प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार द्वारका में रणछोड़राय का महत्व है उसी प्रकार जूनागढ़ में दामोदर का। जैन कवियों ने 'दामोदरहरि पंचमऊ' के द्वारा दामोदर को भारतवर्ष में प्रसिद्ध कृष्ण या विष्णु के चार स्वरूपों, जगन्नाथ, बदरी केदारनाथ, रणछोड़राय तथा विठोबा के बाद पाँचवाँ स्थान दिया है।^{१०} कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु के अन्य रूपों की उपासना का भी विकास इस क्षेत्र में समान रूप से हुआ है। भडारकर, रायचौधरी तथा दुर्गा-शकरशास्त्री द्वारा वैष्णवधर्म की उत्पत्ति और विकास का जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उसमें इस सत्य को प्रकट करने वाली सामग्री यथेष्ट मात्रा में मिलती है जिसका उल्लेख यहाँ संभव नहीं है। कृष्ण-भक्ति और वैष्णवधर्म से इतर शैव तथा जैन धर्म के द्वारा भी मध्यदेश और गुजरात परस्पर सम्बद्ध रहे। प्रभास के सोमनाथ से लेकर काशी के विश्वनाथ तक शैवोपासना का एक ही स्वर गूँजता रहा। मथुरा का आधुनिक ककाली टीला प्राचीन समय में जैनियों का बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। गुजरात तीसरी शताब्दियों तक जैनधर्म की श्वेताम्बर शाखा का प्रधान आश्रयस्थल रहा। जैनियों के ९१ वें तीर्थंकर नेमिनाथ काठियावाड़ से ही सम्बद्ध थे। आचार्य हेमचन्द्र के समय में आकर जैनधर्म गुजरात का राजधर्म बन गया।^{११} गुजरात में ही जैन साहित्य में कृष्ण को स्थान मिला जिसका विशेष परिचय 'जैनागमो मे श्रीकृष्ण' शीर्षक लेख में अगरचन्द नाहटा ने दिया है।^{१२} आठवीं और दसवीं शती के जैन कवि म्वयभू और पुष्पदन्त आदि के काव्यों में विविध कृष्णलीलाओं का भी वर्णन मिलता है।^{१३}

राजनैतिक रूप में मध्यदेश और गुजरात अनेक बार अभिन्न रहे हैं। उग्रसेन ने कृष्ण की सहायता से द्वारका को राजधानी बना कर भी दूर तक फैले हुए यादवों पर शासन किया।^{१४} परशुराम का आतंक सहिष्मती से मिथिला तक व्याप्त था। पौराणिक काल के इन सम्बन्धों के बाद मौर्यकाल के सुस्पष्ट इतिहास से प्रमाणित होता है कि मध्यदेश के साथ ही चन्द्रगुप्त मौर्य का आधिपत्य आनर्त और सौराष्ट्र पर भी था तथा अशोक का साम्राज्य भी मध्यदेश से सौराष्ट्र तक विस्तृत था जिसकी साक्षी गिरनार के शिलालेख देते हैं।^{१५} चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में गुजरात

पुनः मध्यदेश से शासन की दृष्टि से अभिन्न हो गया और उज्जयिनी शासन का केन्द्र बनी। हणो के आक्रमणों द्वारा गुजरात से मथुरा तक का मारा भूभाग पादाक्रान्त हुआ।

राजपूताना और गुजरात दोनों पर आभीरों का आधिपत्य रहा। गुर्जर और प्रतिहारों ने अपना केन्द्र कन्नौज को बनाया।^{१६} नवी शती के दूसरे दशक से लेकर दसवी शती के पूर्वार्ध तक गुजरात कन्नौज से ही शासित होता रहा।^{१७} गुर्जरों का सम्पर्क ब्रजप्रदेश से इतना रहा कि आजतक ग्वालिन अथवा किसी सुन्दरी स्त्री के लिए 'गूजरी' या 'गुजरिया' शब्द प्रयुक्त होता है। मथुरा और सोमनाथ दोनों को महमूद गजनवी के आक्रमणों से ध्वस्त होना पड़ा जिसका प्रतिकार इस सारे भूभाग की जनशक्ति ने संगठित रूप से किया। गुजरात के अत्यन्त प्रतापी शासक सिद्धराज जयसिंह के शासन की सीमा मध्यप्रदेश में स्थित महोत्सवन्तगर (महोबा) तक विस्तृत थी।^{१८}

शासन के साथ ही गुजरात की सीमाएँ भी बदलती रही। प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से यह तथ्य अत्यधिक महत्व रखता है। ग्रियर्सन ने मध्यकालीन गुजरात को राजपूताने का एक भाग मात्र बताया है।^{१९} ऐतिहासिक दृष्टि से मध्यकालीन गुजरात की सीमा में खानदेश, मालवा तथा राजपूताने का दक्षिणी भाग भी सम्मिलित था। वर्तमान गुजरात की रूपरेखा तब तक निश्चित नहीं हुई जब तक वह मुगल साम्राज्य का अंग नहीं बन गया। अकबर ने सन् १५७३ में गुजरात के सूबे की नवीन सीमाएँ निर्धारित करके उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। गुजरात और मध्यप्रदेश पुनः एकसूत्र में बँध गये।^{२०} प्रस्तुत अध्ययन के लिए स्वीकृत शताब्दियों में यह राजनैतिक एकता पूर्णतया अक्षुण्ण रही।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है गुजरात और मध्यदेश का पश्चिमी भाग दोनों युगों तक और भी अधिक समीप रहे हैं। संस्कृत का प्रभुत्व प्राचीनकाल से ही दोनों प्रदेशों पर रहा परन्तु लोकभाषा का विकास जिस अप्रतिहत गति से इस भूभाग में हुआ वह विलक्षण है। यह लोकभाषा थी अपभ्रंश और इसे मूलतः आभीरों की भाषा माना गया है। भरत ने इसको 'आभीरोक्तिः' कहा और दंडी ने 'आभीरादिगिरः' बताया।^{२१} यह आभीरकौन थे इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वान इन्हे विदेशी मानते हैं और कुछ के मत से इनका भारतीय होना भी सम्भव है क्योंकि विदेशी होने का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।^{२२} आभीर गोपाल-कृष्ण या गोविन्द के उपासक थे।^{२३} इनका विस्तार गुजरात से लेकर

गूरसेन प्रदेश तक था और इनकी भाषा अपभ्रंश का प्रसार भी लाट, सुराष्ट्र, त्रवण, दक्षिणी पंजाब, राजपूताना, अवती और मदसोर आदि में था^{१४}। भंडारकर के मत से अपभ्रंश का विकास छठी या सातवीं शती में, उस भूभाग में हुआ जिसमें आज ब्रजभाषा बोली जाती है।^{१५} धूधी ने इसी मत को स्वीकार किया है।^{१६} यह शौरसेनी अपभ्रंश किसी समय गुजरात में भी प्रचलित थी।^{१७} राजपूताने से लेकर गुजरात तक पन्द्रहवीं शती के पहले एक ही भाषा का प्रचार था ऐसी टेसीटरी आदि कई भाषा-शास्त्रियों की धारणा है।^{१८} गुजराती और जयपुरी की सहायक क्रियाओं का रूप इसका प्रमाण है।^{१९} जयपुरी ही नहीं मालवी का भी गुजराती में घनिष्ट सम्बन्ध रहा।^{२०} ग्रियर्सन के अनुसार गुजराती अपनी मूल विशेषताओं में पश्चिमी हिन्दी के समीप है और उससे भी अधिक उसकी समीपता राजस्थानी से है।^{२१} 'हिन्दी काव्य-धारा' की अवतरणिका में राहुल सांकृत्यायन ने स्पष्ट लिखा है कि तेरहवीं शती तक गुजरात आज के हिन्दी क्षेत्र का अभिन्न अंग रहा है।

वस्तुतः पन्द्रहवीं शती से पूर्व की भाषा विषयक यह समीपता ही मीरा के पदों के गुजराती, राजस्थानी और ब्रज तीनों में पाये जाने का कारण है। साथ ही सारे प्रदेश की एकता का अन्यतम प्रमाण भी। प्रारम्भ से गुजरात में लोकभाषा के प्रति विशेष आकर्षण एवं अहं भाव मिलता है। भोजदेव ने अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गुर्जराः तथा राजशेखर ने संस्कृतद्विषः लिखकर इसी ओर लक्ष्य किया है।^{२२} भालण तथा प्रेमानंद आदि कवियों में लौकिक भाषा के प्रति जिस गर्व की भावना की ओर भाषा सम्बन्धी विवेचन करते हुए संकेत किया गया है उसकी प्रेरणा काफी गहरी है। लोक-भाषा की तरह लोक-चेतना से सम्बन्ध रखने वाला बहुत सा लौकिक और पौराणिक साहित्य दोनों प्रदेशों की समान सम्पत्ति रहा। लोक कथाओं के निर्माण में गुजरात का विशेष योग मिलता है। संस्कृत और प्राकृत का विपुल वार्ता-साहित्य इसी भूभाग में रचा गया और उज्जयिनी से उसे सतत प्रेरणा मिली। भोज और मुज की कथाओं ने सारे प्रदेश को प्रभावित किया।^{२३} हिन्दी साहित्य में प्रेमकथाओं और वीरगाथाओं की जो परम्परा मिलती है उसका पश्चिमी अपभ्रंश की रचनाओं से अभिन्न सम्बन्ध माना जाता है।^{२४}

पौराणिक साहित्य का इस क्षेत्र में विशेष प्रचार रहा है। महाभारत, हरिवंश और विष्णु आदि कई पुराण गुप्त-काल से ही गुजरात में व्याप्त हो चुके थे। यही नहीं हरिवंश, मत्स्य तथा मार्कण्डेय जैसे पुराणों के निर्माण में भी गुजरात ने योग दिया हो यह बहुत संभव है।^{२५} हरिवंश युक्त महाभारत तो शतसाहस्रीय संहिता अथवा पञ्चम वेद^{२६} माना जाता था। वायु, मत्स्य, मार्कण्डेय तथा ब्रह्मपुराण और कदाचित्

देवीभागवत भी मातवी गती तक जनप्रिय हो चुके थे। साहित्यिक जनता ने शताब्दियों तक विभिन्न पुराणों से प्रेरणा ली।^{११} आलोच्य काल तक भागवत के साथ साथ ब्रह्मवैवर्त तथा पद्म आदि अन्य पुराण भी गुजरात तक व्याप्त हो गये थे जैसा कि भालण, प्रेमानन्द तथा अन्य अनेक आग्रहानकारों द्वारा स्वीकार किया गया है। केशवदास ने अपनी रचना 'श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य' में भागवत ब्रह्मवैवर्त, आदि पुराणों के अतिरिक्त गर्गसंहिता को भी आधार बनाया है। ब्रज के कवि भी इन ग्रंथों से परिचित थे। रचनाओं का परिचय देते समय तथा वस्तु-विवलेषण के प्रसंग में इस ओर बराबर संकेत कर दिया गया है। भागवत का तो मध्यकालीन भक्ति साहित्य पर शताब्दियों तक अखंड राज्य रहा। इसका प्रभाव सभी पुराणों में अधिक व्यापक मिलता है। भक्तों का यह प्रधान उपजीव्य ग्रंथ था और विद्व-न्मंडली में भी इसकी महत्ता सर्वमान्य थी यह विद्यावतां भागवते परीक्षा से प्रकट है।^{१२} धार्मिक दृष्टि से इसे एक सीमा-चिह्न कहा जा सकता है। इसमें चार बल केन्द्रस्थ मिलते हैं। गृद्धभक्ति, उपासना-वृत्ति, पौराणिक बल और कला^{१३}। भारत की प्रमुख भाषाओं में इसके प्रचुर अनुवाद मिलते हैं। गुजरात और ब्रजप्रदेश में इसका प्रभुत्व और भी अधिक रहा। गुजरात में तो इसकी प्रसिद्धि दशवीं गती तक हो चुकी थी। मूलराज सोलंकी ने भागवत की ११०८ प्रतियाँ सिद्धपुर के ब्राह्मणों को दान दी थी।^{१४} एक विद्वान की धारणा है कि यदि गुजराती साहित्य में ने भागवत से अनुप्रेरित सारी रचनाओं को निकाश दिया जाय तो बहुत कम ऐसी रचनाएँ रह जायँगी जिन्हे साहित्य कहा जा सके।^{१५} गुजराती कृष्ण-काव्य पर दृष्टि-पात करने से ज्ञात होता है कि गुजरात न केवल भागवत से मुपरिचित था वरन् उससे सम्बन्धी अन्य साहित्य का भी उसे पूर्ण ज्ञान था। रत्नेश्वर ने भागवत की श्रीधरी टीका को अपने अनुवाद का आधार बताया और भीम ने वोपदेव के हरिलीलामृत को। इससे स्पष्ट हो जाता है कि बजभाषा से अधिक भागवत के अनुवाद गुजराती में किये हुए।

गुजरात में कुछ ऐसे ग्रंथों के प्रचार के प्रमाण भी मिलते हैं जिनसे ब्रज का परिचय नहीं था जैसे नृसिंहारण्यमुनि का 'विष्णुभक्ति-चन्द्रोदय' जिसकी स० १४६९ वि० में लिखित प्रति का एक पृष्ठ नरसी के जन्म-स्थान तलाजा में प्राप्त हुआ।^{१६} पूना के भंडारकर इन्स्टीट्यूट के संग्रहालय में इसकी अनेक प्रतियाँ मिलती हैं। विल्वमंगल द्वारा रचित 'कृष्णकर्णामृत' से भी गुजराती कृष्ण-काव्य में प्रेरणा ग्रहण की है जैसा केशवदास की रचना में समुचित उसके तीन श्लोकों से ज्ञात होता है। यह भी कहा जाता है कि चैतन्य इस रचना की रमणीयता पर

मुग्ध होकर इसे द्वारका से 'नदीया' ले गये थे ।^{१३} गुजरात में 'गीतगोविन्द' के १३ वीं शती से बहु प्रचलित होने का उल्लेख किया ही जा चुका है। वस्तुतः भागवत के बाद जिस ग्रंथ ने गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य को विशेष रूप से प्रभावित किया वह वही 'गीतगोविन्द' है। गुजराती के सर्वप्रमुख पदकार नरसी का जयदेव की इस रचना से घनिष्ठतम परिचय मिलता है। यही नहीं उन्होंने अपनी रचनाओं में जयदेव का नामोल्लेख मात्र न करके उन्हें पाशता तक प्रदान की है। नरसी ने स्वयं को गोपियो और जयदेव की परम्परा का भक्त माना है।

‘अक जाणे छो ब्रजनी गांपी के रस जयदेवे गोधो रे ।

उगतो रस अवनी छरनो नरसैये ताणी ने लीधो रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २६६

स्व० दुर्गाशंकर शास्त्री ने नरसी पर जयदेव के प्रभाव का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण किया है।^{१४} गीतगोविंद का प्रभाव ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों पर भी पर्याप्त रूप से मिलता है। इस रचना की अनेक प्रतिलिपियाँ हिन्दी की प्राचीन पुस्तकों के साथ बंधी ब्रज के वैष्णव घरों तथा मंदिरों में मिलती हैं जिससे ज्ञात होता है कि चाहे मंगीत की दृष्टि से हो, चाहे इसमें निहित भावों की दृष्टि से हो, ब्रज में इसका बहुत प्रचार था।^{१५} आलोच्यकाल के कई कवियों के पदों में जयदेव की कोमलकांतपदावली के अश्व ध्वनित और ग्रथित मिलते हैं जैसे हरिराम व्यास के पदांश (व्या० वा० पृ० ३६८) पर 'बीर समीरे यमुना तीरे' की छाया स्पष्ट झलकती है।

यद्यपि ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य की तरह गुजराती कृष्ण-काव्य विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों के अन्तर्गत विकसित नहीं हुआ तथापि भक्ति-आन्दोलन और भक्ति-सम्प्रदायों की विचारधारा ने गुजरात को स्पर्श ही न किया हो ऐसी नहीं। यह अवश्य है कि वृन्दावन और गोकुल इन सम्प्रदायों के प्रमुख केन्द्र रहे हैं जबकि गुजरात किसी भी वैष्णव भक्ति-सम्प्रदाय का, ब्रज की तरह केन्द्र न बन सका। वैष्णव धर्म और वासुदेव-पूजा का मूल प्राचीन उत्तर भारत में ही मिलता है परन्तु मध्यकालीन भक्ति का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ इसमें किसी को संदेह नहीं है। यह धारणा नवीन न होकर पर्याप्त प्राचीन है। द्रविड़ देश में कावेरी, ताम्रपर्णी आदि सरिताओं के तटवर्ती भूभाग में रहने वाले आळवार भक्तों द्वारा भक्ति के एक स्वरूप का विकास १० वीं शती के पूर्व की कई शताब्दियों में हुआ जो इन भक्त कवियों के प्रबन्धम् में संग्रहीत पदों से स्पष्ट है। भागवत में जो नवधामभक्ति उपलब्ध होनी है उसका मूल आळवारों

भक्ति में माना जाता है।^{६१} यही नहीं भागवतकार के दक्षिणी होने की भी संभावना प्रकट की गयी है।^{६२} द्राविडी भक्ति का यह प्रवाह उत्तर भारत में किस किस क्षेत्र को पार करता हुआ आया इसका स्पष्टीकरण पद्मपुराण के उत्तरखंड में दिये हुए भागवत माहात्म्य के अन्तर्गत भक्ति और उसके पुत्र ज्ञान-वैराग्य की कथा से किया गया है। भागवत माहात्म्य के प्रथम अध्याय के निम्नलिखित श्लोकों से ज्ञात होता है कि ब्रज में पहुँचने से पहले इस प्रवाह ने क्षीण होते हुए भी गुजरात का स्पर्श अवश्य किया था।

उत्पन्ना द्राविडे साह वृद्धि कर्णाटके गता ।

क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णता गता । ॥४८॥

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरुपिणी । ॥५०॥

—पद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवत माहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ।

११वीं शती के बाद दक्षिण से जिन भक्ति-सम्प्रदायों का उदय हुआ उनका गुजरात पर १५वीं शती तक कोई असर दिखाई नहीं देता। इस काल में गुजरात में वैष्णव धर्म के जो चिन्ह मिलते हैं वे साम्प्रदायिक न होकर सामान्य एवं पौराणिक हैं।^{६३} १५वीं शती में रामानुज-सम्प्रदाय प्रसरित होने लगा। द्वारका में १२ वीं शती में रामानुज का प्रभाव रहा हो ऐसी भी संभावना दुर्गाशंकर शास्त्री द्वारा स्वीकार की गयी है।^{६४} रामानंद ने रामानुज-सम्प्रदाय से कुछ भिन्न मान्यताओं को स्थापित करते हुए राम-भक्ति का प्रचार किया और उनके कबीर, रैदास आदि शिष्यों का प्रभाव समस्त उत्तर भारत में व्याप्त हो गया। मध्यदेश में कबीर और तुलसी ने उन्हीं का अनुसरण करते हुए राम को इष्टदेव के रूप में ग्रहण किया। गुजरात में रामानंद का प्रभाव १४वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर १५वीं शती के बाद तक रहा।^{६५} भालण और प्रेमानंद पर राम-भक्ति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है क्योंकि कृष्ण के सम्बन्ध में काव्य रचना करते हुए भी उन्होंने राम को ही अपना इष्ट देव माना है। ऐसा उनके दशमस्कंधों में बार बार प्रयुक्त 'भालण प्रभु रघुनाथ' तथा 'प्रेमानंद प्रभु राम' से सिद्ध होता है। कहा जाता है कि यह साम्प्रदायिक न होकर पौराणिक है।^{६६} परन्तु अपने नाम के साथ राम शब्द के योग का इतना आग्रह तुलसीदास जैसे राम-भक्त में भी नहीं मिलता। मीरा के पदों में कृष्ण के लिए अनेक रामवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। नरसी ने भी अपने को रामनाम का व्यापारी कहा है—

संतो हमे रे बेवारीया श्री रामनामनां ।

—न० कृ० का०, पृ० ४७४

अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'निम्बार्क, मध्व के वारकरीओनी असर गुजरात मा काई देखानी न थी ।' ^{१०} वस्तुतः यही सत्य भी है । हिन्दी के एक विद्वान् का यह कथन कि 'गुजरात में माधवाचार्य ने द्वैतमूलक वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया यथार्थ प्रतीत नहीं होता ।' ^{११}

राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना को प्रश्रय देने वाले निम्बार्क-मत का प्रभाव वृंदावन पर तो रहा परन्तु गुजरात में परिलक्षित नहीं होता । राधा-कृष्ण के उपासक राधावल्लभीय सम्प्रदाय के सम्बन्ध में अवश्य कहा जाता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय से पहले उसी ने गुजरात को अपना प्रभाव-क्षेत्र बताया था । ^{१२} यह प्रभाव कदाचित् बहुत ही क्षणिक रहा होगा क्योंकि १६ वीं शती के राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास ने लिखा है कि लोग व्यर्थ ही बंगाल और गुजरात में भटकते फिरते हैं । भक्ति का केन्द्र तो वृंदावन ही है—

भटकत फिरत गौड़ गुजरात ।

सुखनिधि मथुरा तजि वृंदावन दामन कौ अकुलात ।

—व्या० वा०, पृ० १५०

वारकरी-सम्प्रदाय के नामदेव आदि सन्तों से मध्यदेश और गुजरात परिचित अवश्य था परन्तु उनका प्रभाव गुजराती भक्तों पर पड़ा हो ऐसा निश्चयपूर्वक कहना कठिन है यद्यपि शास्त्री के अनुसार नरसी ने उनके द्वारा प्रसारित एक द्वारका तक विस्तृत प्रवाह में स्नान किया था जैसा उनके निम्नलिखित कथन से प्रकट है ।

‘मराठी वारकरी संतोअे जे प्रवाह दक्षिणमां विस्तार्यो हतो ते छेक द्वारका सुधी प्होंज्यो हतो ते भक्ति प्रवाहमां नरसिंह नाह्यो हतो ते भक्तनी तन्मयता प्राप्त करी चूक्यो हतो, अे वस्तु अेनी प्रत्येक कृतिमां मूर्त थाय छे । अेना जीवनमां भगवाने करेली चमत्कारिक मदद पणो अे तन्मयतानी ज निरूपणा छे ।’ ^{१३}

परन्तु नरसी में जो तन्मयता है उसके साथ सखी-भाव या गोपी-भाव की प्रेरणा है अतएव वारकरी सन्तों की भाव-धारा से उसका मेल करना समुचित प्रतीत नहीं होता । पद-बौली और चमत्कारिक घटनाओं में वारकरी सन्तों के साथ नरसी की रचनाओं का सादृश्य अवश्य परिलक्षित होता है मीरा और नरसी दोनों ने नाम-देव का उल्लेख दो एक स्थल पर किया है—

नरसी—क. ...नामो ने रामो ।

—न० कृ० का०, पृ० १०८

ख सोइ नामदेव नुं देवल फेरव्यु ते तमारी कृपा गणाणी रे ।

—वही, पृ० ५५६

मीरा—नामदेव की छान छवद ।

—मी० प०, पृ० १३७

मीरा और नरसी की प्रेम-ज्वालाएँ कहाँ से फूट पड़ी, उनमें इतनी 'तलसाट' कहाँ से आयी, इस प्रश्न का उत्तर गुजरात पर चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव स्वीकार करके दिया जाता है जिसकी पुष्टि गोविंददास के भ्रमण-वृत्तान्त से होती है । चैतन्य-सम्प्रदाय के जीव गोस्वामी के सम्पर्क में मीरा अपने वृन्दावन-वास के समय आयी थी यह भी अस्मिन् समझा जाता है ।^{१४} इस सबका मूल आधार है मीरा, नरसी और चैतन्य की रागानुगा, प्रेमलक्षणा एवं शुद्ध भक्ति । वृन्दावन चैतन्य-सम्प्रदाय का केन्द्र बना और शुद्ध भक्ति के प्रसार की दृष्टि से सारे भारतवर्ष का हृदय सिद्ध हुआ ।^{१५} दुर्गाशंकर शास्त्री ने नरसी पर वृन्दावनी भक्ति अथवा चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव अस्वीकृत करते हुए सिद्ध किया है कि नरसी ने भागवत, जयदेव और भ्रमणशील साधुसत्तों के प्रभाव से सखी-भाव का स्वतन्त्र विकास किया । उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि सखी-भाव चैतन्य द्वारा ही उद्भूत न होकर उनसे पहले भी मिलता है ।^{१६} नरसी को वल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बद्ध करने की भी चेष्टा की गई है जिसपर अब तक किसी विद्वान् ने श्रद्धा प्रकट नहीं की । उनके दो पद ऐसे हैं जिनमें 'पुष्टिमार्ग' शब्द प्रयुक्त हुआ है । एक के आधार पर तो उन्हें पुष्टिमार्ग का 'बधैया' तक कहा जाता है—

१. कोटिक काम विलास विविध, बेहु समोवड शोभी रह्या,
अवो पुष्टिमार्ग अनुभव्यो रस नरमइयो हूतो तिहा ।

—न० कृ० का०, पृ० १२३

२. श्रीवल्लभ श्री बिठ्ठल, भूतले प्रगटी ने, पुष्टिमार्ग ते विशद करशे ।
दैवी निज जीव जे, शरण जे आवशे, बिना साधन उद्धार करशे ।

—वही, पृ० ५३४

पहले स्थल पर 'प्रेम मार्गीनो अनुभव्यो रस' पाठांतर मिलता है । दूसरे पद पर टिप्पणी करते हुए संग्रहकर्ता इच्छाराम सूर्यराम देशाई लिखते हैं—

'उपलुं पद नरसिंह महेतानी कृति छे ओम मानववानो प्रयत्न, श्रीमद्वल्लभा-चार्य सम्प्रदायना केटलांक गोसांइना बालको अने अनेक वैष्णवो करे छे.....वैष्णवो कहे छे के नरसैयो पुष्टिमार्गनो बधैया वधामणी आपनारो हतो, अने नरसिंह मेहे-

ताओ श्री वल्लभाचार्य जे बोध करवाना होता, ते प्रथम जणाववाने जन्म लीधो हतो । आना जेवो उडांगटोल्लो, हुँ धारुं छुं के कोई पण पंथ सम्प्रदायमां नहि हशे । नरसिंह मेहेताना काव्यो, पदो जेटलां जेटलां जूना चोपडामांथी उतार्या छे तेमां क्यांही ओ पद दृष्टे पड़्युं नथी पण अराडमी सदीना लखायला वल्लभ-सम्प्रदायना चोपडा-मांथी ज सात्र आ पद मळी आव्युं छे..... सूक्ष्म रोते अवलोकन करनारने प्रत्यक्ष थशे के नरसिंहनी ज्ञान-भक्ति अने पुष्टि-भक्ति वच्चे कोई पण जातनी साम्यता नथी तो पछी उक्त पदमां वर्णवेली भविष्यवाणी नरसिंह मेहेतो केम भाखे ? नरसिंहनी भक्ति नुं स्वरूप, कोई पण विष्णु उपासक पंथ ने मान्य छे, सर्वदेशी छे, वल्लभाचार्यनी भक्ति नुं स्वरूप अेकदेशी छे ।’

टिप्पणीकार ने पद को प्रक्षिप्त माना है और चौथी कड़ी को जो ऊपर उद्धृत की गई है, भाषा, वस्तु तथा विचार तीनों की दृष्टि से कृत्रिम कहा है जो यथार्थ ही है। दिवेदिया ने भी नरसी के काव्य-काल को वल्लभाचार्य के जन्म सन् १४७९ से पूर्व मानते हुए घोषित किया है कि उनपर पुष्टिमार्ग का कोई प्रभाव न था और नरसी की कृष्ण-भक्ति का मूल भागवत, जयदेव आदि को ही मानना चाहिए; साथ ही यदि नरसी को समय-च्युत भी किया जाय तो भी यही मान्यता चरितार्थ होगी।^{५८}

नरसी के दार्शनिक विचार शुद्धाद्वैतवाद से बहुत मिलते हैं जैसा कि सिद्धान्त पक्ष ने निर्दिष्ट किया गया है। उन्होंने ‘लीलाभेद’, ‘लीला रस’ आदि का प्रयोग भी किया है किन्तु इस सबका कारण पुष्टिमार्ग का प्रभाव न होकर उपनिषद् भागवत आदि प्राचीन भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों की परम्परा का परिपालन ही है। लीला की महत्ता भागवत में मुख्यतया निरूपित की गई है और दार्शनिक क्षेत्र में भी उसकी देन महत्वपूर्ण है। वल्लभाचार्य ने इसीलिए भागवत की ‘समाधि भाषा’ को प्रस्थान-त्रयी के बाद चतुर्थ प्रमाण माना।

गुजराती साहित्य पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव वस्तुतः सत्रहवीं शती के पड़ना प्रारम्भ हुआ। इस समय तक वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ अनेक बार गुजरात जा चुके थे और अनेक स्थलों पर उनकी बैठके स्थापित हो चुकी थी। वल्लभाचार्य अपने पर्यटन में भूरत, भरुच, मूर्वी, नवानगर, खभालीया, पिंडतार डाकोर, द्वारका, जूना-गढ़, प्रभास, नरोडा, गोधरा आदि स्थानों पर भये ऐसा माना जाता है।^{५९} वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ के प्रचार का मुख्य क्षेत्र गुजरात ही था।^{६०} विट्ठलनाथ ने द्वारकाधीश के दर्शन के लिए निम्नलिखित प्रमाण से छः बार गुजरात की यात्रा की।^{६१}

- १ प्रथम अडैल से गुजरात पधारे ।
- २ सं० १६१३ में पुन अडैल से गुजरात पधारे ।
- ३ सं० १६१९ में गढा से पधारे ।
- ४ सं० १६२३ में मधुरा जी से पधारे ।
- ५ सं० १६३१ में श्रीगोकुल से पधारे ।
- ६ सं० १६३८ में पधारे ।

चैतन्य की गुह्य भक्ति गुजराती स्वभाव की व्यावहारिकता तथा व्यापारी प्रवृत्ति के प्राबल्य में न पनप सकी।^{१२} किन्तु इन्हीं कारणों से पुष्टिमार्ग वहाँ कुछ ही समय में इतना व्याप्त हो गया कि गुजरात उसका घर बन गया और वैष्णव का अर्थ ही पुष्टिमार्गीय वैष्णव हो गया। सम्प्रदाय-प्रसार के नवीन उत्साह से प्रेरित होकर विट्ठलनाथ के 'अर्जुनारण्य' निवासी एक गुजराती शिष्य गदाधरदास ने 'सम्प्रदाय प्रदीप' नामक संस्कृत ग्रंथ की रचना की जिसमें अनेक प्रशस्तियों के साथ वल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी और विल्वमंगल की आचार्य परम्परा में स्थापित किया। गदाधर न विद्यानगर के पूज्य देवता 'श्री विट्ठलनाथ' द्वारा दिये गये स्वप्न के प्रसंग में एक स्थल पर स्पष्ट लिखा है कि 'श्रीवल्लभाचार्यप्रति श्रीविट्ठलनाथेनोक्तं भवद्भि विष्णुस्वामि मार्गोऽङ्गीकर्तव्यः' (सम्प्रदायप्रदीप, पृ० ६२) अर्थात् विट्ठलनाथ की मूर्ति ने वल्लभाचार्य से विष्णुस्वामी के मत को अंगीकार करने को कहा, क्योंकि विष्णुस्वामी की रचनाएँ कालकवलित हो चुकी थी। 'विष्णुस्वामिकृत श्रुति व्याससूत्र गीता भागवतभाष्य निबन्धादि कालेनान्तर्हित'। दक्षिण के विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय से गुजरात परिचित रहा हो यह असंभव नहीं है। विष्णुस्वामी विष्णु के नृसिंह रूप के उपासक थे। नृसिंह विष्णु का रुद्र रूप है और विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय की सज्ञा रुद्र-सम्प्रदाय भी है। इस सम्प्रदाय में नृसिंह-भक्ति क्रमशः गोपालोपासना के द्वारा स्थानान्तरित होती गयी। नृसिंहारण्य मुनि द्वारा रचित, जूनागढ़ से प्राप्त 'विष्णुभक्ति चद्रोदय', जिसका उल्लेख किया जा चुका है, में कई स्थलों पर नृसिंह की वन्दना के श्लोक मिलते हैं। रचयिता के नाम में प्रयुक्त नृसिंह संभव है सम्प्रदायगत नामकरण की परिपार्श्व का द्योतक हो। श्रीधरी टीका जो गुजरात में परिचित थी नृसिंह की वन्दना से ही प्रारम्भ होती है।^{१३} रत्नेश्वर ने अपने गुरु परमानंद के दैवत् को नृसिंह कहा है। गुजरात में नृसिंहोपासना के प्रमाण भी पर्याप्त मिलते हैं। नृसिंह का त्रिशिर-विग्रह तथा स्त्री-मूर्ति गुजरात में नृसिंह से सम्बद्ध किसी विशिष्ट सम्प्रदाय की ओर से रची गयी होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है।^{१४} सम्प्रदाय प्रदीप में देवप्रबोध नामक आचार्य को नृसिंहोपासक माना गया है जैसा 'ततो देव-

प्रबोधाचार्येण स्वेष्टदेवता नृसिंह वचनेन .. ।' से विदित होता है। इस सम्बन्ध में विशेष ऊहापोह न भी किया तो भी इतना स्पष्ट है कि गुजरात में पुष्टिमार्ग के, प्रवेश के बाद ही वल्लभाचार्य के विष्णुस्वामी मतवर्ती होने पर विशेष बल दिया गया। स्वयं वल्लभाचार्य की रचनाओं से यह तथ्य प्रमाणित नहीं होता। गोविन्दलाल भट्ट और अमरनाथ राय ने इस विषय में पर्याप्त बोध की है। भट्ट जी का मत यथार्थ प्रतीत होता है। (दृष्टव्य-बड़ौदा ओरियंटल कान्फ़ेरेंस रिपोर्ट, सन् १९६३)

गोसाई विठ्ठलनाथ के एक अन्य गुजराती शिष्य गोपालदास ने 'वल्लभाख्यान' और 'भक्तिपीयूष' नामक दो ग्रन्थों की रचना की जिनमें 'वल्लभाख्यान' पर ब्रज-भाषा में टीका भी हुई है। इस रचना में कवि ने अपने गुरु श्रीविठ्ठलनाथ को लीला-धारी कृष्ण का साक्षात् स्वरूप माना है।^{११}

आलोच्य काल के तीन गुजराती कवियों पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है इनमें से एक है 'रसिकगीता' के रचयिता भीम, दूसरे हैं 'मथुरालीला' के प्रणेता केशवदास और तीसरे हैं रामलीलाकार वैकुण्ठदास। भीम विठ्ठलनाथ के शिष्य थे और केशवदास तथा वैकुण्ठदास गोकुलनाथ के। कवियों ने इस सत्य को विशेष श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है जो निम्नलिखित पंक्तियों से व्यक्त होती है—

ब्रजमा भगति घणी, अे सर्वे जाणे मही,
वलव अे रसीक जन तेणे लीलाकरी।
कीटा रस प्रीत न होती ब्रज थी परवरी,
जेणे विट्ठलेश जाण्या तेना पाप थाअे अरी।

—रसिकगीता, वृ० का० दो०, भाग ७, पृ० ७०१

गुरु कल्याण कीधु मम सार, कीधो व्रैश्य नाम अधिकार,
आपी वाणी कर्णे कृपाय, श्रीवल्लभ कुलमा गोकुलराय।
प्रथमि प्रणमू श्री गोकुलचंदनि, रसीकशिरोमणि आनद कंदनि।

—प्राचीन काव्य मुद्रा, भाग ३, पृ० १४१

कदाचित् इन्हीं केशवदास वैष्णव ने 'वल्लभवेला' का भी निर्माण किया है जिसपर गोपालदास के पूर्वोक्त 'वल्लभाख्यान' की छाया है। इस रचना में सं० १६४६

मे गोकुलनाथ द्वारा की गयी गुजराती यात्रा का भी उल्लेख है तथा वल्लभकुल के सम्बन्ध में अन्य अनेक सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं जिनका क्रमिक परिचय शास्त्री ने 'कविचरित' में दिया है।^{१६} प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकृत उक्त दोनों कवियों के अतिरिक्त १७ वीं शती में और भी एक कवि हुए हैं जिन पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव मिलता है। उनका नाम है महावदास। एक काव्य में उन्होंने गुजराती के वेणाभट्ट को पुत्री के साथ होने वाले गोकुलनाथ जी के विवाह का वर्णन किया है।^{१७} गुजरात के प्रसिद्ध व्यंग्यकार वेदान्ती कवि अखा भगत ने भी गोकुलनाथ की शिष्यता स्वीकार की लेकिन वह स्थायी न रह सकी। कवि ने लिखा है 'गुरु कर्मा में गोकुलनाथ, गुरुए मुजने घाली नाथ'^{१८} अष्टछाप के कवियों के पद वैष्णव सम्प्रदाय के मंदिरों में गाये जाते रहे और गुजराती मध्ययुगीन भक्ति-काव्य के अन्तिम स्तम्भ दयाराम को उनसे पर्याप्त प्रेरणा मिली।^{१९} गुजराती कवि केशवदास के 'श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य' में एक गोपी जनवल्लभाष्टक दिया है वैसा ही अष्टक वल्लभ-सम्प्रदाय में हरिराय-कृत माना जाता है। दोनों में प्रायः अभेद है, संभव है केशवदास तथा हरिराय दोनों ने किसी एक स्रोत से उसे ग्रहण किया हो।^{२०} हरिराय जी का गुजरात से पर्याप्त सम्पर्क रहा। इस प्रकार गुजरात पर उस पुष्टिमार्ग का व्यापक प्रभाव मिलता है जिसका प्रधान केन्द्र व्रज था। गुजरात ने पुष्टिमार्ग के विकास में उसे स्वीकार करके ही योग नहीं दिया वरन् तत्सम्बन्धी साहित्य निर्माण में भी भाग लिया जिसके कुछ प्रमाण ऊपर दिये जा चुके हैं। पर जो इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण योग है वह अष्टछाप के कवि कृष्णदास की रचनाओं के रूप में मिलता है। कृष्णदास गुजराती थे और उनका जन्म गुजरात में, राजनगर (अहमदाबाद) राज्य के चिलोतरा नामक एक गाँव में हुआ था। शूद्रकुल में उत्पन्न होने पर भी उन्हें पुष्टिमार्ग में पर्याप्त मान्यता मिली और ये 'अधिकारी' की उपाधि से विभूषित किये गये। इन्होंने अपने अधिकार से गोसाईं विठ्ठलनाथ तक को श्रीनाथ जी की सेवा में निर्वासित कर दिया था।^{२१} युगों पुरानी गुजरात और व्रज की अभिन्नता पुष्टिमार्ग के प्रसार के साथ चरमसीमा पर पहुँच गयी। पुष्टिमार्ग से पहले के सम्प्रदायों का गुजरात पर जो प्रभाव पड़ा वह इतना पर्याप्त नहीं था कि साहित्य-सृजन को उस प्रकार प्रभावित कर सकता जैसे कि व्रज में किया है। यही कारण है कि पुष्टिमार्ग के प्रवेश के पूर्व साम्प्रदायिक प्रेरणा से लिखा गया साहित्य गुजराती में उपलब्ध नहीं होता। इसके विरुद्ध व्रज को प्रत्येक कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदाय ने अपना केन्द्र बनाया और परिणामतः व्रज का समस्त कृष्ण-भक्ति-साहित्य प्रायः किसी न किसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से प्रेरणा लेकर लिखा गया।

जहाँ तक गुजरात के लोक-मानस का सम्बन्ध है वह धर्म के क्षेत्र में सहज श्रद्धावान्, विश्वासी तर्कहीन, तुलसी-पीपल पूजनेवाला, गो-प्राशय की पूर्ण श्रेष्ठता स्वीकार करने वाला-ममार्त एव पौराणिक है। अपने इसी स्वभाव के कारण गुजरात ने कृष्ण-काव्य में राधा को 'भक्ति' का स्वरूप माना जबकि ब्रज के विभिन्न सम्प्रदायों ने राधा को 'आदिप्रकृति' तथा 'ह्लादिनी शक्ति' आदि अनेक स्वरूपों में देखा है और तदनुसार दार्शनिक व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। गुजरात के स्वभाव में राज-सत्ता तथा वैभव के प्रति विशेष आकर्षण मिलता है। इसका फल यह हुआ है कि कृष्ण के राजसी जीवन के प्रति भी गुजराती कवियों ने पर्याप्त आकर्षण प्रदर्शित किया है। 'कृष्णविष्टि' अथवा 'पांडवविष्टि' नाम में जो उनके रचनाएँ गुजराती कृष्ण-काव्य में मिलती हैं वे इसका प्रमाण हैं कि गुजराती कवियों ने ब्रज के कवियों की तरह अपने भाव-क्षेत्र को केवल गोकुल-वृन्दावन के कृष्ण तक ही सीमित नहीं रखा है। ब्रज के कवियों ने कृष्ण के राजसी स्वरूप को कहीं भी अपने काव्य का भाव-केन्द्र नहीं बनाया। सुदामाचरित और हस्तिमणीहरण सम्बन्धी काव्य अपवाद जैसे ही हैं। विष्टि ही नहीं द्वारकावासी कृष्ण के जीवन की कुछ अन्य घटनाओं को भी गुजराती कवियों ने रस के साथ अंकित किया है। उदाहरणार्थ सत्यभामा का विवाह तथा रूठना। भालण ने सत्यभामा के प्रसंग को विशेष भाव से चित्रित किया है। वस्तुतः मुख्यरूप से आख्यानकार होने के नाते गुजराती कवियों ने प्रायः कृष्ण के जीवन के किसी एक भाग तक ही अपने काव्य को सीमित नहीं रखा है प्रत्युत समस्त कृष्ण-चरित के प्रति उनकी भक्ति थी। यह भक्ति पूर्णतया पौराणिक कही जा सकती है, केवल नरसी और मीरा को छोड़कर क्यों कि उन की प्रेरणा पौराणिक न होकर वृन्दावनीय थी।

कुछ बातें गुजराती कृष्ण-काव्य में ऐसी मिलती हैं जो सर्वथा प्रादेशिक प्रभाव से आयी हैं जैसे हस्तिमणीहरण की कथा में प्रेमानंद द्वारा गुजरात से सम्बद्ध जैन तीर्थंकर नेमिनाथ का समावेश तथा नयबिँ और नरसी द्वारा किया गया द्वारका-रास का वर्णन। जैनधर्म मथुरा में भी प्रचलित था परन्तु बाद में विलुप्त होगया। परन्तु गुजरात में आज तक वह एक प्रधान धर्म है। प्रेमानंद ने निश्चित रूप से गुजराती जैनधर्म के प्रभाव से ही नेमिनाथ का समावेश किया, ठीक उसी तरह जिस तरह जैन साहित्य में कृष्ण को स्थान दिया गया। द्वारका में रास की कल्पना भी प्रदेश विशेष के वातावरण एवं प्रादेशिक परम्पराओं से प्रभावित मानस की उपज है। जैसे कृष्ण ने वृन्दावन में गोपियों के साथ रास किया वैसे ही द्वारका में भी रानियों के साथ किया होगा

ऐसी कल्पना का गुजरात के लोक-मानस में उत्पन्न होना अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक है। गुजरात की अपनी शैली तथा छंदगत विशेषताएँ भी कृष्ण-काव्य में मिलती हैं जैसे कडवाबद्ध आख्यान-शैली और संस्कृत वृत्तों का प्रयोग। इसी तरह भाषा के क्षेत्र में भी कुछ बातें उल्लेखनीय हैं।

गुजरात और मध्यदेश की उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त बहुमुखी सांस्कृतिक एकता से साथ साथ कुछ विशेषताएँ और भी मिलती हैं जिन्हें प्रादेशिक, प्रांतीय अथवा क्षेत्रीय कुछ भी कहा जा सकता है। ब्रज-प्रदेश की लोक-संस्कृति ब्रज-काव्य में और गुजरात की लोक-संस्कृति गुजराती काव्य में प्रतिबिम्बित हुई है। यमुना के किनारे के लिए ब्रज में प्रयुक्त 'तट' या 'तीर' का प्रयोग न करके नरसी ने 'काठे' का प्रयोग किया है जो गुजरात में सुप्रचलित है—

मुन्दर जमुना जी ने काठे रे उग्यो गरदपुनम नो चद ।

—न० कृ० का०, पृ० ४१८

प्रेमानंद ने 'रुक्मिणीबाई' लिखा है जो गुजरात के लिए सहज प्रयोग परन्तु ब्रज के लिए नहीं। गोपियाँ जो गीत गाती हैं उनको 'गरबी' की संज्ञा दी गयी है। गरबी गुजरात की एक प्रधान विशेषता है। यह प्रायः 'गरबा' नृत्य के साथ गा जाती है—

ताल पखाज बेणा रम महुवर गरबी गाय रसीली रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ५१२

नरसी ने 'हमची' लेकर गाने का भी इसी तरह कई स्थलों पर वर्णन किया है जो जिसका अभिप्राय मडली-बद्ध गायन से है। कृष्णदास की 'रुक्मिणी हरण हमचडी' ऐसे ही गीतों का संग्रह है। प्रेमानंद ने कृष्ण को झुलाने के लिए सारी बांध कर बनाई हुई झोली का वर्णन किया है यह भी गुजरात में बहुप्रचलित है। गुजराती कवियों ने जहाँ आभूषणों और पकवानों की नामावलियाँ दी हैं वहाँ भी प्रांतीय विशेषता देखी जा सकती है। ब्रज के कवियों ने कलेवा या जेवनार में अनेक प्रादेशिक व्यंजनों का उल्लेख किया है। आभूषण तथा वेश-भूषा के वर्णन में भी प्रादेशिक प्रभाव स्वाभाविक रूप में मिलता है। सूर के कृष्ण 'भौरा चकडोरी' से खेलते हैं—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी ।

कटि कछनी पीताबर ओढ़े हाथ लिये भौरा चकडोरी ।

—सू० सा०, पृ० २०४

लाठी मार होली तो निश्चय ही ब्रज की अपनी वस्तु है सूर ने उसका भी वर्णन अपने काव्य में किया है—

उत जेरी धरे ग्वाल बाँसत की परी मार यह छवि नाहि बारपार मोर झोर झोरी ।
उत होरी पढत ग्बार इत गारी गावति ए नद नाहि जाये तुम महिर गुणन भोरी ।

—सू० सा०, पृ० ५५८

इस उद्धरण में गाली गाने का भी वर्णन है । ब्रज के अन्य कवि गदाधर भट्ट ने गाली गाने का वर्णन किया है जो लोक प्रचलित जीवन से लिया गया है --

देन परस्पर गारि द्वारे जाय खरे ।

—बा० श्रीमदा०, पृ० ५०

गुजराती कवियों ने गुजरात की मास-गणना के अनुसार कृष्ण का जन्म श्रावण में लिखा है परन्तु ब्रज के कवियों ने भादों में माना है । तरसी, प्रेमानंद और वासुगदास ने 'राही' को राधा में भिन्न एक सखी के रूप में चित्रित किया है । ऐसा चित्रण ब्रज में उपलब्ध नहीं होता । यह सामान्य बातें अपने आप में अधिक महत्व नहीं रखती किन्तु इनसे जिस सत्य की व्यंजना होती है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है । और वह यह है कि समान परम्परा से कृष्ण-लीलाओं का ग्रहण करके भी दोनों भाषाओं के कवियों ने उनका विकास अपने अपने प्रदेश के संस्कारों, व्यवहारों, लोकाचारों, विचारों एवं भावनाओं के अनुरूप किया है, जो स्वाभाविक ही है । सभी कवियों ने अपने आराध्य को लोक-चिंतना का केन्द्र बनाने के लिए अपने चारों ओर की भूमि के जीवन से विविध तत्त्व संचित करके उनसे कृष्ण का शृंगार किया है । समस्त कृष्ण-काव्य वास्तव में अपने व्यक्त रूप में लोकोन्मुखी काव्य है । उसकी रचना भी ऐसे वर्ग के कवियों द्वारा हुई है जिन्होंने लोक-जीवन से अपना सम्बन्ध कभी विच्छिन्न नहीं किया । ब्रजभाषा के रीतिकालीन कवि अवश्य दरबारों में आश्रय ग्रहण करके लोक-जीवन से दूर जा पड़े परन्तु गुजराती के प्रायः सभी कवियों का लोक से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । यही कारण है कि भक्ति से हटकर गुजराती काव्य ब्रजभाषा की काव्य की तरह रीति-शैली की आलंकारिकता और कृत्रिम भावाभिव्यक्ति की ओर अप्रसर नहीं हुआ । शृंगार-प्रियता अवश्य गुजराती और ब्रजभाषा के काव्य में चरम रूप में मिलती है । दोनों भाषाओं के कवियों ने वैराग्य, ज्ञान और भक्ति से युक्त सूक्ष्म भावनाओं के निरूपण के साथ ही राधा-कृष्ण की विलास-लीलाओं का स्थूलतम

चित्रण किया है। आधुनिक मनोविज्ञान ऐसे वर्णनों के भक्ति-काव्य माने जाने पर गंभीर प्रश्नचिह्न अंकित करता है। प्राचीन सैद्धान्तिक व्याख्याओं के अनुसार इसका उत्तर अनेक प्रकार से दिया जाता है जो पूरी तरह सतोष नहीं देता। यहाँ केवल इतना ही अभिप्रेत है कि दोनों भाषाओं में 'उघाड़ो' या उघरे हुए शृंगार से युक्त काव्य-रचना प्रचुर मात्रा में हुई। १५वीं, १६वीं तथा १७वीं शती के गुजराती और ब्रजभाषा में लिखे गये कृष्ण-काव्य और उसकी बहुमुखी पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने से संक्षेप में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों की आत्मा एक है, जो कुछ विभेद है वे अपेक्षाकृत गौण एवं बाह्य है और वे किसी प्रकार इस आत्मिक एकता का अपघात नहीं करते। यह एकता और भेद, साम्य और वैषम्य वर्ण्यवस्तु, सिद्धान्त, भाव, कला, छंद तथा भाषा प्रभृति काव्य के सभी अंगों में लगभग समान रूप से परिलक्षित होता है।

किसी भी तुलनात्मक अध्ययन में प्रभाव के सम्बन्ध में निश्चित रूप से हठात् किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाना उचित नहीं कहा जा सकता फिर भी काव्य-धाराओं की गति देखकर दिशा का निर्देशन संभव है। पिछले पृष्ठों में देखा जा चुका है कि गुजरात और ब्रज की बहुत सी परम्पराएँ अभिन्न रही हैं इसीलिए दोनों के काव्य में बहुत से समान तत्त्व उपलब्ध होते हैं। उनके लिए कदापि नहीं कहा जा सकता कि वे इस भाषा के साहित्य के प्रभाव से उस भाषा के साहित्य में आये हैं पर कुछ बातें ऐसी हैं जिनके विषय में किसी भ्रान्ति की संभावना नहीं है। गुजरात में जो साहित्य पुष्टि-मार्ग की प्रेरणा से रचा गया उस पर निश्चय ही ब्रज की विचारधारा का प्रभाव है क्योंकि सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र ब्रज ही बना रहा। इसी तरह गुजराती के भालण, नरसी, केशवदास, लक्ष्मीदास, ब्रह्मदेव आदि की रचनाओं में जो ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है वह भी निश्चित रूप से ब्रज का प्रभाव कहा जा सकता है। इनमें से सब संक्षेप नहीं हूँ और फिर किसी गुजराती कवि के नाम से रखकर ब्रजभाषा की रचनाओं को प्रक्षिप्त करने की प्रवृत्ति भी तो प्रभाव को ही मिट्ट करती है। भाषा और सम्प्रदाय इन दो बिन्दुओं को मिलाकर एक रेखा खीनी जा सकती है जिसकी गति स्पष्टतया ब्रज से गुजरात की ओर है। वृन्दावन के कृष्ण-भक्ति के मुख्य केन्द्र होने के कारण प्रभाव का प्रवाह मथुरा से द्वारका की ओर प्रवाहित हुआ ऐसा गुजराती विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। निम्नलिखित पक्तियाँ इसका प्रमाण हैं।^{१९}

‘बार तेर ने चौदमा सैका मां राजपुताना ने गुजरातनी भाषामां शास्त्रो फेर न होतो, अने मथुरा ने वृन्दावननी कीर्तिना पदो ओ भाषामां यतां ज हशे ओम स्पष्ट

लागे छे । अटलुं ज नहीं पण द्वारकां श्रीकृष्णनुं धाम होई, कृष्ण-कीर्तननो प्रवाह गुजरात सां बह्यो आवतो होवो ज जोड़अे ।'

अर्थ—१२वीं, १३वीं तथा १४वीं शती में राजपूताना और गुजरात की भाषा में बहुत अन्तर नहीं था और मथुरा एवं वृन्दावन की कीर्ति के पद इस काल की भाषा में थे और रचे गये यह स्पष्ट लगता है । इतना ही नहीं द्वारका कृष्ण का धाम होने के कारण ऐसा दीखता है मानो कृष्णकीर्तन का प्रवाह गुजरात में बहा आ रहा हो ।

इसीलिए प्रारंभ में कृष्ण के मथुरा से द्वारका गमन को दोनों प्रान्तों के सांस्कृतिक सम्बन्ध का प्रतीक कहा गया है ।

दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य के बीच मेल की स्थिति उस पयस्विनी जैसी है जो गुजरात और ब्रज प्रदेश का अमर संयोग करती है ।

पादटिप्पणियाँ

१. मथुरां संपरित्यज्य गताद्वारवतीपुरीम्—महामात २, १३, ६५
२. GL, page 12
३. मथुरा परिचय, पृ० ३६
४. अथोच्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥
५. The Glory that was Gurjardesha, part I, Section III,
Chapter III, page 131
६. मथुरा परिचय, पृ० ९५; JOIB, Vol. 1, No. 1, page 55
७. AG, Chapter XI, page 229
८. वही
९. वैष्णवधर्मनी संक्षिप्त इतिहास, पृ० २५०; AG, Chapter XI, page 228
१०. GL, page 116; संशोधनने मार्ग, पृ० ९५
११. मथुरा परिचय, पृ० ०६; AG, Chapter XI, page 233-235
१२. विश्वभारती, खंड तीन, अंक चार, १९३८, पृ० २३६
१३. हिन्दी काव्यभारा, राहुलसंकुम्यायन
१४. GL, Page 12
१५. GL, Page 12-13
१६. मथुरा परिचय, पृ० ६७
१७. GL, Page 28
१८. GL, page 37
१९. Linguistic Survey, Vol. IX, part II, page 328
२०. JISOA Vol X, 1942, page 7
२१. GL, page 60
२२. मी० प्र० भूमिका, पृ० ४६, CL, page 17
२३. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. XII, page 570 :
JOIB, Vol. I, No 1, Page 52
२४. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १७, २४
२५. Wilson's Philological Lectures, page 302
२६. VG, page 216
२७. GL, page 20; "This Saurseni prevailed in Gujarat. ."

२८. Language of Gujarata, Bharatiye Vidya (New Series) No. 12, Page 314, GLL. Lecture II, page. 40
२९. ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० २१
३०. GL, page 2.
३१. Linguistic Survey, Vol IX, part II, page 328; "Gujarati closely agrees in its main characteristics with Western Hindi and still more closely with Rajasthani."
३२. JISOA, Vol. X, 1942 page 9-10
३३. पु० सा० खंड ५मी, विभाग ५मी संस्कृत बार्ता साहित्य, प्राकृत लोक कथाओं
३४. हिन्दी साहित्य की भूमिका; पृ० २७, २९
३५. GL, page 18, 19
३६. GL, page 113
३७. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ७०, ७१
३८. श्रीकृ० रसदर्शनी, पृ० १२६
३९. श्रीकृ० ली० का०, निवेदन, पृ० २, ३
४०. VG. page 223; "For all the practical purposes, it may be said that if we remove all the literary work inspired by the Bhagwat purana, little will remain which may be worth the name of literature at all."
४१. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३५९
४२. श्रीकृ० ली० का० निवेदन, पृ० १०
४३. ऐतिहासिक संशोधन, पृ० १३९, १४०
४४. अष्टावप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, पृष्ठभूमि, पृ० २४
४५. Hymns of the Alvars by J S. M. Hooper; "The kind of Bhakti described in the Bhagwat Puran is precisely that of the Alvars."
४६. ऐतिहासिक संशोधन, पृ० १९७
४७. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, पृ०, ३५३
४८. ऐतिहासिक संशोधन, पृ० ६१३
४९. GL, page 116
५०. श्रीकृ० रसदर्शनी, पृ० १५५, १६४
५१. वही, पृ० १६०
५२. कबीर ग्रन्थावली, पृ० १६
५३. श्रीकृ० रसदर्शनी, पृ० १२०; "...अने वल्लभमत १६ मां संकाना पाछला भागमां गुजरातमां प्रसथीं ते पहेला राधावल्लभी सम्प्रदाये गुजरात मां थाणा कथा हता ।"
५४. संशोधनने मार्ग, पृ० ६८

५५. मी पदा. परिशिष्ट, क, ३, पृ० ७२
५६. थोळांक रसदर्शनी, पृ० १७३
५७. ऐतिहासिक सशोधन, पृ० १४२, १४८
५८. GLL, page 49, 50; गु० सा०, खंड ५, विभाग ८, प्रकरण १८, पृ० ३६५
५९. थोळांक रसदर्शनी, पृ० २०४
६०. अष्टकाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, पृ० ७५
६१. थोळांक रसदर्शनी, पृ० २०६
६२. वही, पृ० २०३
६३. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ३, अंक ४, पृ० १८, २१
६४. AG, page 151-155
६५. गु० सा०, खंड ५ मी, विभाग ८, प्रकरण १८, पृ० ३६७
६६. क व, पृ० ४६६
६७. वही, पृ० ५००
६८. GL, page 179
६९. गु० सा०, खंड ५ मी, विभाग ८, प्रकरण १९, पृ० ३६९
७०. श्रीकृ० ली० का० निवेदन, पृ० १४, १५
७१. अष्टकाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, पृ० २४४, २४८
७२. थोळांक रसदर्शनी, पृ० १४८

सहायक ग्रंथों की सूची

संस्कृत

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१. अणुभाष्य, भाग २	—लेखक . श्री वल्लभाचार्य, अनुवादक : जठालाल गोवर्द्धन शाह, अहमदाबाद, आवृत्ति १ली, स० १९८४ वि० ।
२. उज्ज्वलनीलमणि	—लेखक . रूपगोस्वामी ।
३. कृष्णकर्मसूत्रम्	—लेखक . विल्वभंगल, प्रकाशक ढाका यूनिवर्सिटी ।
४. गीतगोविन्दकाव्यम्	—सम्पादक : पं० केदार शर्मा, प्रकाशक : जयकृष्णदास हरीदास गुप्त १९४१ ।
५. तत्त्वदीपनिबन्ध	—लेखक . श्री वल्लभाचार्य, प्रकाशक . जेठा लाल गोवर्द्धनदास शाह तथा हरिश्चंकर शास्त्री, अहमदाबाद, १९२६ ।
६. नारदभक्तिसूत्र (प्रेमदर्शन)	—सम्पादक . हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाशक : धनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर, पञ्चम संस्करण सं० २००१ वि० ।
७. पद्मपुराण	—चार भाग, सम्पादक : विश्वनारायण, पूना, १८९३-९४ ।
८. बालचरितम्	—लेखक भास, सम्पादक, गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम सीरीज, त्रिवेन्द्रम, १९१२ ।
९. ब्रह्मवैवर्तपुराण	—श्रीकृष्णजन्म खंड, श्री वैवटेश्वर प्रेस, प्रकाशक : खेमराज, मुम्बई सं० १९६६ वि० ।

ग्रंथ-नाम

विशेष विवरण

१०. महाभारत —सम्पादक : टी० आर० कृष्णाचार्य, तथा टी० आर० व्यासाचार्य, सात भाग, बम्बई, १९०६-७ ।
११. विष्णुपुराणम् —टीकाकार टी० आर० व्यासाचार्य, चार भाग, बम्बई, १९१४-१५ ।
१२. शांगधर पद्धति —सम्पादक पीटर्सन, बाम्बे० एस० मीरीज, वाल्यूम प्रथम ।
१३. श्रीमद्भगवद्गीता —गीता प्रेस, गोरखपुर ।
१४. श्रीमद्भागवत महापुराण —टीकाकार : प० गोविन्ददास 'विनीत' प्रकाशक : लाला ज्यामलान्न हीरालाल, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा, प्रथम संस्करण, सं० १९९६ वि० ।
१५. सम्प्रदायप्रदीप —लेखक गदाधर, अनुवादक तथा प्रकाशक : श्री कंठमणि शास्त्री, विद्या-विभाग काकरोली, प्रथम संस्करण ।
१६. हरिभक्तिरसामृतसिन्धु —लेखक रूपगोस्वामी, सम्पादक श्री गोस्वामी दामोदर शास्त्री, अच्युत ग्रंथ माला, काशी, प्रथम संस्करण सं० १९८८ वि० ।

प्राकृत

१. गायसप्तशती —काव्यमाला २१, श्री सातवाहन विरचिता गगाधर भट्ट विरचितया टीकया समेता । निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, सं० १८८९ ।
२. गौडवहो —लेखक : वाक्पति, बाम्बे संस्कृत एन्ड प्राकृत सीरीज न० XXXIV, सम्पादक शंकर पाडुरंग पंडित, एम० ए०, तथा नारायण बापूजी उत्तगीकर एम० ए०, भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९२७ ई० ।

हिन्दी

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१. अलंकार संज्ञा	—लेखक : लालू भगवानदीन, प्रकाशक : रामनारायण लाल, इलाहाबाद, नवीं बार, स० २००४ वि० ।
२. अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, २	—लेखक : डॉ० दीनदयालु गुप्त, एम०ए०, एल०एल०बी०, डी० लिट्., प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, स० २००४ वि० ।
३. अष्टछाप परिचय	—लेखक : प्रभुदयाल भीतल, प्रकाशक : अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम संस्करण, स० २००४ वि० ।
४. उत्तरी भारत की संत परम्परा	—लेखक : परमहंस चतुर्वेदी, प्रकाशक : भारत दर्पण ग्रंथमाला, प्रथम संस्करण, स० २००८ वि० ।
५. कबीर ग्रंथावली	—सम्पादक : श्यामसुन्दरदास बी० ए०, प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९४७ ई० ।
६. कवित्तरत्नाकर	—लेखक : सेनापति; प्रकाशक : हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ।
७. कविप्रिया	—आचार्य केशवदास, लखनऊ १९२४ ई० ।
८. कृष्णचरित्र	—लेखक : वंकिमचन्द्र ।
९. काव्यदर्पण	—लेखक : पं० रामदहिन मिश्र, प्रकाशक : ग्रंथमाला कार्यालय बाँकीपुर, प्रथम संस्करण, १९४७ ई० ।
१०. छन्दःप्रभाकर	—लेखक : बाबू जगन्नाथप्रसाद, मुद्रक : जगन्नाथ प्रेस विलासपुर, पाँचवाँ संस्करण, स० १९७९ वि० ।

ग्रंथ-नाम

विशेष विवरण

११. तुलसी रचनावली
(कृष्ण गीतावली) —सम्पादक : बजरंग बली 'विशारद';
प्रकाशक : श्री सीताराम प्रेस बनारस,
प्रथम संस्करण, स० १९९६ वि० ।
१२. देव और उनकी कविता —लेखक : डॉ० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो,
दिल्ली ।
१३. देव दर्शन —संपादक : श्रीहरदयाल सिंह; प्रकाशक :
इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग,
१९४१ ई० ।
१४. ध्रुव सर्वस्व —संपादक : रामकृष्ण वर्मा; प्रकाशक :
भारत जीवन प्रेस काशी, प्रथम
संस्करण, १९०४ ई० ।
१५. नंददास, भाग प्रथम
तथा द्वितीय —संपादक : पं० उमाशंकर शुक्ल,
प्रकाशक : प्रयाग विश्वविद्यालय,
प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९४२ ई० ।
१६. निम्बार्क साधुरी —संपादक विहारो शरण, वृंदावन ।
१७. प्रकृति और काव्य,
(हिन्दी खंड) —लेखक : डॉ० रघुवरा; प्रकाशक :
साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद;
प्रथम संस्करण ।
१८. पिंगल प्रकाश —लेखक : पं० रघुबरदयाल मिश्र;
प्रकाशक : रत्नाश्रम आगरा, प्रथम
संस्करण, १९३३ ई० ।
१९. अजभाषा व्याकरण —लेखक : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०,
डी० लिट्०, प्रकाशक : रामनारायण
लाल, प्रयाग, १९३७ ई० ।
२०. अजभाषा साहित्य में
नायिका-निरूपण —लेखक : प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक :
प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा,
परिवर्द्धित संस्करण, सं० २००१ वि० ।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
२१. ब्रजसाधुरीसार	—संपादक वियोगी हरि, प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पंचम संस्करण, २००२ वि० ।
२२. बिहारीरत्नाकर	—संपादक जगन्नाथनाथ रत्नाकर, प्रकाशक : दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ, चतुर्थावृत्ति स० २००३ वि० ।
२३. भक्तनामावली	—लेखक भुवदास : संपादक : आर० दास, प्रयाग १९२८ ।
२४. भक्तमाल	—लेखक नाभादास, लखनऊ, १९०८ ई०
२५. भावविलास	—लेखक : देवदत्त, भारतजीवन प्रेस, काशी १८९२ ई० ।
२६. मतिराम ग्रंथावली	—संपादक : कृष्णविहारी मिश्र, प्रकाशक : गंगा ग्रंथाकार, लखनऊ, तृतीय संस्करण, सं० १९९६ वि० ।
२७. मथुरा परिचय	—लेखक : श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, लोक साहित्य सहयोगी प्रकाशन, मथुरा, प्रथम संस्करण १९५० ई० ।
२८. मिश्रबन्धु विनोद, भाग १	—लेखक मिश्रबन्धु, लखनऊ, १९९१ वि० ।
२९. मीरां	—लेखक : श्री महावीर सिंह गहलोत, प्रकाशक : शक्ति कार्यालय, दारा- गज, प्रयाग, द्वितीय संस्करण स० २००६ वि० ।
३०. मीरां : एक अध्ययन	—लेखिका : पद्मावती 'शबनम', प्रकाशक : लोक सेवक प्रकाशन, बनारस, प्रथम संस्करण २००७ वि० ।

ग्रंथ-नाम

विशेष विवरण

३१. मीराबाई की पदावली —संपादक परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, द्वितीय संस्करण, २००१ वि० ।
३२. मीरा स्मृति ग्रंथ —प्रकाशक सं० ललिताप्रसाद गुवल, प्रकाशक : वगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, प्रथमावृत्ति सं० २००६ वि० ।
३३. मोहिनी वाणी —लेखक : श्री गदाधर भट्ट, प्रकाशक : कृष्णदास कुसुम गोवर्द्धन, सं० २००० वि० ।
३४. रसखान पदावली —लेखक : रसखान, हिन्दी प्रेस, प्रयाग ।
३५. रसिकप्रिया —लेखक : आचार्य केशवदास; प्रकाशक : खेमराज कृष्णदास, सं० १९७१ वि० ।
३६. रहीम रत्नावली —लेखक रहीम, सं० मायाशंकर याज्ञिक ।
३७. वाणी श्री बल्लभ रसिक जी —प्रकाशक : कृष्णदास; कुसुम सरोवर प्रथमावृत्ति ।
३८. वाणी श्री सूरदास भवनमोहन —प्रकाशक : कृष्णदास; कुसुम सरोवर, सं० २००० वि० ।
३९. विद्यापति पदावली —संपादक रामवृक्ष बेनीपुरी, लहरिया सराय, कदम कुँआ, पटना ।
४०. श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य —लेखक : लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक; प्रकाशक : रामचन्द्र और श्रीधर बलवंत तिलक, चतुर्थ मुद्रण, १९२४ ई० ।
४१. श्री भाधुरी वाणी —लेखक : भाधवदास; प्रकाशक बाबा कृष्णदास; कुसुम सरोवर, प्रथमावृत्ति ।

ग्रंथ-नाम

विशेष विवरण

४२. श्री व्यास वाणी, भाग १, २ — प्रकाशक अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधा वल्लभीय तैण्णव महासभा, वृन्दावन, प्रथम संस्करण, १९०१ वि० ।
४३. श्री सूरसागर — प्रकाशक : खेमराज श्री कृष्णदास सं० १९९१ वि० ।
४४. श्री हितचौरासी सेवक वाणी — गोस्वामी श्री हितहरिवंश तथा सेवक जी, प्रकाशक : गोस्वामी श्री वनमाली लाल जी, तृतीय संस्करण, स० १९९२ वि० ।
४५. श्री राधावल्लभीय भक्तमाल — लेखक पं० रसिकजनन्यहित प्रियादास गुवल; प्रकाशक : पं० प्रियादानात्मज ब्रजवल्लभदास मुखिया, मथुरा, प्रथम संस्करण स० १९८६ वि० ।
४६. श्री हित स्फुट वाणी — श्रीमद्विहारीहरिवंश चन्द्र, प्रकाशक : बद्रीदास वशीदाम स्वर्णकार, प्रथम संस्करण ।
४७. सूरदास — डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, प्रकाशक : हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण १९४६ ई० ।
४८. सूर निर्णय — लेखक : द्वारिकादास परीख प्रभुदयाल मीतल; प्रकाशक : अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम संस्करण २००६ वि० ।
४९. हरिवंश भाषा — ज्वालाप्रसाद मिश्र, बम्बई १९५३ वि० ।
५०. हिन्दी काव्य धारा — लेखक राहुल साकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद ।
५१. हिन्दी साहित्य की भूमिका — लेखक पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक : हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, प्रथम संस्करण १९४० ई० ।

ग्रंथ-नाम

विशेष विवरण

५२. हिन्दी साहित्य का इतिहास —लेखक . प० रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक :
नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छठा
संस्करण २००७ वि० ।
५३. हिन्दी साहित्य का
आलोचनात्मक इतिहास —लेखक डॉ० रामकुमार वर्मा,
प्रकाशक : रामनारायण लाल, प्रयाग,
द्वितीय संस्करण, १९४८ ई० ।

ગુજરાતી

ગ્રંથ-નામ

વિશેષ વિવરણ

૧. આપના કવિઓ, खंड १ —લેખક : કેશવરામ કાશીરામ શાસ્ત્રી;
પ્રકાશક : ગુજરાતી વર્તમાનપત્ર,
સોસાઈટી, અહમદાબાદ, દ્વિતીય
સંસ્કરણ, ૧૯૪૬ ई० ।
૨. ऐतिहासिक संशोधन —લેખક : દુર્ગાશંકર કેશવરામ શાસ્ત્રી,
પ્રકાશક : ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ,
પ્રથમ આવૃત્તિ, ૧૯૪૧ ई० ।
૩. कविचरित, भाग १, २ —લેખક : કેશવરામ કાશીરામ શાસ્ત્રી,
પ્રકાશક : ગુજરાતી વર્તમાનપત્ર,
સોસાઈટી, અહમદાબાદ, ૧૯૩૯ ई० ।
૪. कवि प्रेमचंद अने नरसिंह कृत
कुँवरबाई नु माभेरं —સંપાદક : ભગતભાઈ પ્રભુદાસ દેસાઈ,
પ્રકાશક : નવજીવન પ્રકાશન મંદિર,
અહમદાબાદ, ૧૯૪૩ ई० ।
૫. કાર્યવહી ૧૯૪૨:૪૩ નો —પ્રકાશક : ગુજરાત સાહિત્ય સભા,
અહમદાબાદ ની આફ પ્રિન્ટ, નરસિંહ
પ્રેમાનંદાદિની નામે ચઢેલી મંદિર
કૃતિઓ ।
૬. काव्य संग्रह नरसिंह महेता कृत —સંપાદક : હજીરામ મૂર્યારામ દેસાઈ,
પ્રકાશક : ગુજરાતી પ્રેસના માલિક,
પ્રથમ સંસ્કરણ સં० ૧૯૬૯ વિ० ।
૭. ગજરાત सर्वसंग्रह —રચયિતા : નર્મદાશંકરલાલ શંકર
કવિ, ૧૮૮૮ ई० ।
૮. ગુજરાતી સાહિત્ય —સંપાદક : કનૈયાલાલ માણિકલાલ
મુંશી, પ્રકાશક : શ્રી સાહિત્ય
પ્રકાશક : કમ્પની લિમિટેડ, બમ્બઈ,
ચતુર્થ સંસ્કરણ ૧૯૨૫ ई० ।

ગ્રંથ-નામ

વિશેષ વિવરણ

૯. ગુજરાતી હાથ પ્રતોનો સંકલિત યાદી —તૈયાર કરનાર કે. કા. શાસ્ત્રી, ગુજરાતી, વર્ત્ત્વિયૂલર સોસાયટી, અહમદાબાદ, ૧૯૩૯ ઈ. ૦ ।
૧૦. થોડાંક રસદર્શનો —લેખક : કનૈયાલાલ મુશી, પ્રકાશક : જીવનલાલ અમરશી મહેતા, અહમદાબાદ, પ્રથમ આવૃત્તિ, સં. ૧૯૮૯ વિ. ૦ ।
૧૧. નરસૈયો ભક્તહરિનો —લેખક કનૈયાલાલ માણિકલાલ મુશી, પ્રકાશક : જીવનલાલ અમરશી મહેતા, અહમદાબાદ ।
૧૨. પ્રબોધ પ્રકાશ —સપાદક : કેશવરામ કાશીરામ શાસ્ત્રી, પ્રકાશક : ગુજરાત વર્ત્ત્વિયૂલર સોસાયટી, આવૃત્તિ પહેલી સં. ૧૯૯૨ વિ. ૦ ।
૧૩. પ્રાચીન ગુજરાતી છંદો —લેખક : રામનારાયણ વિશ્વનાથ પાઠક, પ્રકાશક : ગુજરાત વિદ્યા સભા, અહમદાબાદ, આવૃત્તિ પહેલી સં. ૨૦૦૪ વિ. ૦ ।
૧૪. પુષ્ટિ દર્પણ —લેખક : જેઠાલાલ ગોવર્ધનદાસ શાહ, પ્રકાશક : લલ્લૂભાઈ છગનલાલ દેસાઈ, અહમદાબાદ, ૧૯૩૮ ઈ. ૦ ।
૧૫. પુષ્ટિ માર્ગ —લેખક તથા પ્રકાશક : શ્રી દ્વારકા દાસ પુરુષોત્તમદાસ પરિખ, કાંકિરોલી, પ્રથમ સસ્કરણ સં. ૨૦૦૧ વિ. ૦ ।
૧૬. પ્રેમાનંદ, એક અધ્યયન —લેખક : કેશવરામ કાશીરામ શાસ્ત્રી ।
૧૭. ખાલણ ઉદ્ભવ અને ભોમ —લેખક : ચુન્નીલાલ મોદી ।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१८. भालण कृत दशमस्कंध	—संपादक : हृग्गोविंद द्वारकादास कंठावाला, प्रकाशक : विठ्ठलभाई आशाराम ठक्कर, बड़ोदा, प्रथम संस्करण १९१५ ई० ।
१९. भालणनां पद	—संपादक जैठालाल नारायण त्रिवेदी, प्रकाशक जीवन लाल अमरजी महंता, प्रथम आवृत्ति १९४७ ई० ।
२०. रसेश श्रीकृष्ण अने श्रीकृष्णचरित्र	—लेखक : जे० जी० शाह; प्रकाशक : लल्लू भाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद ।
२१. रास पंचाध्यायी (फल प्रकरण)	—श्री सुबोधिनी जी; स० जैठालाल गोवर्धन दास शाह ।
२२. रास सहस्रपदी	—संपादक केशवराम काशीराम शास्त्री ।
२३. बृहत् काव्य दोहन	—संपादक इच्छाराम सूर्यराम देसाई, बवई ।
भाग १लो	सप्तम संस्करण १९२५ ई० ।
भाग २जो	तृतीय संस्करण १९१३ ई० ।
भाग ३जो	द्वितीय संस्करण १९०९ ई० ।
भाग छठ्ठो	प्रथम संस्करण १९०१ ई० ।
भाग ७मो	प्रथम संस्करण १९११ ई० ।
२४. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास	—लेखक : श्री दुर्गाशंकर केशवराम शास्त्री, प्रकाशक अंबालाल बुलाकी राम जानी, श्री फार्मिंग गुजराती सभा, मुंबई, द्वितीय आवृत्ति १९३९ ई० ।
२५. श्रीकृष्णलीलाकाव्य	—लेखक : केशवदास कायरथ; संपादक तथा प्रकाशक : अंबालाल बुलाकी- राम जानी मुंबई, प्रथम संस्करण १९३३ ई० ।

ગ્રંથ-નામ

વિશેષ વિવરણ

૨૬. શ્રીમદ્ભાગવત પદ્યબંધ —લેખક: પ્રેમાનંદ, સંપાદક: ઇચ્છારામ સૂર્યરામ દેસાઈ, ગુજરાતી પ્રિન્ટિંગ પ્રેસ, મુંબઈ, ચતુર્થ સંસ્કરણ ૧૯૨૭ ई० ।
૨૭. શ્રીરુક્મિણીવિવાહનાં પદો —રચયિતા: કૃષ્ણદાસ, પ્રકાશક: શાસ્ત્રી કાશીરામ કરમચંદ્ર જી ।
૨૮. શ્રી હરિરાય જી —જેઠાલાલ ગોવર્ધનદાસ શાહ, પ્રકાશક: મોહન લાલ વિદુલદાસ ગાંધી, અહમદાબાદ, પ્રથમાવૃત્તિ સં० ૨૦૦૨ વિ० ।
૨૯. શ્રી હરિલીલાષોડશકલા —લેખક: મીમ: સંપાદક: અવાલાલ બુલાકીરામ જાની ।
૩૦. સંશોધનને માર્ગે —લેખક: કેશવરામ કાશીરામ શાસ્ત્રી, પ્રકાશક: ભારતી સાહિત્ય સંઘ, લિમિટેડ, પ્રથમ સંસ્કરણ સં० ૨૦૦૪ વિ० ।
૩૧. હારમાલા —લેખક: નરસી મેહતા, સંપાદક: કેશવરામ કાશીરામ શાસ્ત્રી, પ્રકાશક: અવાલાલ, બુલાકીરામ જાની, ફાર્બ્સ ગુજરાતી સભા, મુંબઈ ૧૯૩૮ ई० ।

अग्रजो

1. Archaeology of Gujarat By H. D. Sankalia, *Publishers,*
Natwar Lal & Co., Bombay
Road, Bombay, First
Edition 1941.
2. Bhas—A Study. By A.D. Pusalkar, *Publishers,*
Moharchand Lachmandas,
Lahore, First Edition 1940.
3. Classical Poets of Gujarati,
and their influence on so-
ciety and morals. By Govardhan Ram Madhava
Ram Tripathi, *Publishers,*
Ramanuja Ram Govardhan
Ram Tripathi, Bombay, First
Edition 1916.
4. Early History of Vaish-
navism in South India. By S. Krishnaswami Aiyangar.
5. Encyclopedia of Religion
and Ethics (Vol. 12). By James Hastings.
6. Gujarati and its litera-
ture. By K. M. Munshi, *Publishers,*
Longmans Green & Co.
Ltd., Bombay, First Edition
1935.
7. Gujarati Language and
Literature. Wilson's Philological Lectures
delivered by N. B. Devatia.
Publishers Macmillan & Co,
Ltd. for the University of
Bombay, 1921.
8. Gujarati Language and
Literature Thakkar Vassonji Madhavji
Lectures N. B. Devatia, The
University of Bombay, First
Edition 1932
9. Hymns of Ālvārs. By J. S. M. Hooper—The
Heritage of India Series.

- 10 Indian Chronology:
(B.C. 1—2000 A.D.) Dewan Bahadur L. D. Swami
Kannu Pillai, Madras, 1911.
11. Indian Culture. Vol. IV *Editor* Dr Radha Kri-
shnan, Ram Krishna Mission
12. Language of Gujarat. *By* H. C. Bhayani. *Reprinted*
from The Bharatiya Vidya
No. 12, Bombay, 1937.
13. Linguistic Survey. Vol. IX, part II. *By* Grierson.
14. Main Tendencies in
Mediaeval Gujarati Lite-
rature. *By* M. R. Majumdar, Baroda
1937-38.
- 15 Materials for the Study
of Early History of
Vaishnava Sect. *By* Hem Chandra Roy Chou-
dhari, 1220.
- 16 Mathura, A District
Memoire. *By* Grouse.
17. Milestones in Gujarati
Literature. *By* K. M. Jhaveri, Bombay,
Fourth Edition 1914.
18. Outline of the Religious
literature of India. *By* J. N. Farquhar.
19. Proceedings and Trans-
lations of the Seventh All
India Oriental Conference. Baroda, 1933, *Published* at
Baroda.
20. Selections from Classical
Gujarati Literature. *By* Irach Jehangir Sarabji Tara-
porewala. *Published by* The
University of Calcutta.
- (Volume I—15th century) First Edition 1924.
- (Volume II—16th and
17th centuries) First Edition 1930.
21. Shri Vallabhacharya. *By* Bhai Mani Lal C. Parekh:

22. The Glory that was Gurjardesh Part I, III. *Edited by K. M. Munshi, Published by Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 1913.*
23. The Imperial Gazetteer of India—The Indian Empire. *Vol. II, Oxford 1909.*
24. The Krishna Problem. *By S. N. Tadapatrikar, M A*
25. The Universal Practical Dictionary (Gujarati to English). *Compiled by Shanti Lal Sarabhai Ojha, Publishers R. R. Sheth & Co., Bombay. First Edition 1940.*
26. The Vaishnavas of Gujarat. *By N. A. Toothi, Bombay First Edition 1935.*
27. Vaishnava Faith and Movement. *By S. K. De.*
28. Vaishnavite Reformers of India. *By T. Rajgopalachari, Madras, 1909.*
29. Wilson's Philological lectures on Sanskrit and the derived languages. *Delivered by R. G. Bhandarkar in 1877, Bombay 1914.*

अप्रकाशित तथा हस्तालिखित ग्रंथ

संस्कृत

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१. विष्णुभक्तिचन्द्रोदय	—भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना तथा प्राच्य विद्यामंदिर, बडोदरा ।
२. सम्प्रदायप्रदीप	—प्राच्य विद्यामंदिर, बडोदरा ।

गुजराती

१. आनंदरास	—नरहरि, फार्ब्स गुजराती सभा, १७५, बम्बई ।
२. कंसोद्धरण	—फांग, फार्ब्स गुजराती सभा, ३६१, बम्बई ।
३. कृष्णचरित	—गोपालदास, फार्ब्स गुजराती सभा, १५१ ल, बम्बई ।
४. गोपी उद्धव संवाद	—नरहरि, फार्ब्स गुजराती सभा, १७५, बम्बई ।
५. दशम स्कंध	—लक्ष्मीदास, गुजराती वनकियूलर सोसाइटी, ह० प्र० न०, द ४७० ।
६. दशम स्कंध	—माधवदास, गुजराती वनकियूलर, सोसाइटी, ७३ ।
७. दानलीला	—हरिराय जी, विद्या विभाग कांकरोली, ह० लि० ग्रं० बंध सख्या १०६ : १२ ।
८. नानु दशमस्कंध	—अज्ञात कवि, बडोदरा, ६१२३ ।

ग्रन्थ-नाम

विशेष विवरण

९. पांडव विष्टि — फूढ, रचनाकाल १८३७ वि० फार्ब्स
गु० म० ३० प्र० न०, २०८ घ ।
१०. ब्रजबेलि — प्रेमनंद, गुजराती वर्तकियूलर सोसाइटी
द० ६३१ अ ।
११. बालचरित — रचयिता कीकृष्णजी, फार्ब्स गुजराती
सभा बम्बई, ह० प्र० न० २११ रा ।
१२. बाललीला — प्रेमनंद, गुजराती वर्तकियूलर सोसाइटी
न० ७४९ ।
१३. बाललीला — शिवदास, फार्ब्स गु० म० ३० प्र०
न० ५३ घ, लिपिकाल १७१६, १३ घ ।
१४. रासक्रीडा — कृष्णदास, बडोदरा, ४६८४ ।
१५. रासलीला — वैकुण्ठ, फार्ब्स गुजराती सभा, ११४४
लिपि काल स० १७४४ ।
१६. रुक्मिणीहरण हमचडी — कृष्णदास, गुजराती वर्तकियूलर
सोसाइटी, ३४४ ।
१७. रुक्मिणीहरण — काशी सुत शेष जी, फार्ब्स गुजराती
सभा, बम्बई ह० प्र० न० अ० ५१ ।
१८. रुक्मिणीहरण — फूढ, फार्ब्स गुजराती सभा, ह० प्र०
न० ६४४ रचनाकाल सं० १६५२ वि० ।
१९. रुक्मिणीहरण — विष्णुदास, बडोदरा ८८४ ।
२०. रुक्मिणी हरणना सलोको — प्रेमनंद, गुजराती वर्तकियूलर
सोसाइटी द० ८८५ ।
२१. श्रीकृष्णलीला (४२ लीला) — ध्रुवदास विरचित, म्यु० म्युजियम,
प्रयाग, बंध संख्या २१४ पुस्तक नम्बर
१६०३० सं० १६५० ।

ग्रंथ-नाम

विशेष विवरण

२२. हरिचुआक्षरा तथा कृष्ण
वृंदावन रास —रचयिता वासणदास, एफ०, गुजराती
वनविद्युलर सोराइटी, ह० प० न०
द० ७३८ ।
२३. हरिरस —परमानंद, फार्ब्स गुजराती सभा ३२५ ।

पत्र-पत्रिकाएँ

हिंदी

नाम	विशेष विवरण
१. कल्याण (उपनिषद् अंक)	—वर्ष २३, अंक १, सम्पादक : हनुमान प्रसाद पोद्दार, विष्णुनलाल गोस्वामी, एस० ए० शास्त्री, प्रकाशक : धनश्यामदास जालान, गोता प्रेस, गोरखपुर ।
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका	—नागरी प्रचारिणी मभा, काशी ।
३. नामसाहाय्य, व्रजोंक	—अगस्त १९४०, वृंदावन ।
४. व्रजभारती	—व्रजभारती कार्यालय, मथुरा ।
५. सम्मेलन पत्रिका	—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
६. हिन्दी अनुशीलन	—वर्ष ३, अंक ४, प्रकाशक : भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, सं० २००७ वि० ।
७. विश्वभारती	—शान्ति निकेतन, खंड ३, अंक ४, १९४४ ।

गुजराती

१. कौमुदी	—मार्च १९३१ ।
२. गुजरात	—सं० १९८२ वि० श्रावण ।
३. गुजराती	—दिवाली अंक, १९३३ ।

नाम

विशेष विवरण

४. फार्ब्स गुजराती सभा त्रैमासिक पुस्तक १ लुं, जनवरी-मार्च १९३७, अक्तूबर-दिसम्बर १९३८ —संपादक अंबालाल बुलाकीराम जानी, फार्ब्स गुजराती सभा, बम्बई ।
५. प्रस्थान —संपादक १९८३ वि०, वैशाख ज्येष्ठ, अहमदाबाद ।
६. बुद्धिप्रकाश —गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद ।
७. वसंत —सं० १९६१ वि०, भाद्र अं० ८, अहमदाबाद ।
- ८ हिन्दुस्तान, मुंबई की आवृत्ति —अंक ७५, ८१, ८७, शुक्रवार ११, १८, २५ नवम्बर १९४९ क्रमशः ।

अंग्रेजी

- 1 Annals of The Bhandarkar Oriental Research Institute, (Part III and IV). Vol. X July 1929. Poona.
- 2 Bharatiya Vidya Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.
- 3 Journal of the Indian Society of Oriental Art. Vol. X 1942 Editors Abanindra Nath Tagore and Stella Kramrisch.
- 4 Journal of the Oriental Institute Vol. I, No. 1. G. H. Bhatt, Oriental Institute Baroda 1951.

तालिका-चित्र नं० १



कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति

[१५वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
१. नयषि रचना . फागु	
२. मयण रचना . मयणलद	कोई नहीं
३. भालण रचनाएँ दशमस्कध कृष्णविष्टि	
४. भीम रचना : हरिलीला षोडशकला	

तालिका-चित्र नं० २



कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति
[१६वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
<p>१. नरसी मेहता रचनाएँ : सूरतसंग्राम, गोविन्द- गमन, चातुरी छत्रीसी, चातुरीषोडशी, दाण लीला, सुदामाचरित, रास सहस्रपदी, शृंगार- माला, बाल लीला, हीडोलाना पदो, भक्ति ज्ञानना पदो, कृष्ण जन्म सम्बन्धी पद, वसतना पदो</p> <p>२. मीरां रचना : स्फुट पद</p> <p>३. केशवदास रचना : कृष्णक्रीडाकाव्य</p> <p>४. नाकर रचना : भ्रमरगीता</p> <p>५. चतुर्भुज रचना भ्रमरगीता</p> <p>६. भीम वैष्णव रचना : रसिकगीता</p> <p>७. ब्रहेदेव रचना : भ्रमरगीता</p> <p>८. कीकुवसही रचना : बालचरित</p>	<p>वल्लभ सम्प्रदाय</p> <p>१. सूरदास रचनाएँ : सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी</p> <p>२. कुंभनदास रचना : स्फुट पद</p> <p>३. परमानंददास रचना : परमानंदसागर</p> <p>४. कृष्णदास रचना : स्फुट पद</p> <p>५. गोविन्दस्वामी रचना : स्फुट पद</p> <p>६. नंददास रचनाएँ दशमस्कंध, श्याम- सगई, गोवर्धनलीला, सुदामाचरित, विरह- मजरी, रूपमजरी, रुक्मिणीमंगल, रास- पंचाध्यायी, भैरवगीत, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पदावली</p> <p>७. छीतस्वामी रचना : स्फुट पद</p>

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति

[१६वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
<p>✓ ९. वासणदास रचनाएँ : कृष्णवृंदावनरास, हस्त्रिआक्षरा</p> <p>✓ १०. काशीसुत शेषजी रचना : रुक्मिणीहरण</p> <p>✓ ११. संत रचना : भागवत (अनुवाद)</p> <p>✓ १२. फूढ रचनाएँ : रुक्मिणीहरण, मल्लअखाड़ा ना चद्रावला</p> <p>★</p> <p>★</p>	<p>८. चतुर्भुजदास रचना : स्फुट पद</p> <p>राधावल्लभीय सम्प्रदाय</p> <p>९. हितहरिवंश रचनाएँ : श्रीहितनौरासी, श्रीहितस्फुट वाणी</p> <p>१०. सेवक रचना : सेवकवाणी</p> <p>११. हरिरामव्यास रचनाएँ : सिद्धान्त रस के पद रस विहार के पद</p> <p>गौडीय सम्प्रदाय</p> <p>१२. गदाधर भट्ट रचना : स्फुट वाणी</p> <p>१३. सूरदास मदनमोहन रचना : स्फुट वाणी</p> <p>निम्बार्क सम्प्रदाय</p> <p>१४. श्रीभट्ट रचना : जुगलसत</p> <p>१५. हरिव्यास रचना : महावाणी</p> <p>१६. परशुरामदेव रचना : परशुराम सागर</p>

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति
[१६वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
	हरिदासी सम्प्रदाय
	१७. हरिदास स्वामी रचनाएँ केलिमाल सिद्धान्त के पद
★	१८. विट्ठलविपुलदेव रचना . स्फुट पद
	१९. विहारिनदेव रचना स्फुट पद, दोहे
	सम्प्रदायमुक्त कवि [प्रथम वर्ग]
	२०. मीरां रचना . पदावली
★	२१. तुलसीदास रचना कृष्णगीतावली
	२२. रहीम रचना : मदनाष्टक, रासपचध्यायी
	२३. नरोत्तमदास ✓ रचना सुदामाचरित
	[द्वितीय वर्ग]
★	२४. कृपाराम रचना : हिततरंगिनी
	२५. केशवदास रचनाएँ . कविप्रिया, रसिकप्रिया
	२६. आलमशेख रचना . आलमकेलि

तालिका-चित्र नं० ३

★

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति
[१७वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
१. लक्ष्मीदास रचनाएँ : दशमस्कंध, स्फुट पद	वल्लभ सम्प्रदाय
२. देवीदास रचनाएँ : रुक्मिणीहरण, भागवतमार्ग, रास- पचाध्यायीनो सार	१. रसखान रचनाएँ : प्रेमवाटिका, भुजानन्दमग्नान
३. शिवदास रचना : बालचरित्र	२. हरिरायजी रचनाएँ : स्फुटपद, दानलीला
४. भाऊ रचना : पांडुराविष्टि	३. शोभाचंद रचना : भक्तिविधान
५. वेंकुठदास रचना : रासलीला	राधावल्लभीय सम्प्रदाय
६. परमाणंद रचना : हरिरस	४. ध्रुवदास ✓ रचनाएँ : रममुक्तावली, रसही- रावली, रसगन्तावली, प्रेमावली, रसानंदलीला, मानलीला, दानलीला, ब्रजलीला, नेहमंजरी, रतिमंजरी, रहस्यमंजरी, सुखमंजरी, रहसिलता, आनन्दलता, प्रेमलता, अनुरागलता, वनविहार, रसविहार, रसविहार, मनिसिंगार, हितसिंगार, मंडलसभासिंगार, वृंदा- वनसत
७. कृष्णदास रचनाएँ : रुक्मिणीविवाह, रुक्मिणीहरण हमचडी	
८. नरहरिदास रचनाएँ : आणदरास, गोपीउद्धव संवाद	
९. फांग रचना : कसोद्वरण	
१०. साधवदास रचना : दशमस्कंध	

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति
[१७वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
<p>११. प्रेमनंद ✓ रचनाएँ रुक्मिणीहरण, रुक्मिणीहरण ना सलोको, बाललीला, वज्रवेलि, दाणलीला, भ्रमर-गीता, भ्रमरपचीमी, मास, सुदामाचरित, दशमस्कंध</p> <p>१२. रत्नेश्वर रचनाएँ दशम-एकादश स्कंध बारमास</p> <p>१३. विष्णुदास रचना : रुक्मिणीहरण</p> <p>१४. केशवदास वैष्णव रचना मथुरामहिमा</p> <p>★</p> <p>★</p>	<p>भजनसत, सिंगारसत, रगविनोद, आनंद-दसाविनोद, रगहुलास, ख्यालहुलास, भजना-ष्टक, आनन्दाष्टक, निरतविलास, प्रीति-चौवनी, मनसिक्षा, जीवदिसा, जगल-ध्यान, भजनकुडली</p> <p>गौडीय सम्प्रदाय</p> <p>५. बल्लभरसिक रचना वाणी</p> <p>६. माधवदास रचनाएँ उत्कंठाभाधुरी, वशी-वटभाधुरी, केलि-भाधुरी, वृंदावन-विहारभाधुरी, दान-भाधुरी, मानभाधुरी</p> <p>निम्बार्क सम्प्रदाय</p> <p>७. रूपरसिकदेव रचनाएँ : वृहदोत्सवमणिमाल, हरिव्यास-यशामृत, नित्यविहारपदावली</p> <p>८. तत्ववेत्ताजी रचना वाणी</p>

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति
[१७वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
	हरिदासी सम्प्रदाय
	९. नागरीदास ✓ रचना . वाणी
★	१०. सरसदेव रचना : वाणी
	११. नरहरिदेव रचना . वाणी
★	१२. पीतांबरदेव रचनाएँ रस और सिंगार के पद. सिद्धान्त और सिंगार की साखी, केलिमाल की टीका
★	१३. रसिकदेव रचना : स्फुट पद, दोहे स्वतन्त्र वर्ग के कवि
	१४. सेनापति रचना कवित्तरत्नाकर
	१५. बिहारी रचना . सतसई
★	१६. मतिराम रचनाएँ : रसराज, ललितल- लाम, सतसई
	१७. देव रचनाएँ . भावविलास, अष्ट- याम, भवानी विलास

[समाप्त]

कवि	त्रिपाठी	भावेरी	तारापोरवाला	चिन्नेदिया	थूथी	मुंशी	शास्त्री
१. नरसी मेहता	१५वीं शती	१४१४-८१	१४१५-८१	१४१४-८१ संशयास्पद	१४१४-८१	१५००-८० के बीच	सं० १४००- १५३६
२. मीरा	१५वीं शती	१४०३-७०	१४०९-१५४७	.	१४०३-७०	१५५० के लगभग	सं० १५५५- १६०३
३. नयवि	१४३९ (नतवि)	सं० १४५०
४. मयण	सं० १५००
५. भालण	१५वीं शती	१४३९-१५३९	१४३४-१५१४	नरसी के समकालीन	१४३९-१५३९	१४३६-१५००	लगभग सं० १५४०-४५

६. केशवदास	(केशवराम)	सं० १५२२
७. भोस	१५वीं शती	१४८४	१४८४	...	१४८४	१४८४	सं० १५४१- ४६ के लगभग
८. नाकर	उल्लेख मात्र	१५०४-१५८४	१५५० के लगभग	सं० १५३२- १६२६
९. चतुर्भुज	सं० १५३६ के लगभग
१०. भीम वैष्णव	१७वीं शती वि० के आरम्भ में
११. बहेदेव	सं० १६००
१२. कीकु बसहो	सं० १६५०

१६. फूढ	सं० १६५१- ८३ के लगभग
१७. लक्ष्मीदास	सं० १६३९- ७२ के लगभग
१८. देवीदास	१६०४ के लगभग	१५७५-१६२५	सं० १६६० के लगभग
१९. शिवदास	१६१६	१५२५-१६२५	सं० १६६७- ७७ के लगभग
२०. भाऊ	सं० १६७६- ७९ के लगभग
२१. वैकुण्ठदास	सं० १६५०- १७०० के बीच

२२. परमाणंद	सं० १६८९ के लगभग
२३. कृष्णदास	सं० १६७३- १७०१
२४. नरहरिदास	...	सं० १६६९- १६८६ के लगभग	सं० १६७२- १७००
२५. कांग	१७वीं शती वि०
२६. भाषवदास	सं० १७०५ के लगभग
२७. प्रेमानंद	१७वीं शती	१६३६-१७३४	१६३६-१७३४	उल्लेख मात्र	अज्ञा के बाद : १६३६-१७३४	...	सं० १७०० के लगभग
२८. रत्नेश्वर	उल्लेख मात्र	१७वीं शती	...

व्यक्ति-नामानुक्रमणिका

[अंक पृष्ठ संख्या के द्योतक है ।]

अस्त्राभगत ४७७	९२, ९३, ९४, ९८, ९९, १००,
अगरचंद नाहुटा ४६६	१०२, १०३, १०५, १०६, १०८,
अमरनाथ राय ४७६	११३, १२०, १२१, १३१, १३२,
अम्बालाल बुलाकीराम जानी १०, ४६,	१३४, १३६, १३७, १३८, १४०,
४५५	१४४, १४५, १४६, १५२, १५५,
आंडाल १२९	२१९, २२९, २४९, २५३, २५९,
आनन्दशकर ध्रुव ९	३७५, ३८१, ३८२, ४०१, ४०२,
आर०सी० मजूमदार १२	४०३, ४०४, ४०८, ४०९, ४११,
आलम ३९, ४२५	४१२, ४१४, ४१५, ४२०, ४२३,
इच्छाराम सूर्यराम देशाई ९, ४९, ४७३,	४२५, ४३५, ४३६, ४३८, ४४७,
उमाशकर शुक्ल ३०, ३१, ३२	४५१, ४५२, ४५४, ४५५, ४६९,
एस० के० दे १२	४७६, ४७७, ४८१
कबीर ७, ४५८, ४७१	केशवदास कायस्थ २१५, २१७, २७०
कर्नल टाड १९	केशवदास वैष्णव ४१, १४३, २०३,
कल्याण राय १०, १२	गंग ३९-४०
कान्हर स्वामी ५४	गट्टूलाल ५१
कालिदास २२, १२२, २९२	गणपति १२२
कासीराम करसन जी ४४	गदाधर १३५, ४१०, ४३३, ४३४,
कीकु वसही ८, २३, १०५, १२३, ४०३	४३७
कीर्तिमेरु २	गदाधरदास ४७५
कुभनदास २६, २८-२९	गदाधरभट्ट ३६, ६१, ८०, ११६, १४०,
कृपाराम ३९-४०	२०५, २२१, २२४, २३३, ३५८,
कृष्णदास २६, २९, ४१, ४३-४४,	३६६, ३९२, ४५३, ४८०
१४६, १५३, १५६, ४५७, ४७७,	ग्रियर्सन ४६७-४६८
४७९	गोकुलनाथ ४३, ५२, ४७७
केशव ३७९, ३९०	गोपालदास ८, ४७६
केशवदास १, ८, १०, २०, २१, ३९,	गोवरधनदास नारायण भाई ५१
४०, ५२, ८१, ८४, ८६, ८९, ९०,	गोवर्धनराम ९
	गोविन्ददास ४७२
	गोविन्ददेव जी ६४

गोविन्दलाल भट्ट ४७६
 गोविन्दस्वामी २६, ३०
 गोसाई विठ्ठलनाथ २६, ४७७
 गोस्वामी रघुनाथ भट्ट ६१
 गौरीशकर हीराचद ओभा १९
 चतुर्भुज ८, ११, २२, १४४, १४७,
 १४९, ४०९, ४२६
 चतुर्भुजदास २६, ३४, २९९
 चैतन्य ८, ९, ११, १२, १३, ३६, १७४,
 २२६
 छीत स्वामी २६, ३३
 जगजीवनराम बघेका १०
 जन मुकुन्द ३३
 जयदेव ७, ११, १६, ११५, १२९,
 १३२, १३८, ४६६, ४७०, ४७३,
 ४७४
 जवाहरलाल चतुर्वेदी ३१, ३३
 जीव गोस्वामी ९, १०, ११, ३६
 झावेरी ८, ९, १९, ४१, ४५
 झूठा स्वामी ३४
 तत्त्ववेत्ता जी ६४, ६५
 तानसेन ३८
 तारापोरवाला (इरच जहाँगीर सोराब
 जी) ८, ९, १९, ४५
 तुलसी (तुलसीदास) ३९, ४०, ९४,
 १४६, १४९, २६२, ४७१
 त्रिपाठी (गोबर्धनराम माधवराम) ८,
 १३, १४, १९, ४१
 यूथी (एन० ए०) ८, ९, १९, ४७,
 ४६८
 दंडी ४६७
 दयाराम ४७७
 दामोदर दास ५४, २०४

दिवेटिया (नरसिंह राव भोलानाथ) १,
 ८, ९, १३, ४३३, ४५२, ४७४
 दीनदयालु गुप्त ७, २६, २७, २८, २९,
 ३०, ३१, ३३, ३४, ३८, २२२
 दुर्गाशंकर शास्त्री १०, ४६६, ४७३
 देव ६७, ६८, ३१२, ३१६, ३१७,
 ३७५, ३७९, ३८२, ३९०, ३९९,
 ४२५
 देवीदास ४१, ४२, १५२, १५३, १५४,
 १५५, ४०३
 देवी प्रसाद १९
 द्वारिकादास परीख २६
 धीरेन्द्र वर्मा ७
 ध्रुव (आनन्द शंकर) १०, १३, ४३३
 ध्रुव (के० ह०) ४७
 ध्रुव (भक्त) २२८
 ध्रुवदास १५, ५४, ५९, ६०, ६१,
 ११२, ११३, ११५, ११६, ११९,
 १२०, १२१, १२३, १२७, १२८,
 १३०, १३१, १३३, १३४, १४०,
 १४१, १४२, १५९, १७९, १८१,
 १८८, १९८, २०४, २०९, २१०,
 २१३, २९८, ३०४, ३१९, ३२०,
 ३८२, ३८६, ३८९, ३९१, ३९३,
 ३९४, ४०१, ४०३, ४०७, ४०८,
 ४०९, ४१०, ४११, ४२५, ४३३,
 ४३४, ४३६, ४५७
 नंददास २६, ३०, ३१, ३२, ३३, ८०,
 ८१, ८३, ८४, ८६, ८७, ८८, ८९,
 ९०, ९२, ९३, ९४, ९९, १००, १०१,
 १०२, १०३, १०५, १०६, १०७,
 १०८, १११, ११२, ११३, ११९,
 १२०, १२१, १२२, १३१, १३२,
 १३७, १३८, १३९, १४०, १४१,
 १४६, १४९, १५०, १५१, १५२,
 १५३, १५४, १५६, १५९, १७५,

१७६, १७७, १७९, १८१, १८२,
१८४, १८६, १८७, १८८, १९२,
१९४, २०८, २०९, २४९, २८४,
२८५, २८७, २८९, २९१, २९२,
३४६, ३५६, ३५७, ३५९, ३६१,
३६६, ३७२, ३७३, ३७६, ३७८,
३८०, ३८५, ३८६, ३८७, ३८९,
३९०, ३९५, ३९६, ३९८, ३९९,
४०१, ४०३, ४०५, ४०८, ४१०,
४२५, ४३३, ४३४, ४३७, ४३८,
४३९, ४४०, ४४२, ४४३, ४४५,
४४६, ४४९

नगेन्द्र ६७

नटवरलाल देसाई १०, १५

नतारि २

नयारि १, १३१, १३६, १३८, १३९,
१४१, ३६८, ३७८, ३७९, ३८४,
४०९, ४११, ४१२, ४२५, ४३२,
४३३, ४३५, ४३६, ४७८

नरसी (मेहता) १, ३, ८-१८, ४५, ८०,
८२-८४, ८७, ८९, ९४, ९५, ९७,
९९-१०५, १०७, १०८, ११२,
११४-१२४, १२६, १२७, १२९-
१३४, १३६-१४४, १४७, १४९-
१५२, १५५, १५६, १५९, १७३,
१७५-१७७, १७९-१८३, १८५,
१८७-१९२, १९४, १९६, १९७,
२००-२०४, २०७-२०९, २११-
२१३, २१५, २१७-२२०, २२०,
२२२, २२३, २२५-२२९, २३३,
२३६, २३८, २४२, २४५, २४६,
२४९, २५०, २५८, २६०, २६३,
२६६, २७०, २८४, २८५, २९२,
२९४, २९५, २९७, ३०४, ३०६,
३०९, ३१२, ३१७, ३१९, ३२३,
३३७, ३४३, ३५२, ३५७, ३५९,
३६०, ३६४, ३६६, ३६७, ३६९,
३७१, ३७९, ३८०, ३८४, ३८६,

३८८, ३९०, ३९२, ३९४, ३९५,
३९८, ४०३, ४०४, ४०६, ४०८,
४१०, ४१३, ४१६, ४१९, ४२४,
४३३, ४३५, ४३६, ४३८, ४४०,
४४२, ४४४, ४४६, ४४८, ४४९,
४५१, ४५२, ४५४, ४७०, ४७४,
४७८, ४८१

नरहरिदास ४१, ४४, ४५, १४७, १५०,
२१९, २२३

नरहरिदेव जी ६५, ६६

नरोत्तमदास ३९, ४०, १५६, ३७३,
३७४, ३७५, ४०१, ४०३, ४२५

नर्मदाशंकर ९

नाकर ८, १०, १२, २२, १४३, १४९,
१५६, ४०२

नागरीदास जी ६६, ४२५

नाथाशंकर १५

नाभा १०

नाभा जी (नाभा दास) ३८, ६१

नामदेव ७, ४७२

नारायण भारती ३, ४

निम्बार्क ५३, १७४, १७८

नृसिंहारण्य मुनि ४६९

नेमिनाथ ४६६

परमाणद ४१, ४३, ४०३

परमानद २९, ८४, ८४, ८९, ९०,
१३१, १३३, १७५, १८४

परमानददास ७, २६, २९, ३४, १७६,
१७७, २०७, २०९, २१४, २४५,
२४९, २५२

परशुराम चतुर्वेदी ३९

परशुरामदेव ३७, ६४, १५९, १८६,
२२१, २२६

पीताम्बर ४०९

पीताम्बर देव ६६, १५९, ४०६, ४५०

पुरुषोत्तम ३, ४

पुष्पदन्त ४६६

पूजासुत परमानंद ८३, १४७

पेरियालवार ९६

प्रेमानंद १५, ४१, ४५-५१, ७९-८२,
८४-९५, ९९-११०, १२१-१२४,
१२६-१२७, १३१-१३४, १३७-
१४१, १४३-१४७, १४९-१५६,
१५९, १७५, १८१-१८४, १९३,
१९५, १९९, २०३, २१५, २२०,
२४६, २४९-२५१, २५४, २५९,
२६०, २६३, २६६, २६७, २७२,
२७४, २७५, २८०-२८९, २९४,
२९५, ३३७, ३४०-३४२, ३४४,
३४५, ३५८, ३६१, ३६३, ३७३-
३७५, ३७७, ३७८, ३८०, ३८४,
३८६-३८८, ३९१, ३९५-३९९,
४०१-४०६, ४०८, ४१०, ४११,
४१६, ४२०-४२२, ४३३, ४३५,
४३६, ४३८-४४०, ४४२, ४४४,
४४६, ४४८, ४४९, ४६८, ४६९,
४७१, ४७८-४८०

फाग ४१, ४५, ८३, ८७, ११०, १४४,
४०३

फूढ ८, २५, १४५, १५२, १५६, ४१०

बाबा कृष्णदास ६२

बिहारी ६७, ३७५, ३७६, ३७९, ३८१,
३८६, ३९०, ३९९, ४३३, ४३५,
४३७-४४०, ४४६

बिहारीदास १९६

बैकुण्ठदास ४३, १३१

बैजूबावरा ७

बोपदेव ६

ब्रह्मानंद ४७

ब्रह्मदेव (ब्रह्मेदेव) २३, १४७, ४५६, ४८१

भंडारकर ४६६, ४६८

भगवत्तहित ३४

भरत ४६७

भाऊ ४१, ४२, १५६

भालण १, ३-६, १०, २१, २४, ८०-
८२, ८४, ८६, ८७, ८९, ९०, ९२-
१०९, १११, १२३, १२४, १२६-
१२९, १३१, १३३, १३४, १३८,
१३९, १४४-१४७, १५०-१५३,
१५५-१५८, १८२, १९९, २००,
२०८, २१५, २२३, २४६, २४९-
२५१, २५४-२६१, २६३, २६६,
२६८-२७४, २७७-२८०, २८३,
२९४, २९८, ३०२, ३०३, ३१६-
३२०, ३२७, ३३७, ३३८, ३४२,
३४४, ३४६, ३४७, ३४९, ३५०,
३६८, ३७२, ३७३, ३७६, ३७९,
३८४, ३८६, ३८७, ३९१, ३९४-
३९८, ४०१, ४०२, ४०४, ४०५,
४०७, ४१०-४१२, ४१६, ४१९,
४२०, ४२३, ४२७, ४३२, ४३५,
४३६, ४३८, ४३९, ४४२, ४४३,
४४६, ४४७-४४९, ४५३, ४५४,
४५७, ४६८, ४६९, ४७१, ४७८,
४८१

भास ८४, ९१, ९८, १०३, १०४, १२९,
१३०, १३२

भीम १, ३, ४, ६, १०, २२, ८४, ८९,
१३१, १३२, १४८, १५०, ४०१-
४०४, ४०७-४०९, ४१२, ४१४,
४१६, ४१९, ४२०, ४२२, ४३२,
४३३, ४३५, ४३६, ४३८, ४५१,
४६९, ४७६.

भीम वैष्णव ८, १४७

भोगीलाल सांडेसरा २२

भोजदेव ४६८

मतिराम ६७, २६४, ३७५, ३७९,
३८२, ३९०, ४२५

मयण १-३, ११५, १२७, १२९, ३०२,
४०९, ४३२, ४३५, ४३६

महावदास ४७७

महावीर सिंह गहलौत ३९

माधवदास ४१, ४५, ६१, ६३, १११,
११५, ११६, १२०, १२३, १२६-
१२८, १३१, १३२, १४१, १७९,
२०९, २२६, २९८, ३०४, ३०५,
३८२, ३८६, ३९३, ४०१, ४०३,
४२५

माधुरीदास ११९

मिश्रबधु ३३, ३५, ३८

मीतल (प्रभुदयाल) ७, २६, २९, ३०,
३१, ३३

मीरा १, ८, १०, १२, १३, १९, २०,
३९, ४०, ११४, ११५, १२३,
१३०, १३८, १४१, १४२, १५७,
१५८, २३३, २३४, २३८-२४०,
२४२, २६३, २९९, ३०६, ३०७,
४१९, ४२१, ४२४, ४२५, ४४०,
४५०, ४५७, ४५८, ४६८, ४७१-
४७३, ४७८, ४८२

मुशी (के. एम.) १, २, ३, ५, ८-१०,
१३, १४, १७, १९, २०, ४१, ४५,
४५८

मुशीराम शर्मा २६

मोदी (रामलाल चुन्नीलाल) ३, ४,
५, २१,

रत्नेश्वर ४१, ५१, १२१, १२२, १३१,
१३२, ४१५, ४१६, ४६९

रविदास ४१

रसखान ५३, ५४, ९४, १७५, २०१,
२४६, ३०८, ३६७, ३८२, ४२५

रसातलनाथ ५

रसिक ५४

रसिकदेव ६६, ६७, १५९, ४०९

रसिकराय ५४

रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना) ३९, ४०

राजशेखर ४६८

रामकुमार वर्मा ८, ३८, ५५

रामकृष्ण वर्मा ५५

रामचन्द्र शुक्ल ३६, ३८

रामजनकुंजर ४

रामानंद ४७१

रामानुज १९१

राय चौधरी ४६६

राहुल साकृत्यायन ४६८

रूप गोस्वामी २०६

रूपरसिक देव ६४, ६५, २११, २२१

रैदास ४७१

लक्ष्मीदास ६, ४१, ८०, १३१, १३३,
१३८, १५२, ४०१, ४२५, ४५५,
४५६, ४८१

ललिता प्रसाद शुक्ल ३९

लालचदास ७

लाल स्वामी ५४

लीलू भाई चु. मजुमदार २१

वनचंद ३४

वल्लभ ४३, १७४, १७५, १९३

वल्लभ रसिक ६१, ६२, ६६, ९३,
३८१, ४१०, ४२५, ४४०, ४५०

वल्लभाचार्य ८, ११, १३, २१, २३,
२६, २७, ५२, १७६, १७७, १८०,
१८६, १८७, १८९, १९१, १९२,
१९४, २०१, २०६, २२५, २२६

वस्ता १०

वासणदास ८, १५, २३, ११६, ११९,
१२३, १३१, १३३, १३६, १३८,
१३९, १४१, ४०६, ४१५, ४८०
विट्ठल नाथ २१, २३, ५३, १७७,
२२५, ४७४-४७६

विठ्ठलविपुल देव ३८, ३९

विद्यापति ७, १३६, १३८

वियोगी हरि ३८

विल्वमंगल ११, ४६९

विश्वनाथ जानी १०

विष्णुदास ३, ५, १०, ४१, ५२, १५२,

विहारिन देव ३८, ३९, ६६, १५९

विहारीशरन ७

वृन्दावनदेव ६४

वेणा भट्ट ४७७

वैकुण्ठदास ४१, ४७६

व्यास जी २७, ३४, ३५

ब्रजेश्वर वर्मा २६

शंकराचार्य १८६, १९०, १९१

शांडिल्य २०१

शास्त्री (के. का.) २-५, ८, ९, ११,
१४, १६, १७, १९-२१, २३-२५,
४३, ४४, ४६, ४७, ५०, ५२,
४३३, ४५६, ४७७

शिवदास ४१, ४२, ९४, १३१, १३२,
१५७

शिवानंद ४७

शेध जी (काशीसुत) ८, २४, २५,
१५२-१५५, ४१०, ४११

शोभाचंद ५३, ५४, १५९

श्रीधर ५१, ४१५

श्रीभट्ट ७, ८, ३७, १४०, १४१, २०५,
२१३, २१४, २१८, २३३, ३७१,
३८९, ४१८, ४३३, ४३४, ४३७

श्रीहर्ष २२

सत ८, २५, १३२, ४०३, ४०४

सनातन गोस्वामी ३६

सरसदेव ६५, ६६, ४२५

सीतलनाथ ५

सुन्दर ४९

सूरदास (सूर) ५, ७, २१, २६-२८,
३३, ४४, ७९-९८, १००-११४,
११६-११९, १२१, १२५-१२९,
१३१-१४१, १४३-१५९, १७५,
१७६, १७८, १८१-१८४, १८६-
१९०, १९२, १९४-१९७, १९९-
२०१, २०४, २०८-२१०, २१४-
२१७, २२०, २२३, २२५, २२६,
२३३, २४२, २४५, २४७, २४८,
२५०-२६४, २६९, २७२-२७४,
२७६-२९०, २९२, २९३, २९५-
२९८, ३००, ३०२-३०९, ३११,
३१२, ३१४, ३१८, ३१९, ३२१-
३३०, ३३२, ३३३, ३३५-३३८,
३४०-३४३, ३४५-३५२, ३५६-
३५९, ३६१, ३६३, ३६६, ३६७,
३६९, ३७१, ३७३, ३७७, ३७८,
३८०, ३८३, ३८५-३८८, ३९०-
३९९, ४०१, ४०३, ४०५, ४०८,
४१०, ४११, ४१३, ४१६, ४१९,
४२१, ४२२, ४२४, ४२५, ४२७,
४३३, ४३५, ४३७-४४०, ४४२,
४४३, ४४५, ४४६, ४४८-४५०,
४५७, ४७९, ४८०,

सूरदास मदनमोहन ३६, ४२५

सेनापति ६७, १२०, १२१, ३७१,
३८१, ३८६, ४२५

सेवक ३४, ४०८-४११, ४१३, ४१४,
४२५

स्वयंभू ४६६

हजारी लाल शर्मा २८, ३३

हरगोविन्ददास कौटावाळा ४, १४-१५,
४५३

हरिदास (स्वामी) ३८, ५४, १२३,
१४०, १५९, १९२, १९६, २०५,
२२४, २३३, ४४०

हरिधन ५४

हरिनाथ १५

हरिराम व्यास (व्यास) ३५, १११,
११२, ११४, ११५, १२०, १५९,
१८३, १९१, १९६-१९८, २०१,
२०५, २१०, २१७, २२०, २२७,
२२८, २३०, २३३, ३०८, ३२५,
३६७, ३८९, ३९८, ४०६, ४७०,
४७२

हरिराम जी २१, ५३, ५४, १२३,
१२६, ४०५, ४७७

हरिव्यास देव (हरिव्यास) ७, ३७,
६४, १५९, १७५, १७८, १७९,
१८४, १९६, २१०, २११, २१४,
२२४; ४१८

हरिवारण जी ६५

हितविट्ठल ५४

हितहरिवंश (हरिवंश) २४, ३४, ३५,
११४, ११९, १२०, १२८-१३०,
१३५, १३७, १४०, १४१, १५२,
१५३, १५६, १५९, १७८, २०४,
२२०, २२२, २२३, २२५, २२७,
२३०, ३५६, ३८९, ४०७-४१०,
४१९, ४२१, ४२२, ४२५, ४३३,
४३४, ४३६, ४३७, ४५२, ४६८

हेमचंद्र ४६६

ग्रंथ-नामानुक्रमणिका

[अक पृष्ठ संख्या के द्योतक है ।]

अणुभाष्य १८९	कृष्णगीतावली ४०, ९९, १४६, १४९, २६३
अनुरागलता ५५, ५८	✓ कृष्णबालचरित ५-६
अनेकार्थमजरी ३०, ३१	कृष्णविष्टि ५, ६, १५६, ४७८
अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय २६	कृष्णवृन्दावनराघवरास २४
अष्टयाम ६८	कृष्णवृन्दावनराघारास २३
आठ बार १४	कृष्णवृन्दावनरास ११६, ११९, १२३, १३१, ४१५
आनन्ददशाविनोद ५५, ६०	केलिमाधुरी ६३, ६४, ११५
आनन्दराश ४४, ४५, २१९, २२३	केलिमाल ३८
आनन्दलता ५५, ५८, ४०३	केलिमाल की टीका ६६
आनन्दाष्टक ५५, ६०	खिचरी उत्सव ५४
आलमकेलि ४०	ख्यालहुलास ५६, ६०, १५९
✓ उज्ज्वलनीलमणि ९, ११, १११	✓ गर्गसंहिता १४, ८३
उत्कंठामाधुरी ६३, ६४	गजेन्द्रमोक्ष ४१
उत्तरकांड ४	✓ गाथासप्तशती ११५
उद्धवगोपीसंवाद १४७	गायत्री मागणी १४
उद्धवलीला २९	गीतगोविन्द ७, ११, ११२, ११३, ११८, १२९, १३०, १३२, १३६, ४६६, ४७०
उपनिषद् १७४, १८२, १८७	गीता ३४, १७४, १८२, १८९, २०१
ओखाहरण ४६	गुरुमंगलयज्ञ ६७
कसोद्वरण ४५, १४४	गुलाब कुज की मांझ ६२
कक्को १४	✓ गोपालपूर्वतापनीय १७४
कविचरित ११, २३, ४७७	गोपीउद्धवसंवाद ४४, ४५
कवित्तरत्नाकर ६७, १२०, ३८१, ३८६	गोपीजनवल्लभाष्टक २१
कविप्रिया ४०	गोवर्धनलीला २७, ३०, ३२, ४०३
कादम्बरी ३, ५	
काव्यकल्पद्रुम ६७	
✓ कृष्णकर्णामृत ४६९	
कृष्णकीडाकाव्य २०, २१, २७०, ३८१	

- गोविन्दगमन ९, ११, १३-१६, १४३, १४४, ३२९, ३६४
 गोविन्द दासेर कडछा (कडछा) ९, ११
 गौडवहो ११५
 चन्द्रहासाख्यान ४१
 चातुरियाँ ११५
 चातुरी छत्रीसी १३, १६, १२३, १२७, २४१
 चातुरी षोडशी ११, १३, १६, १२७
 चौरासी श्रेष्णवन की वार्ता २२६
 छान्दोग्य (उपनिषद्) १८५
 जन्मबधाई ना पद १८
 जन्म समा ना पद १८
 जलक्रीडा की माझ ६२
 जिवदिसा (जीव दिसा) ६१, १५९
 जुगलध्यात ५६, ६१
 जुगलसत ३७
 ज्ञानगीता ४४
 ज्ञानबोध ४१
 तत्त्वदीप निबन्ध १७६, १८६
 तिरुपावै १२९
 तिरुमली ९६
 तुलसी ग्रन्थावली ४०
 तुलसी रचनावली ४०
 तैत्तिरीय (उपनिषद्) १८७
 दशमस्कंध ४-७, २९-३१, ४१, ४२, ४५-४७, ४९-५१, ७९, ८३, ८४, ८८, १२३, १२७, १३३, १४३, १४६-१४९, १५२, १५७, १५९, १९५, २००, ३०८, २२३, २४६, २५०, २५५, २५७, २६१, २६३, २६४, २६६, २७२, २७८, २८४, २८५, २९१, ३०२, ४०३, ४११, ४१२, ४५३
 दशमस्कंध भाषा २७
 दाणलीला १३, ४६, ४७, १२३, ४०३
 दानमाधुरी ६३, ६४, १२३, १२६, १२७
 दानलीला १५, १६, २७-२९, ३४, ५४, १२३, १२६, १२७, २४३, २९२, २९६, ३००
 दानविनोदलीला (दानविनोद) ५५, ५७, १२३, १२६, १२७, ४०३
 दिवारी की माझ ६२
 देवीभागवत ४६९
 द्रौपदीनू कीर्तन १४
 द्वादशयश ३४
 ध्यानलीला ६७
 ध्रुवचरित्र २९
 ध्रुवदाम की बानी ५५
 ध्रुवसर्वस्व ५५, ५७, ५८
 ध्वन्यालोक ११५
 नददास पदावली ३१
 नरसिंह महेता कृत काव्य संग्रह १४
 नलाख्यान ५
 नागदमन १४
 नागलीला २७
 नानी अमरगीता ४८, ४९
 नानु दशम स्कंध ४६, ४९, ५०
 नारदपाचरात्र १४, २०१
 नारदभक्तिसूत्र २०१, २११, २४४
 नित्यविहार पदावली ६५
 निम्बार्क माधुरी ७, ३७-३९, ६५-६७, १७५
 निर्तविलास ६१, १३१, ४१०
 नृत्यविलास ५५
 नेमिनाथ चतुष्पदी १२२

- नेहमंजरी ५५, ५७, ३२०, ३९४
 पदावली ३०, ३३, ५४
 ✓ पद्म (पुराण) ११, १४, ५१, ९०, १११, १२९, १३०
 परमानन्दसागर २९
 ✓ परशुरामसागर ३७, ३८, २२६
 पांडवगीता २२
 पांडवजुगटानुं पद १४
 पांडव विष्टि ४२, १५६, ४७८
 पूजाविलास ६७
 पृथ्वीचन्द्रचरित ११
 पेढीनामा १०
 प्रेमतत्त्वनिरूपण ३०
 प्रेमरसराशि ३०
 प्रेमलता ५५, ५८
 प्रेमवाटिका ५३
 प्रेमसत्त्वनिरूपिता २९
 प्रेमावली ५५, ५७, ४१०
 प्रबोध प्रकाश ४, ६
 प्रियाजु की नामावली १५६
 प्रियाजू की बधाई ६३
 प्रीति चौवनी ५६, ६१
 फागु २, १३१, १३२, १३६, ४११, ४१२, ४२५
 बानी ३०
 बारमास १४, ५१, १२१, ४१५
 बारामासा १२०, १२२, ३७१
 बारमास नो बिरह ४७
 बारमास रामदेना १४
 ✓ बालचरित २३, १२३, १२९, १३१, १३६-१३८
 ✓ बालचरित्र ४२
 बाललीला १३, १८, ४६, ४७, ६७
 बिहारीरत्नाकर ३९०
 बीजुनलाख्यान ३, ४
 बृहत् काव्य दोहन १४, २९, ४२
 बृहद्वामन पुराण की भाषा ५५, ५६
 ब्रजवेलि ४६, ४७, ४१२
 ब्रजमाधुरीसार ६७
 ब्रजलीला ५५, ५७, ७९, ११२
 ✓ ब्रह्म (पुराण) ८३, ९२, १२९-१३२, १३७, १३८, ४६८
 ब्रह्मवैवर्त (पुराण) ११, १४, ८०-८२, ८५, ९०, ९२, ९८, १०१-१०९, १११, ११२, ११५, ११८, ११९, १२९, १३०, १३२-१३६, १३८-१४०, १४२-१४५, १५२, १५३, १५५, १५९, १७४, १७८, १७९, ४६९
 ब्रह्मदेव (ब्रह्मदेव) ८, २३, १४९, १५०, ३४२, ४०२
 ब्यालीस लीला ५४, ५५, ६०, ११६, १२०, १३१
 ब्याहलो २७
 भैरवगीत २७, ३०, ३३, १४६, १४९, १५१, ३७२
 भक्तनामावली ५५
 भक्तमाल ३०
 भक्तसिद्धान्तमणि ६७, १५९
 भक्तिग्यान ना पदो १८, १५९
 भक्ति परचावली मंगल ३५
 भक्तिपियूष ४७६
 भक्तिप्रताप ३४
 भक्तिविधान ५४, १५९,
 भगवतगीता ४४, ४६
 भजनकुंडली ५५, ५८, ६१, १५९

भजनशिक्षा १५९	मनिसिंगार (मनसिंगार) ५५, ५८, ४०७
भजनसत ५९, १५९	मयणछंद २, ३, ११५, १२७, ३०२, ४०३, ४०९
भजनाष्टक ५५, ६०, २१३	मल्लअखाडा ना चंद्रावला २५, १४५
भरथरी वैराग्य ३८	महाभारत ९८, १५६, ४६८
भवानीविलास ६८, ३१६, ३८२, ३९९	महावाणी ३७
भविष्योत्तर (पुराण) ९-११	महिना ४७
भागवत (पुराण) ६, ११, १६, १७, २२, २४, ३४, ४३, ४५, ४८, ४९, ५१-५३, ७९-८४, ८६-११०, ११४, ११९, १२९-१३३, १३७-१५४, १५६-१५९, १७४, १८३, १९३, १९९-२०२, २०६, २०८, २०९, २२६, २४५, २४९, २५९, २६३, २८५-२८७, २९१, ३५७, ३७०, ४६९, ४७०, ४७३, ४७४	माधवानल कामकंदला १२२
भागवत अनुवाद २५	मानमजरी ३१
भागवत भाषा २७	मानमाधुरी ६३, ६४, १२७, १२८, २०९, ३९३
भागवत माहात्म्य ४७१	मानरसलीला ५५
भागवतसार ४२	मानलीला १४, २७, ५७, १२७-१२९, २४३, ३००, ३०१, ३०४, ४०७
भावविलास ६८, ३९०	मानविनोदलीला ५७, ३०५
भ्रमरगीत २९, ३०	मामेरु १४, ५३
भ्रमरगीता ११, २२, २३, ४६-४८, ५०, ५१, १४४, ४५६	मार्कण्डेय (पुराण) ४६८
भ्रमरपचीसी ४६-४८, १४७, १४९,	मास ४६, ४७, ४९, १२१, १२२, ३८०, ३९१
मङ्गलसभासिंगार ५६, ५९, १२०, १३४, ३८२, ३८९	मीरा, जीवनी और काव्य ३९
मत्स्य (पुराण) ४६८	मीरा स्मृति ग्रंथ ३९
मथुरामहिमा ५२, ५३	मीराबाई की पदावली ३९, २३९
मथुरालीला १२०, १४४, १४७, २०३, २२९, ४७६	मुंडक (उपनिषद्) १८५
मदनाष्टक ४०	मेघदूत २९२
मधुकर नां बारमास १४	मोटुदशम स्कंध ४६, ५० ५१
मधुमालती ३४	मोतीनीखेती १४
मनशिक्षा ५६, ६१	युगलध्यान ६७
	रगविनोद ५५, ६०
	रगविहार ५५, ५८
	रगहुलास ५५, ६०
	रणयज्ञ ४६, ४९

रतिमंजरी ५५, ५७, ११५, ३८६,
३९४

रस के पद ६६, ६७

रसमंजरी ३०, ३१

रसमुक्तावली ५६, १२०

रसरत्नावली ५५, ३२०, ३०४

रसरज ६७, ३१७, ३९०

रसविहार ५५, ५८

रससार ६७

रससिद्धान्त के साखी ६७

रसहीरावली ५५, १२०

रसानंद ५५

रसानंलीला ५७

रसिकगीता २२, १४७, ४७६

रसिकप्रिया ४०

रहसिलता ५५, ५८, ४१०, ४११

रहस्यमंजरी ५५, ५७, ४०८

रागरत्नाकर ५४

राधारंग ४१५

राधारसकेलिकौतूहल २७

राधावल्लभ-भक्तमाल ५४, ५५

राधाविरहना बारमास ५१

राधामुधानिधि ४५२

रामबालचरित ५

रास की मांभ ६२

रास के पद ३८

रासपंचाध्यायी ६, २९, ३०, ३२, ३३,
३६, ४०, ४१, १३०, १३१, १३२,
१३३, २९१, ३७२, ४०३, ४५५

रासपंचाध्यायी नो सार ४२, १३१

रासलीला ४३, १३१, ३७२

राससहस्रपदी १३, १७, १३१, १३९,
५६०

रुक्मिणीमंगल ३०, ३२, १५२, १५४,
३७२, ३७३, ४०३

रुक्मिणी विवाह ४३, ४४, १५५

रुक्मिणीहरण ५, २४, २५, ४२, ४६,
४७, ५१, ५२, १५२, १५३, ३८८,
४११, ४७८

रुक्मिणीहरण नो सल्लोको ४६, ४७

रुक्मिणीहरण हमबडौ ४३, ४४, ४७९

रूपमंजरी ३०, ३२, १२०, ३७२, ४०३

रूपमाधुरी २५८

ललितललाम ६७, ६८

वंशीवटमाधुरी ६२, ६३, ६४

वनविहार ५५, ५८

वनविहारलीला १३४

वर्षा की मांभ ६२

वर्षा की बंगला पर की मांभ ६२

वल्लभवेल ५२, ४७६

वल्लभाख्यान ८, ४७६

वसंतनां पद १९, ११६

वसंतविलास २

— वाराह संहिता ६७

वासिष्ठगीता ४४

विदग्धमाधव ९, १०

विरहमंजरी ३०, ३२, १२१, ३७२,
४०३

विराट पर्व २४

विवेकवर्णभारो ४९

विष्णुपद १४

— विष्णु (पुराण) २४, ८०, ८३, ९८,
१३०-१३२, १३७, १४१, १५२,
१५३, ४६८

विष्णुभक्ति-चन्द्रोदय ४६९, ४७५

वृन्दावनमाधुरी ६४, ११९, १२०, १७९

वृन्दावन विहार माधुरी ६३
 वृन्दावनसत ५५, ५९, ११९, १२०
 - वृहद्वामन पुराण १८१
 - वृहदारण्यक १८५
 वृहदोत्सव मणिमाल ६५
 वैदकलीला ५५, ५६, ११३, १५९
 वैष्णववदना २९
 वैष्णव वदन ३०
 शिलाग्रधिकरणम् १२९
 श्यामसगई ३०, ३१, १११, ११३,
 ३७२
 - श्वेताश्वतर (उपनिषद्) १८५
 शृंगारमाला १३, १७, ११६, १२७
 ४१६
 शृंगाररहस्यमुक्तावली ५४
 श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य २१५, २१९, ४०२,
 ४०९, ४१५, ४५२, ४५४, ४६९,
 ४७७
 श्रीकृष्णलीलाकाव्य २१७, २५३
 श्रीधरी टीका ४६९
 श्री माधुरी वाणी ६३, १७९
 श्री रुक्मिणी विवाहनांपदो ४५७
 श्री व्यासवाणी ३५
 श्री हरिभक्तिरसामृतसिंधु २०६, २११
 श्री हितचौरासी ३४
 श्री हितचौरामी सेवकवाणी ३५
 श्री हित स्फुटवाणीजी ३४, ३५, ४०७
 सत्यभामाजी ककीतरी २३
 सत्यभामनू ऋषणुं १८, १९, १५७
 सत्यभामाविह ५
 सदा की भाँक ६२
 सम्प्रदायप्रदीप ४७५

सामलदासजी विवाह १३
 सालवणनी समस्या १४
 साहित्य लहरी २६, २८, ३८३
 सिंगार की साखी ६६
 सिंगार के पद ६६
 सिंगार सत ५५, ५९
 सिद्धान्त की साखी ६६, १५९
 सिद्धान्त के पद ३८, ६७, १५९
 सिद्धांत पंचाव्यायी ३०, ३३, १३१,
 १५९, ४०३
 सिद्धान्त पद भाँक ५४
 सिद्धान्त विचार ५५, ५६, २०९
 सुखमंजरी ५५, ५६, ५८, ११३, ४०३
 सुजान रसखान ५३
 सुदामाचरित १३, १५, १७, ४०, ४३,
 ४६, ४७, ४९, ३७२, ३७३, ४०३,
 ४१४, ४७८
 सुदामाचरित्र ३०, ३२, ३७३, ३७५
 सुरतसंग्राम ९, ११, १३, १५, ११६,
 २४१, २९७, ३९२, ४१३
 सुरतोल्गास ६३
 सूरदास के पद २७
 सूरनिर्णय २६
 सूरपचीसी २६, २७
 सूररामायण २७
 सूरसातक २७
 सूरसागर २६-२९, ८२, ८३, ८९,
 ९३, ९८, १००, १०६, १०८,
 १०९, १११, ११४, १२१, १२३,
 १२५, १२८, १४४, १४६, १५१,
 १५२, १५५, १५७, १५८, १८२,
 १९९, २०७, २१६, २२८, २३३,
 २५८, २६५, २६९, २८१, २९०,
 ३८३, ४३८, ४५२, ४५७

सूरसागरसार २७	हरिव्यासयज्ञामृत ६५
सूरसागरसारावली २०७	हरिश्चन्द्राख्यात २२
सूरसारावली २६, २८, १८०, १८३, ४१२	हारमाला १०, १२, १३
सूरसाठी २६, २७	हिडोलाना पद १८, १९
सेवाफल २६, २७	हिडोलाना पदो ४१६
हनुमान चरित २४	हिडोलालीला ११८
हरिचुआक्षरा २३, २४	हिडोरालीला ३०
हरिदास जी की बानी ३८	हितचौरामी ३५
हरिदास जी के ग्रंथ ३८	हिततरंगिनी ४०
हरिदास जी के पद ३८	हितसिंघार ५५, ५९
हरिरस ४३, १३१, १३३	हितसिंघारलीला ३९३
हरिरसकथा १४७	हितजू की मंगल ३४
हरिलीलाषोडशकला ३, ४, ६, ८०, ४५२	हूँडी १४, ४३
	होरी खेल ६२
	होरी माधुरी ६३